प्रकाशक :
आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला

☼

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान :
(१) ब्र० धर्मचन्द्रजी शास्त्री जैन
गोधा सदन
संसारचन्द्र रोड, अलसीसर हाउस
जयपुर (राज०)

(२) श्री श्यामलालजी ठेकेदार
४, टोडरमल रोड, नई दिल्ली

(३) श्री पूनमचन्दजी गंगवाल
धर्मशाला रोड, झरिया (बिहार)

☼

२० अक्टूबर १९८५
प्रथम संस्करण
प्रति : १०००

☼

मूल्य : ३१)

☼

मुद्रक :
पांचूलाल जैन
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राज०)
फोन : ८३

मंगलाचरण

अरहन्त :- इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥ १॥

त्रिलोकस्थ जीवों के लिए हितकारी मधुर एवं विशद वचनों से युक्त, अनन्त गुणों के धारक, चतुर्गतिरुप संसार के विजेता, शतेन्द्र वन्दनीय जिन-अरहन्त भगवान को मैं नमस्कार करता हूं।

सिद्ध :- अट्ठविहकम्ममुक्के, अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे, णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं ॥२॥

अष्टकर्मों से मुक्त, अष्टगुण संयुक्त, अनुपम, अष्टमपृथ्वी में स्थित, कृतकृत्य (करने योग्य कार्य जो कर चुके हैं) सिद्ध भगवान को मैं नित्य नमस्कार करता हूं।

आचार्य :- गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुणणिलयाणं पायं पणमामि सुद्धमणो ॥३॥

आकाशवत् निर्लेप एव सागरवत् क्षोभ से रहित मुनिवृषभ-श्रेष्ठ आचार्य परमेष्ठी के चरणकमलों में शुद्ध मन से नमस्कार करता हूं।

उपाध्याय :- जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥४॥

नित्य ही धर्मोपदेश में तत्पर, मुनिवरों में प्रधान, रत्नत्रय संयुक्त उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार हो।

साधु :- दोदोसविप्पमुक्के तिदंडविरदे तिसल्लपरिसुद्धे।
तिण्णिमगारवरहिदे, पंचिंदियाणि ज्जिदे वंदे ॥५॥

राग-द्वेष से विप्रमुक्त, (मन-वचन-काय की प्रवृत्ति रुप) त्रिदंड से विरहित, (माया-मिथ्या-निदान रुप) त्रिशल्य से परिशुद्ध (अत्यन्त विरहित), (रस, ऋद्धि, गारवरुप) त्रिगारव से रहित, पंचेन्द्रिय विजेता मुनिजनों को मैं नमस्कार करता हूं।

परमेष्ठी :- अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण णमुक्कारो भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥६॥

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु; इन पंचपरमेष्ठी के लिए किया गया नमस्कार मुझे भव भव में सुख देवें।

जो तीर्थकर परम्परा के समुज्ज्वल नक्षत्र हैं, जिनका अद्भुत जीवन अध्यात्म की पवित्र प्रेरणा प्रदान करता है, जिनके नियत विचार भूले भटके जीवन-राहियों का पथ-प्रदर्शन करते हैं, उन्हीं श्रद्धालोक के देवता, आचार्य प्रवर दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के कर-कमलों में समर्पित करते हुए मैं अपने आपको धन्य समझ रहा हूं। आचार्यश्री ने जन कल्याण की भावना से हजारों भव्य जीवों को सुमार्ग में लगाया है, आपके माध्यम से जैनागम की निर्मल ज्योति सदा-सदा जलती रहे ऐसी कामना करता हूं। आचार्यश्री के अनन्य अनुराग, आशीर्वाद, अनुकम्पा और औदार्य के कारण ही मुझे लौकिक झंझटों से मुक्त होकर आत्मोत्थान करने वाली उज्ज्वल अभिलाषा के अनुसार जैन धर्म और संस्कृति की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आपके चरणों में नमोस्तु करते हुए निर्ग्रन्थ गुरुओं के जीवन परिचय की यह ज्योति रूप प्रथम भेंट आपके कर-कमलों में सविनय सादर समर्पित है।

आश्विन शुक्ला ७
वी० नि० सं० २५११
लूणवां (नागौर)

श्रद्धावनत :
ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री
ज्योतिषाचार्य

परमपूज्य प्रशान्त मुद्राधारी आचार्यवर्य

१०८ श्री धर्मसागरजी महाराज

धर्मसागर आचार्यो धर्मसागर वर्द्धने ।
चन्द्रवत् वर्त्तते योऽसो नमस्यामि त्रिशुद्धतः ॥

चारित्रचक्रवर्ती समाधिसम्राट परमपूज्य श्री १०८ दिगम्बर जैन

आचार्य शान्तिसागरजी महाराजका

❀ अन्तिम दिव्य सन्देश ❀

ओं नमः सिद्धेभ्यः। ओं नमः सिद्धेभ्यः। पञ्च भरत, पञ्च ऐरावतके भूत भविष्यत्-वर्तमान काल सम्बन्धी भगवानको नमस्कार हो। तीस चौबीसी भगवानको नमस्कार हो। सीमन्धर आदि बीस तीर्थंकर भगवानको नमस्कार हो। ऋषभादि महावीर पर्यन्त चौदहसौ बावन गणधर देवाय नमः। चारण ऋद्धि धारी मुनियोंको नमस्कार हो। चौंसठ ऋद्धि-धारी मुनीश्वराय नमो नमः। अन्तकृत्केवलिभ्यो नमो नमः प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें होने वाले १०, १० घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरोंको नमस्कार हो।

(महाराजने पूछा)— मराठी मध्ये बोलूँ का ? (जनताने कहा हां,)।

११ अङ्ग १४ पूर्व प्रमाण शास्त्र महा समुद्र है। उसका वर्णन करनेवाले श्रुतकेवली भी नहीं हैं। उसके ज्ञाता श्रुत केवली भी नहीं हैं। उसका हमारे सदृश तुच्छ मनुष्य क्या वर्णन कर सकते हैं। जिनवाणी, सरस्वती देवी. श्रुत देवी अनन्त समुद्र तुल्य है, उसमें कहे गये जिन धर्मको जो धारण करता है, उसका कल्याण होता है। अनन्त सुख मिलता है। उससे मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसा नियम है। एक अक्षर, एक ओं अक्षर, एक ओं अक्षर धारण करके जीवका कल्याण हुआ है। दो बन्दर लड़ते-लड़ते सम्मेदशिखरसे स्वर्ग गये। सेठ सुदर्शनने सद्गति पाई। सप्त व्यसनधारी अञ्जन चोर मोक्ष गया। कुत्ता महा नीच जातिका जीव जीवन्धरमुनि-जीवन्धर कुमारके उपदेशसे देव हुआ इतनी महिमा जैन धर्मकी है किन्तु जैनियोंकी श्रद्धा अपने धर्ममें नहीं है। अनन्त काल से जीव पुद्गलसे भिन्न है, यह सब लोग जानते हैं। पर विश्वास नहीं करते हैं। पुद्गल भिन्न है जीव अन्य है। तुम जोव हो, पुद्गल जड़ है। उसके ज्ञान नहीं है। ज्ञान दर्शन चैतन्य जीवमें है। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पुद्गलमें है। दोनोंके गुण धर्म अलग २ हैं। पुद्गलके पीछे पड़नेसे जीवकी हानि होती है। मोहनीय कर्म जीवकी क्षति करता है। जीवके पक्षसे पुद्गलका अहित है। पुद्गलसे जीवका घात होता है। अनन्त सुखरूप मोक्ष जीवको ही होता है, पुद्गलको नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पञ्च पापोंमें पड़ा है। दर्शन मोहनीयके उदयने सम्यक्त्वका घात किया है। चारित्र मोहनीयके उदयने संयमका घात किया है सुख प्राप्तिकी

इच्छा है तो दर्शन मोहनीयका नाश करो। सम्यक्त्व धारण करो। चारित्र मोहनीयका नाश करो, संयम धारण करो। दोनों मोहनीयका नाश करो। आत्माका कल्याण करो हमारा यह आदेश है, उपदेश है। मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जीव संसारमें फिरता है। मिथ्यात्व को नाश करो, सम्यक्त्वको प्राप्त करो, सम्यक्त्वको प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है ? सम्यक्त्वका वर्णन समयसार, नियमसार पञ्चास्तिकाय, अष्टपाहुड, गोम्मटसार आदि बड़े २ ग्रन्थोंमें है। पर इन पर श्रद्धान कौन करता है ? आत्म कल्याण करने वाला ही इसपर श्रद्धान करता है मिथ्यात्वको धारण मत करो यह हमारा आदेश है, उपदेश है। ओं सिद्धाय नमः। तुम्हें क्या करना चाहिए ? दर्शन मोहनीय कर्मका क्षय करो आत्मचिन्तनसे दर्शन मोहनीयका क्षय होता है। निर्जरा भी आत्म चिन्तनसे होती है।

दान-पूजासे, तीर्थ यात्रासे पुण्यबन्ध होता है। हर धर्म कार्यसे पुण्य बन्ध होता है। किन्तु केवलज्ञानका साधन आत्म-चिन्तन है। अनन्त कर्मोंकी निर्जराका साधन आत्म-चिन्तन है। आत्म-चिन्तनके बिना कर्म निर्जरा नहीं होती है कर्म निर्जराके बिना केवलज्ञान नहीं होता। केवलज्ञान विना मोक्ष नहीं होता। क्या करें ? शास्त्रोंमें आत्माका ध्यान उत्कृष्ट से ६ घड़ी है, मध्यमसे ४ घड़ी है और जघन्यसे २ घड़ी है। कमसे कम १०-१५ मिनट ध्यान करना चाहिये। हमारा कहना यह है कि ५ मिनट तो आत्म-चिन्तन करो। आत्म-चिन्तन करो। इसके विना सम्यक्त्व नहीं होता। सम्यक्त्व के विना संसार भ्रमण नहीं टूटता। जन्म-जरा-मरण नहीं छूटता। सम्यक्त्व धारण करो। सम्यक्त्वके होने पर चारित्र मोहनीयके उदय होनेसे ६६ सागर रहोगे। चारित्र मोहनीय का क्षय करनेके लिये संयम धारण करना चाहिए। उसके बिना चारित्र मोहनीयका क्षय नहीं होता। संयम धारण करना चाहिए। डरो मत। संयम धारण किये बिना ७ वां गुणस्थान नहीं होता ७ वें गुणस्थान बिना आत्मचिन्तन नहीं होता। वस्त्रमें ७ वां गुणस्थान नहीं होता।

समाधि दो प्रकारकी होती है—१. निर्विकल्प समाधि और २. सविकल्प समाधि। गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होती। बावानो भीऊ न का (भाइयों, डरो मत)। मुनि पदवी धारण करो। इसके बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होती। निर्विकल्प समाधि हो तो सम्यक्त्व होता है ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा नहीं है। फूल जैसे फलका कारण है वैसे ही व्यवहार सम्यक्त्व आत्माके अनुभवका कारण है। आत्म अनुभव होनेपर खरा सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्प समाधि मुनि पद धारण करने पर होती है। ७ वें से १२ वें गुणस्थान पर्यन्त निर्विकल्प समाधि होती है। १३ वें गुणस्थानमें केवलज्ञान होता है, ऐसा शास्त्रमें कहा है। आप लोग डरो मत। क्या करें ? संयम धारण करो, सम्यक्त्व धारण करो, इसके

सिवाय कल्याण नहीं है । सम्यक्त्व और संयमके बिना कल्याण नहीं है । पुद्गल और आत्मा भिन्न हैं, यह ठीक-ठीक समझो । तुम सामान्य रूपसे जानते हो । भाई-बन्धु, माता-पिता पुद्गलसे सम्बन्धित हैं । उनका जीव से कोई सम्बन्ध नहीं । जीव अकेला है । बाबा, जीवका कोई नहीं है । जीव भव-भवमें अकेला जायेगा ।

(मशीन बन्द हो गई)

देव पूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम तप और दान ये ६ क्रिया कही हैं । असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य ये ६ धन्धे कहे गये हैं । इनसे होनेवाले पापोंको क्षय करनेके लिये उक्त धर्म क्रिया कही गई है । इनसे मोक्ष नहीं मिलता । मोक्ष किसको मिलेगा ? केवल आत्मचिन्तनसे मोक्ष मिलेगा और कोई क्रियासे मोक्ष नहीं होता । भगवानकी वाणीपर पूर्ण विश्वास करो । इसके एक शब्दके विश्वाससे मोक्ष जाओगे । सत्यवाणी कौन है ? एक आत्मचिन्तनसे सब साध्य है । और कुछ नहीं है, बाबा ! राज्य सुख, सम्पत्ति, सन्तति सब मिलते हैं, मोक्ष नहीं मिलता । मोक्षका कारण एक आत्म-चिन्तन है, इसके सिवाय वह गति प्राप्त नहीं होती ।

सारांश 'धर्मस्य मूलं दया' प्राणीका रक्षण करना दया है, जिन धर्मका मूल क्या है ? सत्य और अहिंसा है । मुखसे सब सत्य-अहिंसा बोलते हैं । मुखसे भोजन-भोजन कहनेसे क्या पेट भरता है ? भोजन किये बिना पेट नहीं भरता । क्रिया करना चाहिये । बाकी सब काम छोड़ो । सत्य अहिंसा पालो, सत्यमें सम्यक्त्व है और अहिंसामें दया है । किसीको कष्ट मत दो, यह व्यवहारकी बात है । सम्यक्त्व धारण, धारण करो, इसके बिना कल्याण नहीं होता । (सल्लेखनाके २६ वें दिवस, गुरुवार दिनांक ८-८-५५) को श्री कुन्थलगिरि सिद्ध क्षेत्रपर आचार्य श्री द्वारा दिया गया अन्तिम सन्देश)

जैन कुलभूषण

श्री लाला महावीरप्रसादजी ठेकेदार

—: संक्षिप्त जीवन परिचय :—

देहली समाज के गणमान्य लब्ध-प्रतिष्ठित जैन कुलभूषण स्व० लाला महावीरप्रसादजी ठेकेदार ऐसे ही पुण्यात्मा और धार्मिक नर रत्न थे। किस-प्रकार उन्होंने अपने पुरुषार्थ और बुद्धि चातुर्य से धर्मयश और सुख की प्राप्ति की। नवयुवकों को उनका जीवन अनुकरणीय है।

उनका जन्म बैसाख बदी १४ विक्रम सम्वत् १६३५ में हुआ। माता पिता धार्मिकवृत्ति नीति-वान शीलवान हैं तो बच्चे उसे देखकर वैसे ही बन जाते हैं। बाल्यकाल से मनुष्य को अपने जीवन के प्रारम्भ में धार्मिक शिक्षा, अच्छी संगति, शुभ संस्कार सदुपयोग-सदुपदेश का लाभ मिला तो उसका मधुर फल आगामी जीवन में चखने को मिलेगा। बचपन में आपको धार्मिक शिक्षा मिली गुरुओं का उपदेश मिला फलस्वरूप जीवन एक आदर्श बन गया।

पहले आपने म्यूनिस्पल कमेटी के टैक्स डिपार्टमेंट में बीस रुपये माहवार पर कार्य किया वहां डिपार्टमेंट में गबन हो जाने के कारण आपने सर्विस छोड़ दी और स्वतन्त्र रीति से ठेकेदारी का कार्य करना आरंभ कर दिया।

महावीर प्रसाद एण्ड संस के नाम से १६१२ में दुकान खोलकर शुष्क सीमेंट सतना लाईन लोहे व चीनी के पानी के नल टाईल मारबल सेनेटरी सामान का कार्य किया जिससे आपको काफी आर्थिक लाभ हुआ। भवन बनवाने और सड़क निर्माण में भी आपकी रुचि थी।

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराजका संघ सहित १६३० में दिल्लीमें पदार्पण हुआ। आपने उनको आहार देने के लिए अशुद्ध जल का त्याग कर दिया और समस्त मुनिराजों की शक्तिभर वैयावत्ति की जिससे आपको अधिक आनंद आया और आचार्य श्री के उपदेश से ठेकेदारी छोड़ दी। गृहस्थ जीवन में चार विवाह किये दो से कोई सन्तान नहीं हुई। तीसरी धर्मपत्नी से श्री श्यामलालजी और एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्या का असमय में ही स्वर्गवास हो गया।

चौथी धर्मपत्नी से दस सन्तानें हुईं ६ लड़कियां और चार लड़के उत्पन्न हुये। इनमें से एक वहिन की मृत्यु हो गई। शेष सभी अपने पिताजी के गौरव और प्रतिष्ठा के अनुकूल धार्मिक कार्यों में उत्साह से भाग लेते हैं और दिल्ली के सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं की देख रेख करते हैं।

लाला महावीरप्रसादजी ठेकेदार ने सम्मेदशिखर, गिरनार, आदि तीर्थों की सपरिवार वन्दना की महावीरजी स्टेशन पर एक्सप्रेस ट्रेन ठहरती नहीं थी। आपने प्रतिमाह २५-३० टिकटें लेकर और सरकार को प्रेरणा देकर महावीरजी पर एक्सप्रेस ट्रेन ठहराने का पूर्ण प्रयत्न किया। जिसमें आपने पूर्ण सफलता प्राप्त की। आप समाज के पंच वर्षों तक रहे। जैन मित्र मंडल जो दिल्ली की सुप्रसिद्ध साहित्य संस्था है उसके भी अध्यक्ष रहे।

भारतवर्षीय दि० जैन अनाथ रक्षक सोसायटी के अन्तर्गत जो जैन बाल आश्रम है उसे हिसार से यहां लाने और उसकी समुचित व्यवस्था करने में आपका पूर्ण सहयोग रहा।

जब आप अस्वस्थ हुए और बीमारी बढ़ती गई तो आपके मन में आचार्य रत्न श्री देशभूषणजी महाराज से जो उस समय दिल्ली में विराजमान थे। उनसे धर्म उपदेश सुनने का भाव उत्पन्न हुआ आचार्य श्री ने घर जाकर आपसे संबोधन और धर्मोपदेश दिया। ऐसा सौभाग्य विरले ही जनों को प्राप्त होता है। १० जून १९५७ में समाधिमरण पूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

दिल्ली समाज के लोकोपकारी पुरुषों में आप अग्रणी थे। सौभाग्य की बात है कि आपके सभी पुत्र और पुत्रियां इसीप्रकार धार्मिक कार्यों में भाग लेकर मुक्तहस्त से सामाजिक संस्थाओं को दान देते हैं तथा देवगुरु शास्त्र के अनन्य भक्त हैं।

जैन कुलभूषण—धर्म परायण

श्री लाला श्यामलालजी जैन ठेकेदार

दिल्ली

—संक्षिप्त जीवन परिचय—

जीवन को सुख शांतिमय बनाने का मुख्य साधन धर्म है। धर्म के कारण यह प्राणी संसार के कष्टों को दूरकर सच्ची शांति प्राप्त कर सकता है। परिशुद्ध जाति, कुल उत्तम, वंश निरोग, शरीर दीर्घायुष्य, परोपकार निरत बुद्धि, देवशास्त्र गुरु की भक्ति धर्म वृद्धि की चिन्ता आदि बातें मनुष्य को पूर्व संस्कार से प्राप्त होती हैं और गुरुजनों के आशीर्वाद और सम्यक् पुरुषार्थ से उत्तम गुणों की वृद्धि होती है।

धर्म का पालन दो प्रकार से होता है मुनिधर्म और गृहस्थ धर्म। जैसे तप त्याग और आध्यात्म विकास का साधन मुनिधर्म है ऐसे ही दान शील पूजा स्वाध्याय आदि का साधन गृहस्थ धर्म है। मुनिधर्म का प्रधान लक्ष्य मोक्ष पुरुषार्थ है। उसीप्रकार गृहस्थ आश्रम में रहकर धर्म अर्थ काम इन तीन पुरुषार्थों को भली प्रकार पालन किया जा सकता है। सफल जीवन धर्म यश और सुख के पालन करने से ही हो सकता है।

दिल्ली महानगरी एक महत्व पूर्ण स्थान है। व्यापारिक नगरों में मुख्य तथा सांस्कृतिक गति विधियों का केन्द्र है। यहां पर जैन धर्म पालन करने वाले श्रावकों में अनेक प्रतिभाशाली उदार और लोक सेवी धनी परोपकारी भावना सम्पन्न राज्य मान्य स्त्री पुरुष हुए हैं। जिनके द्वारा देश धर्म और समाज की बड़ी सेवा हुई है। स्वनाम धन्य सेठ सुगनचन्दजी जिन्होंने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया, हस्तिनापुर में भगवान शान्तिनाथ का, दिल्ली में कला और सौन्दर्य का प्रतीक अत्यन्त भव्य भगवान आदिनाथ का नया मन्दिर निर्माण कराया जिसकी कारीगरी और पच्चीकारी का काम

देखकर आश्चर्य होता है। इसीप्रकार रायबहादुर सेठ पारसदासजी हुए जिनके द्वारा जैनधर्म और समाज की बड़ी सेवा हुई।

यहीं पर अग्रवाल वंशोद्भव सिंगल गोत्रीय सद् गृहस्थ द्वारकादासजी हुए उनके पुत्र ला० बनारसीदासजी हुए उनके सुपुत्र श्रीमान् ला० महावीरप्रसादजी ठेकेदार हुए वे बड़े धर्मात्मा, उदार, देवशास्त्र गुरु के अनन्य भक्त थे, उनकी धर्मनिष्ठा सभी प्रकार से प्रशंसनीय रही।

भाग्य पुरुषार्थ और सूझबूझ से दिनों दिन लक्ष्मी की प्राप्ति हुई और उसको धार्मिक कार्यों में खर्च करके उन्होंने गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाया।

आपने चार विवाह किये दो धर्म पत्नियों से कोई सन्तान नहीं हुई तीसरी से एक पुत्री और एक पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र श्यामलाल का जन्म आसौज बदी ४ विक्रम सम्वत् १९६४ तदनुसार २७ सितम्बर १९०७ ई० को हुआ दो वर्ष पश्चात् माताजी का स्वर्गवास होगया चौथी धर्मपत्नी श्री कलादेवी से चार पुत्र और छह पुत्रियां हुईं।

पुत्रों में श्री अजितप्रसादजी श्री महेन्द्रप्रसादजी श्री विजेन्द्रप्रसादजी और नरेन्द्रप्रसादजी हैं जो अपने पिता के यश और गौरव के अनुसार व्यापारिक कार्यों को भली प्रकार सम्पन्न करते हुए सामाजिक संस्थाओं की उन्नति में प्रयत्न शील रहते हैं।

श्री श्यामलालजी का विवाह १९१८ में ला० छज्जूमलजी कपड़े वालों की पुत्री चम्पावतीजी के साथ हुआ जिससे श्री जिनेन्द्रप्रसादजी और सत्येन्द्रकुमारजी दो पुत्र और सुशीला, सरला, कनक ये तीन पुत्रियां हुईं।

लालाजी का भरा पूरा परिवार है पुत्र और पौत्रों से आप सम्पन्न हैं।

ला० श्यामलालजी में बचपन से धर्म के विशेष संस्कार पड़े। बचपन के संस्कार जीवन पर्यन्त विकास के साधन बन जाते हैं।

गृहस्थ के दैनिक कर्तव्यों में ६ कर्तव्य बताए हैं जिनमें दो मुख्य हैं पूजा करना और दान देना देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा सभी प्रकार के दुःखों को नाश करने वाली है मन के विकारों को दूर करती है और मनोभिलषित पदार्थों को देने वाली है। यही विचार कर आप प्रतिदिन जयसिंहपुरा नई दिल्ली के मन्दिर में पूजन करते हैं नित्य प्रति स्वाध्याय करते हैं।

आपने समस्त भारत के जैन तीर्थों की यात्रा सपरिवार की है आचार्य शान्तिसागरजी महाराज जब दिल्ली पधारे तो उनसे अशुद्धजल के त्याग का व्रत लिया और अब व्यापारिक कार्यों को छोड़कर आचार्य धर्मसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा का नियम लिया।

जिन व्रतों को आप भलीप्रकार पालन कर रहे हैं। आप ठाकुरदास बनारसीदास ट्रस्ट, श्री महावीरप्रसादजी ट्रस्ट, श्यामलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं। जिनके माध्यम से धार्मिक संस्थाओं को दान देते रहते हैं।

घर पर ही श्री महावीरप्रसाद जैन आयुर्वेदिक औषधालय स्थापित कर रखा है, जहाँ ३१ वर्षो से अनेक रोगी प्रतिदिन औषधि लेकर आरोग्य लाभ प्राप्त करते हैं।

सामाजिक सेवा :

आप सामाजिक संस्थाओं का कार्य उत्साह से करते हैं। भा० दि० जैन धर्म संरक्षिणी महासभा, भा० दि० जैन संघ के आप सदस्य हैं। त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर के अध्यक्ष जैन सभा नई दिल्ली, वीरसेवा मन्दिर आदि संस्थाओं के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष हैं। मुनि-संघ कमेटी के अध्यक्ष हैं। दिल्ली में पधारे आचार्य शांतिसागरजी महाराज, आचार्य देशभूषणजी महाराज, आ० धर्मसागरजी महाराज ऐलाचार्य विद्यानंदजी महाराज तथा समय समय पर पधारे अन्य त्यागी जनों की उत्साह से वैयावृत्ति करते हैं। दि० जैन मन्दिर अयोध्याजी, ग्रीनपार्क फरीदाबाद पांडव नगर आदि स्थानों के मन्दिरों का शिलान्यास आपके ही कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ है।

धर्म शिक्षा :

दिल्ली के जैन स्कूलों में पहले धर्म शिक्षा दी जाती थी फिर बन्द होगई जब आपसे इस बात की चर्चा की तो आपने श्री जैन सभा जिसके आप गत वर्ष तक अध्यक्ष थे धर्म शिक्षा शुरु कराई। श्री जैन शिक्षा बोर्ड जिसके अन्तर्गत दो हायर सैकेण्ड्री स्कूल हैं जिनमें २५०० लड़के लड़कियां शिक्षा पाती हैं उनमें धर्म शिक्षा शुरु कराने का श्रेय आपको ही है। जैन प्रेम सभा के प्रयत्न से धर्म शिक्षा का कार्य चालू हुआ है। जिसकी हर एक ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इसके बाद कई स्कलों में धर्म शिक्षा शुरु हो गई है।

जीवन में कभी कभी ऐसा मोड़ आता है जो व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन कर देता है। उसे उन्नत और शक्तिशाली बना देता है। दक्षिण भारत से सेठ पूनमचन्द घासीलालजी ने चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागरजी महाराज के संघ को उत्तर भारत में विहार कराया उस समय जनता

द्रव्य दाता
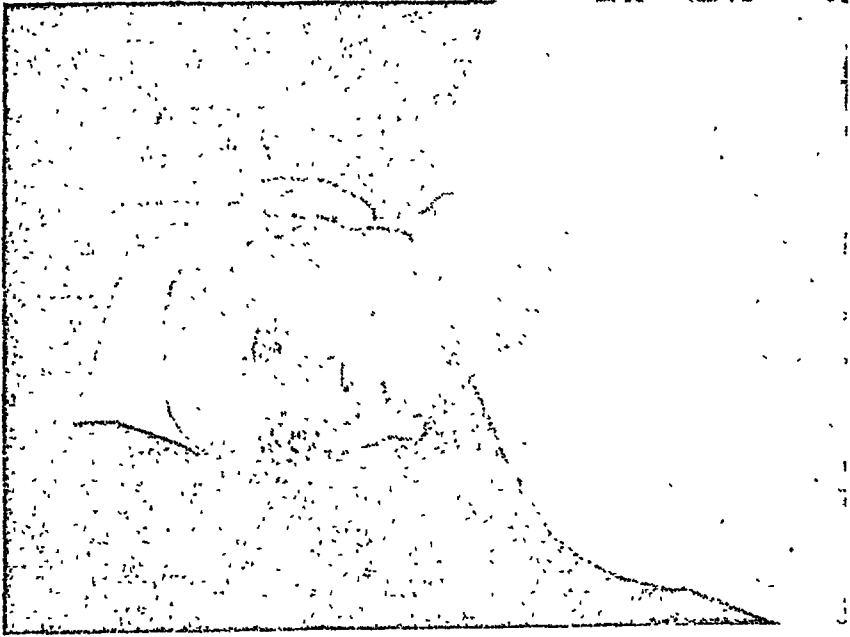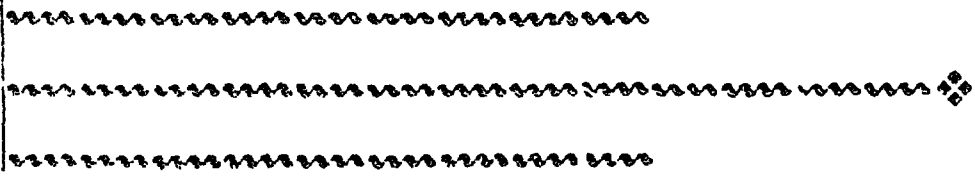
श्री लाला महावीरप्रसादजी
ठेकेदार, दिल्ली
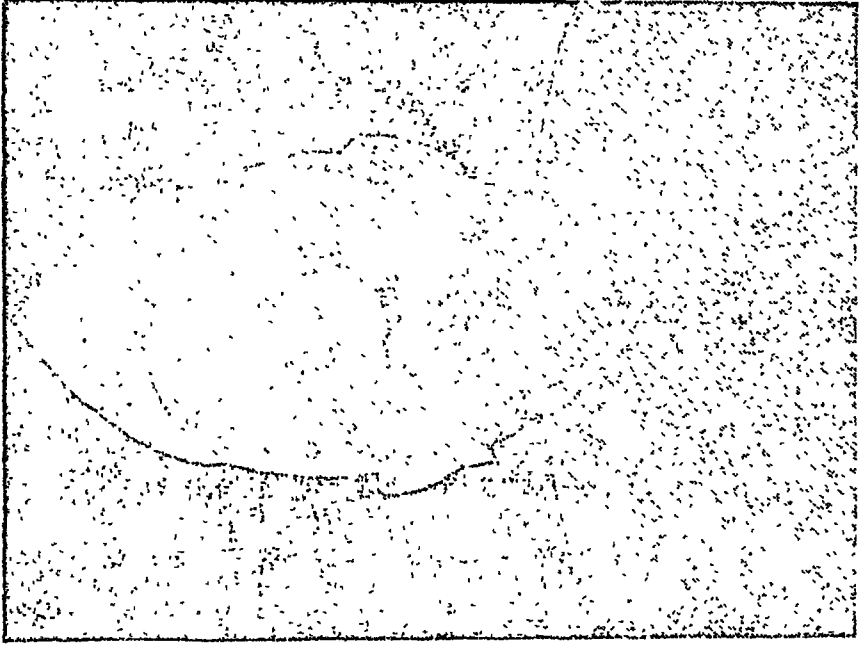
मुनिभक्त सेठ श्री लाला श्यामलालजी
ठेकेदार, दिल्ली

श्री जिनेन्द्रकुमारजी जैन
ठेकेदार

धर्मपत्नि श्री जिनेन्द्रकुमारजी
ठेकेदार
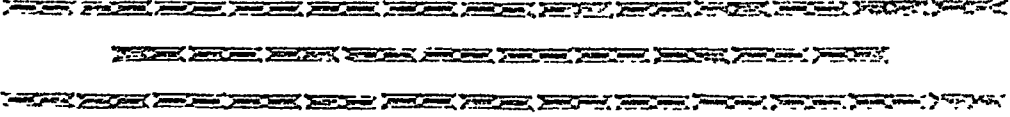
में अपार उत्साह था, लालाजी का यह सौभाग्य हुआ कि उन्होंने सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर आचार्य शांतिसागरजी श्री वीरसागरजी और नेमसागरजी महाराज के दर्शन किये आपके पिताजी, माताजी और आपने तथा अनेक भाई बहिनों ने नियम लिये।

भ० महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर एक छोटी सी पुस्तक लिखी जिसमें दिल्ली में पधारे चारों सम्प्रदाय के मुनिराज और आचार्यों का परिचय था परमपूज्य ऐलाचार्य विद्यानंदजी महाराज ने उस पुस्तक को पसंद किया और कहा कि जिसमें समस्त दि० जैन समाज के आचार्य मुनिगण त्यागियों का परिचय हो ऐसी पुस्तक छपनी चाहिये। इस सम्बन्ध में लालाजी की प्रबल भावना थी कि आचार्य शांतिसागरजी महाराज से लेकर आजतक हमारे जितने मुनिराज हैं उन सभी का परिचय एक पुस्तक में हो। तदनुरूप ग्रन्थ तैयार किया गया और उसके प्रकाशन का भार लालाजी की ओर से ही वहन किया गया। हमारी श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है कि लालाजी सतत जिन शासन की सेवा करते रहें।

दिगम्बर जैनाचार्य परम पूज्य १०८
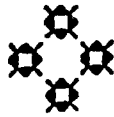
श्री धर्मसागरजी महाराज

का आशीर्वाद

दिगम्बर चर्या अपने आप में इतनी महान और कठोर है कि सहज कोई व्यक्ति इसको धारण करने का साहस नहीं कर पाता और इस कलिकाल में तो रत्नत्रय धारी दिगम्बर साधु की चर्या का प्रतिपालन और भी कठिन होता जा रहा है, फिर भी ऐसी पुण्य आत्माएँ हुई हैं, हो रही हैं और पंचम काल के तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेप रहने तक होती रहेंगी ।

मानव स्वभाव अनुकरणीय है इसी कारण हम अतिशीघ्र पाश्चात्य देशों के वैभव एवं वैज्ञानिक प्रसाधनों का अनुसरण कर अपनी गति को दिन दूनी रात चौगुनी वढ़ा रहे हैं ।

दिगम्वर साधु मोक्ष के मूक साधक होते हैं, ये अपनी ऋद्धियां, शक्तियां, ज्ञान, वैभव एवं विशिष्ट चारित्र आदि का प्रसार करने में उदासीन रहते हैं और उसके फलस्वरूप साधु के समाधिस्थ हो जाने के बाद उनके अनुपम गुणों का प्राय: विलोप सा ही हो जाता है उन महान तपोनिधि तपस्वी की धर्म, धर्मात्मा एवं समाज को जो देन है उसे चिरस्थाई बनाए रखने के उद्देश्य से ही ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री का यह प्रयास प्रशंसनीय है । इनने परिश्रम कर वर्तमान में जितने भी साधु, साध्वियाँ, क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें आदि हैं उनकी विशेष उपलब्धियाँ एवं जीवन परिचयादि का संकलन लेखन कर इसे तैयार किया है ।

इस संस्करण से दिगम्वर तपस्वी भी जीवन्त के सदृश प्रत्यक्ष हो रहे हैं । समाज के धर्मप्रेमी वन्धु इसका अनुकरण कर साधु वनने का प्रयास कर सकेंगे, और वे परिवार भी जिनके घर से कुछ पीढ़ियों पहले ये महात्मा निकले हैं उनकी भावी पीढ़ी इस ग्रन्थ के माध्यम से अपने स्मृति पटल पर उन महापुरुषों को अंकित कर स्वयं भी उनका अनुकरण करते हुए उसी मार्ग पर चलने का प्रयास कर सकते हैं । इन सभी दृष्टियों से यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा । इसके संकलनकर्ता, लेखनकर्ता एवं प्रकाशक आदि के लिए हमारा यही आशीर्वाद है कि ऐसे उत्तमोत्तम प्रकाशन समय समय पर कराते रहें और मानव प्रकृति के अनुसार, उन्हीं महापुरुषों का अनुकरण कर मोक्ष मार्ग के पथिक वनें ।

❖

अनुक्रमणिका

—✪—

पृष्ठ सं०

पृष्ठ सं०

पुरातन भारत के इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर ज्ञात होगा कि यहां श्रवण और वैदिक संस्कृति रूप द्विविध विचारधाराएँ विद्यमान थीं। जैन विचार पद्धति का उदय इस अवसर्पिणी काल में भगवान ऋषभदेव के द्वारा हुवा जिन्हें जैन धर्म अपना प्रथम तीर्थंकर स्वीकार करता है। जैन आगम के अनुसार जैन तत्वचिंतन प्रणाली अनादि है, फिर भी इस युग की अपेक्षा जैन धर्म की स्थापना का गौरव भगवान ऋषभदेव को प्रदान किया जाता है। चौबीस तीर्थंकरों में ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर माने गये हैं।

जैन धर्म अपनी मौलिकता और वैज्ञानिकता के कारण अपने अस्तित्व को शाश्वत धर्म के रूप में अभिव्यक्ति दे रहा है। भगवान महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके बाद आचार्यों की एक बहुत लम्बी शृंखला कड़ी से कड़ी जोड़ती रही है। सब आचार्य एक समान वर्चस्व वाले नहीं हो सकते नदी की धारा में जैसे क्षीणता और व्यापकता आती है वैसे ही आचार्य परम्परा में उतार-चढ़ाव आता रहा है। फिर भी उस शृंखला की अविच्छिन्नता अपने आपमें एक ऐतिहासिक मूल्य है। पच्चीस सौ वर्षों के इतिहास का एक सर्वांगीण विवेचन महत्वपूर्ण कार्य है। हमारे दूरदर्शी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में मूल्यवान ऐतिहासिक सामग्री को संरक्षित कर रखा है अन्यथा जैन धर्म के इतिहास को कोई ठोस आधार नहीं मिल पाता।

दिगम्बर मुद्रा संयम, तप, त्याग और अहिंसा की भूमिका पर अधिष्ठित है अनन्त आलोक पुञ्ज महाबली तीर्थंकर की अनुपस्थिति में इस महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन आचार्य करते हैं।

आचार्य व मुनि वृन्द विशुद्धतम आचार सम्पदा के स्वामी होते हैं। वे छत्तीस एवं अट्ठाईस मूलगुणों से अलंकृत होते हैं। दीपक की तरह स्वयं प्रकाशमान बनकर जन-जन के पथ को आलोकित करते हैं और तीर्थंकरों की पतवार को लेकर सहस्रों सहस्रों जीवन नौकाओं को भवाब्धि के पार पहुंचाते हैं।

वहुत से लोगों की यह धारणा है कि वर्तमान पंचम काल में मुनि ही नहीं हुवा करते हैं। परन्तु उनका विचार स्ववचन व आगम वाधित है वे भाई जरा आगमों की तरफ अपनी दृष्टि डालें तो उनको मालूम होगा कि यह श्रद्धा आगम से विपरीत है। पंचमकाल में गौतम गणधर मुक्ति को गये हैं। गौतम स्वामी के वाद सुधर्म स्वामी ने कैवल्य धाम को प्राप्त किया है। तदनन्तर क्रमसे विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रवाहु ये पाँच श्रुतकेवली इस पंचमकाल में हुए हैं। गौतम स्वामी व सुधर्माचार्य का काल पंचम काल प्रारम्भ होने के वाद ६२ वर्ष तक का है। अर्थात् पाँच श्रुतकेवलियों के अस्तित्व तक पंचमकाल में १६२ वर्ष वीत गये।

भद्रवाहु के वाद में आ० धरसेन स्वामी, आ० पुष्पदन्त, आ० भूतवली, आ० कुन्दकुन्द, आ० यतिवृषभ, आ० उमास्वामी, आ० पद्मनंदि, आ० पूज्यपाद, आ० जिनसेन, आ० संमतभद्र, आ० अकलंक, आ० नेमीचन्द्र, आ० गुणभद्र, आ० शुभचन्द्र आदि शान्तिसागराचार्य पर्यन्त सैंकड़ों आचार्य एवं मुनि हो गये हैं जिन्होंने अपने दिव्य विहार से धर्म का अपूर्व उद्योत किया है।

भगवान भद्रबाहु के परम शिष्य सम्राट चन्द्रगुप्त को जो सोलह स्वप्न हुए थे, उनमें एक स्वप्न यह था कि एक बछड़ा वड़े रथ को खींच कर ले गया। इसका फल आ० भद्रवाहु ने वताया था कि पंचम काल में तारुण्यावस्था में ही मुनिदीक्षा लेकर महाव्रत रथ का संचालन किया जावेगा। वृद्धावस्था में उसके लिए सामर्थ्य का अभाव रहेगा।

गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण में कल्कियों का वर्णन करते हुए स्पष्ट वतलाया है कि एक हजार वर्ष में एक कलकी होगा इस प्रकार २० कलकी होंगे। अन्तिम कलकी राजा जलमंथन के शासन में चन्द्राचार्य के शिष्य वीरांगज नामक मुनि होंगे। ये अंतिम मुनि होंगे। इसी प्रकार अंतिम अर्जिका सर्व श्री, श्रावक अग्निल एवं श्राविका फाल्गुसेना होगी। ये चारों ही पंचम काल के ३ वर्ष ८॥ माह वाकी रहते हुए शुभ भावना से भर कर पहले स्वर्ग में चले जावेंगे। क्या इससे स्पष्ट नहीं होता है कि पंचम काल के अंत तक चतुःसंघ विद्यमान रहेगा। इसलिए इसके विपरीत पंचमकाल में मुनि हो ही नहीं सकते, इस प्रकार की श्रद्धा आगम कथन से विपरीत है।

पू० आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने स्पष्ट रूप से कहा कि कलियुग में भी सतयुग के समान ही मुनि हो सकते हैं। इस पंचमकाल के मुनियों का भी पूर्व मुनियों के समान ही आदर करना चाहिए।

आगम में लिखा है—

विन्यस्यैदं युगीनेपु, प्रतिमासु जिनानिव।
भक्त्या पूर्व मुनीनर्चेत्, कुतः श्रेयोति चर्चिनाम् ॥ आशाधरजी ॥

जिस प्रकार रत्न पाषाणादिक की मूर्ति में साक्षात् जिनेन्द्र की स्थापना कर उपासना करते हैं इसी प्रकार इस काल के जैन मुनियों को भी पूर्व के मुनियों के समान ही मान कर भक्ति से उपासना करनी चाहिये।

आचार्य श्री शांतिसागरजी के विहार से दक्षिण के कोने से लेकर उत्तर प्रान्त प्रत्येक स्थान पर जो धर्म जागृति संघ के प्रसाद से हुई वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है आचार्य श्री के द्वारा लाखों भव्य जीव संस्कार से संस्कृत हुए। हजारों ने रात्रि भोजन का त्याग किया, सैकड़ों ने मिथ्यात्व का त्याग किया, हजारों जीवों ने व्रत नियम संयम लेकर आत्म विशुद्धि की। इस प्रकार के क्रियात्मक चारित्र का प्रचार सैकड़ों विद्वान् मिल कर सैकड़ों वर्षों तक करते तो भी शायद ही सफल होते। क्योंकि चारित्र व ज्ञान का जो प्रभाव पड़ता है, वह केवल ज्ञान से नहीं पड़ता है। भगवान महावीर की विशाल संघ सम्पदा को जैनाचार्यों ने सम्भाला। जैनाचार्य विराट् व्यक्तित्व एवं उदात्त कृतित्व के धनी थे। वे सूक्ष्म चिन्तक एवं सत्यद्रष्टा थे। धैर्य, औदार्य और गाम्भीर्य उनके जीवन के विशेष गुण थे। सहस्रों-सहस्रों श्रुत-सम्पन्न मुनियों को लील लेने वाले विकराल काल का कोई भी क्रूर आघात एवं किसी भी वात्याचक्र का तीव्र प्रहार उनके मनोबल की जलती मशाल को न मिटा सका न बुझा सका और न उनकी विराट ज्योति को मंद कर सका। प्रसन्नचेत्ता जैनाचार्यों की धृति मंदराचल की तरह अचल थी।

परमागम प्रवीण, भवाब्धिपतवार, करुणा कुबेर एवं जन जन हितैषी जैनाचार्यों की असाधारण योग्यता से एवं उनकी दूरगामी पद यात्राओं से अनेक राज्य एवं जन मानस प्रभावित हुए। शासन शक्तियों ने उनका भारी सम्मान किया। विविध मानद उपाधियों से जैनाचार्य विभूषित किये गये पर किसी प्रकार की पद-प्रतिष्ठा उन्हें दिग्भ्रान्त न कर सकी। पूर्व विवेक के साथ उन्होंने साधना जीवन की मर्यादा के अनुरूप जितना साहित्य लिखा जा सका लिखा। जैन शासन का महान् साहित्य जैनाचार्यों की मौलिक सूझ-बूझ एवं उनके अनवरत परिश्रम का परिणाम है।

वर्तमान जैन शासन की परम्परा भगवान महावीर से सम्बन्धित है महावीर स्वामी का निर्वाण हुए २५१० वर्ष हो गये। १९-२० वीं शताब्दी में आचार्य शान्तिसागरजी ने जो वृक्ष लगाया वह आज भी आपके ही पट्टाचार्य शिष्य आचार्य श्री धर्मसागरजी बराबर संभाल रहे हैं। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज लोकोत्तर महापुरुष व जगद्वंद्य आदर्श महात्मा थे। आपके अनेकों शिष्यों ने भारत वर्ष में सर्वत्र विहार कर धर्मध्वजा फहराई है। आचार्य श्री के प्रथम दीक्षित शिष्य आचार्य वीरसागरजी एवं चन्द्रसागरजी, कुन्थुसागरजी, सुधर्मसागरजी, पायसागरजी आदि मुनिवृन्दों से धर्म जागृति हुई वह अवर्णनीय है। इसी शृंखला में आचार्य श्री शान्तिसागरजी छाणी व आचार्य शिव-

सागरजी, आ० महावीर कीर्तिजी आदि आचार्य एवं मुनि वृन्द हुए हैं। वर्तमान में आचार्य शिरोमणि श्री धर्मसागरजी, आचार्य देशभूषणजी, आचार्य विमलसागरजी, आचार्य विद्यासागरजी, आ० सनमति-सागरजी, आ० क० श्रुतसागरजी, ऐलाचार्य श्री विद्यानन्दजी, मुनि दयासागरजी मुनि वर्धमानसागरजी आदि सैकड़ों साधु वृन्द हैं जो आत्म साधना के साथ जन कल्याण भी कर रहे हैं। धन्य हैं ऐसे वीतरागी साधुगण।

हमारे देश में आज से १०० वर्ष पूर्व जैन मुनियों के दर्शन उतने ही दुर्लभ थे जितने कि एक निर्धन के लिए भूभाग से निकला धन। उसका कारण था कि जैन सम्प्रदाय अपनी दुर्बलताओं के कारण अपने कर्तव्य के साथ धर्म की मर्यादा को लुप्त करता जा रहा था। लोगों में धर्म के प्रति आस्था कम होती जा रही थी। मुनियों के दर्शन दुर्लभ थे। लोग त्याग शब्द से कोसों दूर रहते थे। ऐसे समय में आचार्यवर श्री चारित्र चक्रवर्ती तपोनिधि परम पू० समाधि सम्राट श्री शान्तिसागरजी महाराज ने अनेकों विपत्तियों, उपसर्गों को सहन करते हुए ज्ञान, चारित्र और तप के माध्यम से धर्म की मर्यादा को सुदृढ़ और कायम बनाकर जैन सम्प्रदाय में ऐसे आत्म कल्याणकारी मन्त्र को फूंका जिसके द्वारा जैन सम्प्रदाय की बढ़ रही पथ-भ्रष्टता आदर्श की ओर अग्रसर होने लगी। लोगों में जिन, जिनवाणी, दिगम्बर साधुओं एवं जैन धर्म के प्रति सच्ची आस्था जागृत हुई।

धर्म प्रचार की दृष्टि से भी आचार्य शान्तिसागरजी ने महान कार्य किया दक्षिण भारत से उत्तर-भारत में उनका आगमन हुआ। यह उनकी दिगम्बर इतिहास में उल्लेखनीय यात्रा थी। इस यात्रा से पूर्व कई शताब्दियों तक दिगम्बर मुनियों का मुख्य विहार-स्थल दक्षिण भारत ही बना हुआ था। अतः उत्तर भारत में वर्षों से अवरुद्ध दिगम्बर मुनियों के आवागमन के मार्ग को उद्घाटित करने का श्रेय आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज को ही है।

आचार्य शान्तिसागरजी के तपोमय जीवन ने दिगम्बर परम्परा को तेजस्विता प्रदान की है एवं उनके श्रमनिष्ठ जीवन से नए इतिहास का निर्माण हुआ है।

आचार्य श्री की कठोर तप-साधना के साथ आदर्श चारित्र की छाप का प्रभाव अनेकों भव्य आत्माओं पर पड़ा। फलतः आचार्यवर वीरसागरजी जैसे पुण्य पुरुषों ने आपके श्री चरणों में झुककर उस पथ का अनुसरण किया जिस कल्याणकारी पथ पर आप चल रहे थे।

गुरु परम्परानुसार आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराज ने जिस आदर्श ज्ञान और चारित्र की निर्मलता को स्वयं धारण कर धर्म की ज्योति को चमत्कृत किया उसका मूर्तिमान रूप आज उनके द्वारा दीक्षित परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्री शिवसागरजी महाराज में देखने को मिला था।

चारित्र चक्रवर्ती तपोनिधि परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने जिस ज्ञान और चारित्र की उज्ज्वलता को अपनी तपः साधना के द्वारा दर्शाया था उसीको तद्रूप बनाये रखने वाले इस परम्परा के तृतीय आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज हैं।

संयमी जीवन की निर्मल साधना, विनय-विवेक का जागरण, सहनशीलता, गम्भीरता आदि विविध विशेषताओं की अभिव्यक्ति के साथ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज दिगम्बर जैन समाज को असाधारण नेतृत्व प्रदायक एवं उनके प्रगतिगामी कर्तव्य के परिचायक हैं।

दिगम्बर साधु परिचय ग्रन्थ की रूप रेखा पूर्व में कई बार बनाई गई पर कार्य अपूर्ण रहा। भा० दि० जैन महासभा ने प्रथम बार आज से २५ वर्ष पूर्व योजना बनाई पर कार्य बीच में ही रुक गया, करुणा दीप के सम्पादक श्री जिनेन्द्रकुमारजी ने भी इस कार्य में रुचि ली परन्तु वह कार्य भी मन्द हो गया। भगवान महावीर स्वामी के २५सौं वे निवार्ण वर्ष के समय आचार्य धर्मसागरजी महाराज ससंघ दिल्ली विराजमान थे उस पुण्य अवसर पर दिल्ली के समाज शिरोमणि मुनिभक्त सेठ श्री श्यामलालजी ठेकेदार ने भी प्रयास किया पर यह प्रयास भी बीच में रुक गया। तत् पश्चात् औरंगाबाद से साप्ताहिक पत्र के सम्पादकजी ने भी पूर्ण प्रयत्न किया किन्तु अर्थाभाव के कारण रुक गया। श्री त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर की ओर से भी प्रकाशित करने की योजना बनी पर कार्य अधूरा रहा। शां० वी० सिद्धांत संरक्षणी सभा की ओर से भी कार्य करने की योजना बनी पर अधूरी रही। श्री लाला श्यामलालजी ठेकेदार ने पुनः प्रयास किया, पं० सुमेरचन्दजी दिल्ली वालों ने भी इसको आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया पर वह बीच में ही रुक गया। ठेकेदारजी ने मुझे भी कई बार इस कार्य को पूर्ण करने के लिये कहा, उनके विशेष आग्रह से मुझे स्वीकृति देनी पड़ी।

मैंने सारी सामग्री अवलोकन की तो उस समय कुल ८२ साधुओं के जीवन परिचय प्राप्त थे। मैंने परिचयों को देखने पर विचार किया तथा मेरी जानकारी के अनुसार ५०० से अधिक साधु-वृन्द हो गये। मैंने भी यह महसूस किया कि आज भारत वर्ष में सैकड़ों साधु वृन्द यत्र तत्र विहार करके जैन धर्म की प्रभावना कर रहे हैं इनके जीवन परिचय छपें ताकि आगामी पीढ़ी को भी जानकारी हो सके कि हमारे देश में कौन-कौन आचार्य हुए तथा उनके द्वारा कितने शिष्य दीक्षित हुए तथा आज के युग में कितने साधु वृन्द हैं।

पूर्व तथा वर्तमान के ५०० से अधिक साधु वृन्द हो गये इनका जीवन परिचय लिखना कठिन था सारे देश में फैले हुए मुनिराजों और त्यागियों का परिचय पाना सरल कार्य नहीं था परन्तु विभिन्न स्थानों के मुनि संघ कमेटियों के मंत्रियों और समाज के मूर्धन्य कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से यह कृति तैयार की जा सकी।

धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने का श्रेय इन अपरिग्रही वीतरागी मुनिवरों को ही है जिन्होंने सिद्धत्व की प्राप्ति के लिए विशुद्ध दिगम्बरत्व को अंगीकार किया। आज जब कि इस कलिकाल में भौतिकवाद का तांडव हो रहा है। परम तपस्वी वीतराग स्वरूप संत सांसारिक भोगाकांक्षा, यशोलिप्सा आदि प्रिय प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों से विरत हो आत्म कल्याण हेतु आध्यात्मिक अखण्ड ज्योति के सहारे धर्म पथ पर चलकर जग के अज्ञानी एवं मोही जीवों को कल्याण का मार्ग दर्शा रहे हैं।

मुनिवर स्वयं उदाहरण रूप संसार के सामने आकर संसार की नश्वरता एवं वस्तुस्थिति का प्रत्यक्ष दर्शन करा रहे हैं। इनका यह उज्ज्वल चरित्र कह रहा है कि शरीर का सौंदर्य क्या, यह तो नश्वर है। अपने आत्म सौंदर्य की ओर तो दृष्टिपात करो। इसकी अनन्त शक्ति को तो पहिचानो। लेकिन हम मोही जीवों की आंखों पर रागद्वेष एवं स्वार्थ का इतना मोटा परदा पड़ गया है कि हम सन्मार्ग की वांछा ही नहीं करते। इनका चरित्र मानव जीवन की पराकाष्ठा की महानतम झांकी है, जिससे प्रेरणा लेकर हम अपने चरित्र को ऊंचा उठा सकते हैं। सच्चे सुख के अन्वेषक, आत्म-शान्ति के पुजारी ऐसे पूज्य मुनिवरों के जीवन चरित्र हमारे लिए उस पुण्य पुस्तक की भांति है जिनमें हमारे कल्याण के अनन्त मंत्र, अध्यायों के रूप में लिखे हुए हैं।

मुनिश्री एवं त्यागी वृन्द के चरणों में बैठकर जो सुना, संघस्थ ब्रह्मचारी गणों से जो जाना एवं पुस्तकों अथवा पत्रिकाओं में मुनि जीवन के सम्बन्ध में जो देखा, इन सबके योग से ही इन परिचयों का लेखन सम्भव हुआ। मेरे द्वारा इस परिचय ग्रंथ को रूखे-सूखे भोजन की भांति ही तैयार किया गया है। ग्रंथ जैसा जिस रूप में प्रकाशित है वह पाठकों के हाथ में है। इसमें बहुत सी त्रुटियां रही होंगी, जैसे जीवन परिचय सही है या नहीं, ब्लाक सही लगा है या नहीं, पर हमने अपनी जानकारी के अनुसार सही समझकर लिखा है यदि कुछ त्रुटियां रही हों या मिथ्या लिखा गया हो तो पाठक गण क्षमा करेंगे।

जिन जिन महानुभावों को परिचय पत्र, पत्रावलियां और पत्रादि भेजे गये थे उन्हें स्मरण पत्र, प्रतिस्मरण पत्र, आग्रह पत्र और बार बार विनय पत्र लिख लिख कर भेजे। समाज के दैनिक साप्ताहिक पत्रों में अनेक बार सूचनाएं प्रकाशित कराई फिर भी अनेक साधुवृन्दों के परिचय अप्राप्त रहे। अतः मात्र पत्राचार के माध्यम से ही भटकता रहा। बहुत से बन्धुओं ने पुराने सन्दर्भो को दुहराते हुए उन्होंने हमें मना भी किया, बहुत बन्धुओं ने लम्बी-चौड़ी भूमिकाएं विज्ञापित कर परिचयात्मक ग्रंथ प्रणयन की योजना बनाई पर बीच में ही रह गया। यह ग्रंथ तैयार हो जाने पर तो

प्रकाशन व्यवस्था उतनी टेढ़ी खीर नहीं रह जाती जितनी उसके निर्माण में आने वाले प्रारम्भिक कार्य की।

परिचय पत्रावलियों के आधार पर गद्यात्मक लेखन करने में हमें कठोर श्रम और अधिक समय व्यय करना पड़ा। एक साधु के परिचय को पत्रावलि के आधार पर पढ़ना-अंकित संकेतों को क्रमबद्ध लगाकर गद्यात्मक रूप में लिखना पुन: आवश्यक संशोधन, परिवर्धन करके तैयार करना। मेरा अनुमान है कि जितने श्रम, साधना और समय में यह मात्र परिचय ग्रंथ तैयार हुआ है उतने श्रम में २–४ ग्रंथों का सम्पादन बड़ी ही सुगमता से हो सकता था।

दिगम्बर साधु महान आदर्श महापुरुष व उच्चकोटि के साधु हैं–जिन पर हम सबको महान गौरव है और ऐसे ही महासंतों से श्रमण सस्कृति सदैव गौरवान्वित होती रहेगी। हमने यथा शक्य प्रयत्न किया है कि इस ग्रंथ में सभी साधुओं के भाव चित्रों का दर्शन पाठकों को मिले परन्तु प्रयत्न करने पर भी कुछ साधुओं के चित्र हमें प्राप्त नहीं हो सके इसके लिये हमें खेद है।

कृतज्ञता के सर्वोत्कृष्ट भाजक समाज रत्न !

ग्रंथ के प्रकाशन का कार्य पूर्ण होने पर विचार आता है कि श्री श्यामलालजी ठेकेदार सा० की भावना कितनी उत्तम है जो ऐसे महानतम कार्य के सम्पादन कराने का कार्यभार अपने कन्धों पर लिया। आपने दीर्घकाल तक समाज सेवा की है और कर रहे हैं आप कोटि कोटि धन्यवाद के पात्र हैं। भगवान से प्रार्थना है कि आप दीर्घायु होकर समाज एवं धर्म की सेवा करें।

साधु परिचय ग्रंथ का कार्य प्रगति से चल रहा था कि बीच में पुनः इस कार्य को अर्थाभाव के कारण रोकना पड़ा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन होना ही था। अत: ब्र० मोतीचन्दजी शास्त्री हस्तिनापुर वालों ने ग्रंथ को पूर्ण रूप से सहयोग देने की स्वीकृति दी परन्तु कुछ दिनों बाद मुझे कई बार पत्राचार करने के पश्चात् उनकी असहमति ही जाहिर हुई तथा कार्य जो प्रगति पर था पूर्ववत पुन: रुक गया। यह कार्य लगभग ४ माह तक रुका रहा तत्पश्चात् शुभ संयोग से इस ग्रंथ के प्रकाशन हेतु श्रीमान् सेठ पूनमचन्दजी गंगवाल झरिया वालों से सम्पर्क किया। श्रीमान् सेठ पूनमचन्दजी गंगवाल सा० ने इस महानतम ग्रंथ जो आर्थिक परिस्थितियों वश काफी समय से रुका हुआ था। उसे स्व द्रव्य से संपूर्ण कराने की स्वीकृति प्रदान की। ग्रंथ प्रकाशन की विषम परिस्थितियों में आपका आवांछनीय सहयोग पाकर मैं अत्यन्त हर्षित हुआ मेरी हार्दिक इच्छा थी कि इतने परिश्रम के द्वारा एकत्रित दि० जैन साधु परिचय ग्रन्थ का कार्य आर्थिक कारण वश अपूर्ण न रह जाय। इस आर्थिक

संकट में आप जैसे दानवीर समाज सेवी धर्मानुरागी मुनि भक्त व्यक्ति का मैं अत्यन्त आभारी हूं जिनके आर्थिक सहयोग से काफी समय से रुका हुआ इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य पूर्ण हो सका।

इसी प्रसंग में ग्रंथ के मुद्रक श्री पाँचूलालजी मालिक कमल प्रिन्टर्स को कोटिश: धन्यवाद देता हूं जिन्होंने इस विशाल ग्रन्थ को कला पूर्ण ढंग से मुद्रित किया है प्रेस की अपनी कुछ असुविधाएं रहती हैं तथा वायदे के अनुसार अन्य मुद्रण कार्य भी करने होते हैं उन सबसे समय निकाल कर इस ग्रन्थ को उन्होंने प्रकाशित किया और हमारी प्रतिष्ठा को बढ़ाया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य सबके सहयोग से हुआ है अतः प्रत्यक्ष व परोक्ष सभी महानुभावों का साधुवाद करता हूं भविष्य में भी इसी प्रकार सबका सहयोग मिलता रहेगा ऐसी कामना करता हूं।

विनम्र :
ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री
ज्योतिषाचार्य
(संघस्थ : आचार्य धर्मसागरजी महाराज)

चरण-पादुका
स्व० क्षुल्लक श्री नेमीसागरजी
पचार वाले
कुचामन सिटी, पुरानी नशियांजी स्थित
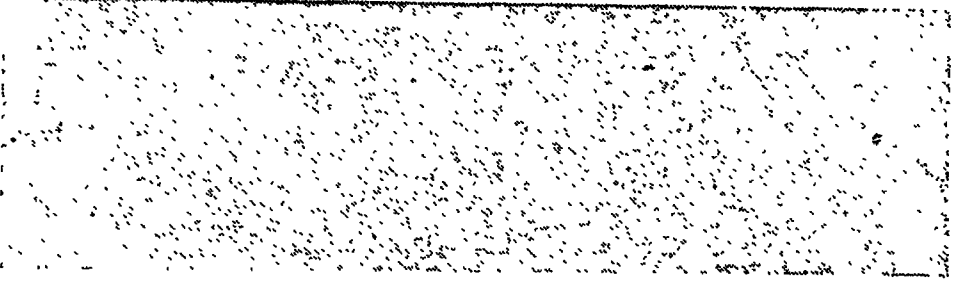
चरण-पादुका
स्व० १०८ मुनि श्री सिद्धसागरजी महाराज
पचार वाले
मोहन वाड़ी, जयपुर स्थित
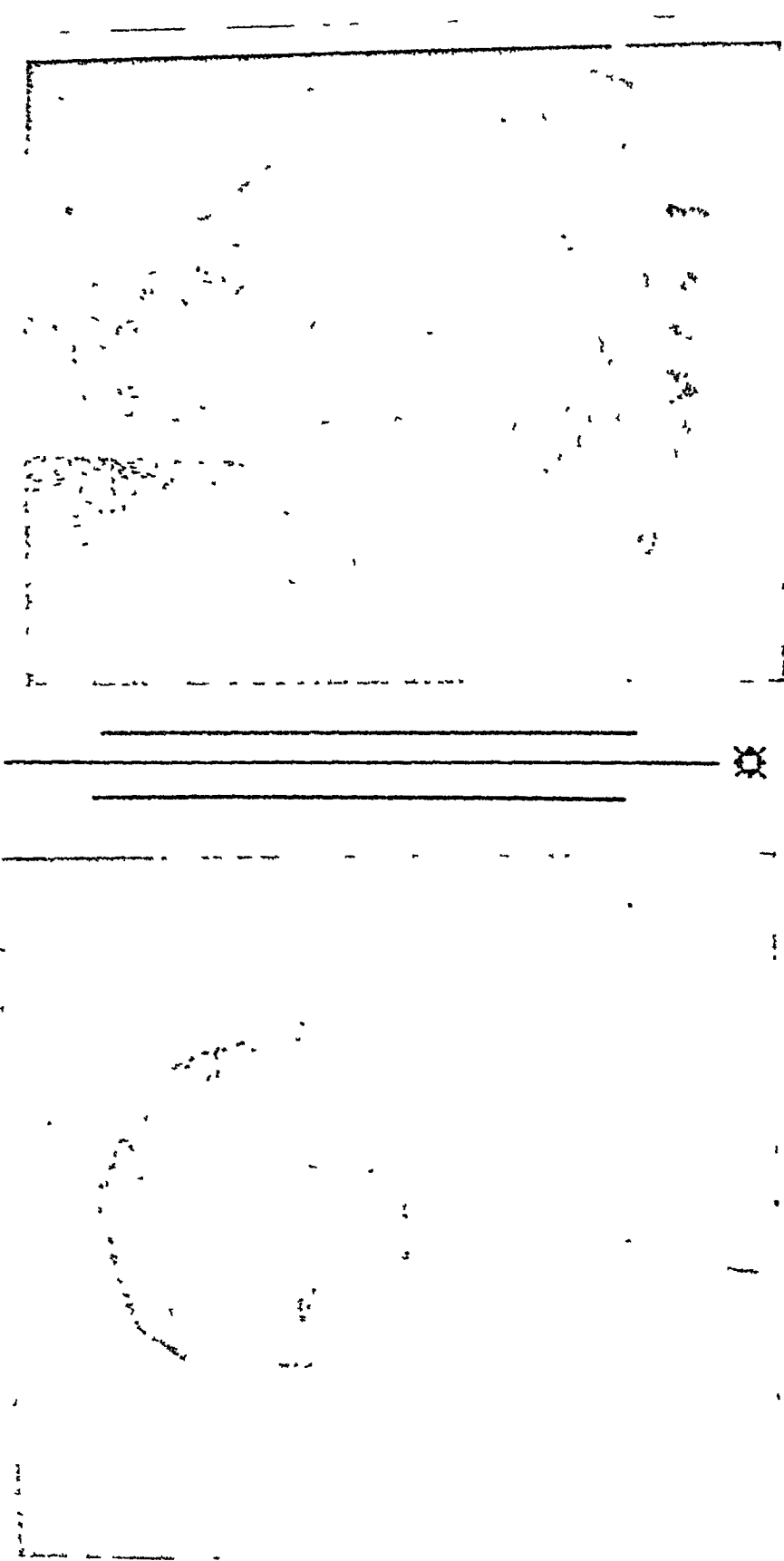
दानवीर सेठ श्री पूनमचन्वजी गंगवाल
झरिया प्रवासी
पनार (सीकर) राज०

श्रीमती कमलादेवी जैन
धर्मपत्नी श्री पूनमचन्दजी गंगवाल
पनार (सीकर) राज०

आदर्श जीवन के धनी

श्रीमान् पूनमचन्दजी सा० गंगवाल

श्रीमान् समाजरत्न दानवीर श्रेष्ठि श्री पूनमचन्दजी गंगवाल पचार निवासी से जैन समाज का ऐसा कौनसा व्यक्ति है जो अपरिचित होगा आपका जन्म फाल्गुन शुक्ला १५ वि० सं० १९८५ में राजस्थान प्रान्त के अन्तर्गत सीकर जिले के सुप्रसिद्ध पचार नगर में जैन धर्म परायण श्रेष्ठिवर श्री नेमीचन्दजी सा० गंगवाल की धर्मानुरागिनी धर्मपत्नी लादी बाई की कुक्षि से ऐसे परिवार में हुवा है, जो दान और त्याग में आदर्शमयी रहे हैं।

आपके पूज्य पितामह धर्मवत्सल देव शास्त्र गुरु उपासक श्रीमान् स्व० श्री गौरीलालजी साहब ने न्यायोपार्जित द्रव्य कमाते हुये धर्म ध्यान में समय व्यतीत किया और अन्त में परमपूज्य घोर तपस्वी आगम प्रवीण आचार्य कल्प श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया तथा जयपुर में समाधिमरण कर उत्तम गति को प्राप्त किया, जिनकी पावन स्मृति में श्रीमान् पूनमचन्दजी सा० ने मोहन वाड़ी जयपुर में बहुत सुन्दर छतरी बनवाई है। इसीप्रकार आपके पूज्य पिता श्री नेमीचन्दजी सा० का भी पूर्ण धार्मिक जीवन रहा, वे भी पूर्ण धर्माचरण में समय व्यतीत करते थे—जिसप्रकार न्यायोपार्जित द्रव्य कमाने का लक्ष्य था उसीप्रकार दान और त्याग में भी आपकी पूर्ण अभिरुचि थी-आपने अपने सानिध्य में अनेक धार्मिक और लौकिक संस्थाओं की स्थापना की तथा अपने पिता श्री के पद चिह्नों पर चलते हुये गृह विरत हो क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण का मार्ग अपनाया। आपकी पुण्य स्मृति में भी श्रीमान् श्रेष्ठिवर पूनमचन्दजी साहब ने कुचामन सिटी पुरानी नसियां में एक भव्य छतरी का निर्माण कराया है।

श्रीमान् सेठ पूनमचन्दजी ने कुचामन में शिक्षा प्राप्त की-आपने अपना व्यवसाय व्यापारिक क्षेत्र को चुना, १६ वर्ष की युवावस्था में आसाढ़ शुक्ला ६ सं० २००१ में कुचामन निवासी श्रीमान्

धर्मभूषण सेठ रिषभचन्दजी पहाड़िया की सुपुत्री श्रीमती कमला बाई के साथ आपका शुभ विवाह संस्कार होगया। आप व्यवसाय में लग गये—पति पत्नी दोनों पूर्ण धार्मिक वृत्ति के होने के कारण तीर्थ वंदना, मुनि संघों के दर्शन और जगह २ दान आदि में भी आपका विशेष उत्साह रहा। आपने बिहार में बहुत विशाल स्तर पर कोयला उद्योग प्रारंभ किया जो अब तक पूर्ण अभिवृद्धि के साथ चल रहा है धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत इस दम्पत्ति ने सादा जीवन उच्च विचार वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए सदैव निरभिमानता के साथ धार्मिक कार्य किये हैं और कर रहे हैं आपको श्रमण संघों का पूरा २ आशीर्वाद रहा है। धर्म दिवाकर १०५ स्व० क्षुल्लक रत्न श्री सिद्धसागरजी महाराज के आप अनन्य भक्त रहे हैं उन्हीं की सद् प्रेरणा से श्री बाहुबली सहस्राब्दि समारोह पर श्री शांतिकुमारजी बड़जात्या और श्री उम्मेदमलजी पांड्या (शांति रोडवेज) के परामर्श और सहयोग से एक हजार यात्रियों का २ माह का यात्रा संघ पूज्य क्षुल्लकजी महाराज के सानिध्य में पूर्ण सफलता के साथ निकाला जिसमें समस्त यात्रियों के मार्ग व्यय भोजनादि की सारी व्यवस्था उक्त श्रीमानों की ओर से थी—इस शताब्दी का यह एक ऐतिहासिक यात्रा संघ था इसमें भी जगह २ श्री पूनमचन्दजी ने यथेष्ट दान दिया और इसीप्रकार श्री शांतिकुमारजी कामदार तथा श्री उम्मेदमलजी पांड्या का योगदान रहा। श्रीमान् श्रेष्ठिवर श्री पूनमचन्दजी ने अपनी चंचला लक्ष्मी का धार्मिक कार्यों में अधिक से अधिक उपयोग किया है और कर रहे हैं। श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र लूणवां में तो आप तन मन धन से पूरा २ सहयोग कर ही रहे हैं—साथ ही आपने श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी स्थित आदर्श महिला विद्यालय के अन्तर्गत मंदिर में काच का कलात्मक कार्य इतना सुन्दर कराया है जो दर्शनीय है। इसीप्रकार श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र तिजारा, पदमपुरा, सीकर देवीपुरा में, और अनेक क्षेत्रों में आपने कई कार्य कराये हैं श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र लूणवां में दि० १५-११-८० से २७-११-८० तक पूज्य क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी महाराज के सानिध्य में श्री सिद्धचक्र विधान का विशाल आयोजन कर उसी मांगलिक शुभावसर पर पीछे की दोनों वेदियों की वेदी प्रतिष्ठा रथयात्रादि महान कार्य कराये और भी अनेक स्थानों पर बड़े २ विधानादि आप कराते रहे हैं कई पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में आपने सौधर्मेन्द्रादि पदों को भी प्राप्त किया है। आपके चारों भाई श्री ताराचन्दजी, प्रकाशचन्दजी, धरमचन्दजी, कैलाशचन्दजी और पूज्य रत्न श्री हंसराजजी, गजराजजी, दिलीपकुमारजी, प्रदीपकुमारजी, और ललितकुमारजी एवं दो पुत्रियां सौ० अंजनाकुमारी और सौ० मंजूकुमारी भी आपके विचारानुसार धर्मानुरागी हैं।

जिसप्रकार आपकी धार्मिक भावनाएँ हैं उसीप्रकार आपका साहित्य प्रकाशन में भी पूरा २ योगदान रहता है। आपने—मानव मार्गदर्शन के तृतीय चतुर्थ एवं स्वास्थ्य बोधामृत आदि अनेक साहित्य प्रकाशन में योग दान दिया है।

स्व० १०८ मुनिश्री सिद्धसागरजी महाराज
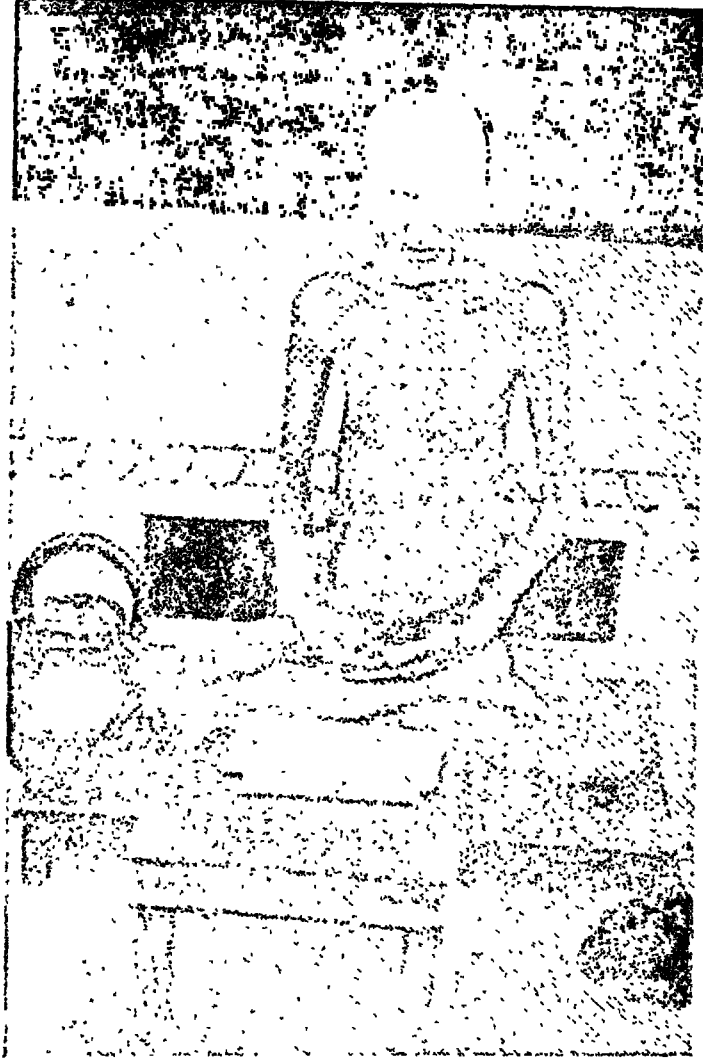
पूर्व नाम : श्री गौरूलालजी गंगवाल

पचार (सीकर) राजस्थान

जन्म : पचार (सीकर)

समाधि : जयपुर

दीक्षागुरु : आ० क० चन्द्रसागरजी महाराज

स्व० १०५ क्षुल्लक श्री नेमीसागरजी महाराज

पूर्व नाम : श्री नेमीचन्दजी गंगवाल
पचार (सीकर) राजस्थान

समाधि : कुचामन सिटी

दीक्षागुरु : क्षु० सिद्धसागरजी, कुचामन सिटी

वर्तमान समय में इस वर्ष वि० सं० २०४२ का वर्षायोग परम पूज्य आचार्य शिरोमणि प्रातः स्मरणीय १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के विशाल संघ का (जिसमें १२ मुनिराज और १८ आर्यिका माताजी हैं) श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र लूणवां में होरहा है। आपका सपरिवार पूरा २ सहयोग है—आहार दानादि देकर महान पुण्य बंध कर रहे हैं। श्रेष्ठिवर श्री पूनमचन्दजी सा० को समाज की ओर से दानवीर, समाजरत्न, गुरु भक्त आदि पदों से अलंकृत किया है। आपने सपत्नीक पर्यूषण पर्व के दश लक्षण उपवासोपव्रत उद्यापन के पुण्य अवसर पर शास्त्र दान स्वरूप इस साधु परिचय ग्रंथ का प्रकाशन कराया है। हम आपके दीर्घायु सुखी और धार्मिक जीवन की मंगल कामना करते हैं।

ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री
ज्योतिषाचार्य

दिगम्बर जैन साधु परिचय

प्रथम तीर्थंकर

ऋषभदेव

अनन्तानन्त आकाश में मध्य के ३४३ राजु प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये द्रव्य पाये जाते हैं। यह लोक अकृत्रिम अनादिनिधन है। इसके तीन भेद हैं—अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक। इस लोक के मध्य में तिर्यग्लोक में जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप और समुद्र एक दूसरे को वेष्टित किये हुए हैं। प्रारम्भ में एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है। उसको वेष्टित करके दो लाख योजन व्यास वाला लवण समुद्र है। इसके अनन्तर धातकीखंड द्वीप, कालोदधि समुद्र आदि द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले होते चले गये हैं अन्त में स्वयंभूरमण समुद्र है।

इस जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख चालीस योजन ऊँचा और दस हजार योजन विस्तृत सुमेरु पर्वत है। अन्त में इसका अग्रभाग चार योजन मात्र रह गया है। इस जम्बूद्वीप में हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छह पर्वत हैं। इनसे विभाजित भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं। सबसे प्रथम भरतक्षेत्र का विस्तार ५२६ ६/१९ योजन है आगे विदेह तक दूना-दूना होकर उससे आगे आधा-आधा होता गया है। विदेह के बीचोंबीच में मेरु पर्वत के होने से विदेह के पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह ऐसे दो भेद एवं मेरु के दक्षिण में देवकुरु और उत्तर में उत्तर कुरु माने गये हैं।

भरत ऐरावत में कर्मभूमि, हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्यभोग भूमि, हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोग भूमि तथा देवकुरु और उत्तर कुरु में उत्तम भोगभूमि होती है। पूर्व विदेह एवं पश्चिम विदेह में शाश्वत कर्मभूमि की व्यवस्था है।

छह द्रव्य :—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। इसमें जीव द्रव्य चेतन है बाकी पाँच अचेतन हैं।

काल द्रव्य :—प्रत्येक द्रव्य में परिणमन के लिये निमित्त भूत वर्तना लक्षण काल द्रव्य है। समय, आवली, घड़ी, घंटा आदि व्यवहार काल की पर्यायें हैं। उस व्यवहार कालके दो भेद हैं—अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी। इन दोनों कालों के छह-छह भेद हैं। अवसर्पिणी के—सुपमा सुपमा, सुषमा, सुपमा दु:षमा, दु:षमा सुषमा, दु:षमा और दु:षमा दु:षमा। उत्सर्पिणी के—दुःषमा दु:षमा, दु:षमा, दु:षमा सुषमा, सुषमा दु:षमा, सुषमा और सुषमा सुषमा।

प्रथम सुषमा सुषमा काल :—चार कोड़ा कोड़ी सागर का, द्वितीय काल तीन कोड़ा कोड़ी सागर का, तृतीय काल दो कोड़ा कोड़ी सागर का, चतुर्थ काल व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का, पंचम इक्कीस हजार वर्ष का और छठा इक्कीस हजार वर्ष का है। ऐसे अवसर्पिणी के दस कोड़ा कोड़ी एवं उत्सर्पिणी के दस कोड़ा कोड़ी मिलाकर वीस कोड़ा कोड़ी सागर का एक कल्प काल होता है। ये दोनों ही काल चक्रवत् चलते रहते हैं। यह काल परिवर्तन भरत और ऐरावत क्षेत्र के आर्य खण्ड में ही होता है, अन्यत्र नहीं।

भोगभूमि :—जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के मध्य में आर्य खंड है। उसमें जव अवसर्पिणी का प्रथम काल चल रहा था तव यहाँ देवकुरु सदृश उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था थी। मनुष्यों की आयु तीन पल्य, शरीर की ऊँचाई तीन कोस, वर्ण स्वर्ण सदृश था। वे भोगभूमिया मल, मूत्र, पसीने से रहित तीन दिन के वाद कल्पवृक्षों से वदरी फल वरावर भोजन ग्रहण करते थे। वहाँ दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे—मद्यांग, तूर्यांग, भूषणांग, माल्यांग, ज्योतिरंग, दीपांग, गृहांग, भोजनांग पात्रांग और वस्त्रांग। ये अपने नाम के अनुसार इच्छित फल देने वाले थे। ये युगल ही जन्म लेते और युगल ही मरते हैं। आयु के अन्त में पुरुष को जंभाई, स्त्री को छींक आने से मरकर देवगति में चले जाते हैं।

क्रम से मनुष्यों का वल आयु घटते-घटते द्वितीय 'सुषमा' काल आता है इसमें मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है। आयु दो पल्य, ऊँचाई दो कोस और वर्ण चन्द्र सदृश होता है। दो दिन वाद वहेड़े वरावर भोजन ग्रहण करते हैं।

क्रम से आयु वल के घटते-घटते तृतीय काल में जघन्य भोगभूमि रहती है। आयु एक पल्य, ऊँचाई एक कोस और शरीर वर्ण हरित होता है। ये एक दिन के अन्तर से आँवले वरावर भोजन लेते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति :

इस तृतीय काल में पल्य का आठवाँ भाग शेष रहने पर कल्पवृक्षों की सामर्थ्य घट जाने से, 'ज्योतिरंग' कल्पवृक्षों का प्रकाश अत्यन्त मन्द पड़ गया। किसी समय आषाढ़ सुदी पूर्णिमा के दिन सायंकाल में आकाश में पूर्वदिशा में उदित होता हुआ चन्द्र और पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ सूर्य दिखाई दिया। उस समय वहाँ सबसे अधिक तेजस्वी 'प्रतिश्रुति' नाम के कुलकर विद्यमान थे, उनकी आयु पल्य के दसवें भाग और ऊँचाई एक हजार आठ सौ धनुष थी। जन्मान्तर के संस्कार से उन्हें अवधिज्ञान प्रकट हो गया था। सूर्य चन्द्र को देखकर भयभीत हुए भोग भूमिज उनके पास आये तब उन्होंने कहा, हे भद्रपुरुषो! ये सूर्य, चन्द्र, ग्रह, महाकांति वाले हमेशा आकाश में घूमते रहते हैं अभी तक इनका प्रकाश ज्योतिरंग कल्पवृक्ष से तिरोहित था, अब काल दोष से कल्पवृक्षों का प्रभाव मन्द पड़ने से ये दिखने लगे हैं तुम इनसे भय मत करो, प्रतिश्रुति कुलकर के इन वचनों को सुनकर सब लोग निर्भय हो गये और बहुत भक्ति से उनकी पूजा की।

इनके बाद क्रमसे असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल बीत जाने पर 'सन्मति' नामक कुलकर हुए। एक समय रात्रि में तारागण दिखने लगे तब इन्होंने उनका भय दूर कर दिया। ऐसे ही 'क्षेमंकर' आदि कुलकर होते गये। तेरहवें कुलकर 'प्रसेनजित्' अपने माता-पिता से अकेले ही उत्पन्न हुए थे इनके पिता मरुदेव ने विवाह विधि से प्रधान कुल की कन्या से इनका विवाह किया था। अनन्तर अन्तिम चौदहवें कुलकर नाभिराज हुए, इन्होंने जन्मकाल में बालकों की नाल काटने की व्यवस्था की थी। ये सभी कुलकर अपने जातिस्मरण या अवधिज्ञान से प्रजा के हित का उपदेश देने से कुलकर और मनु आदि कहलाते थे। इनमें से आदि के पाँच कुलकरों ने प्रजा के अपराध में 'हा' इस दण्ड की व्यवस्था की थी। उनके आगे के पाँच कुलकरों ने 'हा' 'मा' इन दो दण्डों की व्यवस्था की और शेष कुलकरों ने 'हा' 'मा' और 'धिक्' ऐसे तीन दण्डों की व्यवस्था की थी।

इन नाभिराज के समय कालदोप से मेघ गर्जन, इन्द्रधनुष, जलवृष्टि आदि होने से अनेकों अंकुर, धान्य पैदा हो गये एवं कल्पवृक्षों का अभाव हो गया इससे व्याकुल हुई प्रजा महाराज नाभिराज की शरण में आई—

हे नाथ! मनवांछित फल देने वाले तथा कल्पान्त काल तक नहीं भुलाने के योग्य कल्पवृक्षों के बिना अब हम पुण्य हीन अनाथ लोग किस प्रकार जीवित रहें? हे देव! इनमें क्या

खाने योग्य है क्या नहीं ? इत्यादि प्रार्थना के अनन्तर श्री नाभिराज ने कहा कि डरो मत। अब कल्पवृक्ष के बाद ये वृक्ष तुम्हारा ऐसा ही उपकार करेंगे। ये विषवृक्ष हैं इनसे दूर रहो। ये इक्षु के पेड़ हैं इनका दाँतों से या यंत्रों से रस निकाल कर पीना चाहिए। उस समय प्रजा का हित करने से नाभिराज कल्प वृक्ष सदृश थे।

पूर्वभव का वर्णन :

इसी जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्र में एक 'गंधिल' नाम देश है। जो कि स्वर्ग के समान शोभायमान है। उस देश में हमेशा श्री जिनेन्द्र रूपी सूर्य उदय रहता है। इसीलिये वहाँ मिथ्यादृष्टियों का उद्‌भव कभी नहीं होता। इस देश के मध्य भाग में रजतमय एक विजयार्ध नाम का बड़ा भारी पर्वत है। उस विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में एक अलका नाम की श्रेष्ठ पुरी है। उस अलकापुरी का राजा अतिवल नाम का विद्याधर था, जिसकी मनोहरा नाम की पतिव्रता रानी थी। उन दोनों के अतिशय भाग्यशाली 'महावल' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

किसी समय भोगों से विरक्त हुए महाराज अतिवल ने राज्याभिषेक पूर्वक अपना समस्त राज्य महावल पुत्र को सौंप दिया और आप अनेक विद्याधरों के साथ वन में जाकर दीक्षा ले लीं। महावल राजा के चार मन्त्री थे जो महा बुद्धिमान, स्नेही और दीर्घदर्शी थे। उनके नाम—महामति, सभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध थे। इनमें स्वयंबुद्ध सम्यग्दृष्टि शेष तीनों मिथ्यादृष्टि थे। किसी समय अपने जन्मगाँठ के उत्सव में राजा महावल सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय अनेकों उत्सव, नृत्य, गान और विद्वद्‌गोष्ठियाँ हो रही थीं। अवसर पाकर स्वयंबुद्ध मन्त्री ने स्वामी के हित की इच्छा से जैन धर्म का मार्मिक उपदेश दिया। उसके वचनों को सुनने के लिये असमर्थ भूतवादी महामति मन्त्री ने चार्वाक मत को सिद्ध करते हुए जीव तत्त्व का अभाव सिद्ध कर दिया। वौद्ध-मतानुयायी संभिन्नमति मन्त्री ने विज्ञानवाद का आश्रय लेकर जीव का अभाव करना चाहा, उसने कहा—ज्ञान ही मात्र तत्त्व है और सब भ्रममात्र है। इसके बाद शतमति मन्त्री ने शून्यवाद का अवलम्बन लेकर सकल जगत् को शून्यमात्र सिद्ध कर दिया।

इन तीनों की वातें सुनकर स्वयंबुद्ध मन्त्री ने तीनों के एकान्त दुराग्रह को न्याय और आगम के द्वारा खण्डन करके सच्चे स्याद्वादमय अहिंसा धर्म की सिद्धि करके उन्हें निरुत्तर कर दिया और राजा को प्रसन्न कर लिया। इसके बाद किसी एक दिन स्वयंवुद्ध मन्त्री अकृत्रिम चैत्यालय की वन्दना के लिये सुमेरु पर्वत पर गया, वहाँ पहुँच कर उसने पहले प्रदक्षिणा दी फिर भक्तिपूर्वक वार-

वार नमस्कार किया और पूजा की। यथाक्रम से भद्रसाल आदि वन के समस्त अकृत्रिम प्रतिमाओं की वन्दना की और सौमनस वन के चैत्यालय में बैठ गया। इतने में ही विदेह क्षेत्र से आये हुए, आकाश में चलने वाले आदित्य गति और अरिंजय नाम के दो चारण मुनि अकस्मात् देखे, वे दोनों ही मुनि 'युगंधर' भगवान के समवसरणरूपी सरोवर के मुख्य हंस थे। मन्त्री ने उठकर उन्हें प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणाम करके पूजा और स्तुति की अनन्तर प्रश्न किया—हे स्वामिन् ! विद्याधर का राजा महावल हमारा स्वामी है। वह भव्य है या अभव्य ? मेरे द्वारा सन्मार्ग भी ग्रहण करेगा या नहीं ? इस प्रश्न के वाद आदित्यगति नामक अवधिज्ञानी—मुनि कहने लगे हे भव्य ! तुम्हारा स्वामी भव्य ही है। वह तुम्हारे वचनों पर विश्वास करेगा और आज से दसवें भव में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होगा। इसके पूर्वभव को तुम सुनो—

जम्बूद्वीप के मेरु पवत से पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्र में 'गंधिला' देश में सिंहपुर नगर है वहाँ के श्रीषेण राजा की सुन्दरी रानी से जय वर्मा और श्री वर्मा ऐसे दो पुत्र हुए थे। पिता ने योग्यता और स्नेह के निमित्त से छोटे पुत्र श्री वर्मा को राज्य दे दिया। तब जय वर्मा विरक्त होकर स्वयंप्रभु गुरु से दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा और किसी समय आकाश मार्ग में जाते हुए महीधर विद्याधर होने का निदान कर लिया। इतने में ही सर्प के डसने से मरकर तुम्हारा स्वामी महाबल हुआ है। आज रात्रि में उसने दो स्वप्न देखे हैं; तुम जाकर उनका फल कहकर उसके पूर्व भव सुनाओ। [उसका कल्याण होनेवाला है]

गुरु के वचन से मन्त्री वहाँ आकर वोले—राजन् ! आपने जो स्वप्न देखा है कि तीनों मन्त्रियों ने कीचड़ में डाल दिया और मैंने उठाकर सिंहासन पर बैठाया सो यह मिथ्यात्व के कुफल से आप निकलकर जिनधर्म में आ गये हैं। दूसरे स्वप्न में जो आपने अग्नि की ज्वाला क्षीण होते देखी उसका फल आपकी आयु एक माह की शेष रही है। आप इस भव में तीर्थंकर होंगे इत्यादि। सारी वातें सुना दी मन्त्री ने। राजा महावल ने भी अपने पुत्र अतिबल को राज्य भार सौंपकर सिद्धकूट चैत्यालय में जाकर सिद्ध प्रतिमाओं की पूजा करके गुरु की साक्षी पूर्वक जीवन पर्यन्त के लिये चतुराहार त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली और धर्मध्यान पूर्वक मरण करके ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में ललितांग नाम का उत्तम देव हो गया। जब उसकी आयु पृथक्त्व पल्य के वरावर रह गयी तव उसे स्वयंप्रभ नाम की एक और देवी प्राप्त हुई। अन्य देवियों की अपेक्षा ललितांग देव को यह देवी विशेष प्यारी थी। जब उस देव की माला आदि मुरझाई तब मृत्यु निकट जानकर शोक करते हुए इसको अनेकों देवों ने सम्बोधन किया, जिसके फलस्वरूप इस देव ने पन्द्रह दिन तक जिन चैत्यालयों को पूजा की और अच्युत स्वर्ग की जिन प्रतिमाओं की पूजा करके वहीं पर चैत्यवृक्ष के

नीचे बैठकर उच्चस्वर से महामन्त्र का उच्चारण करते हुए सल्लेखना से मरण को प्राप्त हो गया।

जम्बूद्वीप के महामेरु से पूर्व की ओर विदेह क्षेत्र में पुष्पकलावती देश है उसके उत्पलखेटक नगर के राजा वज्रबाहु और रानी वसुंधरा से वह ललितांग देव 'वज्रजंघ' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उधर अपने पति के अभाव में वह पतिव्रता स्वयंप्रभा छह महीने तक बराबर जिनपूजा में तत्पर रही। पश्चात् सौमनस वन सम्बन्धी पूर्व दिशा के जिन मन्दिर में चैत्यवृक्ष के नीचे पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए समाधिपूर्वक प्राण त्याग दिये, और विदेह क्षेत्र की पुंडरीकिणी नगरी के राजा वज्रदन्त की महारानी लक्ष्मीमती से 'श्रीमती' नाम की कन्या उत्पन्न हो गयी। कालान्तर में निमित्तवश इस वज्रजंघ और श्रीमती का विवाह हो गया। इनके उन्चास युगल पुत्र उत्पन्न हुए अर्थात् अट्ठानवे पुत्र उत्पन्न हुए। किसी समय वे अपने बाबा के साथ दीक्षित हो गये।

किसी समय श्रीमती के पिता चक्रवर्ती वज्रदन्त ने छोटे से पोते पुंडरीक को राज्याभिषेक कर दिया और विरक्त होकर दीक्षा ले ली। उस समय लक्ष्मीमती माता ने अपनी पुत्री और जमाई को बुलाया। ये दोनों वैभव के साथ पुंडरीकिणी नगरी की ओर आ रहे थे। मार्ग में किसी वन में पड़ाव डाला। वहाँ पर आकाश में गमन करनेवाले श्रीमान् दमधर और सागरसेन मुनि युगल वज्रजंघ के पड़ाव में पधारे। उन दोनों ने वन में ही आहार लेने की प्रतिज्ञा ली थी। वहाँ वज्रजंघ ने श्रीमती सहित भक्ति से नवधाभक्ति सहित विधिवत् आहार दान दिया और पंचाश्चर्य को प्राप्त हुए। अनन्तर उन्हें कंचुकी से विदित हुआ कि ये दोनों मुनि हमारे ही अन्तिम पुत्र युगल हैं। राजा वज्रजंघ और श्रीमती ने उनसे अपने पूर्वभव सुने और धर्म के मर्म को भी समझा। अनन्तर पास में बैठे हुए नकुल, सिंह, वानर और सुअर के पूर्व भव सुने। उन मुनियों ने यह भी बताया कि आप आठवें भव में वृषभ तीर्थंकर होवोगे और श्रीमती का जीव राजा श्रेयांसकुमार होंगे।

किसी समय वज्रजंघ महाराज रानी सहित अपने शयनागार में सोये हुए थे उसमें नौकरों ने कृष्णअगुरु आदि से निर्मित धूप खेई थी और वे नौकर रात में खिड़कियाँ खोलना भूल गये, जिसके निमित्त धुएँ से कण्ठ रुँधकर वे पति पत्नी दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। आश्चर्य है कि भोग सामग्री प्राणघातक बन गयी। वे दोनों दान के प्रभाव से मरकर उत्तर कुरु नामक उत्तम भोगभूमि में भोगभूमियाँ हो गये। वे नकुल आदि भी दान की अनुमोदना से भोग भूमि को प्राप्त हो गये।

किसी समय दो चारण मुनि आकाश मार्ग से वहाँ भोग भूमि में उतरे और इन वज्रजंघ आर्य और श्रीमती आर्या को सम्यग्दर्शन का उपदेश देने लगे। ज्येष्ठ मुनि बोले, हे आर्य! तुम मुझे

स्वयंबुद्ध मन्त्री का जीव समझो। मैंने तुम्हें महाबल पर्याय में जैन धर्म ग्रहण कराया था। उन दोनों दम्पत्तियों ने मुनियों के प्रसाद से सम्यग्दर्शन ग्रहण किया और आयु के अन्त में च्युत होकर ईशान स्वर्ग में 'श्रीधर' देव और स्वयंप्रभ नाम के देव हुए। अर्थात् श्रीमती का जीव सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्री पर्याय छोड़कर देव पद को प्राप्त हो गया। एक दिन श्रीधर देव ने अपने गुरु (स्वयंबुद्ध मन्त्री के जीव) प्रीतिंकर मुनिराज के समवसरण में जाकर पूछा—भगवन्! मेरे महाबल के भव में जो तीन मन्त्री थे वे इस समय कहाँ हैं? भगवान् ने बताया कि उन तीनों में से महामति और सम्भिन्नमति ये दो तो निगोद स्थान को प्राप्त हुए हैं और शतमति नरक गया है। तब श्रीधरदेव ने नरक में जाकर शतमति के जीव को सम्बोधित किया था तथा निगोद के जीवों को सम्बोधन का सवाल ही नहीं है।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में महावत्स देश है उसकी सुसीमा नगरी के सुदृष्टि राजा की सुन्दरनन्दा रानी से वह श्रीधर देव स्वर्ग से च्युत होकर 'सुविधि' नाम का पुत्र हुआ था। कालांतर में सुविधि की रानी मनोरमा से स्वयंप्रभ देव (श्रीमती का जीव) स्वर्ग से च्युत होकर केशव नाम का पुत्र हो गया, मतलब वज्रजंघ का जीव सुविधि राजा हुआ और श्रीमती का जीव उसका पुत्र हुआ है।

कदाचित् सुविधि महाराज दैगम्बरी दीक्षा लेकर अन्त में मरकर अच्युतेन्द्र हुए और केशव ने भी निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद प्राप्त किया।

वह अच्युतेन्द्र, जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती देश की पुंडरीकिणी नगरी में वज्रसेन राजा और श्रीकान्ता रानी से वज्रनाभि नाम का चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीमती का जीव केशव जो कि अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ था वह भी वहाँ से च्युत होकर इसी नगरी में कुबेरदत्तवणिक की अनन्तमती पत्नी से धनदेव नाम का पुत्र हुआ। वज्रनाभि के पिता तीर्थंकर थे और वह स्वयं चक्रवर्ती था, चक्ररत्न से षटखंड वसुधा को जीतकर चिरकाल तक साम्राज्य-सुख का अनुभव किया। किसी समय पिता से दुर्लभ रत्नत्रय के स्वरूप को समझकर अपने पुत्र वज्रदन्त को राज्य समर्पण कर सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेव के साथ-साथ पिता वज्रसेन तीर्थंकर के समवसरण में जिन दीक्षा धारण कर ली और किसी समय तीर्थंकर के ही निकट सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। ध्यान की विशुद्धि से ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंच गये और वहाँ का अन्तर्मुहूर्त काल पूर्ण कर नीचे उतरे, पुनरपि कदाचित् उपशम श्रेणी में चढ़ गये और वहाँ आयु समाप्त होते ही मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये।

वृषभदेव का गर्भावतार

भगवान् के गर्भ में आने के छह महीने पहले इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आंगन में साढ़े सात करोड़ रत्नों की वर्षा की थी। किसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में रानी मरुदेवी ने ऐरावत हाथी, शुभ्र बैल, हाथियों द्वारा स्वर्ण घंटों से अभिषिक्त लक्ष्मी, पुष्पमाला आदि सोलह स्वप्न देखे। प्रात: पतिदेव से स्वप्न का फल सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई। उस समय अवसर्पिणी काल के सुषमा दु:षमा नामक तृतीय काल में चौरासी लाखपूर्व तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष शेष रहने पर आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र देवायु का अन्त होनेपर सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मरुदेवी के गर्भ में अवतीर्ण हुए। उस समय इन्द्र ने आकर गर्भ-कल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्र की आज्ञा से श्री, ह्री आदि देवियाँ और दिक्कुमारियाँ माता की सेवा करते हुए काव्यगोष्ठी, सैद्धान्तिक चर्चाओं से और गूढ़ प्रश्नों से माता का मन अनुरंजित करने लगीं।

वृषभदेव का जन्म महोत्सव :

नव महीने व्यतीत होने पर माता मरुदेवी ने चैत्र कृष्ण नवमी के दिन सूर्योदय के समय मति-श्रुत-अवधि इन तीनों ज्ञान से सहित भगवान् को जन्म दिया। सारे विश्व में हर्ष की लहर दौड़ गई। इन्द्रों के आसन कम्पित होने से, कल्प वृक्षों से पुष्प वृष्टि होने से एवं चतुर्निकाय देवों के यहाँ घंटा ध्वनि, शंखनादि आदि वाजों के वजने से भगवान् का जन्म हुआ है ऐसा समझकर सौधर्म इन्द्र, इन्द्राणी सहित ऐरावत हाथी पर चढ़कर नगर की प्रदक्षिणा करके भगवान् को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर १००८ कलशों से क्षीरसमुद्र के जल से भगवान् का जन्माभिषेक किया। अनन्तर वस्त्राभरणों से अलंकृत करके 'वृषभदेव' यह नाम रखा। इन्द्र अयोध्या में वापस आकर स्तुति, पूजा, तांडव नृत्य आदि करके वापस स्वस्थान को चले गये।

वृषभदेव का विवाहोत्सव :

भगवान् के युवावस्था में प्रवेश करने पर महाराजा नाभिराज ने बड़े ही आदर से भगवान् की स्वीकृति प्राप्त कर इन्द्र की अनुमति से कच्छ, सुकच्छ राजाओं की बहन 'यशस्वती' 'सुनन्दा' के साथ श्री वृषभदेव का विवाह सम्बन्ध कर दिया।

भरत चक्रवर्ती आदि का जन्म :

यशस्वती देवी ने चैत्र कृष्ण नवमी के दिन भरत चक्रवर्ती को जन्म दिया, तथा क्रमश: निन्यान्वें पुत्र एवं ब्राह्मी कन्या को जन्म दिया। दूसरी सुनन्दा महादेवी ने कामदेव भगवान् बाहुवली

और सुन्दरी नाम की कन्या को जन्म दिया। इस प्रकार एक सौ तीन पुत्र, पुत्रियों सहित भगवान् वृषभदेव, देवों द्वारा लाये गये भोग पदार्थों का अनुभव करते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे।

भगवान द्वारा पुत्र पुत्रियों का विद्याध्ययन :

भगवान वृषभदेव त्रिज्ञानधारी होने से स्वयं गुरु थे। किसी समय भगवान ब्राह्मी सुन्दरी को गोद में लेकर उन्हें आशीर्वाद देकर चित्त में स्थित श्रुतदेवता को सुवर्णपट्ट पर स्थापित कर 'सिद्धं नमः' मंगलाचरणपूर्वक दाहिने हाथ से 'अ आ' आदि वर्णमाला लिखकर ब्राह्मी कुमारी को लिपि लिखने का एवं बायें हाथ से सुन्दरी को अनुक्रम के द्वारा इकाई, दहाई आदि अंक विद्या को लिखने का उपदेश दिया था। इसी प्रकार भगवान ने अपने भरत, बाहुबली आदि सभी पुत्रों को सभी विद्याओं का अध्ययन कराया था।

असि मषि आदि षट् क्रियाओं का उपदेश :

काल प्रभाव से कल्पवृक्षों के शक्तिहीन हो जाने पर एवं बिना बोये धान्य के भी विरल हो जाने पर व्याकुल हुई प्रजा नाभिराज के पास गई। अनन्तर नाभिराज की आज्ञा से प्रजा भगवान वृषभदेव के पास आकर रक्षा की प्रार्थना करने लगी।

प्रजा के दीन वचन सुनकर भगवान आदिनाथ अपने मन में सोचने लगे कि पूर्व-पश्चिम विदेह में जो स्थिति वर्तमान है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है। उसीसे यह प्रजा जीवित रह सकती है। वहाँ जैसे असि, मषि आदि षट् कर्म हैं, क्षत्रिय आदि वर्ण व्यवस्था, ग्राम नगर आदि की रचना है वैसे ही यहाँ भी होना चाहिये। अनन्तर भगवान ने इन्द्र का स्मरण किया और स्मरण मात्र से इन्द्र ने आकर अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना करके चारों दिशाओं में जिनमन्दिर बनाये। कौशल, अंग, वंग आदि देश, नगर बनाकर प्रजा को बसाकर प्रभु की आज्ञा से इन्द्र स्वर्ग को चला गया। भगवान ने प्रजा को असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मों का उपदेश दिया। उस समय भगवान सरागी थे। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना को और अनेकों पाप रहित आजीविका के उपाय बताये। इसीलिये भगवान युगादि पुरुष, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, स्रष्टा, कृतयुग विधाता और प्रजापति आदि कहलाये। उस समय इन्द्र ने भगवान का साम्राज्य पद पर अभिषेक कर दिया।

भगवान का वैराग्य और दीक्षा महोत्सव :

किसी समय सभा में नीलांजना के नृत्य को देखते हुए बीच में उसकी आयु के समाप्त होने से भगवान को वैराग्य हो गया। भगवान ने भरत का राज्याभिषेक करके इस पृथ्वी को भारत' इस नाम से सनाथ किया और बाहुबली को युवराज पद पर स्थापित किया। भगवान महाराज नाभिराज आदि को पूछकर इन्द्र द्वारा लाई गई 'सुदर्शना' नामक पालकी पर आरूढ़ होकर 'सिद्धार्थक' वन में पहुंचे। और 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' मन्त्र का उच्चारण कर पंचमुष्टि केशलोंच करके सर्व परिग्रह रहित मुनि हो गये। उस स्थान की इन्द्रों ने पूजा की थी इसीलिये उसका 'प्रयाग' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। उसी समय भगवान ने छह महीने का योग ले लिया। भगवान के साथ आये हुए चार हजार राजाओं ने भी भक्तिवश नग्न मुद्रा धारण कर ली।

पाखंड मत की उत्पत्ति :

भगवान के साथ दीक्षित हुए राजा लोग दो-तीन महीने में ही क्षुधा तृषा आदि से पीड़ित होकर अपने हाथ से वन के फल आदि ग्रहण करने लगे इस क्रिया को देख वन देवताओं ने कहा कि मूर्खों! यह दिगम्बर वेष सर्वश्रेष्ठ अरहंत, चक्रवर्ती आदि के द्वारा धारण करने योग्य है। तुम लोग इस वेष में अनर्गल, प्रवृत्ति मत करो। यह सुनकर वे लोग भ्रष्ट तपस्वियों के अनेकों रूप बना लिये, वल्कल, चीवर, जटा, दण्ड आदि धारण करके वे परिव्राजक आदि बन गये। भगवान वृषभदेव का पौत्र मरीचिकुमार इनमें अग्रणी गुरु परिव्राजक बन गया। ये कुमार आगे चलकर अन्तिम तीर्थंकर महावीर हुए हैं।

भगवान का आहार ग्रहण :

जगद्गुरु भगवान छह महीने बाद आहार को निकले परन्तु चर्याविधि किसी को मालूम न होने से छह माह और व्यतीत हो गये एक वर्ष बाद भगवान कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में पहुंचे। भगवान को आते देख राजा श्रेयांस को पूर्व भव के स्मरण हो जाने से राजा सोमप्रभ और श्रेयांसकुमार दोनों भाइयों ने विधिवत् पड़गाहन आदि करके नवधाभक्ति से भगवान को इक्षुरस का आहार दिया। वह दिन वैशाख शुक्ला तृतीया का था जो आज भी 'अक्षयतृतीया' के नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति :

हजार वर्ष तपश्चरण करते हुए भगवान को फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन केवलज्ञान प्रकट हो गया। इन्द्र की आज्ञा से कुवेर ने वारह योजन प्रमाण समवसरण की रचना की। समवसरण में वारह सभाओं में क्रम से १. सप्त ऋषि समन्वित गणधर देव और मुनिजन, २. कल्पवासी देवियाँ, ३. आर्यिकायें और श्राविकायें, ४. भवनवासी देवियाँ, ५. व्यन्तर देवियाँ, ६ ज्योतिष्क देवियाँ, ७. भवनवासी देव, ८. व्यन्तर देव, ९. ज्योतिष्क देव, १०. कल्पवासी देव, ११ मनुष्य और १२. तिर्यंच ये बैठकर उपदेश सुनते थे। पुरिमताल नगर के राजा श्री वृषभदेव भगवान के पुत्र वृषभसेन प्रथम गणधर हुए। ब्राह्मी भी आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिकाओं में गणनी हो गयी। भगवान के समवशरण में ८४ गणधर, ८४००० मुनि, ३५०००० आर्यिकायें, ३००००० श्रावक, ५००००० श्राविकायें, असंख्यात देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच उपदेश सुनते थे।

वृषभदेव का निर्वाण :

जव भगवान की आयु चौदह दिन शेष रही तव कैलाश पर्वत पर जाकर योगों का निरोध कर माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के समय भगवान पूर्व दिशा की ओर मुँह करके अनेक मुनियों के साथ सर्वकर्मों का नाश कर एक समय में सिद्ध लोक में जाकर विराजमान हो गये। उसी क्षण इन्द्रों ने आकर भगवान का निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया था, ऐसे ऋषभ जिनेन्द्र सदैव हमारी रक्षा करें।

भगवान के मोक्ष जाने के वाद तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष व्यतीत हो जाने पर चतुर्थ काल प्रवेश करता है।

चौबीसवें तीर्थंकर

महावीर

सब द्वीपों के मध्यमें रहने वाले इस जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर पुष्कलावती नामका देश है, उसको पुण्डरीकिणी नगरी में एक मधु नाम का वन है। उसमें पुरुरवा नाम का एक भीलों का राजा रहता है। उसकी कालिका नाम की स्त्री थी। किसी एक दिन दिग्भ्रम हो जाने के कारण सागरसेन नाम के मुनिराज उस वन में इधर उधर भ्रमण कर रहे थे। उन्हें देख, पुरुरवा भील मृग समझ कर उन्हें मारने को उद्यत हुआ परन्तु उसकी स्त्री ने यह कह कर मना कर दिया कि 'ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो'। उस पुरुरवा भील ने उसी समय प्रसन्न चित्त होकर मुनिराज के पास जाकर नमस्कार किया और गुरु के उपदेश से मद्य, मांस, मधु इन तीनों का त्याग कर जीवन पर्यन्त व्रत का पालन कर आयु के अन्त में सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु वाला देव हो गया।

इसी भरत क्षेत्र के अयोध्या के प्रथम चक्रवर्ती राजा भरत की अनन्तमती रानी से पुरुरवा भील का जीव मरीचि नाम का ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ। अपने बाबा भगवान वृषभ देव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरुभक्ति से प्रेरित हो मरीचि कुमार ने कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली थी। भगवान के छह महीने के योग के समय आहार की विधि से अनभिज्ञ ये सभी साधु क्षुधा, तृषा आदि परीषहों से भ्रष्ट होकर स्वयं तालाब का जल, वन के फल फूल ग्रहण करके खाने लगे। यह देख वन देवताओं ने कहा कि निर्ग्रन्थ वेष धारण करने वाले मुनियों का यह क्रम नहीं है। यदि तुम्हें ऐसी प्रवृत्ति करना है तो इच्छानुसार दूसरा वेष ग्रहण करो। मिथ्यात्व से प्रेरित मरीचि ने इन वचनों को सुनकर सबसे पहले परिव्राजक दीक्षा धारण कर ली।

जब वृषभ देव को केवलज्ञान प्राप्त हो गया तब समवसरण में सभी भ्रष्ट हुए साधुओं ने पुनः दीक्षा धारण करके आत्म कल्याण कर लिया। किन्तु यह अकेले मरीचि ने तीर्थंकर की दिव्य

ध्वनि को सुनकर भी सच्चा धर्म ग्रहण नहीं किया। वह सोचता था कि जैसे भगवान वृषभ देव ने समस्त परिग्रह का त्याग कर तीन लोक में मोक्ष उत्पन्न करने वाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसी प्रकार मैं भी अपने द्वारा चलाये गये दूसरे मत की व्यवस्था करके इन्द्र द्वारा की गई पूजा को प्राप्त करूँगा। इस प्रकार मान कषाय से कल्पित तत्त्व का उपदेश करते हुए आयु के अन्त में मरकर ब्रह्म स्वर्ग में देव हो गया। वहाँ से च्युत हो अयोध्या नगरी के कपिल ब्राह्मण की काली स्त्री से जटिल नाम का पुत्र हुआ। परिव्राजक के मत में स्थित होकर पुनः मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर भरत क्षेत्र के स्थूणागार नगर में भारद्वाज ब्राह्मण की पुष्पदत्ता स्त्री से पुष्पमित्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वहाँ भी संस्कार वश परिव्राजक बनकर प्रकृति पुरुष आदि पच्चीस तत्त्वों का उपदेश देकर आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर आयु वाला देव हुआ। वहाँ से आकर इसी भरत क्षेत्र के सूतिका नामक गांव में अग्निभूत ब्राह्मण की गौतमी स्त्री से अग्निसह नाम का पुत्र हुआ। वहाँ भी मिथ्या पाखण्डी साधु होकर मरकर स्वर्ग प्राप्त किया। वहाँ से आकर इसी भरत क्षेत्र के मन्दिर नामक ग्राम में गौतम ब्राह्मण की कौशिकी ब्राह्मणी से अग्नि मित्र नाम का पुत्र हुआ। वहाँ भी उसने वही पारिव्राजक दीक्षा धारण कर महेन्द्र स्वर्ग को प्राप्त किया। फिर वहाँ से च्युत होकर मन्दिर नामक नगर में शालंकायन ब्राह्मण की मन्दिरा स्त्री से भारद्वाज नाम का पुत्र हुआ। वहाँ वह त्रिदण्ड से सुशोभित त्रिदण्डी साधु बना तदनंतर माहेन्द्र स्वर्ग को प्राप्त किया।

फिर वहाँ से च्युत होकर कुमार्ग के प्रगट करने के फलस्वरूप मिथ्यात्व के निमित्त से समस्त अधोगतियों में जन्म लेकर उसने भारी दुःख भोगे। इस प्रकार त्रस स्थावर योनियों में असंख्यातवर्ष तक परिभ्रमण करता हुआ बहुत ही श्रांत हो गया।

अन्यत्र लिखा है कि "भारद्वाज ब्राह्मण त्रिदण्डी साधु होकर माहेन्द्र स्वर्ग को प्राप्त हुआ पश्चात् वहाँ से च्युत होकर मिथ्यात्व के प्रभाव से इतर निगोद में चला गया वहाँ सागरोपम काल व्यतीत हो गया। अनन्तर अनेकों भव धारण किए उनकी गणना इस प्रकार है—

अढ़ाई हजार आकवृक्ष के भव। अस्सी हजार सीप के भव।
वीस हजार नीम वृक्ष के भव। नव्वे हजार केलि वृक्ष के भव।
तीन हजार चन्दन वृक्ष के भव। पाँच करोड़ कनेर के भव।
साठ हजार वेश्या के भव। पाँच करोड़ शिकारी के भव।
वीस करोड़ हाथी के भव। साठ करोड़ गधा के भव।

तीस करोड़ श्वान के भव ।	साठ लाख नपुंसक के भव ।
वीस करोड़ नारी के भव ।	नव्वे लाख धोवी के भव ।
आठ करोड़ घोड़ा के भव ।	वीस करोड़ विल्ली के भव ।

साठ लाख वार माता के गर्भ से असमय में मरण अर्थात् गर्भपात ।

पचास हजार राजा के भव

इस प्रकार अनेकों भव धारण करते हुए कभी सुपात्र दान के प्रभाव से यह जीव भोगभूमि में गया । अस्सी लाख वार देव पद को प्राप्त हुआ इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह मिथ्यात्व वहुत ही वुरा है, तीन लोक और तीन काल में इससे वढ़कर और कोई भी इस जीव का शत्रु नहीं है । वुद्धिमान पुरुषों का कथन है कि यदि मिथ्यात्व और हिंसादि पापों की तुलना की जावे तो मेरु और राई के समान अंतर मालूम होगा ।

इसके वाद कदाचित् यही जीव कुछ पाप के मन्द होने से राजगृह नगर में स्थावर नाम का व्राह्मण हो गया ।

तदनन्तर मगध देश के इसी राजगृह नगर में वेद पारंगत शांडिल्य नामक व्राह्मण को पारशरी व्राह्मणी से 'स्थावर' नाम का पुत्र हुआ, वह भी वेद पारंगत सम्यक्त्व से शून्य पुनरपि परिव्राजक के मत को धारण कर अन्त में मर कर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हो गया । वहाँ से च्युत होकर इसी राजगृह नगर में विश्वभूति राजा की जैनी नामक रानी से विश्वनन्दी नाम का पुत्र हो गया । इसी विश्वभूति राजा का छोटा भाई विशाखभूति था, उसका पुत्र विशाखनन्दी नाम का था । एक दिन विश्वभूति राजा विरक्त हो अपने छोटे भाई को राज्य पद एवं पुत्र विश्वनन्दी को युवराज पद देकर जैनी दीक्षा लेकर कठिन तप करने लगे ।

किसी दिन विश्वनन्दी युवराज के मनोहर नामक वगीचे को देखकर चाचा के पुत्र विशाखनन्दि ने अपने पिता से उसकी याचना की । विशाखभूति राजा ने भी मायाचारी से विश्वनन्दी को शत्रुओं पर आक्रमण के लिए भेज कर उद्यान को अपने पुत्र को दे दिया । विश्वनन्दी को इस घटना का पता लगते ही उसने वापस आकर विशाखनन्दि को पराजित कर दिया और उसको भयभीत देख विरक्त होकर उसको उद्यान सौंपकर आप स्वयं दैगम्वरी दीक्षा लेकर तप करने लगा ।

घोर तपश्चरण करते हुए अत्यन्त कृश शरीरी वह विश्वनन्दी मुनिराज एक दिन मथुरा नगरी में आहार के लिए आए । व्यसनों से भ्रष्ट यह विशाखनंदी उस समय किसी राजा का दूत

बनकर वहाँ आया था। और एक वेश्या की छत पर बैठा मुनि को देख रहा था। दैवयोग से वहाँ एक गाय ने मुनिराज को धक्का देकर गिरा दिया। उन्हें गिरता देख, क्रोधित हुआ विशाखनन्दि बोला कि 'तुम्हारा जो पराक्रम हमें मारने को पत्थर का खंभा तोड़ते समय देखा गया था वह अब आज कहाँ गया ?' इस प्रकार खोटे वाक्यों को सुनकर मुनिराज के मन में भी क्रोध आ गया और बोले कि इस हँसी का फल तुझे अवश्य ही मिलेगा। अन्त में निदान सहित संन्यास से मरण कर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और विशाखभूति चाचा का जीव भी तप करके वहीं पर देव हुआ। चिरकाल तक सुख भोग कर वे दोनों वहाँ से च्युत होकर सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से विशाखभूति का जीव 'विजय' नाम का बलभद्र पदवी धारक पुत्र हुआ, और उन्हीं की दूसरी मृगावती रानी से विश्वनन्दी का जीव, नारायण पद धारक त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ। एवं विशाखनंदी का जीव चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण कर विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलाञ्जना रानी से अश्वग्रीव नाम का प्रतिनारायण पद का धारक पुत्र हुआ। पूर्व जन्म के संस्कार से त्रिपृष्ठ नारायण ने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को मारकर चक्ररत्न प्राप्त किया। चिरकाल तक राज्य सुख भोगकर अन्त में भोगासक्ति से मरकर सातवें नरक को प्राप्त किया। वहाँ के दुःखों को सागरों पर्यन्त सहकर, इसी भरत क्षेत्र के गंगा नदी तट के समीपवर्ती वन में सिंहगिरि पर्वत पर सिंह हुआ। वहाँ भी तीव्र पाप से पुनः प्रथम नरक को प्राप्त किया। वहाँ एक सागर तक दुःख भोगकर जंबू द्वीप में सिंहकूट की पूर्व दिशा में हिमवन पर्वत के शिखर पर सिंह हो गया। किसी समय एक हरिण को पकड़ कर मार कर खा रहा था, उसी समय अतिशय दयालु अजितंजय नामक चारण मुनि अमितगुण नामक मुनिराज के साथ आकाश में जा रहे थे। वे उस सिंह को देखकर तीर्थंकर के वचन स्मरण कर दया वश वहाँ उतर कर सिंह के पास जाकर शिलातल पर बैठ गये और जोर-जोर से धर्ममय वचन कहने लगे। उन्होंने कहा हे भव्य मृगराज ! तूने त्रिपृष्ठ नारायण के भव में स्वच्छन्दतापूर्वक पाँच इन्द्रियों के विषयों का अनुभव कर उसके फलस्वरूप नरक में जाकर चिरकाल तक घोर दुःखों का अनुभव किया है। आयु समाप्त कर वहाँ से निकल कर सिंह हुआ और वहाँ भी भूख प्यास आदि की बाधाओं से अत्यन्त दुःखी हुआ, वहाँ तूने प्राणी हिंसा के पाप से आहार करते हुए पुनः पहले नरक को प्राप्त हुआ और वहाँ से निकल कर फिर तू सिंह हुआ है और इस तरह क्रूरता से पाप का संचय कर दुःख के लिए उद्यम कर रहा है, इत्यादि रूप से मुनिराज के वचनों को सुनकर उस सिंह को जातिस्मरण हो गया और उसकी आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। मुनिराज ने पुरुरवा भील से लेकर अब तक की पर्यायों का वर्णन किया अनंतर कहने लगे कि हे मुनिराज ! अब तू इस भव से दसवें भव में अंतिम तीर्थंकर महावीर होगा यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर भगवान के मुख से सुना है। पुनः मुनिराज ने सम्यक्दर्शन और व्रतों का उपदेश दिया।

उस सिंह ने मुनिराज के वचन हृदय में धारण किये और भक्तिभार से दोनों मुनिराजों की बार-बार प्रदक्षिणायें देकर प्रणाम किया। काल आदि लब्धियों के मिल जाने से शीघ्र ही तत्त्व श्रद्धान और श्रावक के व्रत ग्रहण किये। इस प्रकार वह सिंह निराहार रहकर तिर्यंचगति के योग्य संयमासंयम व्रत को स्थिरता से पालन कर व्रत सहित संन्यास धारण कर एकाग्र चित्त से मरा और सौधर्म स्वर्ग में दो सागर की आयु वाला सिंहकेतु नाम का देव हुआ। वहाँ से चयकर धातकी खंड के पूर्व विदेह की मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के कनकोज्ज्वल नाम का पुत्र हुआ। किसी एक दिन कनकवती नाम की अपनी स्त्री के साथ मंदरगिरी पर प्रियमित्र नामक अवधिज्ञानी मुनि से धर्मोपदेश श्रवण कर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अंत में संन्यास से मरण कर सातवें स्वर्ग में तेरह सागर प्रमाण आयु वाला देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर इसी साकेता नगरी के स्वामी वज्रसेन की शीलवती रानी से हरिषेण नाम का पुत्र हुआ और राज्यपद का अनुभव कर श्री श्रुतसागर मुनिराज के समीप जिन दीक्षा लेकर महाशुक्र स्वर्ग में सोलह सागर की आयु वाला देव हुआ। वहाँ से चयकर धातकी खंड के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश की पुंडरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र और रानी मनोरमा से प्रियमित्र नाम का पुत्र हुआ। वह चक्रवर्ती के पद को प्राप्त कर भोगों को अनुभव करते हुए किसी दिन अपने सर्वमित्र पुत्र को राज्य देकर हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गया। आयु के अन्त में सहस्रार स्वर्ग में अठारह सागर आयु के धारक सूर्यप्रभ नाम के देव हो गये। उस स्वर्ग से चयकर इसी जंबू द्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नंदिवर्धन की वीरवती रानी से नंद नाम के पुत्र हुए, राज्य का उपभोग कर प्रोष्ठिल नामक गुरु के पास संयम ग्रहण कर ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं के चिंतवन से उच्च गोत्र के साथ-साथ तीर्थंकर नाम कर्म का वंध कर लिया और सब आराधनाओं को प्राप्त कर आयु के अंत में अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र हुए। ये बाईस सागर की आयु के धारक थे।

जब इनकी आयु छह मास बाकी रह गई तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश संबंधी कुंडपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आँगन में प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ प्रमाण रत्नों की धारा बरसने लगी। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन रात्रि के पिछले प्रहर में रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे और पुष्पोत्तर विमान से अच्युतेन्द्र रानी के गर्भ में आ गये। प्रातःकाल राजा के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रानी अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। तदनंतर देवों ने आकर गर्भ कल्याणक उत्सव मनाकर माता-पिता का अभिषेक करके उत्सव मनाया।

नव मास पूर्ण होने के बाद चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन रानी त्रिशला ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय देवों के स्थानों में अपने आप वाद्य बजने लगे, तीनों लोकों में सर्वत्र एक हर्ष की

लहर दौड़ गई। सौधर्म इन्द्र ने बड़े वैभव के साथ सुमेरु पर्वत की पांडुक शिला पर क्षीर सागर के जल से भगवान का जन्माभिषेक किया। इन्द्र ने उस समय उनके वीर और वर्धमान ऐसे दो नाम रखे।

श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्री महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे। उनकी आयु भी इसी में शामिल है। कुछ कम बहत्तर वर्ष की आयु थी, सात हाथ ऊँचे, स्वर्ण वर्ण के थे। एक बार संजय और विजय नाम के चारण ऋद्धिधारी मुनियों को किसी पदार्थ में सन्देह उत्पन्न होने से भगवान के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आकर उनके दर्शन मात्र से ही संदेह से रहित हो गये तब उन मुनि ने उस बालक का सन्मति नाम रखा। किसी समय संगम नामक देव ने सर्प बनकर परीक्षा ली और भगवान को सफल देखकर उनका महावीर यह नाम रखा।

तीस वर्ष के बाद भगवान को पूर्वभव का स्मरण होने से वैराग्य हो गया तब लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति को प्राप्त भगवान ने दीक्षा ग्रहण कर ली और तत्काल मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त कर लिया। पारणा के दिन कूलग्राम की नगरी के कूल नामक राजा के यहाँ खीर का आहार ग्रहण किया। किसी समय उज्जयिनी के अतिमुक्तक वन में ध्यानारूढ़ भगवान पर महादेव नामक रुद्र भयंकर उपसर्ग करके विजयी भगवान के महति महावीर नाम रखकर स्तुति की। किसी दिन सांकलों में बंधी चंदनबाला ने भगवान को पड़गाहन किया तब उसकी बेड़ी आदि टूट गई और भगवान को आहार दिया।

छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष बाद जृंभिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में सालवृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ला दशमी के दिन भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस समय इन्द्र ने केवलज्ञान की पूजा की। भगवान की दिव्य ध्वनि के न खिरने पर इन्द्र गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण को युक्ति से लाये तब उनका मान गलित होते ही वे भगवान से दीक्षित होकर मनःपर्यय ज्ञान और सप्त ऋद्धि से विभूषित होकर प्रथम गणधर हो गये तब भगवान की दिव्य ध्वनि खिरी। श्रावण कृष्ण एकम के दिन दिव्यध्वनि को सुनकर गौतम गणधर ने सायंकाल में द्वादशांग श्रुत की रचना की। इसके बाद वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए हैं। भगवान के समवसरण में मुनीश्वरों की संख्या चौदह हजार थी, चंदना आदि छत्तीस हजार आर्यिकायें थीं। एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें असंख्यात देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच थे। बारह गणों से वेष्टित भगवान ने विपुलाचल पर्वत पर और अन्यत्र भी आर्य खंड में विहार कर सप्ततत्त्व आदि का उपदेश दिया।

अंत में पावापुर नगर के मनोहर नामक वन में अनेक सरोवरों के बीच शिलापट्ट पर विराजमान होकर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि को अंतिम प्रहर में स्वाति नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया।

भगवान के जीवन वृत्त से हमें यह समझना है कि मिथ्यात्व के फलस्वरूप जीव त्रस स्थावर योनियों में परिभ्रमण करता है। सम्यक्त्व और व्रतों के प्रसाद से चतुर्गति के दुखों से छूटकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है। अतः मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दृष्टि बन करके व्रतों से अपनी आत्मा को निर्मल बनाना चाहिए।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी

जिनशासन शिरोमणि श्रुतधर आचार्य भद्रबाहु उस युग के महान आस्थावान आचार्य हुए। श्रुतकेवली की परम्परा में आपका क्रम पाँचवाँ था। वे अन्तिम श्रुतकेवली थे। जैन शासन को वीर निर्वाण की द्वितीय शताब्दी के मध्य दु:काल में भयंकर वात्याचक्र से जूझना पड़ा था।

आपके नायकत्व में २४००० हजार मुनि एक साथ रहा करते थे। उज्जयिनी में जब भयंकर अकाल पड़ा तब उस दुष्काल के समय बारह हजार मुनि दक्षिण की ओर बढ़ गए। सम्राट चन्द्रगुप्त को भद्रबाहु आचार्य ने मुनि दीक्षा दी। तथा आपने अपना समाधि साधना स्थल श्रवणबेल गोला की चन्द्रगिरि पर्वत बनाया जहां पर आप शिष्यों सहित विराजे थे। आज भी आपकी चरण चिह्न गुफा में बनी हुई है।

आचार्य धरसैन

आचार्य धरसैन आगम ज्ञान के विशिष्ट ज्ञाता एवं अष्टांग निमित्त के पारगामी विद्वान थे। श्रुत की धारा को अविच्छिन्न रखने के लिए महिमा महोत्सव में एकत्रित मुनि सम्मेलन के प्रमुख आचार्यों के पास पत्र भेजा इस पत्र के द्वारा उन्होंने प्रतिभा सम्पन्न मुनियों की मांग की थी।

आचार्यों ने पत्र पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन किया और समग्र मुनिवर्ग में से दो मेधावी मुनियों को उनके पास सौराष्ट्र में गिरिनार की चन्द्र गुफा में जहां उनका निवास था, वहां उन मेधावी मुनिराज को भेजा। उनमें एक का नाम सुबुद्धि तथा दूसरे का नाम नरवाहन था, दोनों मुनिराज विनयवान, शीलवान, जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न एवं कला सम्पन्न थे। आगमार्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ थे और वे आचार्यों से तीन वार पूछकर आज्ञा लेने वाले थे।

जब दोनों श्रमण वेणानदी के तट से धरसेनाचार्य के पास आने के लिए प्रस्थित हुए थे उस समय पश्चिम निशा में आचार्य धरसैन ने स्वप्न देखा था—दो धवल ऋषभ उनके पास आए और उन्हें प्रदक्षिणा देकर उनके चरणों में बैठ गए। इस शुभसूचक स्वप्न से आचार्य धरसैन को प्रसन्नता हुई। आचार्य धरसैन का स्वप्न फलवान बना। दोनों मुनि ज्ञान ग्रहण करने के लिए उनके पास आ पहुंचे। उन मुनिराज को धरसैन ने मंत्र देकर सिद्धि कराई तथा आचार्य धरसैन की परीक्षा विधी में भी उभय मुनि पूर्ण उत्तीर्ण हुए और विनय पूर्वक श्रुतोपासना करने लगे उनका अध्ययन क्रम शुभ तिथि, नक्षत्र, वार में प्रारम्भ हुवा था। आचार्य धरसैन की ज्ञान प्रदान करने की अपूर्व क्षमता एवं युगल मुनियों की सूक्ष्मग्राही प्रतिभा का मणि-कांचन योग था। अध्ययन का क्रम द्रुतगति से चला। आषाढ़ शुक्ला एकादशी के पूर्वाह्न काल में वाचन कार्य सम्पन्न हुवा। इस महत्वपूर्ण कार्य की सम्पन्नता के अवसर पर देवताओं ने भी मधुर वाद्य ध्वनि की थी। आचार्य धरसैन ने एक का नाम भूतबलि दूसरे का नाम पुष्पदन्त रखा था।

निमित्त ज्ञान से अपना मृत्युकाल निकट जानकर धरसैनाचार्य ने सोचा मेरे स्वर्ग गमन से इन्हें कष्ट न हो। उन्होंने दोनों मुनियों को श्रुत की महा उप सम्पदा प्रदान कर कुशलक्षेम पूर्वक उन्हें विदा किया।

आगम निधि सुरक्षित रखने का यह कार्य आचार्य धरसैन के महान दूरदर्शी गुण को प्रगट करता है। जैन समाज के पास आज षट्-खण्डागम जैसी अमूल्य कृति है उसका श्रेय आचार्य धरसैन के इस भव्य प्रयत्न को है।

☼

आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि

पुष्पदन्त और भूतबलि महामेधा सम्पन्न आचार्य थे। उनकी सूक्ष्मप्रज्ञा आचार्य धरसैन के ज्ञान पारावार को ग्रहण करने में सक्षम सिद्ध हुई।

आचार्य श्री से ज्ञान सम्पदा लेकर लौटने के बाद दोनों ने एक साथ अंकलेश्वर में चातुर्मासिक स्थिति सम्पन्न की। वहाँ से पुष्पदन्त वन की ओर गये तथा भूतबलि का पदार्पण द्रमिल देश में हुवा। तथा आचार्य पुष्पदन्त ने जिनपालित नामक व्यक्ति को दीक्षा प्रदान की।

षट्खण्डागम दिगम्बर साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है सत्कर्म प्राभृत खण्ड सिद्धान्त तथा षट् खण्ड सिद्धान्त की संज्ञा से भी यह ग्रन्थ पहचाना जाता है। इस ग्रन्थ के रचनाकार आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि थे।

साहित्य को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से पुष्पदन्त और भूतबलि के समय में प्रथम वार साहित्य निवद्ध किया गया था। जैन परम्परा में इससे पहले श्रुत पुस्तक निबद्ध नहीं थी।

आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि द्वारा प्रसूत नई प्रवृत्ति का जनता के द्वारा विरोध नहीं, स्वागत ही हुवा था। कहा जाता है—पुस्तकारूढ़ साहित्य को ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन संघ के सामने प्रस्तुत किया गया था। अत: यह पंचमी 'श्रुत पंचमी' के नाम से प्रसिद्ध हुई है। इस प्रसंग पर ग्रन्थ का संघ ने पूजा महोत्सव मनाया।

आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि जैन शासन के महान प्रभावी आचार्य हुए उनकी अमर दायिनी कृति आज भी वही याद दिलाती है ऐसे महान आचार्यों को शत-शत वंदन !

आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी

जैन साहित्य के अभ्युदय में दाक्षिणात्य प्रतिभाओं का महान योगदान रहा उसमें आचार्य कुन्दकुन्द को सर्वतोग्र स्थान प्राप्त है।

वे कर्णाटक के कोंडकुंड के निवासी थे। उनके पिता का नाम करमंडू और माता का नाम श्रीमति था। बोधप्राभृत के अनुसार वे श्रुतकेवली भद्रबाहु के परम्परागत शिष्य थे।

पद्मनन्दी वक्रग्रीव, गृध्रपिच्छ, एलाचार्य और कुन्दकुन्द उनके नाम थे। अध्यात्म ग्रन्थों के प्रमुख व्याख्याकार थे। उनकी आत्मानुभूति पारक वाणी ने अध्यात्म के नए क्षितिज का उद्घाटन किया और आगमिक तत्वों को तर्क सुसंगत परिधान दिया।

आचार्य कुन्दकुन्द चौरासी प्राभृतों (पाहुड़) के रचनाकार थे, पर वर्तमान में उन चौरासी प्राभृतों में से अनेक पाहुड़ उपलब्ध नहीं हैं।

आज भी कई उच्चकोटि के ग्रन्थ जैसे समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, मूलाचार, रयणसार, अष्टपाहुड़ आदि अनेकों ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द दर्शन युग में आए पर उन्होंने अध्यात्म प्रसाद को दर्शन की नींव पर खड़ा नहीं किया। प्रस्तुत दर्शन को आगमिक सांचे में ढाला।

दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है तथा ऊँचा स्थान है। भगवान महावीर और गौतम के साथ उनका नाम मंगल रूप में अतिशय गौरव के साथ स्मरण किया जाता है।

आचार्य उमास्वामी

उमास्वामी अपने युग के महान विद्वान साधु हुए थे। संस्कृत भाषा पर उनका अतिशय अधिकार था। जैन दर्शन की विपुल सामग्री को प्रांजल सुर भारती में प्रस्तुत करने का सर्व प्रथम श्रेय उन्हीं को था। तत्वार्थ सूत्र आचार्य उमास्वामी की प्रसिद्ध रचना है व जैन तत्वों का संग्राहक ग्रन्थ है। मोक्ष मार्ग के रूप में रत्नत्रय का युक्त पुरस्सर निरूपण षट्द्रव्य और नव तत्व की विवेचना ज्ञान-ज्ञेय को समुचित व्यवस्था और भूगोल-खगोल की परिचर्या से इस ग्रन्थ की जैन समाज में महती उपयोगिता सिद्ध हुई है। आचार्य उमास्वामी बेजोड़ संग्राहक थे। उन्होंने जैन दर्शन से सम्बन्धित कोई भी विषय बाकी नहीं छोड़ा जिसका इस कृति में उल्लेख न हो। इस संग्राहक वृत्ति से उनको जैन समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है।

संस्कृत साहित्य के धुरंधर इतिहासकारों ने उमास्वामी को जैनाचार्यों में संस्कृत का सर्व प्रथम लेखक कहा है। उनका संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। ग्रन्थ की शैली संक्षिप्त प्रशस्त और शुद्ध संस्कृत रूप में है।

वीर वाणी के सम्पूर्ण पदार्थो का संग्रह तत्वार्थसूत्र में किया है। एक भी महत्वपूर्ण विषय का कथन किये बिना नहीं छोड़ा है इसी से आचार्य महोदय को सर्वोत्कृष्ट निरूपक कहा है। आपकी रचना पर से अनेकों आचार्यो ने बड़ी बड़ी टीकाऐं की हैं।

आचार्य उमास्वामी जैन समाज को एक ऐसा चिरस्मरणीय ज्ञान प्रदान कर गये हैं जिसके लिए दिगम्बर जैन समाज चिरऋणी रहेगा।

आचार्य समंतभद्र स्वामी

आचार्य समन्तभद्र दक्षिण के राजकुमार थे। वे तमिलनाडु उरगपुर नरेश के पुत्र थे। उनका नाम शक्ति वर्मा था। मुनि जीवन में प्रवेश पाकर समंतभद्र स्वामी मुनि संघ के नायक बने।

कवित्व, गमकत्व, वादित्व, वाग्मित्व ये चार गुण उनके व्यक्तित्व के अलंकार थे। आप इन्हीं विरल गुणों के कारण काव्य लोक के उच्चतम अधिकारी, आगम मर्मज्ञ सतत शास्त्रार्थ प्रवृत्त और वाक्पटु बनकर विश्व में चमके। संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, तमिल आदि कई भाषाओं पर उनका अधिकार था भारतीय विद्या का कोई भी विषय संभवत: उनकी प्रतिभा से अस्पृष्ट नहीं रहा। वे स्याद्वाद के संजीवक आचार्य थे। उनका जीवन-स्याद्वाद दर्शन का जीवन था। उनकी अभिव्यक्ति स्याद्वाद की अभिव्यक्ति थी। वे जब भी बोलते अपने प्रत्येक वचन को स्याद्वाद की तुला से तौलते थे। उनके उत्तरवर्ती विद्वान् आचार्य ने उनको स्याद्वाद, विद्यापति, स्याद्वाद विद्यागुरु तथा स्याद्वाद अग्रणी का सम्बोधन देकर अपना मस्तक झुकाया।

वे वाद कुशल आचार्य ही नहीं वाद रसिक आचार्य भी थे। भारत के सुप्रसिद्ध ज्ञान केन्द्रों में पहुंचकर भेरी ताडन पूर्वक वाद के लिए विद्वानों को आह्वान किया था। पाटलिपुत्र, वाराणसी, मालवा, पंजाब, काँचीपुर (कांजीवरम) उनके प्रमुख वाद क्षेत्र थे।

आचार्य श्री प्रवल कष्ट सहिष्णु भी थे। मुनि जीवन में उन्हें एक बार भस्मक नामक व्याधि हो गई थी। इस व्याधि के कारण वे जो कुछ खाते वह अग्नि में पतित अन्नकण की तरह भष्म हो जाता था। भूख असह्य हो गई। कोई उपचार न देखकर उन्होंने समाधि की सोची। गुरु से आदेश मांगा पर समाधि की स्वीकृति उन्हें न मिल सकी। समन्तभद्र को विवश होकर काँची के शिवालय का आश्रय लेना पड़ा और पुजारी बनकर रहना पड़ा। वहाँ देव प्रतिमा को अर्पित लगभग ४० सेर चढ़ावा उन्हें खाने को मिल जाता था। कुछ दिनों के बाद मधुर एवं पर्याप्त भोजन से उनकी व्याधि शान्त होने लगी। नैवेद्य बचने लगा एक दिन यह भेद शिवकोटि के सामने खुला। राजा आश्चर्य चकित रह गया, इसे किसी भयंकर घटना का संकेत समझ शिवालय को राजा की सेना ने घेर लिया उस समय समन्तभद्र मन्दिर के अन्दर थे। जब उन्होंने सेना के द्वारा

मन्दिर को घेरे जाने की बात जानी इस भयंकर उपसर्ग के शान्त न होने तक भक्ति में लीन हो गये और जिनेन्द्र देव की स्तुति करने लगे। शिव पिन्डी को राजा ने सांकलों से जकड़ दिया। स्वामी समन्तभद्रजी ने स्वयंभूस्तोत्र के माध्यम से तीर्थकरों का स्तवन किया जैसे ही आठवें तीर्थंकर का स्मरण किया कि पिण्डी फटी तथा चन्द्रप्रभु भगवान का बिम्ब प्रगट हुवा। शिवकोटि राजा पर इस घटना का आश्चर्यकारी प्रभाव हुवा और उन्होंने स्वामी समन्तभद्र का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

समन्तभद्र भी पुनः संयम में स्थिर होकर आचार्य पद पर आरूढ़ हुए एवं अपनी प्राञ्जल प्रतिभा से प्रचुर संस्कृत साहित्य का सृजन कर जैन शासन की महनीय श्रीवृद्धि की। आपके द्वारा अनेकानेक ग्रन्थों की रचना हुई है। जो आज भी उपलब्ध हैं।

(१) आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन, स्वयंभूस्तोत्र, स्तुतिविद्या, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि।

आचार्य समन्तभद्र की कई रचनाएँ वर्तमान में अनुपलब्ध हैं, अनुपलब्ध रचनाओं में जीव सिद्धि, तत्वानुशासन, प्रमाण पदार्थ, कषाय प्राभृतिका, गन्थहस्ती महाभाष्य आदि ग्रन्थ हैं। आचार्य समन्तभद्र पंडितों के पंडित और दार्शनिकों, योगियों, त्यागियों, तपस्वी मुनियों के अग्रणी थे। अतः उनकी प्रख्याति स्वामी शब्द से हुई।

आचार्य अकलंक स्वामी

राष्ट्रकूट राजा शुभतुंग के मंत्री पुरुषोत्तम उनके पिता थे। निष्कलंक उनके भ्राता थे। उनकी माता का नाम जिनमति था। बाल वय में ही ब्रह्मचारी-जीवन जीने के लिए प्रतिज्ञावद्ध हो चुके थे। अध्ययन के प्रति उनकी गहरी रुचि थी। दोनों भाइयों ने गुप्त रूप से बौद्ध मठ में तर्कशास्त्र का गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ किया। एक दिन भेद खुल गया। अकलंक पलायन में सफलीभूत हो गया और निष्कलंक को वहीं मार दिया।

आचार्य परम्परा में अकलंक प्रौढ़ दार्शनिक विद्वान् थे और जैन न्याय के प्रमुख व्यवस्थापक थे। उनके द्वारा निर्धारित प्रमाण शास्त्र की रूप रेखा उत्तरवर्ती जैनाचार्यों के लिए मार्ग दर्शक बनी है।

आचार्य अकलंक वादकुशल भी थे। वह युग शास्त्रार्थ प्रधान था। एक ओर नालन्दा विश्वविद्यालय के बौद्धाचार्य धर्मपाल के शिष्य धर्मकीर्ति थे, जिन्होंने तर्कशास्त्र के पिता दिङ्नाग के दर्शन को शास्त्रार्थों के बल पर चमका दिया था, दूसरी ओर प्रभाकर, मंडन मिश्र, शंकराचार्य, भट्टजयंत और वाचस्पति मिश्र की चर्चा-परिचर्चाओं से धर्मप्रधान भारतभूमि का वातावरण आन्दोलित था। आचार्य अकलंक भी इनसे पीछे नहीं रहे। उन्होंने अनेक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किए। मुख्यत: अकलंक बौद्धों के प्रतिद्वन्द्वी थे। आचार्य पदारोहण के बाद कलिंग नरेश हिमशीतल की सभा में वौद्ध विद्वानों के साथ उनका छह महीने तक शास्त्रार्थ हुवा।

आचार्यश्री के विषय में एक रोचक घटना का प्रसंग है, कहा जाता है कि वौद्ध भिक्षु घट में तारादेवी की स्थापना करके शास्त्रार्थ करते थे। इससे वे दुर्जेय बने हुए थे। आचार्य अकलंक को यह रहस्य ज्ञात हो गया था। उनको शासन देवता ने आकर स्वप्न दिया तथा स्वप्न फल से जानकर प्रात:काल सभा में जाकर घड़ा फोड़ दिया, आचार्य अकलंक की विजय हुई।

आचार्यश्री ने कई ग्रन्थों का निर्माण किया है। जिसमें आचार्य समन्तभद्रकी आप्त-मीमांसा पर उन्होंने अष्टशती टीका लिखी। तत्वार्थ सूत्र पर राजवार्तिक टीका लिखी। सिद्धि-विनिश्चय, न्याय विनिश्चय, प्रमाणसंग्रह ये तीनों ग्रन्थ उनकी सबल तर्कणा शक्ति के परिचायक हैं।

अजेयवाद शक्ति, अतुल प्रतिभाबल एवं मौलिक चिन्तन पद्धति से आचार्य अकलंक भट्ट कोविद कुल के अलंकार थे।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी

पूज्यपाद स्वामी महान प्रतिभाशाली आचार्य और युग प्रधान योगेन्द्र थे। आपकी विद्वत्ता अखंड और अतिशय पूर्ण थी। दिव्यकीर्ति के आप स्तम्भ थे। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों से निश्चित रूप से विदित होता है कि आपकी योग्यता असाधारण थी।

श्रवणवेलगोला नं० १०८ के शिलालेख के आधार पर उन्हें अद्वितीय औपध ऋद्धि प्राप्त थी। एक बार उनके चरण प्रक्षालित जल के छूने मात्र से लोहा भी सोना वन गया। उनके विदेहगमन की वात भी इसी शिलालेख के आधार से सिद्ध होती है।

पूज्यपाद साहित्य-रसिक और महान् शाव्दिक थे। जिनेन्द्र व्याकरण साहित्य जगत की प्रतिष्ठा प्राप्त कृति है। इस व्याकरण के कर्त्ता जिनेन्द्र बुद्धि पूज्यपाद ही थे। जैन विद्वान द्वारा लिखा गया यह प्रथम संस्कृत व्याकरण है। इसी व्याकरण के आधार पर पाणिनी व्याकरण लिखा गया है।

तत्वार्थ सूत्र की व्याख्या में उन्होंने सर्वार्थसिद्धि का निर्माण किया। सिद्धि शव्द ही उनके प्रौढ़ ज्ञान का संकेतक है। समाधितंत्र तथा इष्टोपदेश ये दोनों पूर्णतः आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। आपके द्वारा और अनेक ग्रन्थ लिखने का प्रमाण है। द्रविड़ संघ की स्थापना वीर नि० सं० ६६६ (वि० सं० ५२६) में हुई थी इस संघ की स्थापना का श्रेय आचार्य पूज्यपाद के शिष्य प्राभृतवेत्ता वज्रनन्दी को है।

ज्योतिषियों द्वारा वालक को त्रैलोक्य पूज्य वतलाने के कारण उसका नाम पूज्यपाद रखा। पूज्यपाद ने रसायन, मंत्रविद्या, व्याकरण, वैद्यक, प्रतिष्ठा लक्षण आदि पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। पैरों में साधारण वनस्पति का गगनगामी लेप लगाकर विदेह क्षेत्र को जाया करते थे। पूज्यपाद मुनि वहुत समय तक योगाभ्यास करते रहे फिर एक देव के विमान में वैठकर उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। मार्ग में एक जगह उनकी दृष्टि लोप हो गई थी जिसे उन्होंने शान्त्यष्टक द्वारा ठीक करली। इसके कुछ समय वाद समाधिपूर्वक मरण किया।

आचार्य जिनसेन

आचार्यों में एक नाम जिनसेन का भी है आपका कालमान वी० नि० १३६४ (वि० सं० ८९४) का है।

आचार्य जिनसेन वीरसेन के सुयोग्य शिष्य एवं सफल उत्तराधिकारी थे। वे सिद्धान्तों के प्रकृष्ट ज्ञाता तथा कविमेधा से सम्पन्न थे। कर्णवेध संस्कार होने से पूर्व ही उन्होंने मुनिधर्म स्वीकार कर लिया था। सरस्वती की उन पर अपार कृपा थी। विनय-नम्रता के गुणों से उनकी विद्या विशेष रूप से शोभायमान थी। गुणभद्र की दृष्टि में हिमालय से गंगा, उदयाचल से भास्कर की भाँति वीरसेन से जिनसेन का उदय हुवा था।

आचार्य वीरसेन की प्रारम्भ की हुई जय धवला टीका कार्य को आचार्य जिनसेन ने पूर्ण किया था। इस ग्रन्थ में साठ हजार श्लोक परिमाण स्वरूप इस ग्रन्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य वीरसेन ने इस ग्रन्थ के वीस हजार श्लोक रचे अवशिष्ट चालीस हजार श्लोकों की रचना आचार्य जिनसेन ने की।

मेघदूत काव्य के आधार पर 'मंदाक्रांतावृत' में आचार्य जिनसेन ने पार्श्वाभ्युदय काव्य की रचना की। यह संस्कृत में निवद्ध उत्तम खण्डकाव्य है।

आचार्य जिनसेन की ऐतिहासिक रचना महापुराण नामक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ आचार्य जिनसेन ने किया पर वे इसे पूर्ण नहीं कर पाए। अपने गुरु वीरसेन की भाँति उनका स्वर्गवास रचना पूर्ण होने से पहले ही हो गया था। उनकी अवशिष्ट रचना को शिष्य गुणभद्र ने पूर्ण किया। इस महापुराण के दो भाग हैं आदिपुराण एवं उत्तरपुराण। आदि पुराण में १०३८ श्लोकों के कर्त्ता आचार्य जिनसेन हैं। राष्ट्रकूट वंश का जैनधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध था। नरेश अमोघवर्ष (प्रथम) इस वंश के महान प्रतापी शासक थे।

आचार्य जिनसेन के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का उन पर अतिशय प्रभाव था।

जिनवाणी के कुशल संगायक आचार्य जिनसेन थे।

आचार्य रविषेण

दिगम्बर कथा साहित्य में बहुत प्राचीन ग्रन्थ हैं। जिनमें प्रमुखतः रविषेण आचार्य द्वारा रचित पद्मपुराण ग्रंथ का भी स्थान महत्वपूर्ण है।

आपने अपने किसी संघ या गच्छ का कोई उल्लेख नहीं किया और न ही स्थानादि की ही चर्चा की है। परन्तु सेनान्त नाम से अनुमान होता है कि सम्भवतः सेन संघ के हों। इनकी गुरु परम्परा के पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकर, अर्हत्सेन और लक्ष्मणसेन होंगे, ऐसा जान पड़ता है। अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख इन्होंने इसी पद्मपुराण के १२ वें पर्व के १६ वें श्लोक के उत्तरार्ध में किया है।

ये किस प्रान्त के थे इनके माता पिता आदि कौन थे तथा इनका गार्हस्थ जीवन कैसा रहा? इन सब का पता नहीं है। ऐसा ज्ञात हुवा है कि भगवान महावीर के निर्वाण होने के १२०३ वर्ष ६ माह बीत जाने पर पद्ममुनि का चरित्र निबद्ध किया गया। इस प्रकार इनकी रचना ७३४ विक्रम सं० में पूर्ण हुई।

राम कथा भारतीय साहित्य में सबसे अधिक प्राचीन, व्यापक, आदरणीय और रोचक रही है। यदि हम प्राचीन संस्कृत प्राकृत साहित्य को इस दृष्टि से मापें तो सम्भवतः आधे से अधिक साहित्य किसी न किसी रूप में इसी कथा से सम्बद्ध, उद्भूत या प्रेरित पाये जावेंगे।

पद्म पुराण की रचना कर श्री रविषेणाचार्य ने जन जन का बहुत कल्याण किया है। महान आचार्य ने भारत भूमि को अलंकृत किया। सुदीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी ये प्रत्येक भारतीय की श्रद्धा के पात्र हैं। इसे आबाल-वृद्ध सभी लोग बड़ी श्रद्धा से पढ़ते हैं। बिरला ही ऐसा कोई मन्दिर होगा जहाँ पद्मपुराण की प्रति न हो।

भारतीय संस्कृति में— —दिगम्बर साधुओं का स्थान

[ब्र० धर्मचन्द शास्त्री, संघस्थ]

भारत में मुनि-परम्परा और ऋषि परम्परा ये दो परम्पराएँ प्राचीन काल से रही हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम परम्परा का सम्बन्ध आत्मधर्मी दिगम्बर मुनिवरों से रहा है। श्रमण मुनि मोक्ष मार्ग के उपदेष्टा रहे हैं, द्वितीय का सम्बन्ध लोक धर्म से रहा है।

भारत वर्ष का क्रमवद्ध इतिहास भगवान आदिनाथ (वृषभनाथ) से प्रारम्भ हुवा तथा जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर धर्म तीर्थ के अन्तिम प्रवर्तक थे।

भारतीय संस्कृति में आर्हत संस्कृति का प्रमुख स्थान है। इसके दर्शन, सिद्धान्त, धर्म और उनके प्रवर्तक तीर्थंकरों तथा उनकी परम्परा का महत्वपूर्ण अवदान है। आदि तीर्थंकर से लेकर अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर और उनके उत्तर-वर्ती आचार्यों, मुनियों ने अध्यात्म विद्या का सदा उपदेश दिया और भारत की चेतना को जागृत एवं ऊर्ध्वमुखी रखा है। आत्मा से परमात्मा की ओर ले जाने तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए उन्होंने अहिंसा, अनिन्द्रियनिग्रह, त्याग और समाधि (आत्मलीनता) का स्वयं आचरण किया और पश्चात् उनका दूसरों को उपदेश दिया। सम्भवतः इसी से वे अध्यात्म-शिक्षा दाता और श्रमण संस्कृति के प्रतिष्ठाता कहे गये हैं। आज भी उनका मार्ग दर्शन निष्कलुष एवं उपादेय माना जाता है।

जैन धर्म अपनी मौलिकता और वैज्ञानिकता के कारण अपने अस्तित्व को एक शाश्वत धर्म के रूप में अभिव्यक्ति दे रहा है। भगवान महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके बाद आचार्यों की एक बहुत लम्बी शृंखला कड़ी से कड़ी जोड़ती रही है। सब आचार्य एक समान वर्चस्व वाले नहीं हो सकते। नदी की धारा में जैसे क्षीणता और व्यापकता आती है वैसे ही आचार्य-परम्परा में उतार-चढ़ाव आता रहा है। फिर भी उस शृंखला की अविच्छिन्नता अपने आपमें एक ऐतिहासिक मूल्य है।

अध्यात्म प्रधान भारत :

भारत अध्यात्म की उर्वर भूमि है, यहां के कण-कण में आत्म निर्भर का मधुर संगीत है, तत्वदर्शन का रस है और धर्म का अंकुरण है। यहां की मिट्टी ने ऐसे नररत्नों को प्रसव दिया है जो अध्यात्म के मूर्तरूप थे। उनकी हृदय की हर धड़कन अध्यात्म की धड़कन थी। उनके ऊर्ध्वमुखी चिन्तन ने जीवन को समझने का विशद दृष्टिकोण दिया। भोग में त्याग की बात कही और कमल-दल की भाँति निर्लेप जीवन जीने की कला सिखाई।

तीर्थंकर परम्परा :

दिगम्बर जैन परम्परा में तीर्थंकरों का स्थान सर्वोपरि होता है। तीर्थंकर सूर्य की भाँति ज्ञान रश्मियों से प्रकाशमान और अपने युग के अनन्य प्रतिनिधि होते हैं। चौवीस तीर्थंकरों की क्रम व्यवस्था के अनुत्यूत होते हुए भी उनका विराट व्यक्तित्व किसी तीर्थंकर-विशेष की परम्परा के साथ आबद्ध नहीं होता, मानवता के उपकारी तीर्थंकर होते हैं।

परम्परा प्रवहमान सरिता का प्रवाह है। उसमें हर वर्तमान क्षण अतीत का आभारी होता है। वह ज्ञान-विज्ञान, कला, सभ्यता, संस्कृति, जीवन-पद्धति आदि गुणों को अतीत से प्राप्त करता है और स्व-स्वीकृत एवं सहजात गुण सत्व को भविष्य के चरणों में समर्पण कर अतीत में समाहित हो जाता है।

भगवान महावीर की विशाल संघ सम्पदा को जैनाचार्यों ने सम्भाला। जैनाचार्य विराट् व्यक्तित्व एव उदात्त कृतित्व के धनी थे। वे सूक्ष्म चिन्तक एवं सत्यद्रष्टा थे। धैर्य, औदार्य और गम्भीरता उनके जीवन के विशेष गुण थे। सहस्रों सहस्रों श्रुत सम्पन्न मुनियों को कील लेने वाला विकराल काल का कोई भी क्रूर आघात एवं किसी भी वात्याचक्र का तीव्र प्रहार उनके मनोवल की जलती मशाल को न मिटा सका, न बुझा सका और न उसकी विराट ज्योति को मंद कर सका। प्रसन्नचेत्ता जैनाचार्यों की वृत्ति मंदराचल की तरह अचल रही। जैनाचार्यों की ज्ञानाराधना विलक्षण थी। भगवान महावीर की वाणी को जीवन सूत्र बनाकर ज्ञान विज्ञान का गम्भीर अध्ययन किया। दर्शन के महासागर में उन्होंने गहरी डुवकियाँ लगाई, फलतः जैनाचार्य दिग्गज विद्वान बने। संसार का विरल विषय ही होगा जो उनकी प्रतिभा से अछूता रहा हो। ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन, न्याय, साहित्य, संगीत, इतिहास, गणित, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष शास्त्र आदि विभिन्न विषयों के ज्ञाता, अन्वेष्ठा एवं अनुसंधाता जैनाचार्य थे।

भारतीय ग्रन्थ राशि के जैनाचार्य पाठक ही नहीं स्वयं निर्माता थे। उनकी लेखनी अविरल गति से चली। संस्कृत, प्राकृत, शेरसैनी, अपभ्रंश आदि से युक्त विशाल साहित्य का निर्माण कर उन्होंने सरस्वती के भंडार को भरा। उनका साहित्य स्तवन प्रधान एवं गीत प्रधान ही नहीं था। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग से युक्त काव्य, महाकाव्य, विशालकाय पुराणों, सिद्धान्त ग्रन्थों की संरचना की।

दर्शन क्षेत्र में जैनाचार्यों ने गम्भीर दार्शनिक दृष्टियाँ प्रदान की एवं योग के सम्बन्ध में नवीन व्याख्याएं भी प्रस्तुत की, न्याय शास्त्र के स्वयं प्रस्थापक बन कर्म सिद्धान्त शास्त्रों की महान टीकाएं की ऐसे जैन शासन का महान साहित्य जैनाचार्यों की मौखिक सूझ-बूझ एवं उनके अनवरत परिश्रम का परिणाम है।

परमागम प्रवीण बुद्धि उजागर भवाब्धि पतवार कर्मनिष्ठ, करुणा, कुवेर एवं जन-जन हितैषी जैनाचार्यों की असाधारण योग्यता से एवं उनकी दूरगामी पद यात्राओं से समस्त जन समुदाय को प्रभावित किया, शासन शक्तियों ने उनका भारी सम्मान किया। विविध मानद उपाधियों से जैनाचार्य विभूषित किये गए, पर किसी प्रकार की पदप्रतिष्ठा उन्हें दिग्भ्रान्त न कर सकी। पूर्व विवेक के साथ उन्होंने महावीर स्वामी की परम्परा को संरक्षण एवं विस्तार दिया, आज भी दिगम्बर जैनाचार्यों के समुज्ज्वल एवं समुन्नत इतिहास के सामने प्रबुद्ध व्यक्ति नतमस्तक हो जाते हैं।

सागर गहरा होता है, ऊँचा नहीं, शैल उन्नत होता है, गहरा नहीं, अतः इन्हें मापा जा सकता है, पर उभय विशेषताओं से समन्वित होने के कारण महापुरुषों का जीवन अमाप्य होता है।

वर्तमान में भारत भूमि पर महावीर का सम्प्रदाय ही गौरव के साथ मस्तक ऊँचा किए है। यह श्रेय विशिष्ट क्षमताओं और प्रतिभाओं को है। भगवान महावीर की उत्तरवर्ती आचार्य परम्परा में प्रखर प्रतिभा सम्पन्न तेजस्वी, वर्चस्वी, मनस्वी, यशस्वी अनेक आचार्य हुए।

जैन शासन की श्री वृद्धि में उनका अनुदान अनुपम है। वे त्याग-तपस्या के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, यम नियम संयम के लिये भव्यजनों के उद्बोधनार्थ अर्थागम प्रदान किया। प्राणोत्सर्ग

करके भी श्रुत सम्पदा को क्रूर दुष्काल में विनिष्ट होने से बचाया । उन्होंने दूरगामिनी पंद यात्रा से अध्यात्म को विस्तार दिया और भगवान महावीर के भवसंतापहारी सन्देश को जन जन तक पहुंचाया ।

भगवान महावीर से अब तक के आचार्यों का युग महान गरिमा मय है । जो इस युग में अध्यात्मक योगियों की धारा भी गतिशील बनी हुई है ।

जैनाचार्यों का समाज व राष्ट्र को योगदान

[डॉ० सुशीलचन्द्र जैन, मैनपुरी]

दशों दिशाओं में प्राची दिशा का एक विशेष ही महत्व है जिसका नाम लेते ही हृदय कमल प्रस्फुटित होने लगना है। उसी प्राची दिशा का मेरा देश भारत। भारत का नाम लेते ही याद आती है एक महत्वपूर्ण संस्कृति की जिसमें श्रमरण संस्कृति का विशेष योगदान रहा है। संस्कृति के साथ जुड़े श्रमण शब्द का अर्थ ही है, "साधु" नग्न दिगम्बर साधु जिसके लिये आचार्य समन्तभद्र ने कहा—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहा।
ज्ञानध्यान तपो शक्तिस तपस्वी स प्रशस्यते॥"

अनादि काल से चली आ रही श्रमण संस्कृति का इस काल में प्रवर्धन हुआ, आदिनाथ से वीर पर्यन्त २४ तीर्थंकरों व असंख्य श्रमणों द्वारा और तत्पश्चात् पंचमकाल में इस संस्कृति को प्रवाहित करने का पूर्ण उत्तरदायित्व दिगम्बर मुनिराजों पर आगया। भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् आचार्यों ने ज्ञान व चारित्र के पहियों से इस रथ को आगे बढ़ाया। वर्त्तमान समय में इस रथ के सारथी वने आ० शांतिसागरजी और उन्हीं की परम्परा में पट्टाधीश आचार्य धर्मसागरजी के अभिवंदन ग्रन्थ समारोह के विमोचन अवसर पर आचार्य वंदना दिवस के रूप में इन समस्त आचार्यों के प्रति हम अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं।

जीव उद्धार :—

जैनधर्म का प्रथम लक्ष्य रहा है जीव उद्धार।

"कला बहत्तर पुरुष की तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका एक जीव उद्धार॥"

जीव उद्धार के लिये किये जाने वाले सतत् प्रयत्नों का नाम ही जैनधर्म है और इस जीव उद्धार की परम्परा में भी आत्म हित, स्वजीव उद्धार प्रमुख है, उसके वाद पर की बात आती है। आचार्यों ने कहा है—

आदहिदं कादव्वं जं सक्कइ परहिदं च कादव्वं।
आदहिदपरहिदादो आदहिदं सुट्ठ-कादव्वं ।। भगवती आराधना

इसी भावना के फलस्वरूप आचार्यो का मूल उद्देश्य आत्मकल्याण ही रहा है पर जिस प्रकार सूर्य के निकलते ही अंधकार नष्ट हो जाता है, कमल खिल जाते हैं, उसी प्रकार जीवन में भी गति आ जाती है। क्या सूर्य इन सबको करने की भावना से उगता है, नहीं न ! सूर्य को तोसमय पर उदय होना ही है उससे जो भी कार्य हो जावे; इसी भाँति दिगम्बर गुरु भी ऐसे ही सूर्य हैं जिनके दर्शन से मिथ्यात्व अंधकार नष्ट हो ज्ञान का प्रकाश फैलता है, लोगों का हृदय कमल खिल उठता है, सोते समाज व राष्ट्र में एक नवीन चेतना स्फूर्ति आ जाती है। गुरु तो स्वयं आत्महित में लगा होता है यह तो अनायास ही हो जाता है। हां कहीं गुरु को पुरुषार्थ पूर्वक भी कार्य करना पड़ता है।

श्रमण संस्कृति का परिवर्धन :

पंचम काल के अंत तक दिगम्वरत्व को जीवित रखने का कार्य इन्हीं दिगम्बर गुरुओं के माध्यम से ही होना है। इस प्रकार श्रमण संस्कृति को गतिशील बनाये रखने का भार प्रमुखतया हमारे आचार्यो पर ही है। धर्मोपदेश के द्वारा गृहस्थों को गृहस्थ धर्म के प्रति अपने कर्तव्य का बोध कराते हुए समाज व राष्ट्र के प्रति स्व कर्तव्यका वोध इन्हीं आचार्यो के द्वारा ही होता है। आचार्यो के माध्यम से ही धर्म प्रभावना का महत् कार्य सम्पन्न होता है जो एक विद्वान् से कदापि संभव नहीं है। जिसप्रकार रिले रेस में एक धावक अपनी दौड़ पूरी करके आगे बढ़ा देता है उसी प्रकार एक आचार्य दीक्षित होने के बाद श्रमण संस्कृति का परिवर्धन करते हुये इस ज्योति को जलाये रखने का भार अपने शिष्यों पर सौंप कर इस परम्परा को बनाये रखता है। धर्म प्रभावना का महत्वपूर्ण कार्य जो इन दिगम्बर गुरुओं के माध्यम से हुआ वह अविस्मरणीय है।

पुरातत्व तीर्थो का विकास :

जैनाचार्यो के माध्यम से देश की पुरातत्व संस्कृति को बहुत वल मिला है। विश्व का ८ वां आश्चर्य श्रवण वेलगोल में वाहुवली की मूर्ति नेमिचन्द्र आचार्य की प्रेरणा से ही बनी।

ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं और वर्तमान में भी इस पुरातत्व की वृद्धि उसी प्रकार हो रही है। धर्मस्थल, फिरोजाबाद की विशालकाय मूर्तियों में एलाचार्य मुनिश्री विद्यानंदजी की जो प्रेरणा रही है वह पुरातत्व के इतिहास में एक विशिष्ट अध्याय बनेगा। चातुर्मास के समय जिन स्थानों पर ये संत रहे, रहते हैं वहाँ कितनी प्रगति होती है किसी से छिपी नहीं। मध्यभारत के पिछड़े तीर्थों के विकास में ज्ञान संत आचार्य विद्यासागरजी का योगदान तीर्थों के विकास में एक महत्वपूर्ण मील के पत्थर के रूप में स्मरणीय रहेगा। इन आचार्यों की प्रेरणा से ही कला का अत्यधिक विकास हुआ और श्रावकों ने कलाकारों का सम्मान किया।

समन्वय एवं सर्वधर्मसमभाव

सर्वधर्मसमभाव में मुनिवरों का विशेष योगदान रहा है। किसी भी धर्म का कोई भी छोटा या बड़ा व्यक्ति मुनि के लिये समान है। मुनिवरों के उपदेश मानव मात्र के लिये हैं अपनी सभाओं में विभिन्न धर्मावलम्बियों को एकत्र कर एलाचार्य श्री ने जैनधर्म को विश्वधर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर अनोखा कार्य किया है। जैनाचार्यों के जीवन, तप, त्याग से ही प्रभावित होकर अन्य अनेक मतावलंबी जैन धर्म के प्रति आकृष्ट हुये। राधाकृष्णनजी की जैनधर्म पर रुचि इतिहासकारों के लिये भी प्रेरणा स्रोत बनीं। श्री लालबहादुर शास्त्रीजी ने आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से आशीर्वाद प्राप्त किया और सर्व श्रेष्ठ प्रधानमन्त्री के रूप में छवि छोड़ गये। समन्वय का साक्षात् उपदेश देते हुये 'मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता है' की बात कह कर कुल के स्थान पर कर्म को महत्व देकर वर्ग विभेद को समाप्त करने की ओर प्रकाश डाला गया।

हृदय परिवर्तन :

गजकुमार सुकुमाल सुकौशल भवसेन भावसेन जैसे अनेकों उदाहरण आगम में भरे पड़े हैं, जहां मुनिवरों की प्रेरणा से उस व्यक्ति का हृदय ही परिवर्तित हो गया, जीवन ही बदल गया। अतीत ही नहीं वर्तमान में भी यह कार्य सतत् जारी है, इसके साक्षात् उदाहरण हैं आचार्य धर्मसागरजी जिन्होंने पट्टाचार्य पदासीन होते ही उसी दिन ११ दीक्षायें दीं और आज तक लगभग ५० व्यक्ति अपना जीवन परिवर्तित कर धर्मसागर से धर्म के सागर में डुबकी लगा चुके हैं।

पर्यटन, सारे देश को एक सूत्र में बांधना :

जैन दर्शन में तीर्थयात्रा का विशेष महत्व रहा है। ये यात्रायें प्रायः आचार्यों के संघ सान्निध्य में होती रही हैं। वर्तमान में प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री शांतिसागरजी की संघ यात्रा ऐतिहासिक

धरोहर रही है, पर्यटन देश के वर्तमान उद्योगों में प्रमुख है। जैन मतानुयायी तीर्थयात्रा के रूप में इसमें महत्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं। भगवान बाहुबली महामस्तकाभिषेक के साथ ही वहां लगभग ५० मुनिवरों का एकत्र होना इस समय की महत्वपूर्ण घटना थी और लगभग १० लाख लोगों ने इस अवसर पर तीर्थयात्रा की या पर्यटन करके इस उद्योग को बहुत सहायता दी। जहाँ भी कोई जैन मुनि पहुंचता है या चातुर्मास करता है हजारों की संख्या में लोग वहां पहुंचते ही रहते हैं जिससे हर वर्ग को लाभ होता है। अपने पैदल विहार द्वारा तथा साथ में चातुर्विध संघ के साथ रहने से उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक देश को एक सूत्र में बांधने, एक दूसरे की संस्कृति से परिचित करने विभिन्न भाषाओं का विकास करने में इन आचार्यो के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्य हुआ है।

नैतिकता व सदाचार को प्रोत्साहन :

मुनिवरों ने अपने धर्मोपदेश द्वारा मानव मात्र को नैतिकता, सदाचार, चारित्र, तप, त्याग, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अचौर्य का उपदेश देते हुये भारतीय जन-जीवन में उत्थान का महत्वपूर्ण कार्य किया। जो व्यक्ति वास्तव में इन गुरुओं के समीप जाता है उनका जीवन निश्चय ही बदल जाता है। सप्त व्यसनों के त्याग द्वारा मद्यपान, मांस सेवन, व्यभिचार आदि पर बड़ा ही, प्रभावी अंकुश जैनाचार्यो ने लगाया। पैदल विहार के कारण अधिकाधिक लोगों से संपर्क होने से बहुत लोगों पर इनका प्रभाव पड़ता है। "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" का चरितार्थ दिगम्बर मुनिवरों द्वारा ही हुआ है।

साहित्य क्षेत्र में :

साहित्य क्षेत्र में तो जैनाचार्यों नें महत् कार्य न केवल स्वयं ही किया अपितु इनके सान्निध्य में भी बहुत साहित्य रचा गया। यह गोष्ठी का अलग विषय है ही अतः अन्य विद्वद्जन इस पर प्रकाश डालेंगे।

अपरिग्रह व समाजवाद :

जैनधर्म में परिग्रह को पापों में गिना गया है। मुनि के लिये महाव्रत व गृहस्थ के लिये अणुव्रत के रूप में इसका उपदेश देते हुये प्रत्येक गृहस्थ को अपने परिग्रह की सीमा निर्धारित करने का उपदेश है "परिग्रह परिमाण व्रत" से। अगर वास्तव में व्यक्ति इसे अंगीकार करे तो आज जिन विभिन्न वादों—समाजवाद, लेनिनवाद, मार्क्सवाद आदि का उद्देश्य इसी एक अपरिग्रह से ही पूरा हो सकता है। मुनिवर समस्त परिग्रह को त्याग कर दिखा देते हैं कि इनका त्याग करना भी सरल है फिर परिमाण करने में क्यों डरते हो।

इस प्रकार अनेकानेक क्षेत्रों में, जीवन के हर क्षेत्र में जैनाचार्यों का अमूल्य योगदान रहा है, जीवन परिवर्तित करके व्यक्ति का सुधार व्यक्ति का समूह ही समाज है और समाजों का समूह ही राष्ट्र।

इन सब परिप्रेक्ष्य में आचार्यों का महत् योगदान रहा है। यदि कहीं कमी दिखती है तो वह हममें है। यदि हमारा रेडियो या टी० वी० खराब हो तो स्टेशन से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम उसमें नहीं दिखते या नहीं सुनाई पड़ते। ऐसे में हम स्टेशन का दोष न देकर अपने सैट की कमी ही निकालने का प्रयत्न करते हैं। आज के गृहस्थों में यदि अपेक्षित सुधार नहीं दिखता तो दोष आचार्यों का नहीं हमारा है, व्यक्ति का है, राष्ट्र के नागरिकों का है, जो हम उनके सान्निध्य में जाते नहीं, जाते हैं तो सुनते नहीं और सुनते हैं तो जीवन में उतारते नहीं। वर्षा हो रही हो व पात्र उल्टा रखा हो तो झील तो भर जावेगी पर वर्तन कदापि न भरेगा। आज हमारा पात्र ही उल्टा है। धर्मामृत की वर्षा तो निरन्तर हो रही है पात्र जिनके सीधे हैं वह भर रहे हैं, ऐसे शताधिक मुनिवर आज स्वयं का कल्याण करते हुये, बदल रहे हैं समाज को, राष्ट्र को।

ऐसे इन श्रमणों को हमारा शत-शत वंदन नमन अर्चन।

दिगम्बर मुनिराज स्तवनांजलि !

भव्य दिगम्बर मुनिपुंगव तुम, वंदूँ नित ही तुमको मैं;
मन, वच, काया विशुद्ध करके करूँ नमोऽस्तु सदैव मैं ।।

जातरूप तुम नग्न, दिगम्बर, योगी, ममताशून्य सदा;
हिंसादूर, अकच्छ, अकिंचन, अनगारी, अह्रीक सदा ।।

तुम निर्ग्रन्थ, अपरिग्रही नित, अतिथि, अचेलक, आर्य, गणी;
तुम शृंगार रहित, जिनलिंगी, अनागार, निश्चेल, मुनि ।।

पाणिपात्र, भिक्षुक, माहण, यति, वातवसन, निष्परिग्रही;
विवसन, संयत, थविर, श्रमण तुम, एकाकी संन्यस्थ सही ।।

महाव्रती, नितवंद्य, निरम्बर, ऋषि, गुरु, अलोभ, सुसंयमी;
साधु, तपस्वी, परीषहसही, गृहसंत्यक्त, मलिनदेही ।।

निष्कषायमन, मलाच्छन्नतन, सत्यमहाव्रतधारी तुम;
महा अहिंसा-अस्तेयांकित, महा ब्रह्मचारी हो तुम ।।

त्यक्तपरिग्रह, धर्म-शुक्ल-सद्ध्यानपरायण, तप-तत्पर;
पंचसमितिरत, पंचेन्द्रियजित, क्षपणक तुम कौपीनोत्तर ।।

सामायिकरत, ज्ञान-ध्यान-तप-मग्न सदा, जिनस्तुतिगायक;
स्नानविवर्जित, अदन्तधावक, पृथिवीशायी, स्थितिभोजक ।।

एक भक्त, सर्वेन्द्रियजेता, कायोत्सर्गी, जिनवन्दक;
हेयविवर्जित, उपादेयरत, विवेक-आभूषण धारक ।।

सर्वसंगत्यागी, आशागत, विषयवशातीत, समबुद्धि;
शान्ति-क्षान्तिके महान सागर; आशारहित महाउदधि ।।

स्वात्मसुखान्वित, परोपकारक, कर्मशत्रु, निस्संग महा;
महाधैर्यधारी, निर्भय नित, स्वतंत्र, समतामूर्ति अहा ।।

दैन्यदूर, नित कर्म-सुभंजक, धर्मरत्न, संयम प्रतिमा;
अनुपमचरित्र, चारित्रांकित, त्यागभावकी बहु गरिमा ।।

क्षमामूर्ति, स्वात्मोपयोगरत, सौम्यमूर्ति, अतिपूज्यचरण;
स्वैराचारविरोधक सविता, परमाराध्य, सदैवशरण ।।

महाअहिंसक, संसृतितारक, निजात्मचरमोन्नतिसाधक;
विरागमूर्ति, ऋजुबालकवत्, कर्मशत्रुके परिहारक ।।

धैर्यपुत्र तुम, क्षमातनय तुम, शान्तिपति हे सत्यसखा;
दयाभ्रात तुम, जगद्बन्धु तुम, महासंयमी सर्वसखा ।।

ज्ञानाहारी, धर्मविहारी, अष्टविंशति गुणधारी;
हितोपदेशक, मुक्तिसुदर्शक, जीवमात्रके हितकारी ।।

जैनधर्मके सूर्यराज तुम, त्रिलोकके तुम सत्यगुरू;
मुक्तिमार्ग के पथिक श्रेष्ठ तुम, सदापूज्य हे जगद्गुरु ।।

नमोऽस्तु गुरु हे ! नमोऽस्तु मुनि हे ! नमोऽस्तु जिनपथसच्चालक;
जय हो ! जय हो ! ! जय हो ! ! ! संतत जैनधर्मके सद्धारक ।।

मुनियों का जीवन

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज' जावरा

मुनियों के आदर्श जीवन के विषय में, यदि हम पंडित प्रवर दौलतरामजी से परामर्श चाहें तो वे अपनी अमरकृति 'छहढ़ाला' से उद्धरण प्रस्तुत कर कहेंगे—

"अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता वरन।"

इससे यह तो सहज ही ज्ञात किया जा सकता है कि मुनि जन समभाव के साधक होते हैं। वे वाहरी-भीतरी आडम्बरों या परिग्रहों से रहित निर्ग्रन्थ होते हैं। मुनियों के उदात्त जीवन के उत्कृष्ट शब्द चित्र प्रस्तुत करने वाली अनेकों कहानियाँ जैन वाङ्मय में पढ़ने के लिये मिलती हैं। उनमें से कुछ की एक क्षीण झलक देने का प्रयत्न आगे की लघु कथाओं में होगा; जिससे जिज्ञासु जानेंगे कि मुनि मान-अपमान से परे होते हैं और अध्ययन के इच्छुक समझेंगे कि जिनवाणी का मूलाधार भी मुनि (अर्हंत) ही हैं।

(१) जब चौबेजी छब्बेजी बनने गये।

बढ़ते हुये भस्मक रोग को देखकर और प्रसव के उपरान्त विकल नागिनी सी क्षुधा को बढ़ते हुये देखकर समन्तभद्र ने अपने गुरुदेव से कहा—"अब तो आप मुझे समाधिमरण के लिये आज्ञा दीजिये। धर्म-रहित जीवन मुझे प्रिय नहीं लगता और मुनियों सा क्षुधा परीषह जीतना अब संभव नहीं रहा।" "सो तो ठीक है।" आचार्य बोले—"तुम्हारे द्वारा निकट भविष्य में अतीव धर्म प्रभावना होगी। अतएव मैं सल्लेखना के लिये स्वीकृति नहीं दूंगा। पर तुम किसी भी प्रकार अपने रोग का दमन करो, यही मुझे इष्ट है कि जैन धर्म आगे बढ़े।"

समन्तभद्र ने गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य किया। वे कांची से पुण्ड्र और दशपुर होते हुये वाराणसी में आ गये। वहाँ के राजा शिवकोटि को प्रभावित करके, पक्के शैव प्रमाणित होकर, शिवजी के स्थान में स्वयं ही भोग लगाकर भस्मक व्याधि का निवारण करने लगे। पर जब एक दिन कपट की कलई खुल ही गई तो शिवकोटि ने क्रोधित होकर शिवजी को नमस्कार करने के लिये कहा।

समन्तभद्र ने समझाया कि मेरा नमस्कार सहन करने की शक्ति आपके शिवजी में नहीं है। शिवकोटि ने कहा—'तुम तो शिव को नमस्कार करो, भले मूर्ति रहे या न रहे।'

दूसरे दिन, शासन देवी अम्बिका की प्रेरणा से—समन्तभद्र ने स्वयंभुवा भूत हितेन भूतले·······"से आरंभ कर चौबीसों तीर्थकरों की प्रार्थना की। जैसे ही उन्होंने आठवें तीर्थकर चन्द्रप्रभु भगवान को प्रणाम करने के लिये सिर झुकाया तो शिवजी की मूर्त्ति फटी और चन्द्रप्रभु भगवान की प्रतिमा सबने देखी।

शिवकोटि ने भी समन्तभद्र का वास्तविक परिचय और उनकी विद्वत्ता जान ली तो अपनी लज्जा और ग्लानि मिटाने के लिये उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली। कहा जाता है कि बहुत दिनों तक काशी में फटे महादेव का मन्दिर प्रसिद्ध रहा है।

(२) जब एक मुनि गृहस्थ बना

"प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर तो बखूबी एक ही व्यक्ति दे सकता है और वह है माघ।" एक आचार्य ने मर्माहत होकर कहा—"पर अब तो उसे भी मुनि से गृहस्थ बने ग्यारह वर्ष हो गये, इसलिये शायद कहीं वह भी न भूल गया हो।" "आचार्य श्री दुखी न हों। हम लोग माघ के पास जाकर ही अपनी शंका का समाधान कर लेंगे। वे मुनि से गृहस्थ भले बन गये हों पर उनकी बुद्धि और विवेक का तो हमें अभी भी बड़ा भरोसा है।"

यह कहकर जब जिज्ञासु शिक्षार्थी माघ के पास आये तब वे अपने परिवार सहित गोत्र कर्म के प्रतिनिधि कुम्भकार बने घड़ों का निर्माण कर रहे थे। जिज्ञासुओं ने माघ के सम्मुख अपनी शंका रखी और माघ ने वह समाधान दिया कि वे भी निरुत्तर और सहमत हो गये।

जिज्ञासु चले गये और माघ के हृदय में हलचल कर गये। माघ ने विचारा—"कहाँ तो लोग मुझे आज भी माघ मुनि के रूप में स्मरण करते हैं और कहाँ मैं माघ मुनि पथ-पद-भ्रष्ट होकर माघ गृहस्थ बन बैठा हूं। फिर मोह की जंजीर बाँधे—संसार के उसी जाल में फँस गया हूं जिससे निकलने के लिये मनमार मुनि बना था, जिनदीक्षा ली थी, अब तो लगभग ग्यारह वर्ष गृहस्थ बने हो गये·······खैर, अब मैं अपनी भूल को ऐसा सुधारूंगा कि लोग युग युगों तक मुझे न भुला सकेंगे।

माघ फिर मुनि हुये। तय किया, जब ग्यारह गृहस्थ मुनि बना लूंगा तब ही आहार ग्रहण करूंगा। जब तक वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ग्यारह गृहस्थों को मुनि न बना लेते तब तक

भूखे-प्यासे ही लौटते। उनके मोही भक्त थोड़े विचलित होते पर वे नहीं। वे तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके ही रहते।

माघ का महीना आकर, प्रतिवर्ष मुझसे माघ मुनि की कथा कह जाता है और उनकी पवित्र स्मृति हृदय में पुनः सजीव कर जाता है और तब ही मैं मन्दबुद्धि विचार नहीं पाता—'आज मेरे समाज में माघ मुनि कहाँ?'

(३) जब देव वैद्य बन कर आया

जब सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने भी सनत्कुमार मुनिराज के चारित्र की प्रशंसा की तो मदनकेतु देव ने उनकी परीक्षा लेने की ठानी। दूसरे ही क्षण, वह उस वन में आ गया, जहाँ सनत्कुमार मुनिराज आत्मसाधना कर रहे थे। "मैं वह वैद्य हूं, जो भयंकर से भयंकर और असाध्य से असाध्य रोगों को क्षण भर में दूर कर सकता हूं।" मदन केतु ने जोर जोर से चिल्लाते हुये कहा। सनत्कुमार मुनिराज ने उसे बुला लिया और कहा—"बड़ा अच्छा हुआ, जो अनायास आप इधर आ निकले, मुझ प्यासे को तो सरोवर ही मिल गया" उन्होंने अपनी बात को बढ़ाते हुये कहा—'मैं एक भयंकर रोग से पीड़ित हूं, अगर आप उसे दूर कर देंगे तो मैं जन्म जन्मान्तर तक भी उपकार नहीं भूलूंगा।"

"आप विश्वास रखिये" देव ने कहा—"मैं आपके सुन्दर शरीर को गलाने वाले कुष्ट रोग को पलक मारते ही दूर कर दूंगा। सिर्फ आपकी आज्ञा की देर है।"

"नहीं! नहीं!! आप नहीं समझे। कुष्ट रोग का तो मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है। कष्ट तो मुझे संसार में परिभ्रमण का है। अगर आप मेरा यह रोग दूर कर दें तो मैं आपको तीर्थंकर ही समझ लूं और श्रद्धा से नमस्कार कर लूं।"

"नहीं! मुनिराज!!" मदन केतु ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा—"इस जन्म-जरा-मरण जैसे विषम रोग की दवा मेरे पास नहीं है, वह तो आप जैसे निरीह मुनियों के ही पास है।"

(४) जब चारों ओर से तलवारें उठीं।

"तुम वाद-विवाद में विजयी हुये। यह तो अच्छी बात है पर तुम्हें अधर्मात्मा मन्त्रियों से तत्वचर्चा में उलझना नहीं था। अब भी अगर तुम संघ की सुरक्षा चाहो तो उसी स्थान पर जाकर आत्म साधना करो, जहाँ मन्त्रियों से तुम्हारा विवाद हुआ था।" आचार्य अकम्पन ने श्रुतसागर से कहा। "जैसी आचार्य की आज्ञा।" श्रुतसागर ने बिना नुक्ता चीनी किये कहा—"मैं भले रहूं या न रहूं पर मेरा संघ अवश्य सुरक्षित रहे।"

श्रुतसागर, अपने विवाद के स्थल पर आकर साधना करने लगे। धीरे धीरे दिन बीता और रात आगई। सन्ध्या की सुन्दरी ने तारे विखेर दिये।

"आज जिस नंगे साधु ने राजा के सम्मुख अपना अपमान किया था, उसे संघ सहित मारकर अपने अपमान का बदला न लिया तो अपना मन्त्रित्व निष्फल है।" चारों मन्त्रियों ने विचार किया।

वलि, वृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि—सुदृढ़ सुमेरु सा विचार कर हाथों में चमचमाती तलवारें लेकर निकल पड़े और वहीं आ गये, जहाँ श्रुतसागर ध्यान कर रहे थे। एक क्षण ठहर कर उन्होंने सोचा—"असली शत्रु तो यही है, पहले इसे ही समाप्त करें। इसके संघ वालों को फिर देखा जायेगा।"

चारों मन्त्रियों ने एक साथ श्रुतसागर पर प्रहार करना चाहा। पर यह क्या? उनके तलवार वाले हाथ ज्यों के त्यों उठे के उठे ही रह गये। अब वे आगे-पीछे भी नहीं होते थे। मन्त्री इस अप्रत्याशित घटना को देखकर विस्मित थे।

धीरे धीरे रात भी वीती। प्रातःकाल होते ही सूर्य के प्रकाश सो यह खबर भी नगर में फैल गई कि चारों मन्त्रियों ने मुनि को मारने की कोशिश की। श्रीवर्मा ने भी आकर देखा और चारों ही मन्त्रियों को नगर से वाहर निकाल दिया।

लोगों ने कहा—"यह है सत्ता का सदुपयोग और धर्म का फल पुण्य।"

(५) जव छुरी द्वारा कूँख ही चीरी जाने लगी।

जव मुनि नागदत्त वन में चलते चलते चोरों के अड्डे के पास पहुंच गये तो वे घवड़ाये। उन्हें पकड़कर वे अपने प्रमुख सूरदत्त के समीप ले गये। प्रमुख ने कहा—"इन्हें छोड़ दो; इनसे कुछ भी अपना अनिष्ट नहीं होगा।"

थोड़ी देर वाद—नागदत्ता (मुनि की मां) अपनी वेटी सहित आई। वह कौशाम्बी जाकर, जिनदत्त के सुपुत्र धनपाल से अपनी वेटी का विवाह करने जा रही थी; अतएव उसके पास काफी वस्त्राभूषण भी थे। अपनी जान और माल की सुरक्षा की दृष्टि से वह कुछ रुकी। उसने मुनि नागदत्त को प्रणाम करने के वाद पूछा—"प्रभो! आगे का मार्ग स्वच्छ और सुरक्षित तो है?"

प्रत्युत्तर में मुनि मौन रहे। उन्होंने हाँ ना कुछ भी नहीं कहा। नागदत्ता ने इसे ही उनकी सहमति समझी। मुनि साधना करते ही रहे।

आगे जाने पर, नागदत्ता को चोरों ने पकड़ लिया और वस्त्राभूषण तथा विवाह की अन्य सामग्री के साथ उसकी वेटी को भी पकड़ लिया।

"यह है दिगम्बर मुनि की निष्काम साधना और वीतरागता की ज्वलंत भावना।" सूरदत्त ने साथियों से कहा—"हमने मुनि को पीड़ित किया, तब भी उन्होंने कुछ नहीं कहा और इस स्त्री ने उनकी प्रार्थना-की–भक्ति की तब भी कुछ नहीं कहा। उनकी दृष्टि में शत्रु-मित्र सब ही बराबर हैं।"

तब ही नागदत्ता ने सूरदत्त से कहा—"भाई! जरा तुम अपनी छुरी तो मुझे दे दो ताकि मैं अपनी कूँख को चीरकर ही कुछ शान्ति पालूं। तुम जिस मुनि की इतनी प्रशंसा कर रहे हो, वह और कोई नहीं, मेरा बेटा ही है, अगर वह अणु सा भी संकेत कर देता तो मेरी यह दुर्दशा नहीं होती।"

"माँ, तुम हमें क्षमा करो।" सूरदत्त ने कहा—"हमें नहीं मालूम था कि तुम उन महर्षि की मां हो। तुम्हारे सभी वस्त्राभूषण ले लो और विवाह की सामग्री तथा वेटी को भी, अन्यथा नरक में भी हमारी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।"

नागदत्ता ने गई वस्तुयें और बेटी को पाकर अपना सौभाग्य समझा तथा सम्मान पाकर अपने वेटे की पुनः वन्दना की।

(६) जब वाप ने बेटे को मारने की आज्ञा दी।

मगध सुन्दरी के प्रेम के आगे विद्युत् चोर झुक गया। वह श्रीकीर्त्ति श्रेष्ठि के महल की ओर वढ़ा। मार्ग में विचारा—"जब स्त्री के क्षेत्र में साधक तक पराजित होते हैं, तब फिर मैं तो चोर हूं और फिर मेरी तो हार भी जीत अभी होगी।"

चोर ने चोरी तो कर ली पर वह हार की कान्ति को नहीं छिपा सका, जो उसके साथ चाँदनी सी चमक रही थी। सिपाहियों ने उससे रुकने को कहा पर वह भागा, उतना भागा, जितना भी उससे भागते बना, जब और भागते न बना तो श्मशान में वारिषेण के पास हार को फेंक दिया और अदृश्य होकर ही अपने लिये निरापद समझा पर उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी।

सिपाहियों ने हार को ले लिया और वारिषेण को पकड़ लिया तथा सम्राट श्रेणिक के सम्मुख उपस्थित कर दिया। वारिषेण बन्दी वना चुप रहा।

"तुम्हारा यही धर्मात्मापन है? तुम यही श्मशान में ध्यान करते हो? मैं तो तुम्हें युवराज वनाना चाहता था पर अब तुम्हें यमराज को सौपूंगा।"

श्रेणिक ने क्रोधित होकर कहा—"ले जाओ इसे और तलवार के एक ही वार से काम तमाम कर दो। भगवान! ऐसा नालायक बेटा किसी को न दें।"

"जल्लादों ने जो खोंचकर जोर से अपनी तलवारें वारिषेण की गर्दन पर मारीं तो वे फूल की मालायें बन गईं।" यह वात जब राजा श्रेणिक ने सुनी तो वे वारिषेण से क्षमा मांगने लगे। पछतावा तो उन्हें पहले से ही था। "नहीं! पिताजी!! आपने जो किया, वह ठीक ही था, अगर आप मुझे सजा न देते तो प्रजा के प्रतिनिधि आपको अन्यायी कहते।" वारिषेण ने कहा। श्रेणिक को लगा कि आज उनका मान-मन्दिर ढह गया और तब ही विद्युत् चोर ने कहा—"अपराधी ये नहीं बल्कि मैं हूं। राजन्! मैं विश्वास दिलाता हूं कि अब कभी अपराध नहीं करूंगा।"

आदिमुनि भगवान ऋषभदेव के प्रति

(लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज', जावरा)

ऋषभदेव किसका न देवता, जैनधर्म न किसका है ?
जो उदार चेता वह कहता; देव-धर्म यह सबका है ।।

सत्य प्रथम श्री ऋषभदेव ने, अपनी सबकी आँखें खोलीं ।
जीना सिखलाया दिये कला; असि-मसि-कृषि-शिल्प-वनिज बोली ।।
भोग भूमि सा कर्म भूमि पर, भी अपना अधिकार बताया ।
ध्वंस झंझटों को कर सत्वर; स्वावलम्ब सत्कार सिखाया ।।

कल्पलता अन्तर्तृष्णा से, होता संघर्ष न किसका है ?
जो उदार चेता वह कहता, यह संघर्ष सभी का है ।।

तपो भूमि की आत्म साधना में त्याग भोग से बढ़ देखा ।
कार्यों के उत्तुंग शिखर पर चढ़ जीवन को उज्ज्वल लेखा ।।
जीवन दिया श्रमण संस्कृति को आचरणों को दी वाणी ।
अनुपम ज्ञानामृत वितरण कर विकसित की दश दिशि में वाणी ।।

आध्यात्मिकता सत्य समीक्षा, यह अधिकार न किसका है ?
जो उदारचेता वह कहता, यह अधिकार सभी का है ।।

सत्य दिगम्बर औ श्वेताम्बर मात्र न इसके अधिकारी हैं ।
बल्कि बौद्ध-हिन्दू ईसाई मुस्लिम खग-पशु नर-नारी हैं ।।
जीवन है कुन्दन सा जिसका, वह क्या आव ताव देखेगा ?
चरित चन्द्र सा निर्मल जिसका, वह क्या भेद भाव लेखेगा ?

सत्य सनातन का दर्शन, स्थाई उत्कर्ष न किसका है ?
जो उदार चेता वह कहता, यह तो भाई सभीका है ।।

नाभिराय का तनय एक वह, जिसकी प्रतिकृति पुजती जन से ।
मरुदेवी का लाल नेक वह, जिसको जनता सुनती मन से ।।
यह असीम अपनी सीमा में, जब देता सबको वांछित वर ।
अति उदार बन सरित मेघ सा, पुलकित होता अवनो अम्बर ।।

पिता भरत औ बाहुबली का, ब्राह्मी तथा सुन्दरी का ।
धर्म-पिता को देख देखकर, बढ़ता हर्ष न किसका है ??
जो उदार चेता वह कहता, बढ़ता हर्ष सभी का है ।

हे आदिनाथ ! ब्रह्मा बनकर, तुमने युग का निर्माण किया ।
हे ऋषभदेव ! विष्णू बनकर, तुमने जग जन का त्राण किया ।।
हे आदिदेव ! हो महादेव, तुमने जग का कल्याण किया ।
हे विश्ववन्द्य ! हो कला-स्रोत, तुमसे सच जग म्रियमाण जिया ।।

रचना की आदर्श अनोखी, रक्षा का भाव न किसका है ?
जो उदारचेता वह कहता, यह तो भाव सभी का है ।।

वीतरागता की विराटता तूं लेख रहा निज अन्तर में ।
सर्वदर्शिता की समानता तूं देख रहा निज मन्तर में ।।
हितोपदेशिता की महानता पहिचान रहा तूं मति-मन में ।
विश्वबन्धुता की स्वतन्त्रता अनुमान रहा तूं मति-मन में ।।

तेरे पावन चरणों पर कर का स्पर्श न किसका है ?
जो उदार चेता वह कहता, कर स्पर्श सभी का है ।।

सागर सी लेकर मर्यादा, गम्भीर बना तूं अन्तर में ।
दीप-शिखा सी लेकर ज्वाला, उन्नत सु धीर तूं मन्तर में ।।
प्रकृति जगत का रम्यदेव बन, बैठा निश्चल दिक् अम्बर में ।
जीवन-दर्शन ले सार सना, अनुभव करता तन प्रस्तर में ।।

तूं रवि सा कवि का अमर काव्य, सुनने का चाव न किसका है ?
जो उदार चेता वह कहता, सुनने का भाव सभी का है ।।

आचार्य श्री शांतिसागरस्तुतिः
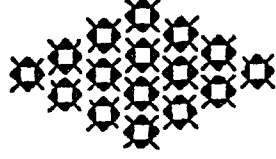
यः श्री सर्वगुणाकरोऽस्ति विबुधः यं साधुवर्यं भजे,
येनैवात्र सुदर्शित मुनिपथः यस्मै नमः शान्तये ।
यस्माज्ज्ञानतपोधनं प्रमुदितं यस्य प्रभा शान्तिदा,
यस्मिन् ध्यानसुखाब्धिरस्ति स सुधीः शान्तिमुनिः पातु नः ॥

यस्य ज्ञान तपोबलं त्वनुपमं स्तुत्यो मुनीथैः सदा,
यो नागादिकृतोपसर्गविजयी चारित्रसूर्यो महान् ।
ये नैवात्र हि भारते च बहवः सत्त्वाः समुद्बोधिताः,
सोऽयं काममदादिभोगविरतः सूरीश्वरः पातु नः ॥

१६-२० वीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य

चारित्र चक्रवर्ती, तपस्वी सन्त

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित साधुवृन्द

आ० शांतिसागरजी जीवन परिचय
आ० वीरसागरजी महाराज
मुनि चन्द्रसागरजी महाराज
आ० नमिसागरजी महाराज
मुनि नेमिसागरजी महाराज
आ० कुन्थुसागरजी महाराज
आ० पायसागरजी महाराज
मुनि मल्लिसागरजी महाराज
मुनि चन्द्रकीर्तिजी महाराज
मुनि वर्द्धमानसागरजी (दक्षिण)
आ० सुधर्मसागरजी महाराज
मुनि धर्मसागरजी महाराज
मुनि नेमसागरजी महाराज
क्षुल्लक चन्द्रकीर्तिजी महाराज
क्षुल्लक धर्मसागरजी महाराज
आर्यिका विद्यावती माताजी
आर्यिका चन्द्रवती माताजी
आर्यिका सिद्धमती माताजी
क्षुल्लिका गुणमती माताजी
क्षुल्लिका अजितमती माताजी

१६-२० वीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य

आध्यात्मिक ज्योतिर्धर चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य १०८ महर्षि

आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज
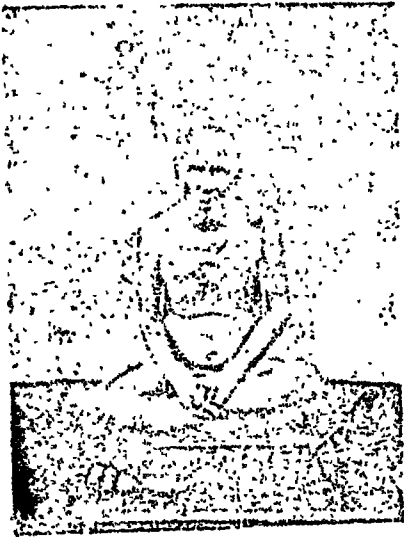
हमारा भारत एक आध्यात्म प्रधान देश है। अपनी आध्यात्मिक संस्कृति के कारण ही यह जगत में सम्मानित, प्रतिष्ठित और श्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है। रत्न प्रसवा भारत-भूमि ने विश्व को महान् तेजस्वी, देदीप्यमान और वन्दनीय-नमस्करणीय अनेक नर-रत्न दिए हैं। आज से लगभग २५८० वर्ष पहले इस पुण्य भूमि पर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ। उन्होंने अपनी उत्कृष्ट आत्म साधना तथा तप और त्याग के प्रभाव से दुनियां को हिंसा के पतन-मार्ग में प्रवृत्त होने से बचाया तथा अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत का सम्यक् मार्ग दिखाकर जीने की-जीवनयापना की सही विधि बताई।

तीर्थंकर महावीर की परम्परा में उन्हीं के पद चिन्हों का अनुकरण करने वाले भगवान कुन्दकुन्द, जिनसेन, समन्तभद्र, विद्यानन्दि, नेमिचन्द्र, अकलंकदेव, पद्मनन्दी आदि अनेक महान् विद्वान् सच्चरित्र तपस्वी साधु सन्त हुए जिन्होंने अपने-अपने युग में महावीर प्रभु के आध्यात्मिक सन्देश और सच्चे धर्म का प्रसार किया।

इसी आदर्श दिगम्बर साधु सन्त परम्परा में वर्तमान युग में जो तपस्वी सन्त हुए उनमें आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज एक ऐसे प्रमुख साधुश्रेष्ठ तपस्वीरत्न हुए हैं जिनकी अगाध-विद्वत्ता, कठोरतपश्चर्या, प्रगाढ़ धर्मश्रद्धा, आदर्शचारित्र और अनुपमत्याग ने धर्म की यथार्थ ज्योति प्रज्ज्वलित की। आपने लुप्तप्राय, शिथिलाचारग्रस्त मुनि परम्परा का पुनरुद्धार कर उसे जीवन्त किया, वह परम्परा अनवरतरूप से अद्यावधि प्रवहमान है।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर बेलगांव जिले के चिकोड़ी तालुका में भोजग्राम है। भोज-ग्राम के समीप लगभग चार मील की दूरी पर विद्यमान येलुगल गांव में नाना के घर आषाढ़ कृष्णा ६ संवत् १९२९ सन् १८७२ बुधवार की रात्रि को जन्म हुआ। ज्योतिषी से जन्म पत्रिका बनवाने पर उसने बताया था कि यह बालक अत्यन्त धार्मिक होगा, जगत भर में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा और संसार के मायाजाल से दूर रहेगा।

पिता भीमगौड़ा और माता सत्यवती के ये तीसरे पुत्र थे इसीसे मानो प्रकृति ने इन्हें रत्नत्रय और तृतीय रत्न सम्यक्‌चरित्र का अनुपम आराधक बनाया। आदिगौडा और देवगौडा नामके आपके दो बड़े भाई थे। कुमगौडा आपके अनुज थे। बहिन का नाम कृष्णा बाई था। इनके शान्त भावों के अनुरूप इन्हें सातगौड़ा कहते थे। गौड़ा शब्द भूमिपति-पाटिल का द्योतक है।

आचार्य श्री के जीवन पर उनके माता-पिता की धार्मिकता का बड़ा प्रभाव था। माता सत्यवती अत्यधिक धार्मिक थी। अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करती तथा साधुओं को आहार देती थीं। बहुत शान्त तथा सरल प्रकृति की थीं। व्रताचरण, परोपकार, धर्मध्यान उनके जीवन के मुख्य अंग थे। पिता भीमगौडा प्रभावशाली, बलवान, रूपवान प्रतिभाशाली ऊँचे पूरे क्षत्रिय थे। उन्होंने १६ वर्ष पर्यन्त एक बार ही भोजन पानी के नियम का निर्वाह किया था। १६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत रखा था। उन जैसा धर्माराधना पूर्वक सावधानी सहित समाधिमरण होना कठिन है। आचार्य महाराज के बड़े भाई देवगौडा पाटिल ने भी दिगम्बर साधुराज का पद ग्रहण किया था। उन्हें वर्धमानसागर महाराज कहते थे। छोटे भाई कुमगौडा भी दीक्षा लेने का विचार रखते थे पर असमय में ही वे काल कवलित हो गए। ऐसे धर्मनिष्ठ परिवार में चरित्रनायक ने जन्म लिया। सातगौडा बचपन से ही निवृत्ति की ओर बढ़ते गए। बच्चों के समान गन्दे खेलों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। वे व्यर्थ की बात नहीं करते थे। पूछने पर संक्षेप में उत्तर देते थे। लौकिक आमोद-प्रमोद से सदा दूर रहते थे, धार्मिक उत्सवों में जाते थे। घर में बहिन कृष्णा बाई की शादी में तथा छोटे भाई कुमगौडा की शादी में सम्मिलित नहीं हुए थे। वे वीतराग प्रवृत्ति वाले थे। बाल्यकाल से ही वे शान्ति के सागर थे।

"मुनियों पर उनकी बड़ी भक्ति थी। वे अपने कन्धे पर एक मुनिराज को बैठाकर वेद-गंगा तथा दूध गंगा नदियों के संगम के पार ले जाते थे। वे कपड़े की दुकान पर बैठते थे, मुख्य कार्य छोटा भाई करता था। छोटे भाई की अनुपस्थिति में वे ग्राहकों से कहते—"कपड़ा लेना है तो मन से चुन लो, अपने हाथ से नाप कर फाड़ लो और बही में लिख दो।" इस प्रकार उनकी निस्पृहता थी। वे कुटुम्ब के झंझटों में नहीं पड़ते थे। उनका आत्मबल अद्भुत था। उन्होंने माता-पिता की खूब

सेवा की और उनका समाधिमरण कराया किन्तु उनके स्वर्गारोहण के बाद भी उनके नेत्रों में अश्रु नहीं थे। उनका मनोबल महान् था, वे वैराग्यमूर्ति थे।

जब उनके विवाह का प्रसंग आया तो उन्होंने कहा "मी ब्रह्मचारी राहणार" मैं ब्रह्मचारी रहूंगा। इन शब्दों को सुनते ही माता-पिता के नेत्रों में अश्रु आ गए। पिताश्री ने कहा—'माझा जन्म तुम्हो सार्थककेला" बेटे। तुमने हमारा जीवन और जन्म कृतार्थ कर दिया।

"महाराज के परिणाम छोटी अवस्था में ही मुनिदीक्षा लेने के थे परन्तु माता-पिता ने आग्रह किया कि बेटा। जब तक हमारा जीवन है तब तक तुम दीक्षा न लेकर धर्मसाधन करो। इसलिये वे घर में रहे।

माता पिता के स्वर्गारोहण के बाद ४१ वर्ष की अवस्था में आपने मुनिदीक्षा के लिये दिगम्बर साधु देवप्पा स्वामी के पास जाकर याचना की, विनय की। गुरुदेव ने दिगम्बर मुनि की दीक्षा न देकर इनके कल्याणार्थ विक्रम संवत् १९७२ जेठ सुदी तेरस सन् १९१५ को इन्हें पहले क्षुल्लक दीक्षा दी। नाम शान्तिसागर रखा था। इन्होंने कोगनोली गांव में क्षुल्लकरूप में प्रथम चातुर्मास किया। उस समय ये तपसाधना में विशेष संलग्न थे। कोगनोली में मन्दिर बेणी में वे ध्यान हेतु बैठे थे कि एक छह हाथ लम्बा सर्प मन्दिर में घुसा और उसने यहां-वहां घूमने के बाद महाराज के शरीर पर चढ़ना प्रारम्भ किया और वह उनके शरीर पर लिपट गया। वहां मन्दिर में दीपक जलाने को उपाध्याय घुसा और उसकी निगाह सर्प पर पड़ी तो वो घबरा कर भागा। इस समाचार को सुनकर बहुत लोग वहां एकत्र हो गए। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे, क्योंकि गड़बड़ी के कारण सर्प कहीं काट देगा तो अनर्थ हो जाएगा। बहुत समय के बाद सर्प धीरे-धीरे उतरा और बाहर चला गया। प्रतीत होता है कि वह यमदूत महाराज की परीक्षा लेने आया था कि इनमें धैर्य, निर्भीकता तथा स्थिरता कितनी है। इस परीक्षा में महाराज सुस्वर्ण निकले। इन समाचारों से सर्वत्र महाराज की महिमा का प्रसार हो गया।

यों भी महाराजश्री के जीवन में अनेक उपसर्ग आए। परन्तु 'यथा नाम तथा गुण" आपने सबको समभाव से सहन किया। धौलपुर राजा खेडा में तो छिद्रि ब्राह्मण गुण्डों सहित नंगी तलवारें लेकर मारने आ गया था, उसको भी आपने क्षमा प्रदान की। सर्पराज से भी अनेक बार साक्षात्कार हुआ। शेर से भी मुलाकात हुई। एक बार असंख्य चीटियों ने आपके शरीर को अपना भोज्य बनाया फिर भी आप सामायिक में लीन रहे। एक चींटी आपके पुरुष लिंग से चिपट कर काटती रही, खून बहता रहा परन्तु आप ध्यान से विचलित नहीं हुए।

जब आप क्षुल्लक अवस्था में थे उस समय आपको कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, क्योंकि तब मुनिचर्या भी शिथिलताओं से परिपूर्ण थी। साधु आहार के लिए उपाध्याय द्वारा पूर्व निश्चित गृह में जाते थे। मार्ग में एक चादर लपेट कर जाते थे। गृहस्थ के घर जाकर स्नान कर दिगम्बर हो आहार करते थे। घण्टा बजता रहता था ताकि अन्तराय का शब्द भी सुनाई न पड़े और भोजन में किसी तरह का विघ्न न आवे।

महाराज ने यह प्रक्रिया नहीं अपनाई, क्योंकि साधु को अनुदिष्ट आहार लेना चाहिए अतः वे निमंत्रित घर में न जाकर चर्या को निकलते। कभी-कभी आठ दिन पर्यन्त भोजन नहीं मिलने से उपवास हो जाता था। शनैः शनैः लोगों को पता चला कि साधु को आमंत्रण स्वीकार न कर वहाँ आहार लेना चाहिए जहाँ सुयोग वास हो तब शास्त्रानुसार चौके लगाकर आहार की व्यवस्था की गई। उनके जीवन से मुनियों को भी प्रकाश प्राप्त हुआ था।

नेमिनाथ भगवान के निर्वाणस्थान गिरनार पर्वत की वन्दना के पश्चात् इसकी स्थायी स्मृतिरूप आपने ऐलक दीक्षा ग्रहण कर ली। ऐलक रूप में आपने नसलापुर में चातुर्मास किया वहां से चलकर ऐनापुर ग्राम में रहे। उस समय यरनाल में पंचकल्याणक महोत्सव होने वाला था वहाँ जिनेन्द्र भगवान के दीक्षा कल्याणक दिवस पर आपने अपने गुरुदेव देवेन्द्रकीर्ति स्वामी से मुनि दीक्षा ग्रहण की। अब तो ये साधुराज ध्यान, तत्वचिन्तन, अहिंसापूर्ण जीवन में निरन्तर प्रगति करने लगे। इससे इनमें अद्भुत आत्मशक्तियों का नव जागरण होने लगा। बहिर्जगत् से कम सम्पर्क रख अन्तर्जगत् में स्थिर रहने वाले इन महात्मा के ज्ञान में भविष्य की अनेक घटनाओं का प्रतिबिम्ब पहले से आ जाया करता था। ऐसे अनेक प्रसंगों पर आपके कथन अक्षरशः सही सिद्ध हुए हैं। सन्त पुरुष अन्तरात्मा की आवाज को महत्व दिया करते हैं। कालिदास ने कहा है—"सतां हि सन्देहपदेषु वृत्तिषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः"।

महाराज कठोर तप रूप अग्नि में अपनी आत्मा को शुद्ध बना रहे थे। जब वे कुम्भोज बाहुबली में संघ सहित विराजमान थे तो उदीयमान पुण्यशाली सेठ पूनमचन्द घासीलाल जवेरी, बम्बई के मन में इच्छा जगी कि यदि गुरुदेव शिखरजी की यात्रार्थ संघ सहित चलें, तो हम सब प्रकार की व्यवस्था करेंगे और संघ की सेवा भी करते रहेंगे। उन्होंने गुरुदेव के सम्मुख अपनी इच्छा व्यक्त की। सुयोग की बात, महाराज ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। सबको अपार आनन्द हुआ। सन् १९२७ के कार्तिक माह के अन्त में अष्टाह्निका के बाद संघ का विहार हुआ। लगभग दो सौ व्यक्ति संघ में थे।

समडोली में नेमिसागरजी की ऐलक दीक्षा व वीरसागरजी की मुनिदीक्षा के अवसर पर समस्त संघ ने महाराज को "आचार्य पद" से अलंकृत कर अपने को कृतार्थ किया। अपूर्व प्रभावना करता हुआ संघ सन् १९२८ के फाल्गुन में शिखरजी पहुंच गया। वहां अष्टाह्निका महापर्व, पंचकल्याणक महोत्सव वैभव सहित सम्पन्न हुआ। लाखों जैनों ने एकत्र होकर महान् पुण्य संचय किया। संघ ने समस्त उत्तर भारत में विहार करके जीवों का अवर्णनीय कल्याण किया। महाराज के पुण्य से कहीं भी संघ के विहार में किसी तरह की बाधा नहीं आई।

गजपंथा में चातुर्मास के बाद पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। उस अवसर पर उपस्थित धार्मिक संघ ने महाराज को "चारित्र चक्रवर्ती" पद से अलंकृत किया। विशुद्ध श्रद्धा, महान् ज्ञान और श्रेष्ठ संयम की समाराधना द्वारा महाराजश्री की आत्मा अपूर्व हो रही थी। सम्यक् चारित्र रूप चक्र का प्रवर्तन कर महाराज ने चारित्र चक्रवर्ती का ही तो काम किया था। महाराज कहते थे—

"सम्यक्त्व और चारित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है, तब एक की ही प्रशंसा क्यों की जाती है? सम्यक्त्व की प्राप्ति देव के अधीन है, चारित्र पुरुषार्थ के आधीन है।"

संयम यदि सम्यक्त्व सहित है तो वह मोक्ष का कारण है तथा यदि वह सम्यक्त्व रहित है तो वह नरकादि दुर्गतियों से जीव को बचाता है अतः जब तक काललब्धि आदि साधन सामग्री नहीं प्राप्त हुई है तब तक भी संयम की शरण लेना हितकारी है। सदाचरण रूप प्रवृत्ति कभी भी पतन का कारण नहीं होगी। व्रताचरण के द्वारा समलंकृत जीव देवगति में जाकर महाविदेह में विद्यमान सीमन्धर आदि तीर्थंकरों के समवसरण में पहुंच सकता है तथा उनकी दिव्यध्वनि सुनकर मिथ्यात्व परिणति का त्याग करके वह सम्यक्त्व द्वारा आत्मा का उद्धार कर सकता है।

आचार्यश्री का प्राण जिनागम था। उसके विरुद्ध वे एक भी बात न कहते थे और न करते थे। समाज में प्रचलित आगम विपरीत प्रवृत्तियों के विरुद्ध उपदेश देने में आचार्यश्री को तनिक भी संकोच नहीं होता था। जन समुदाय के विरोध की उन्हें तनिक परवाह नहीं थी। आचार्य श्री अपने तपः पुनीत जीवन तथा उपदेशों द्वारा जन साधारण का जितना कल्याण किया उतना हजारों उपदेशक तथा बड़े-बड़े राज्य शासन भी कानून द्वारा सम्पन्न नहीं कर सकते थे।

बम्बई सरकार ने हरिजनों के उद्धार के लिये एक हरिजन मन्दिर प्रवेश कानून सन् १९४७ में बनाया इसका आश्रय लेकर ४ अगस्त १९४८ को कुछ मेहतरों, चमारों ने जैन मन्दिर में जबरन घुसने का प्रयास किया। यह ज्ञातकर अनुभवी आचार्य महाराज की अन्तरात्मा ने उन्हें कड़ा

कदम उठाने की प्रेरणा की। महाराज ने प्रतिज्ञा कर ली कि "जब तक पूर्वोक्त बम्बई कानून से आई हुई विपत्ति जैन मन्दिरों से दूर नहीं होती है तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूंगा।" २८ नवम्बर सन् १९५० को अकलूज पहुंच कर सोलापुर के कलेक्टर ने रात्रि के समय दिगम्बर जैन मन्दिर का ताला तुड़वा कर उसके भीतर मेहतरों, चमारों का प्रवेश कराया। जैन बन्धुओं ने आपत्ति की तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमा चला। २४ जुलाई १९५१ को हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश श्री चागला ने फैसला सुनाया—"बम्बई कानून का लक्ष्य हरिजनों को सवर्ण हिन्दूओं के समान मंदिर प्रवेश का अधिकार देना है। जैनियों तथा हिन्दुओं में मौलिक बातों की भिन्नता है। उनके स्वतन्त्र अस्तित्व तथा उनके धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार शासित होने के अधिकारों के विषय में कोई विवाद नहीं है। अतः हम एडवोकेट जनरल की यह बात अस्वीकार करते हैं कि कानून का ध्येय जैनों तथा हिन्दुओं के भेदों को मिटा देना है।"

"दूसरी बात यह है कि यदि कोई हिन्दू इस कानून के बनने के पूर्व जैन मन्दिरों में अपने पूजा करने के अधिकार को सिद्ध कर सके, तो वही अधिकार हरिजन को भी प्राप्त हो सकेगा। अतः हमारी राय में प्रार्थियों का यह कथन मान्य है कि जहां तक इस सोलापुर जिले के जैन मन्दिर का प्रश्न है, हरिजनों को उसमें प्रविष्ट होने का कोई अधिकार नहीं है, यदि हिन्दुओं ने यह अधिकार कानून, रिवाज या परम्परा के द्वारा सिद्ध नहीं किया है।"

अपने अनुकूल निर्णय से बड़ा हर्ष हुआ। धर्मपक्ष की विजय हुई। इस सफलता का श्रेय पूज्य चारित्र चक्रवर्ती ऋषिराज को है जिन्होंने जिनशासन के अनुरागवश तीन वर्ष से अन्न छोड़ रखा था। आचार्य महाराज का अन्नाहार ११०५ दिनों के बाद हुआ था।

आचार्यश्री को श्रुतसंरक्षण की वड़ी चिन्ता थी। आपकी प्रेरणा से धवल महाधवल जयधवल रूप महान् शास्त्रों को ताम्रपत्र में उत्कीर्ण करवाया गया। तीनों सिद्धांत ग्रंथों के २६६४ ताम्रपत्रों का वजन लगभग ५० मन है। वे ग्रन्थ फलटण के जिनमन्दिर में रखे गए हैं। आचार्य महाराज की दृष्टि यह रही है कि शास्त्र द्वारा सम्यग्ज्ञान होता है अतः समर्थ व्यक्तियों को मन्दिरों में ग्रन्थ विना मूल्य भेंट करने चाहिये ताकि सार्वजनिक रूप से सब लाभ ले सकें। वे कहते थे "स्वाध्याय करो। यह स्वाध्याय परम तप है। शास्त्रदान महापुण्य है। इसमें वड़ी शक्ति है।"

जीवन पर्यंत निर्दोष मुनिचर्या का पालन करते हुए आचार्यश्री ने अगस्त १९५५ के तीसरे सप्ताह में कुन्थलगिरि पर यम सल्लेखना ले ली। २६ अगस्त शुक्रवार को उन्होंने वीरसागर महाराज को आचार्यपद प्रदान किया, उन्होंने कहा—"हम स्वयं के सन्तोष से अपने प्रथम निर्ग्रंथ शिष्य वीर-

सागर को आचार्य पद देते हैं।" वीरसागर महाराज को यह महत्त्वपूर्ण सन्देश भेजा था, "आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना, हमारी ही तरह समाधि धारण करना और सुयोग्य शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना, जिससे परम्परा बराबर चले।" वीरसागर महाराज उस समय खानियाँ जयपुर में विराजमान थे।

महाराजश्री की समाधि-स्थिति की आनन्दोपलब्धि की कल्पना आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान के जाल में फंसा गृहस्थ कैसे कर सकता है। महान् कुशल वीतराग योगीजन ही उस परमामृत की मधुरता को समझते हैं। महाराज उत्कृष्ट योगसाधना में संलग्न थे। घबराहट वेदना का लेश भी नहीं था। जैसे ३५ दिन बीते, ऐसे रात्रि भी व्यतीत हो गई। रविवार का दिन था। अमृतसिद्धि योग था। १८ सितम्बर भादो सुदी द्वितीया नभोमण्डल में सूर्य का आगमन हुआ, घड़ी में छह बजकर पचास मिनट हुए थे कि चारित्र चक्रवर्ती, साधु शिरोमणि, क्षपकराज ने स्वर्ग को प्रयाण किया।

आचार्य महाराज ने सल्लेखना के २६ वें दिन के अपने अमर संदेश में दिनांक ८-९-५५ को कहा था—

"सुख प्राप्ति जिसको करने की इच्छा हो उस जीव को हमारा आदेश है कि दर्शन मोहनीय कर्म का नाश करके सम्यक्त्व प्राप्त करो। चारित्रमोहनीय कर्म का नाश करो। संयम को धारण करो।"

संयम के बिना चारित्रमोहनीय कर्म का नाश नहीं होता। डरो मत, धारण करने में डरो मत। संयम धारण किए बिना सातवां गुणस्थान नहीं होता है। सातवें गुणस्थान के बिना आत्मानुभव नहीं होता है। आत्मानुभव के बिना कर्मों की निर्जरा नहीं होती। कर्मों की निर्जरा के बिना केवलज्ञान नहीं होता। ॐ सिद्धाय नमः।

सारांश : धर्मस्य मूलं दया। जिनधर्म का मूल क्या है? सत्य, अहिंसा। मुख से सभी सत्य, अहिंसा बोलते हैं, पालते नहीं। रसोई करो, भोजन करो—ऐसा कहने से क्या पेट भरेगा? क्रिया किए बिना, भोजन किए बिना पेट नहीं भरता है बाबा। इसलिये क्रिया करने की आवश्यकता है। क्रिया करनी चाहिये, तब अपना कार्य सिद्ध होता है।

सम्यक्त्व धारण करो, संयम धारण करो तब आपका कल्याण होगा, इसके बिना कल्याण नहीं होगा।

उन साधुराज के चरणों में कोटि-कोटि नमन।

*

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज
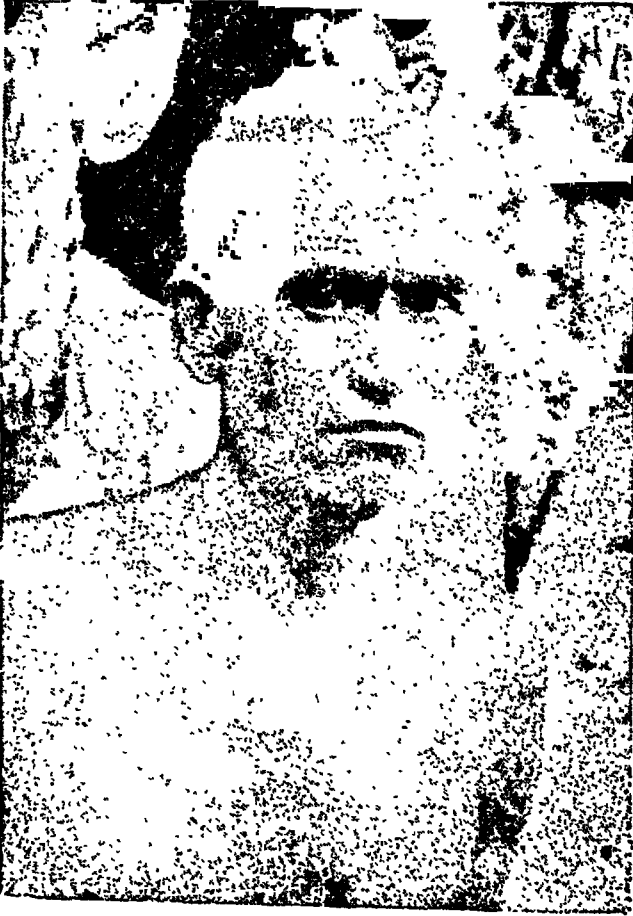
स: जातो येन जातेन, याति धर्म: समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते ।।

जीते तो सभी जीव हैं परन्तु जीना उन्हीं का सार्थक है जिनके जीवन से धर्म का उद्योत हो, धार्मिकता का विकास हो। आध्यात्मिक ज्योतिर्धर परम पूज्य १०८ चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागरजी महाराज के प्रधान शिष्य आचार्य वीरसागरजी महाराज ऐसे ही पुरुषों में से थे जिन्होंने न केवल अपना ही जीवन सार्थक बनाया अपितु कई भव्यजीव भी आपके निमित्त से 'स्व धर्म' की ओर मुड़े।

ऐसी इस दिव्य विभूति का जन्म निजाम प्रान्त हैदराबाद स्टेट औरंगाबाद (दक्षिण) जिले के अन्तर्गत वीरग्राम में खण्डेलवाल जातीय गंगवाल गोत्रीय श्रीमान् श्रेष्ठिवर रामसुखजी की धर्मपत्नी सौ० भाग्यवती की दक्षिण कुक्षि से विक्रम संवत् १९३२ आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा की प्रात: शुभ वेला में हुआ था। जब आप गर्भ में थे तब माता कुछ-न-कुछ शुभ स्वप्न देखा करती थी और उनकी भावना दान-पूजा, तीर्थवन्दनादि कार्यों को करने की रहा करती थी। माता-पिता ने बच्चे का नाम हीरालाल रखा। बालक के सुभग नाम कर्म के उदय के कारण उसे गोद में लेकर खिलाने वाला प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपार हर्ष का अनुभव करता था।

शैशवावस्था बीती, बचपन आया, पाठशाला में पढ़ने हेतु भेजे गए। अध्ययन की रुचि जाग्रत हुई पर घर के धार्मिक वातावरण ने आपको संस्कारवान बनने में बहुत सहायता की। देव-दर्शन किये बिना आप भोजनादि नहीं करते थे। १६ वर्ष की अवस्था में माता-पिता ने आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करना चाहा परन्तु आपने उसे स्वीकार नहीं किया। आप अपना अधिकांश समय जिनालय में पूजन, पाठ, स्वाध्यायादि में बिताते, उदासीन रूप से व्यापारादि भी करते, तभी आपके सौभाग्य से विहार करते हुए ऐलक श्री पन्नालालजी महाराज नांदगांव पधारे। ऐलक महाराज ने आपकी प्रवृत्ति देखकर आपको व्रत ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। आपने महाराज श्री से सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये। कुछ दिन ऐलक जी के साथ रहकर ही आपने धर्म-ध्यान साधा।

व्यापार में आपका मन नहीं लगा तो आपने अतिशय क्षेत्र कचनेर में समाज के बालकों में धार्मिक संस्कार डालने हेतु एक निःशुल्क पाठशाला चलाई, पाठशाला खूब चली। बड़े योग्य विद्यार्थी निकले जिन्होंने अपने गुरु के समान ही गौरव अर्जित किया। आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज और मुनि श्री सुमति सागरजी महाराज आपकी इसी पाठशाला के प्रारम्भिक शिष्य रहे थे। आपकी धार्मिक शिक्षा से प्रेरणा प्राप्त कर इसी प्रकार अनेक जीवों ने अपना कल्याण किया।

शनैः शनैः आपको पाठशाला से भी अरुचि होने लगी—मन किसी और साधना के लिए उत्सुक था, तभी आपके कानों में चा० च० आचार्य शान्तिसागरजी की कीर्त्ति पहुंची कि वे चारित्र-धारी भी हैं और उत्कृष्ट विद्वान् भी तब वे कोहनूर (महाराष्ट्र) में विराज रहे थे। यह जानकर आप (ब्र० हीरालालजी) तथा नांदगाँव निवासी सेठ श्री खुशालचन्दजी पहाड़े (पूज्य १०८ श्री चन्द्र-सागरजी महाराज) जिन्हें सातवीं प्रतिमा के व्रत चरितनायक ने ही दिए थे—दोनों कोहनूर पहुंचे। वहाँ महाराजश्री के दर्शन से दोनों को अपार हर्ष और सन्तोष हुआ। आप दोनों वहाँ तीन चार दिन रुककर महाराज की चर्या और अन्यगतिविधियों का निरीक्षण करते रहे परन्तु महाराज की चर्या में कोई त्रुटि निकाल पाने में दोनों ही असफल रहे।

अब तो दोनों ने सोचा कि ऐसे गुरुदेव को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहिए। यह अपना परम सौभाग्य एवं असीम पुण्योदय है कि ऐसे गुरु मिले। दोनों ब्रह्मचारी गुरुदेव के पास पहुंचे और उनसे अपने जैसा बनाने की प्रार्थना करने लगे। महाराज श्री ने दोनों का परिचय प्राप्त किया और कहा कि पहले आप दोनों अपने घरेलू और व्यापार सम्बन्धी कार्यों से निवृत्त हो जाओ, फिर दीक्षा की बात सोचेंगे। गुरु की आज्ञा पाकर दोनों अपने-अपने स्थानों को आए और शीघ्र ही गृहस्थ

सम्बन्धी अपने सारे उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर आचार्य श्री के पास वि० सं० १९७९ में कुम्भोज जा पहुंचे। वहाँ फिर दीक्षा की याचना की। महाराज ने दीक्षा की गुरु गम्भीरता और कठोरता के बारे में तथा उपसर्ग, परीषहों व व्रत उपवासों के सम्बन्ध में खूब कहकर इन्हें अपने संकल्प से विरत करना चाहा परन्तु ये दोनों डटे रहे। दोनों का दृढ़ संकल्प जानकर वि० सं० १९८० भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को दोनों को क्षुल्लक दीक्षा दी गई। ब्र० हीरालालजी अब महाराज वीरसागरजी हो गए और ब्र० खुशालचन्द्रजी चन्द्रसागर बन गए। दोनों ने वर्षो तक गुरु महाराज के सान्निध्य में रहकर ध्यानाध्ययन किया। कुछ ही समय बाद फिर क्षु० वीरसागरजी महाराज ने मुनिदीक्षा हेतु प्रार्थना की। आचार्य श्री ने इन्हें योग्य पात्र समझ कर ७ माह के बाद ही वि० सं० १९८१ में आश्विन शुक्ला ११ को समडोली नगर में कर्मोच्छेदिनी दैगम्बरी दीक्षा दे दी। दिगम्बर वेष धारण कर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा अपने मनुष्य जन्म को धन्य समझने लगे।

आचार्यश्री के साथ ही आपने सब सिद्धक्षेत्रों व अतिशय क्षेत्रों की वन्दना की। १२ चातुर्मास भी आपने साथ ही किए। आपकी गुरुभक्ति अनुपम थी।

संघ के विशाल हो जाने के कारण संघस्थ सर्व मुनियों को आचार्यश्री ने अलग-अलग विहार करने की आज्ञा दे दी। पूज्य वीरसागरजी और मुनि आदिसागरजी–दोनों को साथ रखकर स्वतन्त्र कर दिया। पृथक् होने के बाद आपका प्रथम वर्षा योग वि० सं० १९९३ में ईडर (वेथपुर) में हुआ। अनन्तर क्रमशः टांका टूंका, इन्दौर (२), कचनेर, कन्नड़, कारंजा, खातेगाँव, उज्जैन, झालरापाटन, रामगंज मण्डी, नैनवां, सवाई माधोपुर, नागौर, सुजानगढ़, फुलेरा, ईसरी, निवाई, टोडारायसिंह और जयपुर खानियां (३) में आपके चातुर्मास हुए। सर्वत्र अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। आपने अपने साधु जीवन में छह क्षुल्लक दीक्षाएँ, ८ क्षुल्लिका दीक्षाएँ, ११ आर्यिका दीक्षाएँ और ७ मुनिदीक्षाएँ प्रदान कर इन्हें धर्ममार्ग में योजित किया तथा परम्परा को गति प्रदान करते हुए आने वाली सन्तति के लिए आदर्श प्रस्तुत किया।

विक्रम सम्वत् २०१२ में जब महाराजश्री संघ सहित खानियाँ जयपुर में विराज रहे थे। तब आपके गुरुदेव चा० च० आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने कुन्थलगिरि में अपनी यम सल्लेखना के अवसर पर अपना आचार्य पद वहाँ उपस्थित विशाल जनसमुदाय के बीच आपको प्रदान करने की घोषणा की थी। आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त पीछी-कमण्डलु आपको जयपुर में एक विशाल आयोजन में विशाल चतुर्विधसंघ के समक्ष विधिपूर्वक अर्पित किए गए।

आपके सान्निध्य में सं० १९९७ में कचनेर में, सं० १९९८ में मांगी तुंगी में, सं० १९९९ में सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि में, सं० २००१ में पिड़ावा में पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ तथा सं० २०११ में

निवाई, में मानस्तम्भ प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न हुई । आचार्यश्री ने संघ सहित भारत के अनेक प्रान्तों—राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र—में निर्भीकतापूर्वक विहार किया । विहार में कभी किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आई । मुक्तागिरि से खातेगाँव का रास्ता बड़ा भयानक है, ऐसे मार्ग में भी महराज के तप के प्रभाव से कोई अप्रिय घटना नहीं घटी । आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर कई मांसाहारियों ने मांस भक्षण का त्याग किया, रात्रि भोजन का त्याग किया ।

महाराजश्री साधुचर्या के इतने पाबन्द थे कि अस्वस्थ दशा में भी कभी प्रमाद नहीं करते थे । अपस्मार और कम्पन रोगों ने भी आप पर आक्रमण किया किन्तु आपके तपोबल व पुण्यप्रभाव से वे शीघ्र दूर हो गए । नागौर में आपकी पीठ पर नारियल के आकार का एक भयानक फोड़ा हो गया. फिर भी महाराज ने अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी अपनी क्रियाओं में कभी प्रमाद नहीं किया ।

वि० सं० २०१४ का वर्षायोग जयपुर खानियाँ में था । आप अस्वस्थ तो नहीं थे किन्तु आपकी शारीरिक दुर्बलता बढ़ती जा रही थी कि अचानक ही आश्विन कृष्णा अमावस्या को प्रातः १० बजकर ५० मिनट पर आप इस लोक और नश्वर देह को छोड़कर सुरलोक को प्रयाण कर गए ।

आचार्यश्री परमदयालु, स्वाध्यायशील, तपस्वी, अध्यात्मयोगी, निस्पृह साधु शिरोमणि थे । आपके आदर्श जीवन ने हजारों को त्याग मार्ग की ओर उन्मुख किया ।

ऐसे परमपावन, आचार्यप्रवर के चरणों में सश्रद्ध नमन ।

मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज
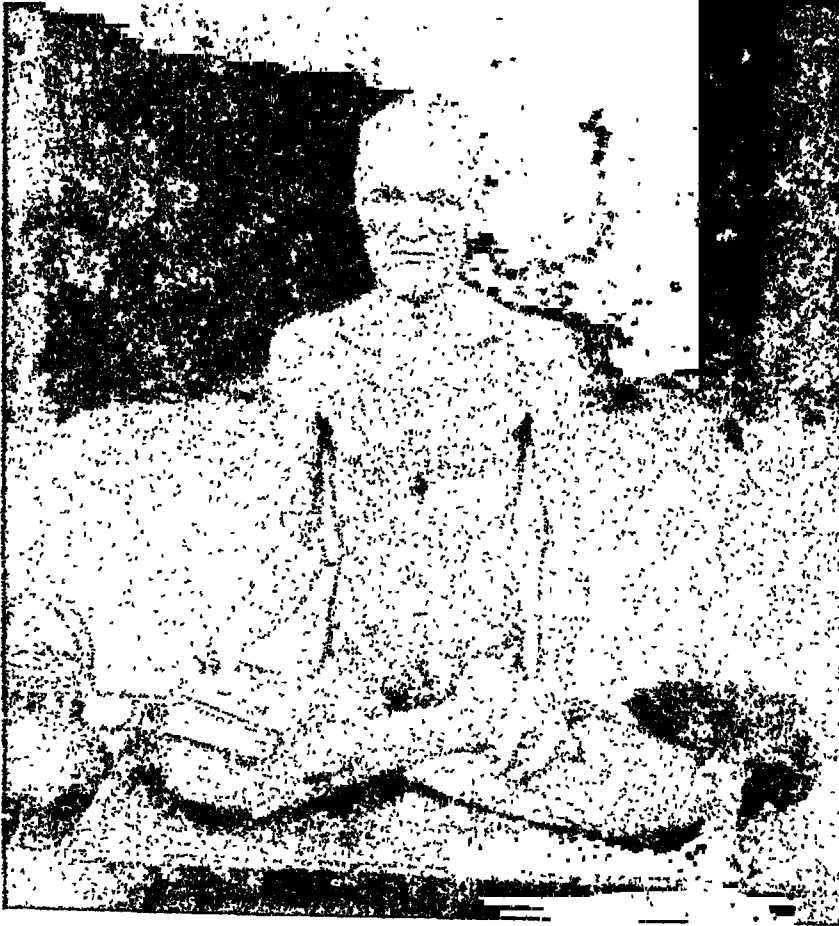
जन्म :

भारत देश के महाराष्ट्र प्रान्त में नांदगांव नामक एक नगर है। वहां खण्डेलवाल जाति में जैनधर्म परायण नथमल नामक श्रावकरत्न रहते थे। उनकी भार्या का नाम सीता था। वास्तव में, वह सीता ही थी अर्थात् शीलवती और पति की आज्ञानुसार चलने वाली थी। सेठ नथमलजी और सीता-वाई का सम्बन्ध जयकुमार सुलोचना के समान था। शालि-वाहन संवत् १६०५ विक्रम संवत् १६४० मिती माघ कृष्णा त्रयोदशी, शनिवार की रात्रि को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में सीतावाई की पवित्र कुक्षि से एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया। जिसकी रूप-राशि लखकर सूर्य चन्द्रमा भी लज्जित हुए। पुत्र के मुखदर्शन से माता को अपार हर्ष हुआ। पिता ने हर्षित होकर कुटुम्बी जनों को उपहार दिये। सभी पारिवारिक जन हर्षित थे। दसवें दिन वालक का नामकरण संस्कार किया गया। जन्म नक्षत्रानुसार तो जन्म नाम भूरामल, भीमसेन, आदि होना चाहिये था परन्तु पुत्रोत्पत्ति से माता पिता को अपूर्व खुशी हुई थी अतः उन्होंने वालक का नाम खुशालचन्द्र रखा हो ऐसा अनुमान लगाया जाता है। महाराजश्री के हस्तलिखित गुटके में जो जन्म तिथि

पौष कृष्णा त्रयोदशी शनिवार पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में रात्रि के समय लिखी गई है वह महाराष्ट्र देश की अपेक्षा है। मरुस्थलीय और महाराष्ट्र के कृष्ण पक्ष में एक माह का अन्तर है। शुक्ल पक्ष दोनों के समान हैं अतः माघ कृष्णा त्रयोदशी कहो या पौष कृष्णा त्रयोदशी, दोनों का एक ही अर्थ है।

बालक खुशालचन्द्र द्वितीया के चन्द्रवत वृद्धिगत हो रहा था। जिस प्रकार चन्द्रमा की वृद्धि से समुद्र वृद्धिगत होता है उसी प्रकार खुशालचन्द्र की वृद्धि से कुटुम्बी जनों का हर्ष रूपी समुद्र भी बढ़ रहा था।

विवाह : पत्नी वियोग : ब्रह्मचर्यव्रत :

अभी खुशालचन्द्र ८ वर्ष के भी नहीं हुए थे कि पूर्वोपार्जित पाप कर्म के उदय से पिता की छत्रछाया आपके सिर से उठ गई। पिताश्री के निधन से घर का सारा भार आपकी विधवा माताजी पर आ पड़ा। उस समय आपके बड़े भाई की उम्र २० वर्ष की थी। और छोटे भाई की चार वर्ष की। घर की परस्थिति नाजुक थी, ऐसी परिस्थिति में बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कैसे हो सकती है, इसे कोई भुक्त भोगी ही जान सकता है। वालक खुशालचन्द्र की बुद्धि तीक्ष्ण थी किन्तु शिक्षण का साधन नहीं होने के कारण उन्हें छठी कक्षा के बाद १४ वर्ष की अवस्था में ही अध्ययन छोड़कर व्यापार के लिए उद्यम करना पड़ा। पढ़ने की तीव्र इच्छा होते हुए भी पढ़ना छोड़ना पड़ा—ठीक ही है, कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। इस संसार में किसी की भी इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं। युवक खुशालचन्द्र की इच्छा क विपरीत कुटुम्बी जनों ने बीस वर्ष की अवस्था होने पर उसकी शादी कर दी। विवाह से आपको सन्तोष नहीं था, पत्नी रुग्ण रहती थी। डेढ साल बाद ही आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। आपके लिये मानो "रवात् नो रत्नवृष्टिः" आकाश से रत्नों की वर्षा ही हो गई, क्योंकि आपकी रुचि भोगों में नहीं थी। इस समय आप इक्कीस वर्ष के थे। अंग अंग में यौवन फूट रहा था, भाल देदीप्यमान था। तारुण्यश्री से आपका शरीर समलंकृत था अतएव कुटुम्बी-जन आपको दूसरे विवाह बंधन में बांधकर सासांरिक विषय भोगों में फँसाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु खुशालचन्द्र की आत्मा अब सब प्रकार से समर्थ थी, सांसारिक यातनाओं से भयभीत थी अतः आपने मकड़ी के समान अपने मुख की लार से अपना जाल बना कर और उसी में फँसकर जीवन गँवाने की चेष्टा नहीं की। आपने अनादिकालीन विषयवासनाओं पर विजय प्राप्त कर आत्मतत्त्व की उपलब्धि के लिए दुर्बलता के पोषक, दुःख और अशान्ति के कारण गृहवास को तिलाञ्जलि देकर दिगम्बर मुद्रा अंगीकार करने का विचार किया। अतः आपने ज्येष्ठ शुक्ला नवमी विक्रम संवत् १९६२ के दिन आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया। खिलते यौवन में ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर आपने अद्भुत एवं महान वीरता का काम किया।

पांचवीं प्रतिमा :

वीर संवत् २४४६ में श्री १०५ ऐलक पन्नालालजी का चातुर्मास नांदगांव में हुआ तब आपने आषाढ़ शुक्ला दशमी के दिन तीसरी सामायिक प्रतिमा धारण की। श्री ऐलक महाराज के प्रसाद से आपकी विरक्ति प्रतिदिन बढ़ती गई। भाद्रप्रद शुक्ला पंचमी को आपने सचित्तत्याग नाम की पांचवीं प्रतिमा धारण की।

चातुर्मास पूरा होने के बाद आपने ऐलक महाराज के साथ महाराष्ट्र के ग्रामों और नगरों में चार माह तक भ्रमण कर जैन धर्म का प्रचार किया, फिर आपने समस्त तीर्थक्षेत्रों की यात्रा की। क्षेत्रों में शक्त्यनुसार दान भी किया।

उस समय इस भू तल पर दिगम्बर मुनियों के दर्शन दुर्लभ थे। महानिधि के समान दिगम्बर साधु कहीं कहीं दृष्टिगोचर होते थे। आपका हृदय मुनिदर्शन हेतु निरन्तर छटपटाता रहता था। आप निरन्तर यही विचार करते थे कि अहो! वह शुभ घड़ी कब आएगी जिस दिन मैं भी दिगम्बर होकर आत्मकल्याण में अग्रसर हो सकूंगा।

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के दर्शन :

एक दिन आपने आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की ललित कीर्ति सुनी। आपका मन गुरुवर के दर्शनों के लिए लालायित हो उठा। उनके दर्शनों के बिना आपका मन जल के बिना मछली के समान तड़फने लगा। इसी समय ब्र० हीरालालजी गंगवाल आचार्यश्री के दर्शनार्थ दक्षिण की ओर जाने लगे। यह वार्ता सुनकर आपका मन मयूर नृत्य करने लगा और आपने भी उनके साथ प्रस्थान किया। आचार्यश्री उस समय ऐनापुर के आस पास विहार कर रहे थे। आप दोनों महानुभाव उनके पास चले गये। तेजोमय मूर्त्ति शान्तिसागरजी महाराज के चरण कमलों में आपने अतीव भक्ति से नमस्कार किया, आपके चक्षु पटल निर्निमेष दृष्टि से उस संयममूर्ति की ओर निहारते ही रह गये। आपका मानस आनन्द की तरंगों से व्याप्त हो गया। आपने आचार्यश्री की शान्त मुद्रा को देखकर निश्चय कर लिया कि यदि संसार में कोई मेरे गुरु हो सकते हैं तो यही महानुभाव हो सकते हैं और कोई नहीं। आपका चित्त आचार्यश्री के पादमूल में रहने के लिये ललचाने लगा। आप गोम्मट स्वामी की यात्रा कर वापस आये और उनसे सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। कुछ दिन घर में रहकर आचार्यश्री के पास वीर निर्वाण संवत २४५० फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन क्षुल्लक के व्रत ग्रहण किये। अब आप निरन्तर आचार्यश्री के समीप ही ध्यान अध्ययन में रत

रहने लगे। आचार्य श्री ने समडोली में चातुर्मास किया। आश्विन शुक्ला एकादशी वीर निर्वाण संवत् २४५० में आपने ऐलक दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम चन्द्रसागर रखा गया। वास्तव में आप चन्द्र थे। आपका गौर वर्ण उन्नत भाल चन्द्र के समान था। आपके धवल यश की किरणें चन्द्रमा के समान समस्त संसार में फैल गई। वीर संवत २४५० में आचार्यश्री ने सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। ऐलक चन्द्रसागरजी भी साथ में थे। संघ फाल्गुन में शिखरजी पहुंचा, तीर्थराज की वन्दना कर सबने अपने को कृतकृत्य समझा। तीर्थराज पर संघपति पूनमचन्द घासीलाल ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई। लाखों नर नारी दर्शनार्थ आये। धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। वहां से विहार कर, कटनी, ललितपुर, जम्बूस्वामी सिद्धक्षेत्र मथुरा में चातुर्मास करके अनेक ग्रामों में धर्मामृत की वर्षा करते हुए सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर पहुंचे। वहाँ पर आपने वीर संवत २४५६ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सोमवार मृग नक्षत्र मकर लग्न में दिन के १० बजे आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के चरणसान्निध्य में दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की। समस्त कृत्रिम वस्त्राभूषण त्याग कर आपने पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्तिरूप आभूषण तथा २८ मुलगुणरूप वस्त्रों से स्वयं को सुशोभित किया।

दिगम्बर मुद्रा धारण करना सरल और सुलभ नहीं है, अत्यन्त कठिन है। धीर वीर महापुरुष हो इस मुद्रा को धारण कर सकते हैं। आपने इस निर्विकार मुद्रा को धारण कर अनेक नगरों व ग्रामों में भ्रमण किया तथा अपने धर्मोपदेश से जन जन के हृदय पटल के मिथ्यान्धकार को दूर किया। सुना जाता है कि आपकी वक्तृत्व शक्ति अद्भुत थी। आपका तपोवल, आचारवल, श्रुतवल, वचनवल, आत्मिकवल और धैर्य प्रशंसनीय था।

सिंहवृत्तिधारक :

जिसप्रकार सिंह के समक्ष श्याल नहीं ठहर सकते उसीप्रकार आपके समक्ष वादीगण भी नहीं ठहर सकते थे। श्याल अपनी मण्डली में ही उहु उहु कर शोर मचा सकते हैं परन्तु सिंह के सामने चुप रह जाते हैं, वैसे ही दिगम्बरत्व के विरोधी जिन शास्त्र के मर्म को नहीं जानने वाले अज्ञानी दूर से ही आपका विरोध करते थे परन्तु सामने आने के बाद मूक के समान हो जाते थे।

सुना है कि जिस समय आचार्यश्री का संघ दिल्ली में आया था। उस समय एक सरकारी आदेश द्वारा दिगम्बर साधुओं के नगर विहार पर प्रतिवन्ध लगा दिया गया था। जब यह वार्ता निर्भीक चन्द्रसिन्धु के कानों में पड़ी तो उन्होंने विचार किया अहो ! ऐसे तो मुनि मार्ग रुक ही जाएगा इसलिये उन्होंने आहार करने के लिये शुद्धि की, और वीतराग प्रभु के समक्ष कायोत्सर्ग कर हाथ में

कमण्डलु लेकर शहर में जाने लगे। श्रावक चिन्तित हो गए—क्या होगा ? परन्तु महाराजश्री के मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था। आप सिंह के समान निर्भय और शान्त भाव से चले जा रहे थे। जब अंग्रेज साहब की कोठी के पास से निकले तो बाहर खड़ा साहब इनकी शान्त मुद्रा को देखकर नतमस्तक हो गया, इनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगा। सत्य ही है महापुरुषों का प्रभाव अपूर्व होता है।

रत्नत्रय की मूर्तिमन्त प्रतिमा :

वास्तव में मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी को देखकर रत्नत्रय की मूर्तिमन्त प्रतिमा को देखने का सन्तोष प्राप्त होता था। महाराजश्री का जीवन हिमालय की तरह उत्तुंग, सागर की तरह गम्भीर, चन्द्रमा की तरह शीतल, तपस्या में सूर्य की तरह प्रखर, स्फटिक की तरह अत्यन्त निर्दोष, आकाश की तरह अन्तर्बाह्य खुली किताब, महाव्रतों के पालन में वज्र की तरह कठोर, मेरु सदृश अडिग एवं गंगा की तरह अत्यन्त निर्मल था।

वे साधुओं में महासाधु, तपस्वियों में कठोर तपस्वी, योगियों में आत्मलीन योगी, महाव्रतियों में निरपेक्ष महाव्रती और मुनियों में अत्यन्त निर्मोही मुनि थे। वास्तव में ऐसे निर्मल, निःस्पृह और स्थितिप्रज्ञ साधुओं से ही धर्म की शोभा है। विश्व के प्राणी ऐसे ही सत्साधुओं के दर्शन, समागम और सेवा से अपने जीवन को धन्य बना पाते हैं।

पूज्य तरणतारण महामुनिराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज अपने दीक्षा गुरु परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की शिष्य परम्परा में और साधु जीवन में न केवल ज्येष्ठता में श्रेष्ठ थे वरन् श्रेष्ठता में भी श्रेष्ठ थे। उनके पावन पद विहार से धरा धन्य हो गई। सच्चा अध्ययन जगमगा उठा और आत्महितैषियों को आत्मपथ पर चलने के लिए प्रकाशस्तम्भ मिल गया। वास्तव में वे लोग महाभाग्यशाली हैं जिन्हें ऐसे लोकोत्तर असाधारण महानतपस्वी सच्चे आगमनिष्ठ साधु के दर्शन का सुयोग मिला।

आपको यही भावना रहती थी कि "सर्वे भवन्तु सुखिन:"। आप संसारी जीवों को धर्माभिमुख करने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते थे। गुरुदेव की तपस्या केवल आत्मकल्याण के लिए ही नहीं अपितु इस युग की धर्म और मर्यादा का विरोध करने वाली दूषित पापवृत्तियों को रोकने के लिए भी थी। मानव की पापवृत्तियों को देखकर उनका चित्त आशंकित था। महाराजश्री ने इनका नाश करने का प्रयत्न असीम साहस और धैर्य के साथ किया। धर्मभावनाशून्य मूढ़ लोगों ने इनके पथ में पत्थर बरसाने में कोई कमी नहीं रखी परन्तु मुनिश्री ने एक परम साहसी सैनानी की भाँति

अपनी गति नहीं बदली। यश और वैभव को ठुकराने वाले क्या कभी विरोधियों की परवाह कर सकते हैं, कभी नहीं।

महाराज श्री हमेशा ही सत्य, सिद्धान्त और आगमपथ के अनुयायी रहे। सिद्धान्त के आगे आप किसी को कोई महत्व नहीं देते थे। यदि शास्त्र की परिपालना में प्राणों की भी आवश्यकता होती तो आप निःसंकोच देने को तैयार रहते थे। जिनधर्म के मर्म को नहीं जानने वाले, द्वेषाग्नि दग्ध अज्ञानियों ने महाराजश्री पर वर्णनातीत अत्याचार किए जिन्हें लेखनी से लिखा भी नहीं जा सकता। परन्तु धीर वीर मुनिश्री ने इतने घोरोपसर्ग आने पर भी न्यायमार्ग एवं अपने सिद्धान्त को नहीं छोड़ा। सत्य है "न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा" घोरोपसर्ग आने पर भी धीर-वीर न्यायमार्ग से विचलित नहीं होते। आपत्तियों को दृढ़ता से सहन करने पर ही गुणों की प्रतिष्ठा होती है। गुरुदेव ने घोर आपत्तियों का सामना किया जिससे आज भी उनका नाम अजर अमर है।

मारवाड़ के सुधारक :

जिस समय हमारे श्रावक गण चारित्र से च्युत हो धर्मविहीन वनते जा रहे थे। उस समय आपने जैन समाज को धर्मोपदेश देकर सन्मार्ग में लगाया। आप अनेकों ग्रामों और नगरों में भ्रमण करके अपने वचनामृत के द्वारा धर्मपिपासु भव्यप्राणियों को सन्तुष्ट करते हुए राजस्थान प्रान्त के सुजानगढ़ नगर में पधारे। वि० सं० १९९२ में आपने यहां चातुर्मास किया। इस मारवाड़ देश की उपमा आचार्यो ने संसार से दी है। यहां उष्णता भी अधिक है तो ठण्ड भी अधिक पड़ती है। गर्मी के दिनों में भीषण सूर्य किरणों से तप्तायमान धूलि से ज्वाला निकलती है। आपने जिस समय राजस्थान में पदार्पण किया उस समय यहाँ के निवासी मुनियों को चर्या से अनभिज्ञ थे, खान-पान अशुद्ध हो चला था। आपने अपने मार्मिक उपदेशों से श्रावकों को सम्वोधित किया, उनके योग्य आचार से उन्हें अवगत कराया, आपके सदुपदेश से कई व्रती वने। मारवाड़ प्रान्त के लोगों के सुधार का श्रेय आपको ही है।

डेह में प्रभावना :

लाडनू से मंगसिर सुदी चतुर्दशी को आचार्यकल्पश्री ने विहार किया। साथ में थे मुनि निर्मलसागरजी, ऐलक हेमसागरजी, क्षुल्लक गुप्तिसागरजी और ब्र० गौरीलालजी।

मिती पौष कृष्णा दूज वि० सं० १९९२ के प्रातः ९ वजे मुनिसंघ का डेह में प्रवेश हुआ। सारा ग्राम मानो उलट पड़ा, विशाल शोभायात्रा निकाली गई। जागीरदार का सरकारी लवाजमा तथा बैण्ड भी जुलूस में सम्मिलित था। लगभग २००० स्त्री पुरुष और वच्चे सोत्साह जय जयकार

कर रहे थे। साधुओं ने पहले श्री पार्श्वनाथ नसियाँजी के दर्शन किए, अनन्तर प्राचीन मन्दिर और नवीन मन्दिर के दर्शन करते हुए संघ श्री दिगम्बर जैन पाठशाला में पहुंचा। आचार्यकल्पश्री के उद्‌बोधन के बाद सभा विर्सजित हुई।

सैकड़ों वर्षों से इस प्रदेश में दिगम्बर जैन साधुओं का आगमन न होने से सब लोग साधुओं की क्रियाओं से अनभिज्ञ थे। संघ की चर्या देख देखकर सब लोग आश्चर्यान्वित होते थे। पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज ने श्रावकों की शिथिलता और अशुद्ध खानपान को भांप लिया था अतः आपके उपदेश का विषय प्रायः यही होता था। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर और सच्चा मार्ग ज्ञात कर अनेक श्रावक श्राविकाओं ने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए, जिनमें मोहनीबाई (अधुना आर्यिका इन्दुमतीजी) व इनके भाई-भाभी भी थे। अनेकानेक ने मद्य मांस का त्याग किया। रात्रि भोजन छोड़ा तथा जल छान कर पीने का नियम लिया। यों कहना चाहिये कि आपके आगमन से डेह वासियों का जीवन सर्वथा परिवर्तन हो गया सबके सब शुद्ध खान पान और नियमों की ओर आकृष्ट हुए।

उत्कृष्ट धर्म प्रचारक :

गुरुओं की गरिमा गाथा गाई नहीं जा सकती। आपके वचनों में सत्यता और मधुरता, हृदय में विवक्षा, मन में मृदुता, भावना में भव्यता, नयन में परीक्षा, बुद्धि में समीक्षा, दृष्टि में विशालता, व्यवहार में कुशलता और अन्तःकरण में कोमलता कूट कूट कर भरी हुई थी। इसलिये आपने मनुष्य को पहचान कर अर्थात् पात्र की परीक्षा कर व्रत दिये, जन जन के हृदय में संयम की सुवास भरी।

गगन का चन्द्र अन्धकार को दूर करता है। परन्तु चन्द्रसागरजी रूपी निर्मल चन्द्र अज्ञानियों के मन मन्दिर में ज्ञान का प्रकाश फैलाता था। आपने धर्मोपदेश देकर जन जन का अज्ञान दूर किया। देश-देशान्तरों में विहार कर जिनधर्म का प्रचार किया। उनका यह परमोपकार कल्पान्त काल तक स्थिर रहेगा। उनके वचनों में ओज था। उपदेश की शैली अपूर्व थी। मधुर भाषणों से उनके जैन सिद्धान्त के अभूतपूर्व मर्मज्ञ होने की प्रखर प्रतिभा का परिचय स्वतः ही मिलता था आपके सरल वाक्य रश्मियों से साक्षात् शान्ति सुधारस विकीर्ण होता था जिसका पान कर भक्त जन झूम उठते और अपूर्व शान्ति लाभ लेते थे।

अपूर्व मनोबल :

महाराजश्री की वृत्ति सिंहवृत्ति थी अतएव उनके अनुशासन तथा नियंत्रण में माता का लाड न था बल्कि सच्चे पिता की सी परम हितैषिणी कट्टरता थी। जिसके लिये उन्होंने अपने जीवनोपार्जित यश की बलि चढ़ाने में जरा सा भी संकोच नहीं किया।

इन्दौर में सरसेठ हुकमीचन्दजी ने आचार्यश्री को हथकड़ी पहनाने की पूर्ण कोशिश की पर सेठ सा० की कोशिश व्यर्थ गई तथा आचार्यश्री की सिंहवृत्ति से सरकारी वर्ग के विशिष्ट लोग आपके चरणों में नतमस्तक हो गए तथा सेठ जी के मायाजाल का भण्डा फूट गया।

अनेक क्षेत्रों और स्थानों में विहार करते हुए मुनिश्री संघ सहित संवत् २००१ फाल्गुन सुदी अष्टमी के सायंकाल बावनगजा में पधारे। उस समय आपके इस भौतिक शरीर को ज्वर के वेग ने पकड़ लिया था। इसलिये आपका शरीर यद्यपि दुर्वल हो गया था फिर भी मानसिक बल अपूर्व था। वड़वानी सिद्धक्षेत्र में श्री चांदमल धन्नालाल की ओर से मानस्तम्भ प्रतिष्ठा थी। आपने रुग्णावस्था में भी अपने हाथ से प्रतिष्ठा कराई।

पूज्य गुरुदेव की शारीरिक स्थिति अधिकाधिक निर्बल होती गई तो भी महाराजश्री ने फाल्गुन सुदी १२ को फरमाया कि मुझे चूलगिरि के दर्शन कराओ।

लोगों ने कहा :

"महाराज ! शरीर स्वस्थ होने पर पहाड़ पर जाना उचित होगा, गुरुदेव बोले "शरीर का भरोसा नहीं। यदि शरीर ही नहीं रहा तो हमारे दर्शन रह जायेंगे।"

महाराज श्री दर्शनार्थ पर्वत पर पधारे। उस समय उन्हें १०५ डिग्री ज्वर था, निर्बलता भी काफी थी। महाराजश्री ने बड़े उत्साह और हर्ष पूर्वक दर्शन किये। संन्यास भी ग्रहण कर लिया। अर्थात् अन्न का त्याग कर दिया। फाल्गुन शुक्ला १३ को मात्र जल लिया।

अन्तिम सन्देश :

त्रयोदशी को ही अन्न जल त्याग कर संन्यास धारण करते समय आपने पूछा था कि अष्टाह्निका की पूर्णता परसों ही है न ?

लोगों के हाँ करने पर महाराज ने फरमाया "सब लोग धर्म का सेवन न भूलें। आत्मा अमर है।"

फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को शक्ति और भी क्षीण हो गई। डाक्टरों ने महाराजश्री को देखकर कहा कि महाराज का हृदय वड़ा दृढ़ है। औषधि लेने पर तो शर्तिया स्वस्थ हो सकते हैं परन्तु गुरुदेव कैसी औषधि लेते ? उनके पास तो मुक्ति में पहुंचाने वाली परम वीतरागतारूप आदर्श महौषधि थी।

शरीर त्याग :

फाल्गुन शुक्ला १५ के दिन बारह बजकर बीस मिनट पर गुरुदेव ने इस विनाशशील शरीर को छोड़कर अमरतत्व प्राप्त कर लिया। यह सन् १९४५ की २६ फरवरी का दिन था। इस दिन अष्टाह्निका की समाप्ति थी। दिन भी चन्द्रवार था। परमाराध्य गुरुदेव चन्द्रसागर ने पूर्ण चन्द्रिका चन्द्रवार के दिन सिद्धक्षेत्र पर होलिका की आग में अपने कर्मों को शरीर के साथ फूंक दिया। समस्त भक्तजन विलखते रह गये, सबकी आँखें भर आईं।

चरण वन्दना :

दृढ़ तपस्वी, शीर्षमार्ग के कट्टर पोषक, वीतरागी, परम विद्वान्, निर्भीक, प्रसिद्ध उपदेशक, आगम मर्मस्पर्शी, अनर्थ के शत्रु, सत्य के पुजारी, मोक्ष मार्ग के पथिक, संसारी प्राणियों के तारक, आत्मबोधी, स्वपर-उपकारी, अपरिग्रही, तारण-तरण, सन्तापहरण स्व० गुरुदेव के चरण कमलों में शत-शत वन्दन ! शत-शत वन्दन !!

आचार्य श्री नमिसागरजी महाराज

पूज्य आचार्यश्री का जन्म विक्रम १९४५ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी मंगलवार तदनुसार ता० २९ मई सन् १८८८ को दक्षिण प्रान्त के शिवपुर नगर जिला बेलगांव में हुआ था। इनके पिताजी का नाम श्री यादवराय तथा मातेश्वरी का नाम श्रीमती कलादेवी था। ये दक्षिण प्रान्तीय प्रसिद्ध जैन क्षत्रिय पंचम जाति के व्यापारी थे। श्री यादवरायजी के कुल तीन संतान उत्पन्न हुई, जिनमें पहली संतान कुछ दिन जीवित रहकर चिर निद्रित हो गई। द्वितीय पूज्य आचार्य महाराज हैं, जिनका तत्कालीन नाम होनप्पा रखा गया। इनके पीछे प्रायः दो ढ़ाई वर्ष बाद एक छोटा भाई और हुआ। ये दो वर्ष के भी पूर्ण न होने पाये थे कि इनके पिताजी दिवंगत हो गये और उनकी छत्र-छाया इनके ऊपर से सदैव के लिये उठ गई। उस समय इनके छोटे भाई की अवस्था प्रायः ३ मास की थी इनकी विदुषी माता ने दोनों का लालन-पालन किया तथा शिक्षित वनाने के लिये उसी गांव की राजकीय शाला में बैठा दिया। दो तीन कक्षा तक ही प्रारम्भिक शिक्षा ले पाये थे कि अभाग्यवशत् विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा और इनकी माताजी का भी स्वर्गवास हो गया। उस समय इनकी आयु १२ वर्ष की होगी, घर में कोई बड़ा न होने से खर्च का सारा बोझ इन्हीं के ऊपर आ पड़ा, समस्या बड़ी विकट थी, आजीविका का और कोई उपाय न था, अतः इच्छा न होते हुए भी पढ़ाई का काम छोड़ना पड़ा। फिर भी अपने भाई को पढ़ाने का पूरा ध्यान रखा।

इनका पैतृक व्यापार वर्तनों की दुकान का था। अपने पूर्वजों की छोड़ी हुई पर्याप्त जमीन भी थी कुछ समय तक तो अभ्यास न होने से कुछ कष्ट रहा, पर बाद में अपनी कुशलता से उन दोनों कार्यों को बड़ी सावधानी से सम्भाल लिया।

२६ वर्ष की आयु अर्थात् सन् १९१४ में आपका विवाह हो गया। चार वर्ष बाद द्विरागमन (गोना) हुआ। उससे आपके पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु तीन महीने बाद ही वह काल कवलित हो गया। इस दुःख को भूल भी न पाये थे कि उनके तीन मास पीछे ही आपकी धर्मपत्नी का भी सदैव के लिये वियोग हो गया। इस प्रकार प्रायः डेढ़ वर्ष तक ही आपको स्त्री का संयोग रहा अब आपने दूसरा विवाह न करने का निश्चय कर लिया।

हम पहिले ही लिख चुके हैं कि ये व्यापार में बड़े कुशल थे तथा समय समय पर अन्य व्यापार भी करते थे। एक बार कपास (रूई) के व्यापार निमित्त आपको सेरदाड़ राज्यान्तर्गत जाम्बागी नामक गांव में जाना पड़ा। वहां पर इनको व्यापार सम्बन्धि कार्याधिक्य से दिन में भोजन बनाने का अवकाश न मिला। दक्षिण प्रान्त में अपने ही हाथ से भोजन बनाकर खाने की प्रथा है। अतः रात्रि में ही इन्होंने अपनें हाथ सें भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों तक जैन कुल में उत्पन्न होते हुए भी शिक्षा के अभाव से धार्मिक भावना जागृत नहीं हुई थी, अतः रात्रि में भी भोजन कर लेते थे। इन्होंने भात बनाने के लिए उबलते हुए पानी में चावल डाले। स्मृति-दोष से उसका ढक्कन न रख पाये। दूध, दही, मीठा लेने के लिये नौकर को बाजार भेज दिया, उधर न मालूम कब दो बड़े बड़े कीड़े उसमें गिर पड़े। जब भोजन करने बैठें तब भात परोसने के साथ वे दोनों कीड़े भी उस थाल में परस गये। उनको देखकर इनके मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। विचारने लगे कि अपने पेट भरन के लिये मेरे द्वारा इन दो जीवों का व्यर्थ में वध हो गया, अगर मैं रात्रि को भोजन न करता तो यह जीवों की हिंसा न होती। बहुत पश्चात्ताप किया तथा आत्मनिन्दा और गर्हा भी की। उस समय तो भोजन किया ही नहीं बल्कि रात्रि भोजन को महान् हिंसा का कारण जान जन्म पर्यन्त के लिये त्याग कर दिया।

इस घटना से ही इनके जीवन में परिवर्तन हो गया। कार्यभार अपने छोटे भाई को सौंप दिया और आप गृह से उदास हो गये। तीन वर्ष तक संवेगी श्रावक दशा में रहे, आपका यह समय तीर्थ-यात्रा और सत्संगति में ही व्यतीत हुआ। सन् १९२३ में आपने बोर गांव में श्री १०८ पूज्य आदि सागर मुनिराज से विधिवत् क्षुल्लक दीक्षा ले ली और नाम श्री पायसागर रखा गया।

१९२५ में सम्मेद शिखरजी की यात्रा जाने वाले आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के विशाल संघ में शामिल होकर आपने इन्हीं से विधिपूर्ण ऐलक दीक्षा ले ली। उस समय आपका नाम नमिसागर रखा गया। ऐलक अवस्था में आप पांच वर्ष रहे। और संघ के साथ १९२६ से १९२९ तक जयपुर, कटनी (मध्यप्रान्त) ललितपुर (उत्तर प्रान्त) में आपने चतुर्मास किये। इसी मध्य में संघ ने तीर्थराज की वंदना की

सन् १९२९ में पूज्य आचार्य चारित्र चक्रवर्ति शांतिसागर महाराज से मार्ग शीर्ष सुदी १५ सं १९८६ में सोनागिर पहाड़ के ऊपर मुनि दीक्षा ली।

सन् १९३८ में आप आचार्य कुन्थुसागरजी महाराज के संघ में रहने लगे और उनकी अंत अवस्था जानकर उनकी वैयावृत्ति की। आचार्य श्री ने अपना अन्त समय जानकर आचार्य पद के लिये समस्त संघ के मुनियों को आज्ञा दी कि नमिसागरजी को अपना आचार्य मानना। सन् १९४५ में आप आचार्य पद पर आसीन हुए उसके बाद अनेक स्थानों पर भ्रमण करके जनता को सही मार्ग दर्शन दिया।

ध्यान :

आप जब ध्यान में लीन होते हैं उस समय आपकी मुद्रा दर्शनीय है। आये हुए बड़े से बड़े उपसर्गों को आप बड़ी आसानी से सहन कर लेते हैं, कभी कभी तो ऐसे भी अवसर आ गये हैं जबकि उपवासादिकों के दिनों में अशक्तता के कारण आप गिर भी गये हैं पर फिर भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। बागपत (मेरठ) में जब आप ड़ेढ़ मास रहे तो वहां शीतकाल में जमुना के किनारे चार-चार घन्टे तक ध्यान में लीन रहे। बडे गांव मेरठ में भी शीत ऋतु में आपने अनेक रात्रियों में मकानों की छतपर बैठकर ध्यान लगाया। ग्रीष्म ऋतु में तारंगा तथा पावागढ़ (बड़ौदा) के पहाड़ों पर जाकर चार-चार घन्टे तक समाधि में रहे।

ज्ञान :

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि आपकी प्रारम्भिक शिक्षा न कुछ के बराबर थी किन्तु साधु दीक्षा के बाद से आपने इतना अच्छा शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को न केवल भली भांति समझ ही लेते थे अपितु दूसरों को भी बहुत अच्छी तरह समझा देते थे। आपने अनेक उच्चकोटि के दार्शनिक सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय किया था जिस समय आप आध्यात्मिक विषय पर व्याख्यान देते तब ऐसा मालूम होता था कि मानों आपकी अन्तरात्मा ही बोल रही है।

उपदेश :

आपके उपदेश सार्वजनिक भी होते थे हरिजन समस्या के विषय में आपने अपने भाषणों में अनेक बार कहा था मैं हरिजनों को उतना ही उन्नत देखना चाहता हूं जितना कि और जातियां हैं। उनकी भोजन, वस्त्र, स्थान आदि की समस्या हल होनी चाहिये, पठन पाठन की व्यवस्था भी

ठीक होनी चाहिये जिससे ये शिक्षित हो जायें और खोटे कर्मो से बचकर अच्छे कार्य करने लगें। इनके अन्दर की बुराईयां मसलन, मद्य, मांससेवन, जुआ, शिकार, जीव हिंसा आदि कर्म तथा मैला कुचेला रहना आदि पहिले दूर करना चाहिये। आपका ज्वलंत प्रभाव तब प्रकट हुआ, जब भारत सरकार ने एक बिल पार्लियामेन्ट में रखा जिसमें जैन धर्म को हिन्दू धर्म स्वीकार किया जा रहा था। इस बिल पर भारत वर्ष की जैन संस्थायें चिन्तित हो उठीं। परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ति श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की दृष्टि पूज्य नमिसागरजी महाराज पर गयी। उन्हें आदेश दिया कि दिल्ली में शासन को प्रभावित कर जैन धर्म को हिन्दू धर्म से पृथक् रखवायें। महाराज ने ऐसा प्रयत्न किया कि उन्हें सफलता मिली और गुरु आदेश की पालना की।

अगस्त १९५५ में पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी के कुन्थलगिरि में समाधि मरण लेने के समाचार ज्ञात होते ही आपने फल व मीठे का आजन्म त्याग कर दिया। एक वर्ष तक अन्न का त्याग कर दिया और जो उद्गार आचार्य श्री ने अपने गुरु के प्रति प्रकट किये वह चिरस्मरणीय व स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य हैं।

आचार्यश्री का स्वभाव नारियल जैसा था ऊपर से कठोर और अंतरंग में नर्म था। धर्म व धर्मात्मा के प्रति इतने उदार थे कि कभी भी उनका ह्रास देखना पसन्द नहीं करते थे। वे कभी भी संघ में शिथिलाचार नहीं देख सकते और सदैव संघ पर कड़ी दृष्टि आचरण पालन की ओर रखते। शिक्षण संस्थाओं से उन्हें काफी प्यार था। गरीबों के हितू होने के कारण आपके चरणों में सभी जाति के स्त्री पुरुष भेद भाव भुलाकर आते थे।

आचार्यश्री १९५१ में जब दिल्ली पधारे तब वे एक संकल्प लेकर आये थे। हरिजन-मन्दिर प्रवेश को लेकर पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने अनशन कर दिया था उनके अनशन को तुड़वाना और जैन मन्दिरों को हिन्दू मन्दिरों से पृथक् करना यह संकल्प न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया के सम्पर्क से पूज्य श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णी को आचार्य श्री ने अपने संकल्प का साधक माना। फलत: आचार्य श्री अपने मिशन में सफल हुए और पूज्य वर्णीजी के प्रति अनन्य समादर करने लगे। अन्त में आचार्य श्री वर्णीजी के सान्निध्य में बड़ौत (मेरठ) से प्रस्थान कर ईसरी (सम्मेदशिखर) पहुंचे और इन्हीं के निकट सन् १९५७ में समाधि पूर्वक देह त्याग किया।

मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज

जाति	—	पंचम
माता का नाम	—	शिवादेवी
पिता का नाम	—	नेमराज
जन्म स्थान	—	कुडची (वेलगांव)
दीक्षा	—	समडोल (वेलगांव)
		कार्तिक सुदी १५ सं० १९८१

आचाय महाराज तपोमूर्ति थे। उनके शिष्य नेमिसागर महाराज भी बहुत सरल थे तथा उनका जीवन तप: पुनीत समलंकृत था। आचार्य महाराज ने जिनेन्द्र शासन से पूर्ण विमुख नेमण्णा नामक कुडची के व्यापारी की जीवनी को बदल दिया। वे ही आज श्रद्धालु श्रेष्ठ तपस्वी अद्वितीय गुरुभक्त १०८ परमपूज्य नेमिसागर महाराज के रूप में मुमुक्षु वर्ग का कल्याण कर रहे हैं। उन्हें दीक्षा लिए हुए ४५ वर्ष से अधिक होगए।

एक उपवास एक आहार का क्रम चलता आ रहा है। बाईस वर्षों के ८०३० दिन होते हैं। तीस चौवीसी व्रत के ७२० उपवास किए। कर्मदहन के १५६ तथा चारित्र सिद्धिव्रत के १२३४ उपवास हुए। दशलक्षण में पांच वार दस दस उपवास किए अष्टाह्निका में तीन बार आठ आठ उपवास किए। इसप्रकार २४ उपवास किए। लोणंद में नेमिसागर महाराज ने १६ उपवास किए। इसप्रकार उनकी तपस्या अद्भुत थी। चारित्र चूड़ामणि नेमिसागरजी को उपवास में आनन्द आता था।

आचार्य महाराज कोथूर में विराजमान थे। मैंने उनके सत्संग का लाभ लिया वे बोले "तुम शास्त्र पढ़ा करो। मैं उसका भाव लोगों को समझाऊंगा।" मैं कक्षा ५ तक पढ़ा था। मुझे शास्त्र पढ़ना नहीं आता था। भाषण देना भी नहीं आता था, धीरे धीरे मेरा अभ्यास बढ़ गया। आचार्य महाराज के सम्पर्क से हृदय के कपाट खुल गए। उनके सत्संग से मेरे मन में मुनि बनने का भाव पैदा होगया।

नेमिसागरजी महाराज का गृहस्थ जीवन बड़ा विचित्र था। मुसलमानों के सम्पर्क के कारण मुस्लिम दरगाह में जाकर पैर पड़ा करते थे। सोलह वर्ष की अवस्था तक वे अगरबत्ती जलाते और शक्कर चढाते थे।

आचार्य महाराज के सम्पर्क के कारण जीवन में परिवर्तन हो गया। वे खेती करते थे।

दोनों जने नेमण्णा और रामू (कुन्थुसागरजी) साथ साथ खेती का कार्य करते थे। आचार्य महाराज से सम्पर्क के कारण वैराग्य का भाव जागृत हो गया।

उन्हें नन्दिमित्र की कथा बड़ी प्रिय थी। जो पलासकूट ग्राम में देविल वैश्य के घर पुण्यहीन पुत्र नंदिमित्र ने जन्म धारण किया। माता पिता ने उसे घर से निकाल दिया। वहां से चलकर अवन्ति देश में विद्यमान वैदेश नगर में पहुंचा, उसने नगर के बाहर कालकूट नामके लकड़ी वेचने वाले को देखा। नन्दिमित्र ने कालकूट से कहा—तुम लकड़ी का जितना बोझा बाजार में ले जाते हो उससे चौगुना बोझा प्रतिदिन मैं लाकर दूंगा।

यदि तुम मेरे परिश्रम के बदले मुझे भोजन दिया करो तो मैं काम करने को तैयार हूं।

कालकूट ने यह बात स्वीकार करली और उसे रूखा सूखा भोजन देने लगा। एक दिन उसकी स्त्री ने उसे भरपेट खीर का भोजन खिलाया वह उससे नाराज हुआ और नन्दिमित्र को घर से निकाल दिया।

उसने एक मुनिराज को देखा और उनके साथ हो लिया। श्रावकों ने नया शिष्य समझकर भोजन करा दिया। एक दिन महाराज ने उपवास किया, उसने महाराज के पास के कमंडलु और पीछी लेकर चर्या को उठा और भोजन के लिए गया पर यह सोचकर मैं यदि आज भोजन नहीं करूंगा तो श्रावक मेरा विशेष आदर करेंगे। उसने तीन दिन तक ऐसा ही किया। चौथे दिन अवधिज्ञानी मुनि ने कहा—नन्दिमित्र तेरी आयु अन्तर्मुहूर्त शेष रही है। इसलिये तू सन्यास धारण कर। उस भद्र आत्मा ने सन्यास धारण किया वह स्वर्ग में जाकर देव हुआ वहां से चयकर चन्द्रगुप्त के रूप में उत्पन्न हुआ।

यह कथा उन्हें बड़ी प्रिय थी ।

नेमिसागरजी ने ऐलक दीक्षा गोकाक के मन्दिर में ली थी और वहां मूलनायक नेमिनाथ भगवान की मूर्ति थी । इसलिए महाराज ने इनका नाम नेमिसागर रखा । पहले ऐलक दीक्षा ली और पश्चात् मुनिदीक्षा अंगीकार की ।

कटनी के चातुर्मास में महाराज ने सभी साधुओं के पठन पाठन की योजना बनाई और ललितपुर में पठन पाठन शुरु हुआ । नेमिसागर मुनिराज विविध प्रकार के आसन लगाकर ध्यान करते थे । उन्हें ध्यान में ही आनन्द आता था । संकल्प विकल्प त्यागने से शांति मिलती है । ऐसा वे कहा करते थे ।

नेमिसागर महाराज कहा करते थे—

अनुभव शास्त्र तथा व्यवहार इन तीनों को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिये ।

जैनधर्म की प्रभावना के सम्बन्ध में आचार्य महाराज कहा करते थे—

रुचिः प्रवर्तते यस्य, जैन शासन भासते ।
हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निषद्यते ।।

जिसके मन में जिन शासन की प्रभावना की भावना है उसके हाथ में मुक्ति है । महाराज ने बम्बई के पास बोरीवकर में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की पावन स्मृति में स्थान बनाया और वहां उत्तुंग भरत बाहुबलि तथा अन्य तीर्थंकरों की मनोज्ञ मूर्त्तियां स्थापित कराईं । जो भव्य जीवों को वीतरागता की शिक्षा देती हैं और जिनसे जैन शासन की प्रभावना होती है ।

आ० श्री कुंथुसागरजी महाराज

महर्षि प्रात:स्मरणीय आचार्य श्रीकुन्थुसागरजी महाराज आप एक परम प्रभावक वीतरागी, विद्वान आचार्य थे। आपकी जन्मभूमि कर्णाटक प्रान्त है जिसे पूर्व में कितने ही महर्षियों ने अलंकृत कर जैनधर्मका मुख उज्ज्वल किया था। इसलिए "कर्णेपु अटतीति" सार्थक नाम को पाकर सबके कानोंमें गूंज रहा है।

कर्णाटक प्रांत के ऐश्वर्यभूत वेलगांव जिले में ऐनापुर नामक सुन्दर नगर है। वहां पर चतुर्थकुल में ललामभूत अत्यन्त शांत स्वभाव वाले सातप्पा नामक श्रावकोत्तम रहते थे। आपकी धर्मपत्नी साक्षात् सरस्वती के समान सद्गुणसम्पन्न थी इसलिए सरस्वती के नाम से ही प्रसिद्ध थी। सातप्पा व सरस्वती दोनों अत्यन्त प्रेम व उत्साह से देवपूजा व गुरुपास्ति आदि सत्कार्य में सदा मग्न रहते थे। धर्मकार्य को वे प्रधानकार्य समझते थे उनके हृदय में आंतरिक धार्मिक श्रद्धा थी। श्रमती सौ० सरस्वती ने वीर संवत् २४२० में एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। इस पुत्र का जन्म कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया को हुआ। माता पिता ने पुत्र का जीवन सुसंस्कृत हो इस सुविचार से जन्म से ही आगमोक्त संस्कारों से संस्कृत किया। जातकर्म संस्कार होने के वाद शुभमुहूर्त में नामकरण संस्कार किया जिसमें इस पुत्र का नाम रामचन्द्र रखा गया। वाद में चौलकर्म, अक्षराभ्यास, पुस्तकग्रहण आदि आदि संस्कारों से संस्कृत कर सद्विद्या का अध्ययन कराया। रामचन्द्र के हृदय में वाल्यकाल से ही विनय शील व सदाचार आदि भाव जागृत हुए थे। जिसे देखकर लोग आश्चर्ययुक्त व संतुष्ट होते थे। रामचन्द्र को वाल्यावस्था में ही साधु संयमियों के दर्शन की उत्कट इच्छा रहती थी। कोई साधु ऐनापुरमें जाते तो यह वालक दौड़कर उनकी वन्दना के लिए पहुंचता था। वाल्यकाल से ही उसके हृदय में धर्म के प्रति अभिरुचि थी। सदा अपने सहधर्मियों के साथ तत्त्वचर्चा करने में ही समय विताता था। इस प्रकार सोलह वर्ष व्यतीत हुए। अव माता पिता ने रामचन्द्र को विवाह कराने का विचार प्रगट किया। नैसर्गिक गुण से प्रेरित होकर रामचन्द्र ने विवाह के लिए निषेध किया एवं प्रार्थना की कि पिताजी!

इस लौकिक विवाह से मुझे संतोष नहीं होगा। मैं आलौकिक विवाह अर्थात् मुक्ति लक्ष्मी के साथ विवाह कर लेना चाहता हूं। माता पिता ने पुनश्च आग्रह किया। माता पिता की आज्ञोल्लंघन भय से इच्छा न होते हुए भी रामचन्द्र ने विवाह की स्वीकृति दी। मातापिता ने विवाह किया। रामचंद्र को अनुभव होता था कि मैं विवाह कर बड़े बन्धनमें पड़ गया हूं।

विशेष विषय यह है कि बाल्यकाल से संस्कारों से सुदृढ़ होने के कारण यौवनावस्था में भी रामचन्द्र को कोई व्यसन नहीं था। व्यसन था तो केवल धर्मचर्चा, सत्संगति व शास्त्रस्वाध्याय का था। बाकी व्यसन तो उससे घबराकर दूर भागते थे। इस प्रकार पच्चीस वर्ष पर्यन्त रामचन्द्र ने किसी तरह घर में वास किया। परन्तु बीच बीचमें यह भावना जागृत होती थी कि भगवन् ! मैं इस गृहबंधन से कब छूटूं ? जिनदीक्षा लेने का सौभाग्य कब मिलेगा ? वह दिन कब मिलेगा जब कि सर्व-संग परित्याग कर मैं स्वपरकल्याण कर सकूं ?

दैववशात् इस बीच में मातापिता का स्वर्गवास हुआ। विकराल काल की कृपा से भाई और बहिन ने भी विदा ली। तब रामचन्द्रजी का चित्त और भी उदास हुआ। उनका बंधन छूट गया। तब संसार की अस्थिरता का उन्होंने स्वानुभवसे पक्का निश्चय करके और भी धर्ममार्गपर स्थिर हुए।

रामचंद्र के श्वसुर भी धनिक थे। उनके पास बहुत संपत्ति थी। परन्तु उनको कोई संतान नहीं थी। वे रामचन्द्र से कई दफे कहते थे कि यह संपत्ति (घर वगैरह तुम ही ले लो, मेरे यहां के सब कारोबार तुम ही चलावो और रामचंद्र अपने श्वसुर को दुःख न हो इस विचार से कुछ दिन रहा भी। परन्तु मन मनमें यह विचार किया करता था कि "मैं अपना भी घरबार छोड़ना चाहता हूं। इनकी संपत्ति को लेकर मैं क्या करूं"। रामचंद्रकी इस प्रकार की वृत्ति से श्वसुर को दुःख होता था परन्तु रामचन्द्र लाचार था। जब उसने सर्वथा गृहत्याग करने का निश्चय ही कर लिया तो उनके श्वसुर को बहुत अधिक दुःख हुआ।

आपने श्रीपरमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के पाद मूल को पाकर अपने संकल्प को पूर्ण किया। सन् २५ में श्रवणबेलगोला के मस्तकाभिषेक के समय पर आपने क्षुल्लक दीक्षा ली व सोनगिरी क्षेत्रपर मुनिदीक्षा ली। और मुनि कुंथुसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए। जब आप घर छोड़ करके साधु हुए तब आपकी धर्मपत्नी धर्मध्यान करती हुई घर में ही रही थी।

आपने अपनी माता सरस्वती का नाम सार्थक बनाया था। क्योंकि आप अपने नाम तथा काम में सरस्वतीपुत्र ही सिद्ध हुए थे। चतुर्विंशतिजिनस्तुति, शांतिसागर चरित्र, बोधामृतसार, निजात्मशुद्धिभावना, मोक्षमार्गप्रदीप, ज्ञानामृतसार, स्वरूपदर्शनसूर्य, नरेशधर्मदर्पण, मनुष्यकृत्यसार, शांतिसुधा-

सिंधु आदि नीतिपूर्ण तत्त्वगर्भित ४० ग्रन्थरत्नों की उत्पत्ति आपके ही अगाधज्ञानरूपी खानसे हुई थी।

आपके दुर्लभ संस्कृतभापा-पांडित्य पर बड़े २ विद्वान पंडित भी मुग्ध हो जाते थे! आपकी ग्रन्थनिर्माणशैली अपूर्व थी। आपकी भापरण–प्रतिभा शान्त व गम्भीर मुद्राके सामने बड़े २ राजाओं के मस्तक झुकते थे गुजरात प्रांत के प्राय: सभी संस्थानाधिपति आपके आज्ञाकारी शिष्य वने हुए हैं। अवतक हजारों की संख्या में जैनेतर आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर मकारत्रय (मद्य, मांस, मधु) के नियमी व संयमी बन चुके हैं।

गुजरात व वागड़ प्रांत में आपके द्वारा जो धर्मप्रभावना हुई है व हो रही है वह इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्णवर्णो में चिरकाल तक अंकित रहेगी। गुजरात में कई संस्थानिकोंने अपने राज्यमें इन तपोधन के जन्मदिन के स्मरणार्थ सार्वजनिक छुट्टी व सार्वत्रिक अहिंसादिवस मनाने के फर्मान निकाले हैं। सुदासना स्टेट के प्रजावत्सल नरेश तो इतने भक्त बन गये थे कि महाराज का जहां २ विहार होता था वहां प्रायः उनकी उपस्थिति रहती थी। कभी अनिवार्य राज्यकार्य से परवश होकर महाराज से विदा लेने का प्रसंग आने पर माता को बिछड़ते हुए पुत्र के समान नरेश की आंखों में से आंसू वहते थे धन्य है ऐसी गुरुभक्ति! युवराज कुमार साहेव रणजीतसिंहजी पूज्यवर्य के परमभक्त थे। वे कई समय महाराज की सेवा में उपस्थित होकर आत्महित के तत्त्वों को पूछते हुए महाराज की सेवा में ही दीर्घ समय व्यतीत करते थे। तारंगाजी से महाराज का विहार होने का समाचार जानकर कुमार साहेब से रहा नहीं गया, वे पूज्यश्री के चरणों में उपस्थित होकर (अश्रुपात करते हुए) महाराज से निवेदन करते हैं कि स्वामिन्! पुन: कब दर्शन मिलेगा? कितनी अद्भुत भक्ति थी यह! पूज्यश्री ने आज गुजरात में जो धर्मजागृति की है वह "न भूतो न भविष्यति" है। गुजरात में जैन क्या, जैनेतर क्या, हिन्दु क्या, मुसलमान क्या, उनके चरणों के भक्त थे। अलुवा, माणिकपुर, पेथापुर, डूंगरपुर, बांसवाडा, खांदु आदि अनेक राज्यों के अधिपति आपके सद्गुणों से मुग्ध थे। पिछले दिनों वड़ोदा राज्य में आपका अपूर्व स्वागत हुआ। राज्य के न्यायमन्दिर में स्टेट के प्रधान सर कृष्णमाचारी की उपस्थिति में आचार्यश्री का सार्वजनिक तत्वोपदेश हुआ था।

गुजरात से विहार कर महाराज श्री ने राजस्थान के वाग्वर प्रांत को पावन किया। विक्रम सं० २००१ में आपका पदार्पण धरियावद हुआ। इसी वर्ष धरियावद में ५१ वर्ष की उम्रमें आषाढ़ कृष्ण ६ रविवार दिनांक १–७–१९४५ को समाधि मरण पूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। ऐसे महान प्रभावशाली आचार्य के निधन से समग्र दिगम्बर जैन समाज को गहरा आघात पहुंचा। दिगम्बर जैन समाज पर यह घटना अनभ्र वज्रपात मानी गई। मैं उन महान् त्यागमूर्ति आचार्य श्री के चरणों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

आचार्य श्री पायसागरजी महाराज

आपका जन्म पैनापुर में फाल्गुन शुक्ला पंचमी वीर नि० सं० २४१५ शक सं० १८९० को हुआ था। आपने गोकाक के जैन मन्दिर में श्रीमद् आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज से कार्तिक सुदी ४ वीर सं० २४५० सन् १९२३ में ऐलक दीक्षा ली। सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर आचार्य श्री से वी० सं० २४५६ में मुनि दीक्षा ग्रहण की।

१२-१०-५६ में आपने अपना आचार्य पद मुनि अनन्तकीर्तिजी को सौंप दिया तथा स्तवननिधी तीर्थक्षेत्र पर समाधि पूर्वक शरीर को छोड़ा। आप कुशल वक्ता दीर्घ तपस्वी और कुशल आचार्य थे। आपने अनेकों श्रावकों को दीक्षा देकर सत्पथ में लगाया। धन्य है आपका जीवन।

मुनिश्री मल्लिसागरजी महाराज

मुनि श्री १०८ मल्लिसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम मोतीलालजी था। आपका जन्म ७७ वर्ष पूर्व नांदगांव में हुआ था। आपके पिता श्री दौलतरामजी व माता श्रीमती सुन्दरबाईजी हैं। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण व सेठी गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह नहीं किया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे।

ऐलक पन्नालालजी के उपदेश श्रवण के कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जागृत हुई। परिणामत: आपने विक्रम संवत १९८७ में सिद्धवरकूटजी क्षेत्रपर आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ले ली। आप घोर तपस्वी, चारित्र शिरोमणि मुनि रत्न हैं। आपने सिद्धवरकूट, बड़वानी आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की।

❖

मुनि श्री चन्द्रकीर्तिजी महाराज

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके ।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः ।। सोमदेवाचार्य ।।
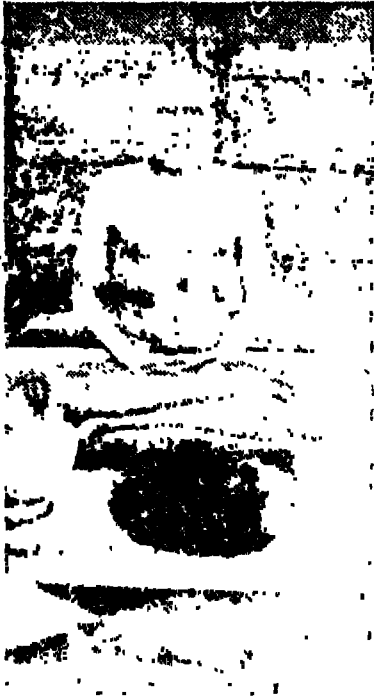
भावार्थ—इस कलिकाल में भी, जब कि लोगों के चित्त में चंचलता है, शरीर अन्न का कीड़ा है, जिनेन्द्र देव के वीतरागी नग्न स्वरूप को धारण करने वाले महापुरुष मौजूद हैं जो कि एक आश्चर्य ही है ।

भूतपूर्व राजपूताना वर्त्तमान नाम राजस्थान प्रदेश के अन्तर्गत अलवर नगर में जो कि वर्षों एक स्वतन्त्र रियासत थी अग्रवाल जातीय दिगम्बर जैन धर्मावलम्वी लाला सेढ़मलजी निवास करते थे । आपके ४ भाई और थे, जिनके नाम जवाहरलालजी छोटेलालजी गुलाबचन्दजी और कालूरामजी हैं । सेढ़मलजी की धर्मपत्नी का नाम श्री रुक्मिणी देवी था । इन पांच भाइयों में केवल एक सेढ़मलजी के ही पुत्र जन्म हुआ । पौष कृष्णा नवमी संवत् १९५० के शुभ दिन में यह घटना हुई । सारे परिवार में आनन्द छा गया क्योंकि एक अपूर्व लाभ हुआ था । नवजात शिशु का नाम श्री कनकमल रक्खा गया और बड़े प्यार से इन्हें पाला पोसा गया । कनकमलजी को साधारण शिक्षा ही मिली । अधिक शिक्षा यों न मिल सकी कि वे सारे परिवार के प्रिय थे । लाड प्यार में बचपन बीता । बालक कनकमल बचपन से ही धर्म साधन में भी लीन रहते थे । बचपन से ही सारा समय धर्म श्रवण, पूजा और स्वाध्याय आदि में लगाये रहते थे । विवाह के लिए भी आग्रह आप से किया गया परन्तु आपने उस प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया । सदैव धर्म कार्य में लीन रहना और भरत चक्रवर्ती की तरह घर में रहते हुये भी उससे उदास रहना इनकी चर्या थी । दैवयोग से पूज्यपाद आचार्य परमेष्ठी श्री १०८ श्रीशांतिसागरजी महाराज का संघ अलवर के पास तिजारा नगर में आया । आप वहां पहुंचकर संघ को अलवर बड़े अनुरोध से

लिवा ले गये और आपने अलवर में ही आचार्य महाराज से ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेली । दो वर्ष बाद ही आपने उदयपुर में क्षुल्लक दीक्षा लेली और थोड़े दिन बाद ही आप ऐलक भी बन गये ।

लाला परसादीलालजी पाटनी महामंत्री भारतवर्षीय दि० जैन महासभा ने सीकर में निज द्रव्य से पंच कल्याणक प्रतिष्ठा विक्रम संवत् २००४ में कराई । आप भी वहां गये थे वहीं आपने आचार्य महाराज से परोक्ष आदेश प्राप्त कर दिगम्बर दीक्षा धारण करली । आप सदैव रोग युक्त भी रहते हैं । आपके कंठ से भोजन भी नहीं निगला-जाता तो भी आप अपनी तपो निष्ठा में लीन रहते हैं । अनेक उपवास करते हैं । अनेक कठिन से कठिन सिंहनिःक्रीड़ितादि व्रत करते हैं । आपने अनेक स्थानों में विहार कर धर्म की बड़ी प्रभावना की है । आपका उपदेश बड़ा ही हृदयग्राही होता है । आपका अस्थिमात्र शुष्क निर्बल शरीर किन्तु उसमें रहने वाली महान् आत्मा की विशेषता देखकर दंग रह जाना पड़ जाता है और दर्शनमात्र से ही अनेक भक्त मुमुक्षु प्राणी धर्म के सन्मुख हो जाते हैं । इस समय आपका विहार नागपुर प्रान्त में हो रहा है । आप बड़े भारी तपोनिष्ठ, वीतरागी, शत्रुमित्र समभाव निश्चित दिगम्बर जैन साधु हैं । मेरी उक्त मुनि महाराज के चरणों में त्रिविध शुद्धि से बारंबार प्रणमांजलि है ।

मुनि वर्धमानसागरजी महाराज (दक्षिण)

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर बेलगांव जिले के चिकौड़ी तालुका के भोजग्राम में पू० मुनि श्री का जन्म हुवा था। आपके पिता का नाम भीमगौडा तथा माता जी का नाम सत्यवती था। आपका पूर्ण नाम कुम्भगौड़ा था। आप आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज के छोटे भाई थे। बचपन से ही धार्मिक वृत्ति के थे। आपने अनेकों उपवास किए तथा आचार्य श्री के समान उग्र तपश्चरण कर समाधिमरण किया। धन्य है उन महान त्यागी को जिन्होंने त्याग मार्ग को अपनाया।

मुनि श्री धर्मसागरजी महाराज

मुनि श्री का जन्म सं० १९५७ में पाछापुर जि० बेलगांव, मैसूर स्टेट में श्री कल्लप्पा के गृह में हुआ था। आपकी माता का नाम ज्ञानमति था। आपने कानड़ी में ही शिक्षा प्राप्त की थी। तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की यात्रा को आप गये तब आपके मन में दीक्षा लेने के भाव हुए तथा तिजारा राजस्थान में क्षुल्लक दीक्षा ली। आपका नाम क्षु० यशोधर रक्खा गया। गजपन्था तीर्थक्षेत्र पर आपके परिणामों की निर्मलता अधिक देखकर गुरुवर्य ने ऐलक दीक्षा दी। पालीताना क्षेत्र पर आपको मुनिदीक्षा दी, तब आपका नाम धर्मसागर रखा गया। आपके गुरु आ० शान्तिसागरजी थे। आप संस्कृत, मराठी, हिन्दी, कन्नडी, तमिल आदि भाषा के अधिकारी विद्वान थे। आपने धर्म प्रचार के लिए सर्वस्व त्याग किया। आप आचार्यश्री के संघ में तपस्वी साधु थे। अन्त समय तक धर्म प्रचार में रत रहे। अन्त में समाधि को धारण कर आत्म कल्याण किया।

आचार्य श्री सुधर्मसागरजी महाराज

श्री १०८ आचार्य सुधर्मसागरजी महाराज का गृहस्थ अवस्था का नाम नन्दलालजी था। आपका जन्म चावली (आगरा) वि० सं० १९४२ में भाद्रपद शुक्ला दशमी यानी सुगन्ध दशमी के दिन हुआ था।

शिक्षा और विवाह :

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गांव में ही हुई। इसके बाद आपने दिगम्बर जैन महाविद्यालय मथुरा और सेठ हीराचन्द्र गुमानचन्द्र जैन बोर्डिंग हाउस बम्बई में रहकर शास्त्री (सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, साहित्य) का अध्ययन किया और जैन महासभा तथा बम्बई परीक्षालय की परीक्षा देकर शास्त्री उपाधि प्राप्त की।

सामाजिक-धार्मिक कार्य :

आपने अपने अमित अध्ययन, अनुभव, अभ्यास, अध्यवसाय से हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। आप श्रेष्ठ वक्ता और सुयोग्य लेखक तथा टीकाकार एवं सम्पादक थे। सामाजिक-धार्मिक विषयों पर आपने सुरुचिपूर्ण लघु पुस्तकें भी लिखीं। आप कवि थे, आपकी कतिपय पूजन आज भी समाज में अतीव चाव से पढ़ी जाती हैं। आपने ईडर और बम्बई में रह कर वहां के शास्त्र भण्डारों को सम्हाला। आपने ज्ञान का लाभ समाज को दिया। आपने अनेक भीलों से मांस भक्षण छुड़ाया, शिकार खेलना वन्द करवाया। ठाकुर कुरासिंह को जैन ही नहीं बनाया वल्कि उनके द्वारा जैन मन्दिर भी बनवाया।

आपने ईडर तारंगा में मनोज्ञ मूर्तियां विराजमान कराई। आप महासभा के सर्वदा सहायक रहे। समाजरत्न, संघभक्त, सुप्रसिद्ध सेठ पूनमचन्द्र घासीलाल जवेरी परिवार को धार्मिक

बनाने का सर्व श्रेय आपको ही है। आपने चारित्रचक्रवर्ति श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज से द्वितीय प्रतिमा ली थी आपके ही प्रयत्न से सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर आचार्यश्री का ससंघ विहार हुआ था और संघपति सेठ पूनमचन्द्रजी घासीलालजी द्वारा अतीव समारोह पूर्वक पंचकल्याणक महोत्सव भी हुआ था। वि० सं० १६८४ में सम्मेदशिखर में आपने आचार्य शान्तिसागरजी से ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रत ले लिये। अब आपका नाम ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द्र हो गया। इस समय आपने दो घण्टे तक जैन धर्म का धारावाहिक तात्विक विवेचन भी किया था।

कुण्डलपुर क्षेत्र में आपने दशम प्रतिमा के व्रत स्वीकार किये और कुछ काल बाद आचार्यश्री से ही क्षुल्लक दीक्षा ले ली और आपका नाम क्षुल्लक ज्ञानसागर हो गया। आत्मकल्याण के साथ ही आपने कुछ ग्रन्थों की टीकायें लिखीं, जिनमें रयणसागर, पुरुषार्थानुशासन, रत्नमाला, उमास्वामी श्रावकाचार के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने गुजराती में जो ग्रन्थ लिखे उनमें जीव-विचार, कर्म विचार प्रमुख हैं। आपके ही आदेश से आपके भाईयों ने पंचपरमेष्ठियों के स्वरूप की बोधक ३ फीट ऊँची प्रतिमाएं गजपन्था में विराजमान कराई तथा देहली के धर्मपुरा में भी अष्ट प्रातिहार्य युक्त ३ फीट ऊँची प्रतिमा आपकी प्रेरणा से भाईयों ने विराजमान कराई।

संघ-हित श्रेष्ठ कार्य :

क्षुल्लक ज्ञानसागरजी ने संघ-हित एक श्रेष्ठ कार्य यह किया कि उन्होंने सभी मुनिराजों को संस्कृत का अध्ययन कराया, क्षुल्लक व ऐलकों को भी संस्कृत शिक्षण लेने के लिए कहा। आचार्य शान्तिसागरजी आपके इस सत्कार्य की सराहना करते थे। तपोनिधि आचार्य कुन्थुसागरजी ने जो संस्कृत में ग्रन्थ लिखे उसकी पृष्ठ भूमि में आपकी मनोभावना थी। अध्यापन के साथ संघ के हित में आपने अनुभवी वैद्य का भी कार्य वैसे ही किया जैसे आपके पिताजी पड़ौसियों के लिए सहज भाव से करते थे।

मुनि और आचार्य :

जब प्रतापगढ़ में सेठ पूनमचन्द घासीलालजी ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई तब केवलज्ञान कल्याणक के समय आपने फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी वीर निर्वाण संवत् २४६० में श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी से मुक्तिदायिनी मुनि दीक्षा लेली। आचार्यश्री ने आपको सुधर्मसागर कहकर सम्बोधित किया। आपके साथ ही क्षुल्लक नेमिकीर्तिजी, मुनि आदिसागर बने और ब्र० सालिगरामजी क्षुल्लक अजितकीर्तिजी बने थे। यह कार्य लगभग चालीस हजार मानव मेदिनी के समक्ष हुआ। अब आप समन्तभद्र आचार्य के शब्दों में विषयवासना से परे ज्ञान-ध्यान, तप-रत साधु हो गये थे।

संघ के समस्त कार्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी ने आपको ही सौंप रखे थे अतएव उन्होंने आपकी अनिच्छा होते हुए भी आपको आचार्य पद सौंप दिया, आपने बहुत अनुनय-विनय की और पद से

मुक्ति चाही, पर आचार्य श्री ने आपको ही अपना उत्तराधिकारी वनाया। पौष शुक्ला दशमी रविवार को आप अनेक मुनिराजों, व्रतियों तथा अनेक स्थानों की समाज के समक्ष आचार्य घोषित किये गये। इस समय अनेक विद्वान, श्रेष्ठ राज्याधिकारी उपस्थित थे। सभी ने ताली बजाकर नाम की जय वोल कर आपको अपना आचार्य माना। कुशलगढ़ जैन समाज के इस कुशलतादायी कार्य की सभी ने सराहना की।

समाधिमरण व शोभा यात्रा :

आपने आचार्य पद पर आसीन रहते संघ को अनुशासनवद्ध किया। झाबुआ निवासियों से आचार्यश्री के रूप में आपने दो माह पहले ही कह दिया था कि अव मेरा शरीर अधिक से अधिक दो माह तक टिकेगा। आप सर्वदा धार्मिक कार्यो में सावधान रहते थे। समाधिमरण के लिए तैयारी कर रहे थे। पौष शुक्ला द्वादशी सोमवार वि० सं० १९९५ में, जव दोपहर को संघ के साधु आहारचर्या से आये तव उन्होंने आचार्यश्री की समाधि वेला समीप देखी, आपको क्षयरोग था पर दो दिन से वह था भी; इसमें सन्देह होने लगा था। तीन दिन पहले से आपने खान-पान, प्रमाद-जनित क्रियाओं को त्याग दिया था। अन्तिम समय में आपने जिनेन्द्रदर्शन की इच्छा प्रकट की तो भट्टारक यशकीर्ति ने भगवान आदिनाथ के दर्शन कराये। आपने गद्गद् हो भक्ति भाव लिये कहा हे प्रभो! मेरे आठों कर्म नष्ट हों और मुझे मुक्तिश्री मिले। इसी दिन संध्या के समय अत्यन्त सावधानी के साथ आपने समाधिमरण का लाभ लिया।

श्री १०८ आचार्य सुधर्मसागरजी के स्वर्गवास का समाचार क्षणभर में दाहोद, इन्दौर, रतलाम, थोंदला, झाबुआ आदि स्थानों पर पहुंचा। अतीव साज सज्जा के साथ पदमासन में आचार्य का दिव्य शरीर नगर के प्रमुख मार्गों में से निकला। संघ स्नात पं० लालारामजी जलधारा देते विमान के सबसे आगे थे। मुनि और आर्यिका, श्रावक और श्राविका का चतुर्विध संघ साथ था। एक ब्राह्मण ने आचार्य श्री की पूजा की, शंखनाद कर उनको स्वर्गवासी घोषित किया। शास्त्रोक्त पद्धति से दाह-संस्कार हुआ। शोक सभा में पं० लालारामजी ने भाषण ही नहीं दिया बल्कि उनके पदचिन्हों पर चलने के लिए द्वितीय प्रतिमा के व्रत भी लिये जहां आपका अन्तिम संस्कार हुआ था वहां तीन दिन वाजे वजे, जागरण-भजन कीर्तन हुए, महाराज की पूजा हुई।

घोषणा :

राज्य की ओर से घोषणा हुई कि आचार्य सुधर्मसागरजी का स्मृतिदिवस मनाने के लिए अवकाश रहेगा, हिंसा नहीं होगी। संघ की ओर से घोषणा हुई, आचार्यश्री के स्मृति-दिवस पर प्रतिवर्ष रथोत्सव होगा। मुनिसंघ ने स्वेच्छा से सुधर्मसागर संघ की स्थापना करने का भाव प्रकट किया।

❖

मुनि श्री नेमसागरजी महाराज

पूज्य श्री का जन्म कुडची ग्राम (बेलगांव–दक्षिण) में हुआ था। आपके पिता का नाम अंराणा और माता का नाम शिवदेवी था। आप तीन भाई थे, एक भाई की पैदा होते ही मृत्यु हो गई थी, दूसरे भाई की मृत्यु सात आठ वर्ष की अवस्था में हुई थी। आप ज्येष्ठ थे। माता की मृत्यु के समय आपकी अवस्था लगभग १२ वर्ष की थी। माता सरल परिणामी, परोपकाररत साधु स्वभाव वाली थी। दीन जनों पर माता का बड़ा प्रेम था। आपके पिता बहुत बलवान थे। पांच छै गुन्डी पानी का हंडा पीठ पर रखकर लाते थे।

आपका बचपन वास्तव में आश्चर्यप्रद है। आप ग्राम के मुसलमानों के बड़े स्नेहपात्र थे। मुस्लिम दरगाह में जाकर पैर पड़ा करते थे और सोलह वर्ष की उम्र तक वहां जाकर अगरबत्ती जलाना और शक्कर चढ़ाया करते थे। जब आपको धर्मबोध हुआ तो आपने दरगाह वगैरह क्षेत्र में जाना बन्द कर दिया, इससे मुसलमान काफी नाराज हुए और आपको मारने की सोचते लगे। ऐसी स्थिति में आप कुडची ग्राम से चार मील दूर ऐनापुर गांव में चले गये। यहां के पाटिल से आपका काफी सौहार्द था। ऐनापुर गांव में आप रामू (कुन्थु सागरजी) तथा एक और व्यक्ति मिलकर ठेके पर जमीन लेकर खेती करने लगे।

आपकी सांसारिक कार्यों से अरुचि थी। आप इनको दु:खमय मानते थे और आपकी इनसे छूटने के उपाय—मुनि मार्ग की तरफ रुचि थी और बाल्यावस्था में ही मुनि बनना चाहते थे। धीरे-धीरे इनकी इच्छा बलवती हो गई। आप ज्योतिषियों से पूछा करते थे कि मैं मुनि कब बनूंगा। मेरी यह इच्छा पूरी होगी या नहीं ?

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज से आपने गोकाक नगर में क्षुल्लक दीक्षा और समडोली में मुनिदीक्षा ली थी।

क्षुल्लक श्री चन्द्रकीर्तिजी महाराज

आपका जन्म सम्वत् १९५० मिती पौष वदी ६ को अलवर (राज०) शहर में प्रधान जैन-जातीय अग्रवाल-गोत्रीय वंश में हुआ है। जन्म-नाम ऋषभदास है। पूज्य मातेश्वरी का नाम रुक्मिणी देवी और पिता का नाम सेढ़मल था। ये जवाहरमलजी, छोटेलालजी, गुलाबचन्द्रजी, कालूरामजी इसप्रकार ५ सहोदर भ्राता थे। आप इकलौते पुत्र होने के कारण बड़े ही लाड़-चाव में पले। आपकी चाचीजी ने लाड़ के कारण ही कनक (सोना) नाम डाल दिया। अतएव आपका कनकमल नाम ही प्रख्यात हुआ। सं० १९५३ में ही आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। परिवार का विशेष प्यार होने के कारण आपकी शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया गया, परन्तु बाल्यावस्था से ही प्रत्येक कार्यों में आपकी बुद्धि बड़ी ही प्रखर थी। सं० १९६९ में जब यहां क्षुल्लक जानकीलालजी का चातुर्मास हुआ, तब आप उन्हीं की सेवा में विशेष संलग्न रहने लगे तथा बाजार की मिठाई वगैरह अशुद्ध वस्तुओं का खान-पान त्याग दिया। ब्राह्मण वैश्य के सिवा अन्य स्पर्शित जल के पीने का भी त्याग कर दिया। और आजन्म ब्रह्मचर्य से रहने का दृढ़ संकल्प कर लिया। कुटुम्बी जनों ने विवाह के अनेक प्रयत्न किये, परन्तु आप अपने विचारों पर अटल ही रहे और स्वतन्त्र कपड़े का व्यवसाय कर न्यायोपार्जित द्रव्य संचय करते हुए धर्मध्यान, स्वाध्याय, जातीय एवं सामाजिक कार्यों में ही अधिक समय लगाने लगे। सं० १९७५ में पूज्य मातेश्वरी का वियोग हो गया। आपका चित्त संसार से बहुत ही उदासीन रहने लगा। सं० १९८३ में आपने श्रीसम्मेदशिखरजी की वन्दना की। आप व्यर्थ व्यय के तीव्र विरोधी थे। हाँ धार्मिक कार्यों में बड़े ही उदार-चित्त थे। आपने रविव्रत व रत्नत्रय व्रत के उद्यापन किये। व्यर्थ समझ २५०) रु० के करीब उपकरण, परदे आदि श्री मंदिरजी में ही विशेष भेंट किये। आप 'श्री दि० जैन संस्कृत पाठशाला' अलवर के मुख्य संचालक एवं कोषाध्यक्ष थे। पाठशाला के विद्यार्थियों को व भाद्रपद मास में व्रतविधान, उपवासादि करनेवाले व्यक्तियों को आप प्रायः प्रीतिभोज दिया करते थे। सं० १९८४ में श्रीसम्मेदशिखरजी में परम पूज्य तपोनिधि, आचार्यवर्य का संघ पधारा और वहाँ आदर्श पंचकल्याणक महोत्सव होने के समाचार प्रायः देश के कौने कौने में फैल गये। आपने भी सुने तो दर्शनों की प्रबल इच्छा हो गई तथा अन्य लोगों से भी चलने का आग्रह किया। तब १०५ यात्रियों सहित सकुटुम्ब शिखरजी पहुंचे। अन्यत्र भी यात्रा करते हुए करीब तीन मास में आप वापिस आये। आने के तीन दिवस पश्चात् ही

आपके पूज्य चाचा गुलाबचन्द्रजी का स्वर्गवास हो गया। इनकी सम्पत्ति के अधिकारी आप ही हुए, परन्तु आपने कुल सम्पत्ति से जैन धर्मशाला में, जो कि श्री दि० जैन अग्रवाल मन्दिर के सामने है, ऊपर अत्यन्त रमणीक विशाल कमरा वनवा दिया, जिसका नाम 'आनन्द-भवन है'। आपका लक्ष्य सदैव जैन-जाति व धर्म की उन्नति की तरफ ही विशेष रहता था। दुकान पर भी प्रायः जैन व्यक्तियों को ही नौकर रखते थे और उनके साथ पूर्ण सहानुभूति व उनके सुख-दुःख में पूर्ण प्रेम रखते थे। आपके पास जितने भी व्यक्ति रहे, उन्होंने काफी उन्नति प्राप्त की तथा अव भी स्वतन्त्र कार्य कर रहे हैं और सदैव आपका ही गुणगान करते हैं। आपकी महान् उदारता का एक परिचय यह है कि 'श्री दि० जैन औषधालय' अलवर में चिरंजीलाल "आनन्द" जैनाग्रवाल नाम के स० वैद्य थे। अलवर महाराजा की रजत-जयन्ती के समय औषधालय की वनौषधि चित्र-प्रदर्शनी होने वाली थी, तब घर में इनकी वृद्ध माताजी को निमोनिया होगया, परन्तु आवश्यक कार्य से रात्रि को ही जयंती स्थान पर जाना पड़ा। सरदी का समय था। ८–१० दिन वाद ही इनको भी वायु का रोग हो गया। उस समय इनके कुटुम्व वाले (रिश्तेदार) तो धन के लालच से कुछ भी सेवा-सुश्रुषा में कार्य न आये। उनके दिली भाव ये ही थे कि अच्छा है यदि मृत्यु होजाय। ये दुःखद समाचार आपको विदित हुए, तो आपने व स्थानीय प्रधानाध्यापक पं० जिनेश्वरदासजी जैन वैद्यशास्त्री ने निश दिन दो माह तक अकथनीय परिश्रम किया। आपके कुटुम्वी एवं अन्य सज्जनों ने, आप दोनों धर्मवीरों को इनके पास आने में भी, यह रोग उड़ना है इत्यादि अनेकों भय वताये, परन्तु आपने अपना तन-मन-धन लगाकर अनेकों वैद्य-हकीम-डाक्टरों से चिकित्सा कराई और उन्हें असाध्य रोग से बचाकर नवजीवन प्रदान किया। आरोग्य हो जाने पर आपने आग्रह करके अपनी ही दुकान में आधा साझा कर दिया था। आप ही के सुप्रयत्न एवं कृपा से बाहर के कई अग्रवाल वैष्णव गृह भी जैनधर्म के अनुयायी एवं कट्टर श्रद्धानी (संस्कारित) हो गए थे। कतिपय अलवर में ही आकर स्वतन्त्र व्यापार करते हुए धर्म में पूर्ण संलग्न हैं।

सं० १९८८ के कार्तिक में पूज्य आर्यिका श्री चन्द्रमतीजी का अलवर में शुभागमन हुआ। तव आपने दो प्रतिमाएं ग्रहण कीं। इसी समय परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) महाराज का संघ तिजारा आया, तव आपने संघ को सानन्द व प्रभावना के साथ अलवर की तरफ लाने की आयोजना की और प्रमुख व्यक्तियों को लेकर मोटर—लारी रिज़र्व कर तिजारा पहुंचे। वहाँ पहुंचने के द्वितीय दिवस ही पूज्य आचार्यश्री को आहार-दान दिया। इसके हर्षोपलक्ष्य में आपने श्री आचार्य महाराज की पूजन छपवा कर मुफ्त वितरण की। सघ को सानन्द अलवर लाये। शहर से दो मील दूर नशियांजी में संघ विराजा। आपने कुटुम्ब व मित्रगणों से भी रंच मात्र सम्मति न ली और आचार्य-चरणों में प्रातःकाल शुभ मिती चैत्र कृष्णा १३ सं० १९८८ को सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण

कर लिये। आपने कुल कार्यभार साझी पर ही छोड़ दिया व हर समय धर्मध्यान, स्वाध्याय आदि में ही समय व्यतीत करने लगे। सं० १९८९ का चातुर्मास आपने जयपुर (राज०) में श्री आचार्यवर्य के चरणों में ही व्यतीत किया। इसी वर्ष पं० चिरंजीलालजी जैन वैद्य को साथ लेकर आपने गिरनार, पालीताना आदि तीर्थो की यात्रा को थी। सं० १९९० का चातुर्मास व्यावर श्री आचार्य महाराज के चरणों में बिताया। वहां से श्रीसम्मेदशिखरजी पंचकल्याणोत्सव में पहुंचे। पुन: आपने निजी द्रव्य से श्रीपंचकुमारस्वामी की श्वेत पाषाण की एक प्रतिमा बहुत ही मनोज्ञ तैयार करवाई, प्रतापगढ़ (राज०) में पंचकल्याणक-बिम्बप्रतिष्ठा-महोत्सव में पधारकर उसकी प्रतिष्ठा करवाई और अलवर के श्री दि० जैन अग्र० बड़े मंदिर में विराजमान की। उसी समय समस्त पंचों को एकत्रित कर नवीन वेदी बनवाने के अपने विचार प्रकट किये तो पंचों ने मंदिर में ही एक तरफ वेदी बनवाने की स्वीकृति आपको दे दी।

चैत्र शुक्ला १० सं० १९९१ के शुभ दिन वेदी के नीचे की नींव का मुहूर्त्त आप ही के कर-कमलों द्वारा बड़े ही समारोह के साथ हुआ। इसप्रकार आपने निजी न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग किया।

पंचकुमारस्वामी के दर्शन कर स्थानीय भौरेंलालजी हलवाई के बहुत ही विशेष भाव चढ़ गये। इन्होंने उक्त वेदी के बनवाने में निजी दस हजार रुपया के लगभग सम्पत्ति लगाकर बड़ी ही रमणीक मंदिर में ही चैत्यालय के रूप में वेदी तैयार करवाई। पश्चात् वि० सं० १९९३ में वेदी-प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से की गई। यह सब आप ही की महत् कृपा का फल था। वि० सं० १९९१ में उदयपुर में परमपूज्य श्री आचार्य-चरणों में ही चातुर्मास किया और शुभ मिती कार्तिक शुक्ला १३ को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। नाम-संस्करण 'चन्द्र-कीर्ति' हुआ। यहां से आप श्रीमान् धर्म-वीर सेठ सखाराम जी दोशी के आग्रह एवं श्री आचार्य की आज्ञा से अन्य पूज्य क्षुल्लकों के साथ शोलापुर पंचकल्याणक-महोत्सव में पधारे। आप तीर्थ-यात्रा के बड़े ही प्रेमी हैं। गृहस्थावस्था में ही तीन बार श्रीशिखरजी एवं गिरनारादि की वंदना आप कर चुके हैं तथा देहली, रेवाड़ी, गया, आगरा आदि अनेकों स्थानों की बिम्ब-प्रतिष्ठाओं में पहुंचे हैं। श्री महावीरजी की यात्रार्थ तो आप प्रति वर्ष ही जाते थे। आप बड़े ही परोपकारी एवं सहनशील हैं तथा खानपान क्रियाओं में पूर्ण शुद्धि के कट्टर श्रद्धा वाले हैं। आप श्रीआचार्य चरणों के परम भक्त हैं। आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। भोजन के समय तो अत्यन्त ही वेदना रहती है, तथापि आप इसकी रंच-मात्र भी परवाह नहीं करते।

क्षु० श्री धर्मसागरजी महाराज

(कुरावड़ निवासी)

महाराणा प्रताप की वीर भूमि मेवाड़ प्रान्त के कुरावड़ ग्राम में आपका जन्म हुवा था। पिता का नाम राधाकृष्ण था, माँ का नाम हीरावाई था। पौष सुदी दशमी संवत् १९३७ को चुन्नीलाल का जन्म हुवा था। आपका जन्म ब्राह्मण कुल में हुवा था। विवाह होने के कुछ वर्ष पश्चात् आ० क० चन्द्रसागरजी महाराज का आगमन हुवा तब आपने मुनि श्री के प्रवचन सुने तथा उसी समय आपने जैन धर्म को स्वीकार कर श्रावक के व्रत धारण किए जब परिवार वालों ने सुना कि चुन्नीलाल ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया है तो परिवार वालों ने उन्हें जाति से बाहर कर दिया। पर आपने अपने मन से जैन धर्म को नहीं छोड़ा तथा आप सपत्नीक व्रतों को धारण कर आत्म कल्याण में लग गये। समय के अनुसार पत्नी का वियोग हो गया तब आपने मुगेड़ में महाराजजी से सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किए। आ० शान्तिसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। दीक्षा लेने के पश्चात् आपने बागड़ प्रान्त में विहार किया तथा अनेक भीलों को मांस खाने का, शराब पीने का त्याग कराया। भीण्डर नरेश ने रात्रि में भोजन नहीं करेंगे, ऐसा नियम लिया था। तथा हमारे प्रान्त में आठम, ग्यारस, चौदस, अमावस एवं पूनम को जीव हिंसा नहीं होगी। आपके द्वारा बागड़ प्रान्त में सैंकड़ों पाठशालाएँ, गुरुकुल खुलवाये गये तथा विधवा विवाह आदि का त्याग कराया तथा अन्त समय तक धार्मिक कार्यों के प्रचार प्रसार में लगे रहे। आप बागड़ प्रान्त के प्राण थे।

आर्यिका विद्यावती माताजी

सिकन्दरपुर (मुजफ्फरनगर) यू० पी० में श्रेष्ठी श्री फूलचन्दजी के घर पर जन्म लिया। आपका पूर्व नाम श्री सज्जोदेवी था। आपकी जाति अग्रवाल थी। आप लौकिक शिक्षा के साथ व्याकरण न्याय, सिद्धान्त की अधिकारी साध्वी थीं।

आपने शास्त्री परीक्षा भी पास की थी। आचार्य श्री शान्तिसागरजी के उपदेश से वैराग्य हुवा तथा परिवार का मोह छोड़ करके सं० १९९० में सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किए, सं० १९९८ में आचार्य श्री शान्तिसागरजी से दहीगांव में क्षुल्लिका दीक्षा ली। स० २००८ दहीगांव में आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा ली। आपने ४० चातुर्मास यत्र तत्र कर धर्म प्रभावना की। आपने सोलह कारण, कर्मदहन, दशलक्षण धर्म आदि के व्रत लेकर उपवास आदि किए। आप बड़ी ही तपस्वी साध्वी के रूप में समाज के सामने आई।

आर्यिका चन्द्रवती माताजी

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति-सागरजी महाराज ने केशरवाई को दीक्षा देते समय कहा था कि नमूना तो बनो। उस समय तक कोई स्त्री दीक्षित नहीं हुई थी। परमपूज्य आचार्य महाराज वारम्वार प्रार्थना करने पर भी दीक्षा नहीं देते थे परन्तु उन्होंने केशर वाई को सत्पात्र विचार कर एक ही दिन के वाद दीक्षा देकर कृतार्थ किया।
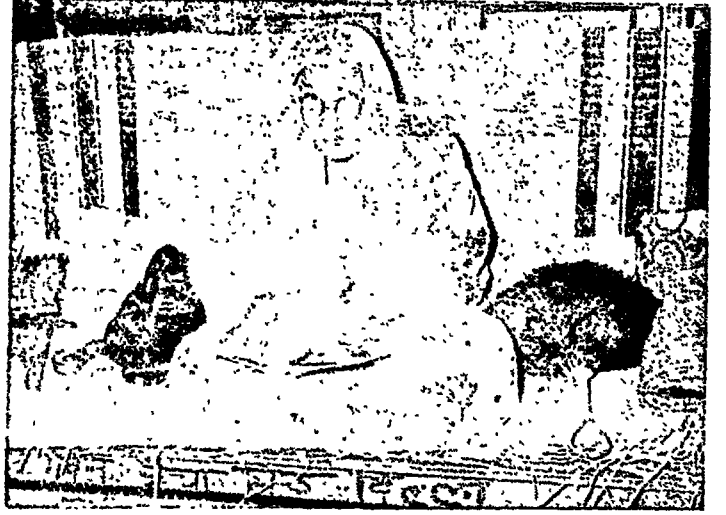
संयम के सुवास से समलंकृत सत्य एवं श्रद्धा की मूर्तिमान स्वरूपा परमपूज्य आर्यिका श्रेष्ठ माता चन्द्रवतीजी के गृहस्थावस्था का नाम केशर बाई था।

वे वाल्हे गांव (जिला–पूना) की हैं। उनका विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में हुआ था। उनका शरीर वड़ा वलशाली था। जो भी उनके सुदृढ़ शरीर को देखता था वह उससे प्रभावित हो जाता था।

इन्होंने प्रारम्भ में वम्वई के श्राविकाश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण की। उसकी संचालिका महिलारत्न मगनवाई और उनकी सहायिका कक्कूवाई और ललितावाई थीं।

पर पिताजी ने इन्हें घर पर ही बुलाकर पं० नानाजी नाग के तत्वावधान में इन्हें शिक्षा दिलाई।

माताजी को व्रत उपवास करने में वड़ा आनन्द आया करता था। उन्होंने चारित्र शुद्धि व्रत को, जिसमें १२३४ उपवास होते हैं, किया था। इन्होंने अनेक प्रकार के तप किये।

पूज्य माताजी का जन साधारण पर उनकी पवित्रता के कारण वड़ा प्रभाव पड़ता है। दिल्ली के सुप्रसिद्ध नये मन्दिरजी में शुभवर्णी सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण इनकी और इनके साथ रहने वाली माताजी विद्यामतीजी की प्रेरणा से हुआ।

दि० जैन लालमन्दिरजी के उद्यान में सुन्दर मानस्तम्भ भी इन्हीं दोनों की प्रेरणा से ही शोभायमान हो रहा है।

माताजी का स्वभाव वड़ा सरल है। उनकी वाणी में मधुरता है। निर्दोप संयम पालने से आत्मा में अद्‌भुत् शक्तियां विकसित होती हैं।

जैन समाज का भाग्य है कि अत्यन्त पवित्र हृदय वाली भद्र परिणाम युक्त आत्मकल्याण में सतत् सावधान रहने वाली माताजी, सर्वश्रेष्ठ और ज्येष्ठ तपस्विनी के रूप में शोभायमान हो रही है। १०१ वर्ष की आयु में भी व्रत नियम और चर्या के पालन करने में समर्थ हैं।

अभी माताजी का दिल्ली महिलाश्रम, दरियागंज, दिल्ली में स्वर्गवास हो गया।

आर्यिका सिद्धमती माताजी

स्वर्गीय श्री १०५ आर्यिका सिद्धमतीजी का पहले का नाम सतोबाई था। आपका जन्म विक्रम सं० १९५० के आश्विन मास में हुआ था। भारत की राजधानी देहली को आपकी जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके पिता का नाम लाला नन्दकिशोर था तथा माता का नाम कट्टो देवी था। आप अग्रवाल जाति की भूपण और सिंहल गोत्रज थीं। आपका विवाह ८ वर्ष की अल्पावस्था में हुआ था। परन्तु पांच वर्ष वाद ही आपको पतिवियोग सहना पड़ा।

आपने संसार की असारता देख जीवन को जल विन्दु सदृश क्षणिक समझा। इसलिए आत्मा का कल्याण करने के लिए वि० सं० १९९० में आपने सातवीं प्रतिमा श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी से ले ली थी। फिर वि० सं० २००० में क्षुल्लिका दीक्षा सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट में ली थी। श्री १०८ आचार्य वीरसागरजी से नागौर में विक्रम संवत २००६ में आर्यिका दीक्षा ली थी। आपने विक्रम संवत २०२५ में प्रतापगढ़ में समाधिमरण प्राप्त किया था।

क्षुल्लिका गुणमती माताजी

प्रशममूर्ति विदूषीरत्न परमपूज्य श्री १०५ क्षुल्लिका गुणमती माताजी दिव्य देदीप्यमान नारी रत्न हैं जिन्होंने अपने जीवन में संचित ज्ञानराशि को दूसरों के हित के लिए अर्पित कर दिया और अपना सारा जीवन संयम की आराधना में लगा दिया।

माताजी का जन्म संपन्न परिवार में हुआ जहां वैभव और ऐश्वर्य की कोई कमी नहीं। जैन कुलभूषण स्वनाम धन्य ला० हुकमचन्दजी के घर संवत १९५६ में आपका जन्म हुआ।

चार पुत्रों में एक कन्या का जन्म होने से उसका नाम चावली रखा गया। बाद में उसकी विशेष ज्ञान वृद्धि को देखते हुए ज्ञानमती नाम पड़ा। बचपन में अत्यन्त लाड-प्यार से पालन होने के कारण सभी प्रकार के सांसारिक सुख थे परन्तु कौन जानता था कि विवाह के ३६ दिन के पश्चात् विधिना की क्रूर दृष्टि के कारण माथे का सिन्दूर पुँछ जायेगा।

जैनधर्म की शिक्षा ही कुछ ऐसी है जो हर्ष में उन्मत्त होने से और शोक में अक्रान्त होने से बचाती ही नहीं बल्कि कर्मों की विचित्र गति जानकर साहस, पौरुष और आत्मशक्ति को प्रबल कर देती है, दुर्भाग्य सौभाग्य रूप में परिणत हो जाता है।

त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी जैसे संतों के पधारने से जिन शासन के अध्ययन की रुचि जगी। व्रत नियम, संयम जीवन का लक्ष्य हो गया। सौभाग्य से विदुषी रत्न, लोकसेवी, शिक्षा प्रचारिका श्री रामदेवीजी के सम्पर्क से जैनधर्म के अध्ययन में निष्णात होने लगी। सिद्धान्तशास्त्री पं० गौरीलालजी ने शाकटायन व्याकरण का अध्ययन कराया। फलस्वरूप जिनवाणी के अध्ययन में अबाधगति से प्रवृत्ति होने लगी। ज्ञानाराधन का स्वाद दूसरे भी उठाये, असमर्थ विधवा सहायता योग्य बहिनों की उन्नति कैसे हो इस बलवती भावना के फलस्वरूप गुहाना में श्री ज्ञानवती जैन वनिताश्रम की स्थापना की गई। इस युग में समन्तभद्र के समान विदुषीरत्न मगनबेन, चारित्र मूर्ति ब्रह्मचारिणी चन्दाबाईजी जैसे मातृवत्सला नारी रत्नों के समक्ष नारी जाति के उद्धार के लिये यह संस्था कल्पवृक्ष के समान फलदायी सिद्ध हुई।

माता ज्ञानवती जी ने इसे अपने जीवन का प्राणाधार समझा। दिन रात संस्था की उन्नति में अहर्निश दत्तचित्त हो संस्था के विकास के मार्ग पर अग्रसर होती गई।

आन्तरिक संयम की प्रबल भावना के फलस्वरूप चारित्र के विकास की अटपटी लगने लगी। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के संघ के साधुओं को आहार दान वैयावृत्ति करना, जहां संघ का विहार हो वहां जाना अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। पंचाणुव्रत प्रतिमा और क्रमशः बढ़ते हुए चारित्र की सीढ़ी पर चढ़ने लगीं। परमपूज्य शान्तमूर्ति आचार्य शान्तिसागरजी महाराज से क्षुल्लक की दीक्षा अंगीकार की।

अपने व्रतों को निर्बाध और निरतिचार पालन करती हुई, सर्वत्र ज्ञान का प्रचार करती हुई दरियागंज में कन्याओं में धार्मिक शिक्षा प्रचार के लिए श्री ज्ञानवती कन्या पाठशाला की स्थापना करायी और रायसाहब उल्फतरायजी की पुत्रवधु स्वर्णमाला की देखरेख में संस्था दिनोदिन उन्नति करने लगी। माताजी स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिए, चारित्र की वृद्धि के लिए दुर्धर तप का पालन करती हुई जिनशासन के गौरव को बढ़ा रही हैं।

क्षुल्लिका अजितमती माताजी

जन्म स्थान— ओलीवेढे (जि० कोल्हापुर)

जन्म— सन् १९०४

पिता का नाम— श्री नानासाहबजी

माता का नाम— श्री कृष्णा बाईजी

माताजी का पूर्व नाम—श्री मरुदेवी

दो वर्ष की उम्र में पिताजी व दो भाई एक बहिन की प्लेग की बीमारी से मृत्यु हुई तथा २½ वर्ष की उम्र में मां ने विवाह कर दिया। १२ वर्ष की आयु में पति वियोग। २० वर्ष की आयु में आ० शांतिसागरजी से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किये। सन् १९२८ में पू० आ० शांतिसागरजी महाराज से तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में क्षुल्लिका दीक्षा धारण की, उसीसमय से आपने अपने जीवन को तप-त्याग के मार्ग में लगाया हुआ है ?

आपने अपने जीवन में अनेकों उपवास किये, जिनमें मुख्यत: सोलह कारण के ३ बार ३२-३२ उपवास किये, दो बार सिंहनिःक्रीडित व्रत किये। सांगली में आपने १२३४ उपवास किये।

चारित्र चक्रवर्ति आ० शांतिसागरजी महाराज की अंतिम शिष्या पू० माताजी ही हैं। आप वयोवृद्ध, तपोवृद्ध विविध गुण सम्पन्न हैं। आगमानुकूल चारित्र, सहनशीलता एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण जैन समाज के लिए एक उत्कृष्ट तपस्वी साध्वी हैं।

आचार्य श्री वीरसागर स्तुतिः
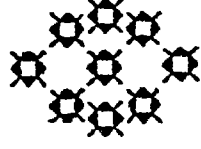
स्वात्मैकनिष्ठं नृसुरादिपूज्यं,
षड्जीव कायेषु दयार्द्रचित्तं ।
श्रीवीरसिंधुं भववार्धिपोतं,
तं सूरिवर्यं प्रणमामि भक्त्या ।।

❖

स्वाध्यायध्यानादिक्रियासु सक्तः,
स्वात्मोत्थसौख्यास्वदनेऽनुरक्तः ।
संसारभोगेषु विरक्तचित्तः,
आचार्यवर्यं त्रिविधं नमामि ।

❖

यो मुख्यशिष्यो गुरुशान्तिसिन्धोः,
दीक्षाव्रतादेशविधौ विधिज्ञः ।
कन्दर्पमायाक्रुधमानलोभान्,
जित्वा रिपून् 'वीर' इति प्रसिद्धः ।।

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के प्रथम

पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

आचार्य श्री शिवसागरजी
आचार्य श्री धर्मसागरजी
मुनि श्री पदमसागरजी
मुनि श्री सन्मतिसागरजी
मुनि श्री आदिसागरजी
मुनि श्री सुमतिसागरजी
मुनि श्री श्रुतसागरजी
मुनि श्री अजितकीर्तिजी
मुनि श्री जयसागरजी
आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी
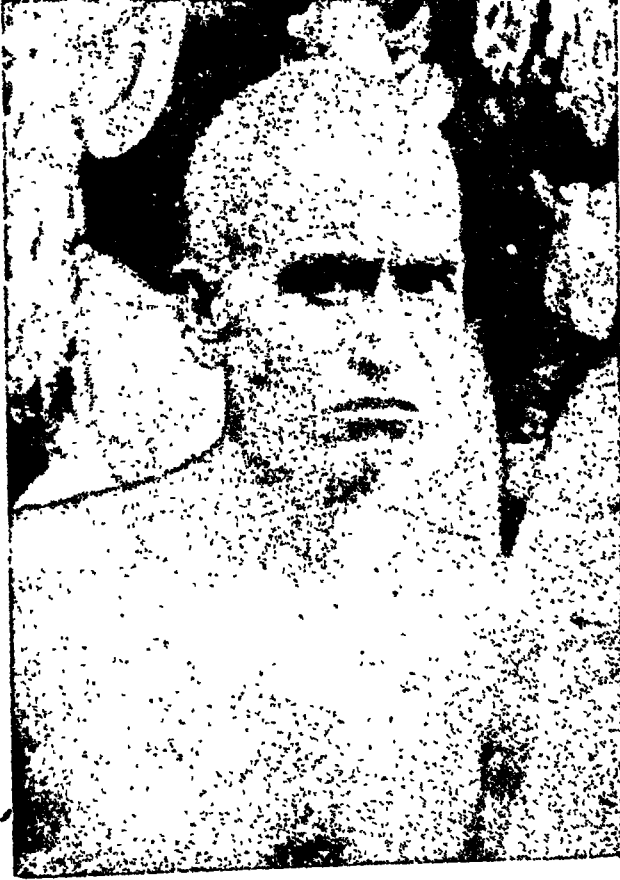
क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी
क्षुल्लक श्री सुमतिसागरजी
आर्यिका इन्दुमतीजी
आर्यिका वीरमतीजी
आर्यिका विमलमतीजी
आर्यिका कुन्थुमतीजी

आर्यिका सुमतिमतीजी
आर्यिका पार्श्वमतीजी
आर्यिका सिद्धमतीजी
आर्यिका ज्ञानमतीजी
आर्यिका सुपार्श्वमतीजी
आर्यिका वासुमतीजी
आर्यिका शान्तिमतीजी

आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज

वर्तमान शताब्दी की दिगम्बर जैनाचार्य परम्परा के तृतीय आचार्य प० पू० प्रातःस्मरणीय परम तपस्वी बालब्रह्मचारी आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज थे। आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के समय में भारतवर्ष में साधु संघ का आदर्श प्रस्तुत हुआ था। आपने आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज द्वारा आर्षमार्गानुसार प्रस्थापित परम्परा को अक्षुण्ण तो बनाये ही रखा; साथ ही संघ में अभिवृद्धि कर संघानुशासन का आदर्श भी उपस्थित किया। भारतवर्ष का सम्पूर्ण जैनजगत् आपके आदर्श संघ के प्रति नत मस्तक था। साधु समुदाय में ज्ञान-जिज्ञासा एवं उसकी प्राप्ति की सतत् लगन के साथ चारित्र का उच्चादर्श देखकर विद्वद्वर्ग भी संघ के प्रति आकृष्ट था और प्रवुद्ध साधुवर्ग से अपनी शंकाओं के समाधान प्राप्त कर आनन्द प्राप्त करता था।

दिगम्बर मुनि धर्म की अविच्छिन्न धारा से सुशोभित दक्षिण भारत के अन्तर्गत वर्तमान महाराष्ट्र प्रान्तस्थ औरंगाबाद जिले के अड़गांव ग्राम में रांवका गोत्रीय खण्डेलवाल श्रेष्ठि श्री नेमीचन्द्रजी के गृहांगण में माता दगड़ाबाई की कुक्षि से वि० सं० १९५८ में आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम हीरालाल रखा गया था। आप दो भाई थे, दो बहिनें भी थीं। प्रतिभावान व कुशाग्रबुद्धि होते हुए भी साधारण आर्थिक स्थिति के कारण आप विशेष शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाये।

औरंगाबाद जिले के ही ईरगांव वासी ब्र० हीरालालजी गंगवाल (स्व० आचार्य श्री वीर-सागरजी) आपके शिक्षागुरु रहे। निकटस्थ अतिशयक्षेत्र कचनेर के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन विद्यालय में आपका प्राथमिक विद्याध्ययन हुआ। धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ हिन्दी का तीसरी कक्षा तक ही आपका अध्ययन हो पाया था कि अचानक महाराष्ट्र प्रान्त में फैली प्लेग की भयंकर बीमारी की चपेट में आपके माता-पिता का एक ही दिन स्वर्गवास हो गया। माता-पिता की वात्सल्यपूर्ण छत्रछाया में बालक अपना पूर्ण विकास कर पाता है, किन्तु आपके जीवन के तो प्राथमिक चरण में ही उसका अभाव हो गया, इसका प्रभाव आपके विद्याध्ययन पर पड़ा। आपके बड़े भाई का विवाह हो चुका था, किन्तु विवाह के कुछ समय बाद ही उनका भी देहान्त हो जाने के कारण १३ वर्षीय अल्पवय में ही आप पर गृहस्थ संचालन का भार आ पड़ा। कुशलता पूर्वक आपने इस उत्तरदायित्व को भी निभाया।

माता-पिता एवं बड़े भाई के आकस्मिक वियोग के कारण संसार की क्षणस्थायी परिस्थितियों ने आपके मन को उद्वेलित कर दिया। फलस्वरूप, गृहस्थी बसाने के विचारों को मन ने कभी भी स्वीकार नहीं किया। विवाह के प्रस्ताव प्राप्त होने पर भी आपने सदैव अपनी असहमति ही प्रगट की। आप आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे। २८ वर्ष की युवावस्था में असीम पुण्योदय से आपको आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज के दर्शन करने का मंगल अवसर मिला तथा उसी समय आपने यज्ञोपवीत धारण कर द्वितीय व्रत-प्रतिमा ग्रहण की। महामनस्वी चा० च० आचार्यश्री के द्वारा बोया गया यह व्रतरूप बीज आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के चरण सान्निध्य में पल्लवित पुष्पित हुआ।

वि० सं० १९९९ की बात है, अब तक आपके आद्य विद्यागुरु ब्र० हीरालालजी गंगवाल आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज से मुनिदीक्षा ग्रहण कर चुके थे और मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र पर विराजमान थे। आपने उनसे सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये तथा ब्रह्मचारी अवस्था में संघ में प्रवेश किया। बाल्यावस्था से ही आपकी स्वाध्याय की रुचि थी। वह अब और तीव्रतर होने लगी अतः आप विभिन्न ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। "ज्ञानं भारः क्रियां विना" की उक्ति आपके मन को आन्दोलित करने लगी। आपके मन में चारित्र ग्रहण करने की उत्कट भावना ने जन्म लिया। आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज का जब सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र पर ससंघ पहुंचना हुआ तब आपने वि० सं० २००० में क्षुल्लकदीक्षा ग्रहण की। आपको क्षु० शिवसागर नाम प्रदान किया। अद्भुत संयोग रहा हीरालाल द्वय का। गुरु और शिष्य दोनों ही हीरालाल थे। यह गुरु-शिष्य संयोग वीरसागरजी महाराज की सल्लेखना तक निर्बाधरूप से बना रहा।

निरन्तर ज्ञान-वैराग्य शक्ति की अभिव्यक्ति नें आपको निर्ग्रंन्थ-दिगम्बर दीक्षा धारण करने के लिये प्रेरित किया। फलस्वरूप वि० सं० २००६ में नागौर नगर में आषाढ़ शुक्ला ११ को आपने आचार्य श्री वीरसागरजी के पादमूल में मुनिदीक्षा ग्रहण की। वर्तमान पर्याय का यह आपका चरम विकास था। अब आप मुनि शिवसागरजी थे। मुनिदीक्षा के पश्चात् ८ वर्ष पर्यंत गुरु-सन्निधि में आपकी योग्यता बढ़ती ही चली गयी। आपने गुरुदेव के साथ श्री सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र की यात्रा वि० सं० २००९ में की। जब वि० सं० २०१४ में आपके गुरु का जयपुर खानियाँ में समाधि-मरण पूर्वक स्वर्गवास हो गया तब आपको आचार्यपद प्रदान किया गया। इस अवधि में आपका ज्ञान भी परिष्कृत हो चुका था। आपने चारों अनुयोग सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था। तथा अनेक स्तोत्र पाठ, समयसार कलश, स्वयंभू स्तोत्र, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि संस्कृत रचनाएं कंठस्थ भी कर ली थीं। मातृभाषा मराठी होते हुए भी आप हिन्दी अच्छी बोल लेते थे।

वि० सं० २०१४ में ही आचार्यपद ग्रहण के पश्चात् आपने ससंघ गिरिनार क्षेत्र की यात्रा की। उसके बाद क्रमश: ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ़, सीकर, लाडनूं, खानियां (जयपुर), पपौरा, महावीरजी, कोटा, उदयपुर और प्रतापगढ़ में चातुर्मास किये। इन वर्षों में आपके द्वारा संघ की अभिवृद्धि के साथ-साथ अत्यधिक धर्म प्रभावना हुई। ११ वर्षीय इसी आचार्यत्वकाल में आपने अनेक भव्यजीवों को मुनि-आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक-क्षुल्लिका पद को दीक्षाएं प्रदान की तथा सैंकड़ों श्रावकों को अनेकविध व्रत, प्रतिमा आदि ग्रहण कराकर मोक्षमार्ग में अग्रसर किया। आपके सर्वप्रथम दीक्षित शिष्य मुनि ज्ञानसागरजी महाराज थे। उसके अनन्तर आपने ऋषभसागरजी, भव्यसागरजी, अजित-सागरजी, सुपार्श्वसागरजी, श्रेयांससागरजी सुबुद्धिसागरजी को मुनिदीक्षा प्रदान की। आपने सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा चन्द्रमतीजी को प्रदान की। उसके बाद क्रमश: पद्मावतीजी, नेमामतीजी, विद्यामतीजी, बुद्धिमतीजी, जिनमतीजी, राजुलमतीजी, संभवमतीजी, आदिमतीजी, विशुद्धमतीजी, अरहमतीजी, श्रेयांसमतीजी, कनकमतीजी, भद्रमतीजी, कल्याणमतीजी, सुशीलमतीजी, सन्मतीजी, धन्यमतीजी, विनयमतीजी एवं श्रेष्ठमतीजी सबको आर्यिका दीक्षा दी। आपके द्वारा दीक्षित सर्वप्रथम क्षुल्लक शिष्य सम्भवसागरजी थे, साथ ही आपने शीतलसागरजी, यतीन्द्रसागरजी, धर्मेन्द्रसागरजी, भूपेन्द्र-सागरजी व योगीन्द्रसागरजी को भी क्षुल्लक के व्रत दिए। क्षुल्लक धर्मेन्द्रसागरजी को उनकी सल्लेखना के अवसर पर आपने मुनिदीक्षा दी थी। ऐलक अभिनन्दनसागरजी आपके द्वारा अन्तिम दीक्षित भव्यप्राणी हैं। आपके अन्तिम शिष्य हैं। सुव्रतमती क्षुल्लिका भी आपसे ही दीक्षित थीं, इसके अतिरिक्त तीन भव्य प्राणियों को उनकी सल्लेखना के अवसर पर आपसे मुनिदीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य मिला था। वे थे आनन्दसागरजी, ज्ञानानन्दसागरजी तथा समाधिसागरजी। इन तीनों ही साधुओं की सल्लेखना आपकी सन्निधि में ही हुई थी।

आपके आचार्यत्वकाल में संघ विशालता को प्राप्त हो चुका था। उसकी व्यवस्था सम्बन्धी सारा संचालन आप अत्यन्त कुशलता पूर्वक करते थे। कृशकाय आचार्य श्री का आत्मबल बहुत दृढ़ था। तपश्चर्या की अग्नि में तपकर आपके जीवन का निखार वृद्धिगत होता जाता था। आपके कुशल नेतृत्व से सभी साधुजन संतुष्ट थे। न तो आपको छोड़कर कोई जाना ही चाहता था और न आपने आत्मकल्याणार्थी किसी साधु या श्रावक को भी कभी संघ से जाने के लिए कहा। आपका अनुशासन अतीव कठोर था। संघ में कोई भी त्यागी आपकी दृष्टि में लाये बिना श्रावकों से अल्प से अल्प वस्तु की भी याचना नहीं कर सकता था। संघव्यवस्था सुचारु रीत्या चले, इसके लिये प्रायः आर्यिका वर्ग में एक या दो प्रधान आर्यिकाओं की नियुक्ति आप कर दिया करते थे। साधुओं के लिये आपके सहयोगी थे संघस्थ मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज। अनुशासन की कठोरता के बावजूद आपका वात्सल्य इतना अधिक था कि कोई शिष्य आपके जीवनकाल में आपसे पृथक् नहीं हुआ। संघ का विभाजन आपकी सल्लेखना के पश्चात् ही हुआ। आपने एक विशाल संघ का संचालन करते हुए भी कभी आकुलता का अनुभव नहीं किया।

आपके आचार्यत्व काल में सबसे महत्वपूर्ण एवं सफल कार्य हुआ 'खानियां तत्त्व चर्चा'। पिछले दो दशकों से चले आ रहे सैद्धान्तिक द्वन्द्व से आपके मन में सदैव खटक रहती थी। उसे दूर करने का प्रयत्न किया आपने सोनगढ़ पक्षीय व आगमपक्षीय विद्वानों के मध्य तत्त्वचर्चा का आयोजन करवा कर। आपकी मध्यस्थता में होनेवाली इस तत्त्वचर्चा का फल तो विशेष सामने नहीं आया, किन्तु आपकी निष्पक्षता के कारण उभयपक्षीय विद्वान् आमने-सामने एक मंच पर एकत्र हुए और उन्होंने अपने-अपने विचारों का आदान-प्रदान अत्यन्त सौम्य वातावरण में किया। इस तत्त्वचर्चा यज्ञ में सम्मिलित आगन्तुकों में प्रायः सभी उच्चकोटि के विद्वान् थे। पंडित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य वाराणसी, पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री, पं० मक्खनलालजी शास्त्री, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं० रतनचन्दजी मुख्तार आदि विद्वानों ने परस्पर बैठकर संघ-सान्निध्य में चर्चा की थी। इस चर्चा को खानियां तत्त्वचर्चा नाम से २ भागों में सोनगढ़ पक्ष की ओर से टोडरमल स्मारक वालों ने प्रकाशित भी किया है।

चर्चा के सम्बन्ध में पं० कैलाशचन्द्रजी ने अपना अभिमत जैन सन्देश (अंक ७ नवम्बर, १९६७) के सम्पादकीय लेख में लिखा था कि "इस (खानियातत्त्वचर्चा) के मुख्य आयोजक तथा वहां उपस्थित मुनिसंघ को हम एकदम तटस्थ कह सकते हैं, उनकी ओर से हमने ऐसा कोई संकेत नहीं पाया कि जिससे हम कह सकें कि उन्हें अमुक पक्ष का पक्ष है। इस तटस्थवृत्ति का चर्चा के वातावरण पर अनुकूल प्रभाव रहा है।"

आचार्य स्वयं पंचाचार का परिपालन करते हैं और शिष्यों से भी उसका पालन करवाते हैं। शिष्यों पर अनुग्रह और निग्रह आचार्य परमेष्ठी की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता है। अतः आचार्य पद के नाते आप अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए इस बात का सदैव ध्यान रखते थे कि संघस्थ साधु समुदाय आगमोक्त चर्या में रत है या नहीं। आपकी पारखी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म थी, आत्मकल्याणेच्छुक कोई नवीन व्यक्ति संघ में आता और दीक्षा की याचना करता तो यदि वह आपकी पारखी दृष्टि में दीक्षा का पात्र सिद्ध हो जाता तो ही वह दीक्षा प्राप्त कर सकता था। जिस व्यक्ति को जनसाधारण शीघ्र दीक्षा का पात्र नहीं समझता वह व्यक्ति आचार्यश्री की दृष्टि से बच नहीं पाता था। उसकी क्षमता परीक्षण के पश्चात् ही उसे योग्यतानुसार क्षुल्लक, मुनि आदि दीक्षा आपने प्रदान की। विद्वानों का आकर्षण भी आपके एवं संघस्थ गहनतम स्वाध्यायी साधुओं के प्रति था इसीलिए प्रायः प्रत्येक चातुर्मास में संघ में कई-कई दिनों तक विद्वद्वर्ग आकर रहता था और सभी अनुयोगों की सूक्ष्म चर्चाओं का आनन्द लेता था। बातचीत के बीच सूत्ररूप वाक्यों के प्रयोग द्वारा बड़ी गहन बात कह जाना आचार्य श्री की प्रकृति का अभिन्न अंग था। कुल मिलाकर आचार्य श्री अपूर्व गुणों के भण्डार थे। वि० सं० २०२५ का अन्तिम वर्षायोग आपने प्रतापगढ़ में किया था। वहां से फाल्गुन माह में होने वाली शांतिवीर नगर महावीरजी की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में सम्मिलित होने के लिए आप ससंघ श्री महावीरजी आये थे। यहां आने के कुछ ही दिन बाद आपको ज्वर आया और ६-७ दिन के अल्पकालीन ज्वर में ही आपका समस्त संघ की उपस्थिति में फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को दिन में ३ बजे लगभग समाधिमरण हो गया। आपके इस आकस्मिक वियोग से साधु संघ ने वज्रपात का सा अनुभव किया। ऐसा लगने लगा कि जिस कल्पतरु की छत्रछाया में विश्राम करते हुए भवताप से शान्ति का अनुभव होता था, उनके इस प्रकार अचानक स्वर्गवास हो जाने से अब ऐसी आत्मानुशासनात्मक शान्ति कहां मिलेगी ?

वस्तुतः आचार्यश्री ने अपने गुरु के परम्परागत इस संघ को चारित्र व ज्ञान की दृष्टि से परिष्कृत, परिवर्धित और संचालित किया था। उन जैसे महान् व्यक्तित्व का अभाव आज भी खटकता है। आपके स्वर्गारोहण के पश्चात् वहां उपस्थित आपके गुरुभ्राता [आचार्य श्री वीरसागरजी के द्वितीय मुनिशिष्य] श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज को समस्त संघ ने संघ का नायकत्व सौंपकर अपना आचार्य स्वीकार किया। वे भी इस संघ का संचालन अपने प्रयत्न भर कुशलता पूर्वक कर रहे हैं। प० पू० महान् तपस्वी १०८ आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के पावन चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए अपनी विनम्र भावाञ्जलि समर्पित करता हूं।

आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज

कृषि प्रधान भारत का स्वरूप ऋषि प्रधान रहा है। यहां सत्ता, वैभव एवं ऐश्वर्य के उन्नत शिखर भी त्याग, वैराग्य एवं आत्मसाधना के चरणों में झुकते रहे हैं। अनादिकाल से जीवन का लक्ष्य सत्ता व ऐश्वर्य नहीं किन्तु साधना व वैराग्य रहा है। भारतीय मस्तिष्क मूलतः शान्ति का इच्छुक है और शान्ति का उपाय त्याग व साधना है। यही कारण रहा है कि आत्मसाधना के पथ पर चलने वाला साधक ही भारतीय जीवन का आदर्श, श्रद्धेय और वन्दनीय माना जाता रहा है।

इस हुण्डावसर्पिणी काल के सर्वप्रथम सर्वोत्कृष्ट आत्मसाधक भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर महापुरुषों की पावन परम्परा में अनेक महर्षियों ने अपनी आत्मसाधना की है और उनका आदर्श अद्यप्रभृति अक्षुण्ण बना हुआ है। भगवान महावीर के पश्चात् गौतमस्वामी से लेकर धरसेनाचार्य तक और उनके पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य आदि से लेकर अद्यप्रभृति महान आत्माएँ इस पृथ्वी तल पर जन्म लेती रही हैं और आर्ष परम्परा के अनुकूल आत्मसाधना करते हुए अन्य भव्य प्राणियों को भी आत्मसाधना का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

इन्हीं महान धर्माचार्यों की परम्परा कुन्दकुन्दान्वय में ईस्वी सन् १९ वीं शताब्दि में एक महान आत्मा का जन्म हुआ और विश्व में चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी महाराज के नाम से जाने गये। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने इस भारत भू पर अवतरित होकर १९-२० वीं शताब्दि में लुप्तप्रायः आगम विहीत मुनिधर्म को पुनः प्रगट किया एवं दक्षिण से उत्तर भारत की ओर मंगल विहार करके दिगम्बर मुनि का स्वरूप एवं चर्या जो मात्र शास्त्रों में वर्णित थी, को प्रगट किया। उन महर्षि की महती कृपा का ही यह फल है कि आज यत्र तत्र सर्वत्र दिगम्बर मुनिराजों के दर्शन, उपदेश श्रवण का लाभ समाज को प्राप्त हो रहा है। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के पश्चात् उन्हीं के प्रधान मुनिशिष्य श्री वीरसागरजी महाराज ने आचार्य पद ग्रहण किया एवं उनके

पश्चात् उन्हीं के प्रधान मुनिशिष्य शिवसागरजी महाराज ने आचार्य पद को सुशोभित किया। उभय आचार्यों ने अपने समय में चतुर्विध संघ की अभिवृद्धि के साथ साथ धर्म की महती प्रभावना में भी अपना अपूर्व योगदान दिया। आचार्यत्रय की इस महान परम्परा में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के पश्चात् आचार्य श्री शान्तिसागरजी के प्रशिष्य एवं आचार्य श्री वीरसागरजी के द्वितीय मुनिशिष्य श्री धर्मसागरजी महाराज वर्तमान में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हैं। उन्हीं आचार्यश्री का जीवनवृत्त प्रस्तुत निवन्ध में लिखा गया है।

एक दिन अवनितल पर आँखें खुलीं, यह जीवन का प्रारम्भ हुआ। एक दिन आंखों ने देखना वन्द कर दिया, यह जीवन का अन्त हुआ। जीवन किस तरह जीया गया यह जीवन का मध्य है। कौन किस तरह जीवन जी गया यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसी प्रश्न की चर्चा में से जीवन चरित्रों का गठन, लेखन और परिगुम्फन होता है। महान पुरुषों के जीवन चरित्र प्रेरणादायी होते हैं। अतः वर्तमान काल के परम्परागत आचार्य परमेष्ठी श्री धर्मसागरजी महाराज का जीवन चरित्र जो कि अत्यन्त प्रेरणादायक है, उसे इसी उद्देश्य से यहां प्रस्तुति किया है। ताकि उनके जीवन से प्रेरणा पाकर हम भी उन महापुरुष के पद चिन्हों पर चलकर अपने जीवन को उन्नत एवं महान वना सकें।

जन्म एवं बाल्यकाल

भगवान् धर्मनाथ ने कैवल्य प्राप्ति की थी अतः केवलज्ञान कल्याणक की तिथि होने से जो दिवसकाल मंगल रूप था और जिस दिन चन्द्रमा ने अपनी षोड्शकलाओं से परिपूर्ण होकर अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से जगत को आलोकित किया था उसी पौषी पूर्णिमा के दिन आज से ६७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत १९७० में राजस्थान प्रान्त के बून्दी जिलान्तर्गत गम्भीरा ग्राम में सद्‌गृहस्थ श्रेष्ठी श्री वख्तावरमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती उमराववाई की कुक्षी से एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम चिरंजीलाल रखा गया।

खण्डेलवाल जातीय छावड़ा गोत्रीय श्रेष्ठी बख्तावरमलजी भी अपने को धन्य समझने लगे जव उनके गृहांगण में पुत्ररत्न वालसुलभ क्रीड़ाओं से परिवारजनों को आनन्दित करने लगा।

पारिवारिक स्थिति

आपके पिता वख्तावरमलजी एवं उनके अग्रज श्री कंवरीलालजी दोनों सहोदर भ्राता थे। दोनों ही भाईयों के मध्य दो संतानें थीं। अग्रज भ्राता के दाखां वाई नाम की कन्या एवं अनुज भ्राता

के आप पुत्र थे। आप से पूर्व जन्म लेने वाली संतानों का सुख माता पिता नहीं देख सके। आपका अपर नाम कजोड़ीमलजी भी था। प्रायः आपके दोनों ही नाम प्रसिद्ध रहे हैं। आपकी बड़ी वहिन (बड़े पिता की संतान) दाखां बाई का विवाह निकटस्थ ग्राम बामणवास में ही हुआ था। शैशवावस्था की दहलीज पर आपने पैर रखा ही था कि आपके माता पिता का असामयिक निधन हो गया। उधर दाखां बाई को भी माता पिता का वियोगजन्य दुःख आ पड़ा, किन्तु आपकी अपेक्षा उनकी आयु अधिक थी और विवाहित थी अतः उनको पति तथा सास-ससुर के संरक्षण में रहने का अवसर होने से अधिक चिन्ता नहीं थी। आपका जीवन तो अल्प समय में ही माता पिता के लाड प्यार भरे संरक्षण से वंचित हो गया था। इष्ट वियोगज दुःख में आपको वहिन दाखांवाई का संरक्षण मिला। आप बामणवास जाकर उन्हीं के पास रहने लगे और जब विद्याध्ययन के योग्य हुए तो आप अपने पिता श्री के पूर्वजों की जन्मस्थली "दुगारी" ग्राम चले गये। वहां आपको मोतीलालजी सुवा-लालजी छांवड़ा का संरक्षण प्राप्त हुआ। इधर दाखांवाई को अल्पवय में ही एक और इष्ट वियोगज दुःख का झटका लगा जब उनके पति श्री भंवरलालजी का स्वर्गवास हो गया। अव तो मात्र दोनों भाई बहिन के निर्मल स्नेह का ही जीवन में आश्रय शेष था जो कि वहिन के जीवन पर्यंत रहा।

शिक्षा

क्रमशः एक के बाद एक वियोगज दुःख आने से प्रारम्भिक जीवन में भी आप विशेष विद्याध्ययन नहीं कर सके। यद्यपि आपको अपने जीवन में सामान्य शिक्षा ग्रहण कर ही संतोप प्राप्त करना पड़ा तथापि शिक्षा के प्रति आपका अनुराग अद्यप्रभृति बना हुआ है।

बचपन में अनभिज्ञता वश आप प्रायः सभी धर्मों के देवताओं के पास जाते थे। आप शिवालय भी गए, मस्जिद भी गये। आप सभी देवताओं के पास जाकर एक मात्र यही याचना करते थे कि "मुझे बुद्धि दे दो, विद्या दे दो"। उस समय आपको धर्मशास्त्रों का भी विशेष ज्ञान नहीं था और न गांव में कोई सही मार्ग वताने वाला था। एक दिन आप जैन मन्दिर में गये, वहां एक शास्त्रों के जानकार व्यक्ति शास्त्र वाचन कर रहे थे, उन्होंने कहा कि जो वीतराग जिनेन्द्र के अतिरिक्त कुदेवताओं की पूजा करता है वह नरक में जाता है। आपने इस बात को सुना और वह आपके हृदय में अच्छी तरह बैठ गई, उसी समय से आपने अन्य देवताओं को पूजना बन्द कर दिया, किन्तु मन्दिर तव भी जाना प्रारम्भ नहीं किया।

वीतराग प्रभु की शरण की प्रेरणा

दुगारी में जब आप अधिक दिन विद्याभ्यास नहीं कर सके तो फिर आप अपनी बहिन दाखांबाई के पास ही आकर वामणवास रहने लगे। उन दिनों उत्तर भारत में दिगम्बर मुनिराजों का अत्यन्त

अभाव था अतः उनका समागम उपदेश श्रवण दुर्लभ था। यही कारण था कि आपको स्थानकवासी जैन साधुओं के समागम में रहने का अधिकतर अवसर मिलता रहा, क्योंकि उन दिनों कोटा नगर के आस पास उन्हीं साधुओं का विहार होता था। जब आप पर साधुओं के समागम से इतना प्रभाव पड़ा कि आप दिगम्बर वीतराग प्रभु के मन्दिर में न जाकर स्थानक में जाते और स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुसार समस्त धार्मिक क्रियाएं करते तो बहिन दाखांबाई ने आपको प्रेरणा दी कि जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन करने के लिए जिन मन्दिर जाया करो, किन्तु कई बार इस प्रकार की प्रेरणा करने पर भी आप पर कुछ असर नहीं पड़ा तो फिर बहिन ने अनुशासनात्मक कदम उठाया कि "यदि मन्दिर दर्शन करने नहीं जाओगे तो रोटी नहीं मिलेगी"। चूँकि आप पर स्थानक-वासी संस्कार अधिक पड़ चुके थे अतः आप मन्दिर जाने से कतराते रहे, तथापि घर पर आकर जब बहिन ने एक दिन पूछा कि आज मन्दिर जाकर आये या नहीं तो झूठ का सहारा लिया और कह दिया कि मन्दिर जाकर आया हूं। भोजन तो मिल गया किन्तु बहिन ने मन्दिर की मालिन से पूछ ही लिया कि क्या आज चिरंजी मन्दिर दर्शन करने आया था, उत्तर नकारात्मक मिला तब घर पहुंचने पर पुनः आपके समक्ष प्रश्न था कि आज मन्दिर नहीं गये थे, मन्दिर की मालिन ने तो मना किया कि तुम मन्दिर नहीं गये ? उत्तर मिला मालिन झूठ बोलती है। वात तो आयी गयी हो नहीं सकी किन्तु उस दिन झूठ बोलने से आपका हृदय आत्मग्लानि से भर गया और मन ही मन निर्णय किया कि "झूठ के सहारे कब तक काम चलेगा, कल से नित्य देवदर्शन के लिए मन्दिर जाना ही है।" दूसरे दिन से वीतराग प्रभु की शरण में जाने लगे। आप स्वयं भी बहिन की अनुशासनात्मक प्रेरणा से प्रसन्न थे, क्योंकि वह आपके जीवन मोड़ का सर्वप्रथम कारण था और आज भी आप इस बात का उल्लेख करते समय गौरव पूर्ण शब्दों में बहिन का उपकार मानते हैं। वास्तव में परिजनों का वही यथार्थ वात्सल्य है जो अपने परिवार के सदस्यों को सही मार्ग में आरूढ़ करके उनके जीवन निर्माण में सहायक हो सके।

व्यापार जीवन का प्रथम मोड़ :

१४-१५ वर्ष की अवस्था में ही आपने आजीविकोपार्जन हेतु व्यापार प्रारम्भ कर दिया, एक छोटी सी दुकान आपने खोल ली, नैनवाँ जाकर २-३ दिन में कुछ सामान ले आते और उसे बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। आपको संतोषवृत्ति से ही गृहस्थ जीवन व्यतीत करना इष्ट था। फल-स्वरूप आप जब यह देख लेते कि आज आजीविका योग्य लाभ प्राप्त हो गया है तो उसी समय दुकान बन्द कर देते थे।

इस समय तक भी आपको दिगम्बर साधुओं का निकटतम सान्निध्य प्राप्त नहीं हुआ था अतः वहिन की प्रेरणा से यद्यपि मन्दिर जाना तो प्रारम्भ कर दिया था किन्तु विशेष रूप से धर्मकार्यों की

ओर झुकाव नहीं हो पाया था। इसी मध्य नैनवां नगर में प० पू० सिंहवृत्ति धारक, परमागम पोषक १०८ आ० क० श्री चन्द्रसागरजी महाराज के चातुर्मास का सुयोग प्राप्त हुआ। गुरुदेव का समागम प्राप्त कर आपने अपने जीवन को नया मोड़ दिया और शुद्ध भोजन करने का आजीवन नियम धारण किया। साथ साथ गृहस्थ के षडावश्यक कर्मों का परिपालन भी आपने दृढ़ता पूर्वक प्रारम्भ कर दिया था।

देशान्तर गमन :

कुछ ही वर्षों के पश्चात् आप अपनी बहिन के साथ इन्दौर चले गये वहाँ जाकर आपने सेठ कल्याणमलजी की कपड़ा मिल में नौकरी कर ली। चूँकि जीवन निर्वाह तो करना ही था अतः आपने नौकरी करना इष्ट न होते हुए भी उसे स्वीकार किया, किन्तु कुछ ही दिन पश्चात् मिल में कपड़े की रंगाई आदि कार्यों की देख रेख के प्रसंग में उन कार्यों में होने वाली भारी हिंसा को देखकर आत्म-ग्लानि उत्पन्न हुई और आपने मिल में कार्य करने की अस्वीकृति सेठानी सा० के समक्ष प्रगट कर दी, क्योंकि आप जानते थे कि सेठानीजी का मुझ पर वात्सल्यमय स्नेह है। था भी ऐसा ही सेठजी तो थे नहीं दोनों सेठानियों की वात्सल्यमयी दृष्टि आप पर सदैव बनी रहती थी। आपको मिल से दुकान पर बुला लिया गया। इसी प्रकार संतोषवृत्ति पूर्वक दोनों भाई बहिनों का जीवन निर्विघ्नतया व्यतीत हो रहा था कि इसी बीच सेठानीजी ने कईवार आपके समक्ष विवाह करने का प्रस्ताव रखा और यहां तक कहना प्रारम्भ किया कि विवाह का सारा प्रबन्ध हम कर देंगे, तुम विवाह कर लो, किन्तु जो महान आत्मा मोक्षमार्ग में लगकर रत्नत्रय पालन करते हुये मोक्ष लक्ष्मी को वरण करने की मन में भावना को जागृत करने में लगे थे उन्हें सांसारिक विवाह बन्धन में बंधकर आत्मोन्नति में बाधा उपस्थित करना कैसे इष्ट हो सकता था। अतः सेठानीजी द्वारा कई वार रखे गये विवाह सम्बन्धी प्रस्तावों को आपने ठुकरा दिया और बाल ब्रह्मचारी रहने का निर्णय किया।

गुरुसंयोग और व्रती जीवन का प्रारम्भ :

इन्दौर नगर में प० पू० आचार्य कल्प श्री वीरसागरजी महाराज का समागम आपको प्राप्त हुआ किन्तु आप दूर से ही दर्शन करके आ जाते थे एक दिन आपके साथी मित्र आपको पूज्य महाराजश्री के निकट ले गए। प्रारम्भिक वार्ता के पश्चात् व्रतों के महत्व को अत्यन्त संक्षेप में बताते हुए आपको महाराजश्री ने व्रती बनने की प्रेरणा दी, उन्होंने कहा कि "दो प्रतिमा ले लो" आपने मन में सोचा सम्भव है महाराज "मन्दिर में विराजमान प्रतिमाओं के सम्बन्ध में कह रहे होंगे? उन दिनों भी आप शुद्ध भोजन तो करते ही थे अतः आपने स्वीकृति दी और गुरुदेव ने बारह व्रतों के

नाम बताते हुए व्रतों के पालन की अति संक्षिप्त में विधि बता दी। यद्यपि आप व्रती बन चुके थे तथापि व्रतों का निर्दोष पालन किस प्रकार होगा इस बात की चिन्ता मन में थी। उन दिनों आपका विशेष स्वाध्याय भी नहीं था, इसी कारण जब आपको महाराज ने सर्व प्रथम दो प्रतिमा लेने के लिए कहा तो आप उक्त बात ही समझे थे। उन दिनों गुरु के प्रति विनय श्रद्धा की भावना अधिक थी। गुरुओं के समक्ष अधिक मुखरता और तर्क वितर्क नहीं था। यही कारण था कि आपने अत्यन्त विनय पूर्वक गुरुवर्य की आज्ञा शिरोधार्य की और व्रतों के पालन सम्बन्धी विशेष जानकारी स्वयं ग्रन्थों का स्वाध्याय करके या विद्वानों से सम्पर्क करके प्राप्त की तथा गुरु द्वारा प्रदत्त व्रतों का निर्दोष रीत्या पालन करने लगे। यहीं से आपके व्रतीजीवन का प्रारम्भ हुआ।

चूंकि अब आप व्रती बन चुके थे अतः आपने धर्मध्यान एवं स्वाभिमान पूर्ण जीवन में नौकरी को बाधक समझ कर नौकरी छोड़ दी। आजीविकोपार्जन के लिए आपने स्वतन्त्र रूप से कपड़े की फेरी का कार्य प्रारम्भ किया। प्रातःकाल नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर जिनेन्द्र पूजन, स्वाध्यायादि आवश्यक कर्त्तव्यों को करके भोजनादि से निवृत्त हो जाने पर मध्याह्नकाल के पश्चात् लगभग ३ बजे आप फेरी पर निकलते थे। कपड़ा बेचते हुये जब २-३ घन्टे में आपको १/= प्रतिदिन हो जाता था। तो आप वापस घर आ जाते थे। आपकी संतोषवृत्ति से साथी लोग भी चकित थे। आपकी यह धारणा बन चुकी थी कि आजीविका चलाने के योग्य मुनाफा प्राप्त हो जाता है फिर दिन भर व्यापार में क्यों रचा पचा जावे। दोनों भाई बहिनों के लिए उन दिनों में उतना ही काफी था। परिग्रह का संचय किसके लिये करना। दोनों ही प्राणी व्रतीजीवन अंगीकार कर चुके थे। २-३ घन्टे के पश्चात् घर जाकर आप अपना शेष समय स्वाध्यायादि में लगाते थे।

संयम की ओर बढ़ते कदम :

जिन्हें आत्मोत्थान के लिए संयम अत्यन्त प्रिय था वे गुरुजनों के समागम में रहकर आत्म संतुष्टि करते थे। इसी के फलस्वरूप जब प० पू० आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज का ससंघ चातुर्मास बड़नगर में था उस समय आप उनके चरण सान्निध्य में पहुंचे और स्वाध्यायादि के साथ साथ गुरु सेवा का अवसर प्राप्त कर बड़े आनन्दित थे। अब चूंकि बहिन दाखांबाई और आपका निर्मल स्नेह एवं धर्म के प्रति अनुराग ही परिवार था अतः आप दोनों ही सदैव साथ साथ गुरुजनों के समागम में जाते थे। चातुर्मास के मध्य आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा (सातवीं प्रतिमा) के व्रत अंगीकार कर लिये। आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प तो आप पहले ही ले चुके थे अतः अब कोई दुविधा मन में नहीं थी। यह आपके संयमी जीवन का प्रथम चरण था और अब चिरंजीलाल से ब्रह्मचारी चिरंजीलालजी हो गये थे।

गृह त्याग एवं क्षुल्लक दीक्षा :

बड़नगर चातुर्मास के पश्चात् आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज इन्दौर नगर में पधारे। आपकी छत्रछाया में ब्र० चिरंजीलालजी अपर नाम कजोड़ीमलजी अपने जीवन को दिन प्रतिदिन उन्नत बनाने के लिये प्रयत्नशील थे। पू० श्री चन्द्रसागरजी महाराज ने इन्दौर नगर में धर्म प्रभावना करते हुये भी प्रसंगवश अपने आराध्य गुरुदेव परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का आदेश प्राप्त करते ही इन्दौर नगर से विहार कर दिया था। उसी समय आप भी गृह त्याग करके संघ के साथ हो गये थे। बावनगजा, मांगीतुंगी आदि क्षेत्रों की वंदना करते हुए नांदगांव कोपरगांव और कसाबखेड़ा नगरों में प्रभावना पूर्ण चातुर्मास आ० क० श्री चन्द्रसागरजी महाराज ने किये तथा इन नगरों के आस पास के ग्रामों में विहार करके धर्म प्रभावना करते हुए वालुज (महाराष्ट्र) में जब संघ पहुंचा तो महाराष्ट्र प्रान्त की जनता गुरु सान्निध्य प्राप्त कर हर्षित थी।

आपके मन में दीक्षा धारण करने की भावना अवश्य थी और आप अपनी बहिन से इस बात को कह भी चुके थे। आप दीक्षा प्राप्त न होने तक विभिन्न रसों का परित्याग भी करते रहते थे। किन्तु दीक्षा के लिए आपने गुरुदेव के समक्ष कभी प्रार्थना नहीं की। दीक्षा लेने के विचार गुरुदेव के समक्ष अन्य लोगों के द्वारा पहुंच भी गये थे अतः गुरुदेव ने कहा कि कजोड़ीमलजी (चिरंजीलालजी) स्वयं आकर कहें तो मैं उनको दीक्षा दूँ और आपके मन में यह भावना थी कि यदि मुझमें योग्यता आ गई है तो स्वयं गुरुदेव दीक्षा लेने के लिए कहें तो मैं दीक्षा लूँ। इस प्रकार गुरु शिष्य के मध्य कुछ दिन वात्सल्यमय मानसिक द्वन्द्व चलता रहा। अन्ततः गुरु के समक्ष शिष्य की हार हुई और उन्होंने गुरुदेव के चरणों में दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। प्रार्थना करते ही शुभ दिवस में आपको दीक्षा प्रदान की गई।

वालुज नगर की जनता के लिये वह अपूर्व आनन्द की मंगल बेला चैत्र शुक्ला सप्तमी वि० सं० २००१ थी, जिस दिन आपने क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त की थी। दीक्षित नाम क्षुल्लक भद्रसागरजी रखा गया।

गुरु वियोग :

क्षुल्लक दीक्षा होने के पश्चात् आपने गुरुवर्य श्री चन्द्रसागरजी महाराज के साथ अडल (महाराष्ट्र) में सर्वप्रथम चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् गिरनारजी सिद्धक्षेत्र की वंदना हेतु

गुरुदेव ने ससंघ मंगल विहार किया। मार्ग में पड़ने वाले मुक्तागिरी, सिद्धवरकूट, ऊन-पावागिरी आदि क्षेत्रों की वंदना करते हुए बावनगजा सिद्धक्षेत्र पर पहुंचने के पश्चात् फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा वि० सं० २००१ में सिंह वृत्ति धारक गुरुवर्य श्री चन्द्रसागरजी महाराज का सल्लेखना पूर्वक स्वर्गवास हो गया। जन्म लेने के पश्चात् जिस प्रकार अल्पवय में ही आपको माता पिता के वियोग का दुःख आया उसी प्रकार दीक्षा जीवन के लगभग ११ माह ८ दिन में ही आपको पितृ तुल्य तरण-तारण गुरुवर्य का वियोग भी सहना पड़ा।

पू० श्री चन्द्रसागरजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् आप आ० क० श्री वीरसागरजी महाराज के चरण सान्निध्य में आ गये और गुरुवर्य के साथ क्षुल्लकावस्था में ६ चातुर्मास किये। इन वर्षों में आपने स्वाध्याय के बल पर आगमज्ञान को वृद्धिगत किया। आपकी सदैव प्रसन्न मुद्रा से समाज में आनन्द रहता था चूंकि आ० क० श्री चन्द्रसागरजी के चरण सान्निध्य में षोडश कलाओं से युक्त चन्द्रमा के समान आपका ज्ञान वैराग्योदधि वृद्धि को प्राप्त हुआ था अतः अब आप प्रतिक्षण महाव्रत प्राप्ति के लिये भावना करते रहते थे कि अब कब इस अल्प वस्त्ररूप परिग्रह को भी शीघ्र ही छोड़ूं।

संयम का दूसरा चरण :

प० पूज्य आ० क० श्री वीरसागरजी महाराज ने सुजानगढ़ में वि० सं० २००७ में ससंघ वर्षायोग सम्पन्न किया। इसके पश्चात् संघ का मंगल विहार विभिन्न गांवों एवं नगरों में होता हुआ फुलेरा की ओर हुआ। फुलेरा नगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर तपकल्याणक के दिन आपने ऐलक दीक्षा ग्रहण की। इस समय आपके पास एक कोपीन मात्र परिग्रह शेष रह गया था। वि० सं० २००८ के वैशाख मास में होने वाले इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में आपने ऐलक दीक्षा रूप उत्कृष्ट श्रावक के पद को तो प्राप्त कर लिया था, किन्तु मोक्षमार्ग में इतने से परिग्रह को भी बाधक समझकर निरन्तर आप यही भावना करते रहे कि शीघ्र ही दिगम्बर अवस्था को प्राप्त करूँ। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" के अनुसार ६ माह के पश्चात् ही वह मंगलमय दिवस भी प्राप्त हुआ जिस दिन आपने मुनिदीक्षा ग्रहण की।

दिगम्बर प्राप्ति :

फुलेरा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के पश्चात् संघ ने आस पास के ग्रामों में विहार किया और धर्म प्रभावना करते हुए वर्षायोग का समय निकट आ जाने पर पुनः फुलेरा नगर में वर्षायोग

सम्पन्न करने हेतु मंगल प्रवेश किया। आषाढ़ शुक्ला १४ सं० २००८ को संघ ने वर्षायोग की स्थापना की। प० पू० आ० क० श्री वीरसागरजी महाराज के वात्सल्यामृत से वैराग्य का वह बीजांकुर वृक्ष रूप में पल्लवित हो रहा था। जिसे चन्द्रसागरजी महाराज ने लगाया था। कार्तिकी अष्टाह्निका महापर्व का मंगल महोत्सव चल रहा था आपने गुरुदेव से प्रार्थना की कि हे भगवन्! अब मुझे संसार समुद्र से पार कराते में समर्थ दैगम्बर दीक्षा प्रदान करके मुझ पर अनुग्रह कीजिए। प्रार्थना स्वीकार हुई और अष्टाह्निका महापर्व के उपान्त्य दिवस कार्तिक शुक्ला १४ सं० २००८ के दिन आपको भगवती श्रमण दीक्षा प्रदान की गई। अब आप रत्नत्रय मार्ग के पूर्ण पथिक दिगम्बर मुनि धर्मसागरजी थे।

फुलेरा नगर का यह बड़ा सौभाग्य रहा कि यहां की समाज ने संयम की तीनों अवस्थाओं में आपके दर्शन किये वि० सं० २००५ में क्षुल्लकावस्था में पहले आपके दर्शन किये ही थे और ऐलक एवं मुनि दीक्षा तो आपकी यहीं पर हुई थी।

तीर्थराज सम्मेदाचल की वन्दना :

फुलेरा नगर का वर्षायोग सम्पन्न होने के पश्चात् मार्गशीर्ष माह में प० पू० वीरसागरजी महाराज ने ससंघ तीर्थराज सम्मेदाचल की ओर मंगल विहार किया। पू० श्री वीरसागरजी महाराज इससे पूर्व भी अपने आराध्य गुरुदेव श्री आचार्य प्रवर शान्तिसागरजी महाराज के साथ मुनि अवस्था में ही तीर्थराज की वंदना कर चुके थे। संघ मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों तथा नगरों में अपने उपदेशामृत से धर्मप्रभावना करते हुए सम्मेदाचल की ओर बढ़ रहा था। मार्गस्थ राजगृही आदि अन्य सिद्धक्षेत्रों की वंदना भी संघ ने की। इस तीर्थ वंदना में नव दीक्षित मुनिराज धर्मसागरजी भी साथ थे।

जब कोई भी व्यक्ति अपना लक्ष्य निर्धारित करके उस ओर गतिमान रहता है तो गन्तव्य स्थान पर अवश्य पहुंचता है। संघ भी धीरे-धीरे अपने गन्तव्य स्थान तीर्थराज पर पहुंचा। आपने सभी संघ के साथ अनन्त तीर्थङ्करों की सिद्धभूमि उस अनादिनिधन तीर्थराज की वंदना करके परम आल्हाद का अनुभव किया। चूंकि संघ जब यहाँ पहुंचा था तब वर्षायोग का समय अत्यन्त निकट था अतः मधुवन से ईसरी बाजार आकर इस वर्ष का वर्षायोग संघ ने यहीं स्थापित किया।

इस प्रकार गुरुवर के साथ साथ ही आपने विहार किया एवं उनके अन्तिम समय तक उन्ही के साथ रहे। वि० सं० २०१२ में आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने अपनी सल्लेखना के समय कुंथलगिरी से अपना आचार्य पट्ट वीरसागरजी मुनिराज को प्रदान किया था तदनुसार वि० सं० २०१२ में ही जयपुर खानियाँ में वर्षायोग के समय विशेष समारोह पूर्वक चतुर्विध संघ ने आ० क०

श्री वीरसागरजी महाराज को अपना आचार्य स्वीकार किया। अब वीरसागरजी महाराज के ऊपर दोहरा भार था। और उन्होंने गुरु द्वारा प्रदत्त आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होकर उसे सफलता पूर्वक निभाया। आचार्य पद के पश्चात् भी २ वर्ष तक आपने खानियाँ जयपुर में ही चातुर्मास किये। क्योंकि आप शारीरिक रूप से अस्वस्थ थे और विहार करने की सक्षमता आप में नहीं थी।

एक और झटका गुरु वियोग का :

वि० सं० २०१४ का चातुर्मास जयपुर में ही सानन्द सम्पन्न हो रहा था कि इसी बीच आश्विन कृष्णा १५ को आचार्य वीरसागरजी महाराज का सहसा ही सल्लेखना मरण हो गया। आपको अभी दीक्षा लिये ६ वर्ष ही हुए थे कि आपको गुरु वियोगज अनिष्ट प्रसंग प्राप्त हुआ। आचार्य श्री वीरसागरजी का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् समस्त संघ ने उनके प्रधान शिष्य मुनिराज श्री शिवसागरजी महाराज को संघ का आचार्य बनाया।

गिरिनार सिद्धक्षेत्र की वंदना एवं संघ से पृथक् विहार :

अब संघ के आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज थे। आचार्य-संघ ने गिरिनार यात्रा के लिए मंगल विहार किया। चूंकि अब से १३ वर्ष पूर्व क्षुल्लक दीक्षा होने के पश्चात् आ० क० श्री चन्द्रसागरजी महाराज के साथ आपने गिरनारजी सिद्धक्षेत्र की वंदना के लिए विहार किया था, किन्तु गुरुदेव का असमय में मध्य यात्रा में ही स्वर्गवास हो जाने से उस समय आप यात्रा नहीं कर पाये थे अतः उसका मनोरथ अब पूर्ण होता देख आपको प्रसन्नता थी। आपने भी संघ के साथ विहार करते हुए गिरनार सिद्धक्षेत्र की वंदना की और वहाँ से वापस लौटते समय ब्यावर नगर में संघ ने वर्षायोग का विचार किया। चूंकि वर्षायोग में अभी समय था अतः आपने संघस्थ एक और मुनिराज को साथ लेकर संघ से पृथक् विहार कर दिया और निकटस्थ आनन्दपुर कालू जाकर वर्षायोग स्थापित किया था।

यहां से अगले दो चातुर्मास क्रमशः वीर (अजमेर) और बूंदी करने के पश्चात् बुन्देलखण्ड की यात्रा करने के लिए आपने दो मुनिराजों के साथ मंगल विहार किया। तीर्थक्षेत्रों की वंदना करते हुए आपने उस प्रांत में ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में अत्यन्त धर्म प्रभावना की। इतना ही नहीं वि० सं० २०१८-२०१९ व २०२० के तीन वर्षायोग भी आपने इसी प्रांत के क्रमशः शाहगढ़, सागर और खुरई नगर में किये। इन तीनों वर्षायोगों में धर्म की महती प्रभावना हुई तथा आपके सरलता आदि अनुपम गुणों के कारण सागर के कई विद्वान आपसे प्रभावित भी हुए तथा आपके चरण सान्निध्य में व्रती जीवन भी प्राप्त किया। इन तीनों चातुर्मासों में दीक्षा समारोह (खुरई) के अतिरिक्त

सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि एक अजैन व्यक्ति जो कि भाटियाजी के नाम से विख्यात है, ने आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कई स्थानों पर अपने स्वोपार्जित द्रव्य से सिद्धचक्र विधान भी करवाये एवं जैन तीर्थों की वंदना भी की। आपने महाराज श्री के आदर्श त्यागमय जीवन से प्रभावित होकर धर्मध्यान दीपक नामक पुस्तक के एक संस्करण का प्रकाशन भी करवाया।

मालवा प्रान्तीय तीर्थक्षेत्रों की वन्दना :

बावनगजा सिद्धक्षेत्र की वंदना के पश्चात् आपने इन्दौर नगर की ओर विहार किया और वि० सं० २०२१ का वर्षायोग यहीं स्थापित किया। इस वर्षायोग में आपको सर्वप्रथम मुनिशिष्य की प्राप्ति हुई अर्थात् आपने सर्व प्रथम मुनिदीक्षा इसी चातुर्मास में प्रदान की। वर्षायोग के पश्चात् आपने राजस्थान प्रांत की ओर विहार किया तथा क्रमशः झालरापाटन (२०२२) टोंक (२०२३), बूंदी (२०२४) और बिजौलिया (झालरापाटन) के आस पास के ग्रामों में विहार करते हुए बासी ग्राम आए। आपके सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी यहां सम्पन्न हुई थी। यहीं आपके चरण सान्निध्य में वीतराग प्रभु के प्रति मूल प्रेरणा स्रोत आपके गृहस्थावस्था की बहिन ब्र० दाखांबाई ने सल्लेखना पूर्वक अत्यन्त शांत परिणामों से इस नश्वर शरीर का परित्याग कर स्वर्गारोहण किया था। आप प्रारम्भ से ही अति सहनशील एवं शांत परिणामी थी। स्वयं आचार्य श्री उनके इन गुणों की प्रशंसा करते ही हैं किन्तु जिन्होंने भी दाखांबाई को देखा था वे सब उनके गुणों की प्रशंसा करते हुये पाये गए। टोंक और बूंदी चातुर्मासों में क्रमशः क्षुल्लक और मुनि दीक्षाएं हुईं। बिजौलिया नगरों में मुनिसंघ के नायक होने से आपको आचार्य पद प्रदान करने की भावना समाज ने व्यक्त की किन्तु सदैव आपने यही कहा कि धर्मप्रभावना की दृष्टि से हम पृथक् विहार कर रहे हैं, हमें आचार्य पद नहीं लेना है, हमारे संघ के आचार्य शिवसागरजी महाराज विद्यमान हैं तथा दूसरी बात यह भी है कि आचार्य पद जैसे गुरुतर भार को ग्रहण करके मैं अपने धर्मध्यान में बाधा भी नहीं डालना चाहता हूं।

एक और वज्रपात :

वि० सं० २०२५ का बिजौलिया नगर में चातुर्मास सम्पन्न करके आपने श्री शान्तिवीर नगर में होने वाले पंचकल्याणक महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए महावीरजी की ओर विहार किया। इसी महोत्सव में भाग लेने के लिए आचार्य श्री शिवसागरजी से मिले तो वह उभय संघ सम्मिलन का दृश्य अपूर्व था। वि० सं० २०१५ से पृथक् विहार के पश्चात् गुरु भाईयों का यह मिलन दूसरी बार था। इससे पूर्व भी आप राजस्थान प्रान्त के उनियारा ग्राम में मिल चुके थे। प्रतिष्ठा महोत्सव से पूर्व ही आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज को फाल्गुन कृष्णा ७ सं० २०२५ को अचानक ज्वर ने घेर लिया और दिन प्रतिदिन आपकी शारीरिक स्थिति गिरती ही चली गई। फाल्गुन कृष्णा १४ को कई

लोगों ने दीक्षा ग्रहण करने हेतु आचार्य श्री के चरणों में प्रार्थना की थी। पंचकल्याणक के अन्तर्गत तपकल्याणक के दिन यह दीक्षासमारोह होने का निर्णय था। प्रतिष्ठा से पूर्व फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को शिवसागरजी महाराज के स्वास्थ्य की स्थिति और भी गिरती रही। संघस्थ मुनिराज श्री श्रुतसागरजी एवं सुबुद्धिसागरजी महाराज ने आचार्य श्री शिवसागरजी से पूछा कि यदि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो पाया और पाण्डाल में नहीं जा सकेंगे तो फाल्गुन शुक्ला ८ को होने वाले तपकल्याणक के अन्तर्गत दीक्षा समारोह में दीक्षार्थियों को दीक्षा कौन प्रदान करेगा। उत्तर स्वरूप आचार्य श्री ने कहा कि अभी आठ दिन शेष हैं तब तक तो मैं स्वयं ही स्वस्थ हो जाऊँगा और यदि नहीं हो सका तो मुनि श्री धर्मसागरजी महाराज दीक्षार्थियों को दीक्षा प्रदान करेंगे। धर्मसागरजी महाराज वहां उपस्थित मुनि समुदाय में (आचार्य शिवसागरजी को छोड़कर) सबसे तपोज्येष्ठ थे। अमावस्या को मध्याह्न ३ बजे आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज का सहसा स्वर्गवास हो गया। समस्त संघ में वातावरण शोकाकुल सा हो गया क्योंकि संघ ने कुशल अनुशास्ता आचार्य श्री को खो दिया था। स्वयं धर्मसागरजी महाराज ने भी निधि खो जाने जैसा अनुभव किया।

आचार्यत्व प्राप्ति :

चूंकि आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के स्वर्गवास से प्रतिष्ठा महोत्सव में उत्साह की कमी आ गई थी, दूसरा ज्वलंत प्रश्न यह था कि संघ के आचार्य कौन होंगे ? आठ दिनों के विशेष ऊहापोह के पश्चात् फाल्गुन शुक्ला ८ सं० २०२५ को प्रभातकाल में संघस्थ सभी साधुओं ने एक स्वर से यह निर्णय किया कि अब आचार्य श्री शिवसागरजी के पश्चात् संघ के आचार्य का भार मुनिराज श्री धर्मसागरजी महाराज को प्रदान किया जावे। निर्णयानुसार तपकल्याणक के अवसर पर फाल्गुन शुक्ला ८ के दिन ही आपको विशाल जनसमुदाय के समक्ष चतुर्विध संघ ने आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। विधि का विधान ही कुछ ऐसा होता है कि जिस आचार्य पद को ग्रहण करने की आपने पूर्व में भी कई बार अनिच्छा प्रगट की थी वही आचार्य पद आपको स्वीकार करना पड़ा। आचार्य पद प्राप्त होने के पश्चात् उसी दिन आपके कर कमलों से (६ मुनि, २ आर्यिका, २ क्षुल्लक और १ क्षुल्लिका) ११ दीक्षाएं हुई। ये वे ही दीक्षार्थी थे जिन्होंने आचार्य श्री शिवसागरजी के समक्ष प्रार्थना की थी।

आचार्य पद प्राप्ति के पश्चात् महावीरजी क्षेत्र से जयपुर की ओर विहार किया और गुरुदेव श्री वीरसागरजी महाराज के निषद्यास्थान की वंदना की। वि० सं० २०२६ का वर्षायोग आपने जयपुर शहर में किया। एक ओर जहाँ दीक्षा समारोह हुआ वहीं धार्मिक शिक्षा के लिए गुरुकुल की स्थापना एवं शहर में कई स्थानों पर रात्रि पाठशालाओं का संचालन भी हुआ। यहां आपके कर

कमलों से ५ दीक्षाएं सम्पन्न हुई तथा आपके संघस्थ क्षु० योगीन्द्रसागरजी महाराज जिन्हें मुनिदीक्षा प्रदान कर दी गई थी का आपके चरण सान्निध्य में सल्लेखना पूर्वक स्वर्गारोहण हुआ था। वर्षायोग सानन्द सम्पन्न होने के पश्चात् आपने ससंघ पद्मपुरा की ओर मंगल विहार किया। पद्मपुरा में पद्मप्रभु भगवान के दर्शन करने के पश्चात् ग्राम ग्राम मंगल विहार करके धर्मामृत की वर्षा करते हुए वि० सं० २०२७ का चातुर्मास टोंक नगर में स्थापित किया। इससे ४ वर्ष पूर्व आप मुनि अवस्था में चातुर्मास कर चुके थे। इस समय आपके साथ ११ मुनि एवं १८-१९ आर्यिका थी। इस प्रकार विशाल संघ के आचार्यत्व का भार आप पर था जो अद्यप्रभृति है। टोंक से विहार करते हुए वि० सं० २०२८ का वर्षायोग अजमेर नगर में स्थापित किया। इस वर्ष भी धर्म की महती प्रभावना के साथ साथ आपके कर कमलों से ७-८ दीक्षायें सम्पन्न हुई थी। इसके पश्चात् क्रमशः वि० सं० २०२९ (लाडनूं) और वि० सं० २०३० (सीकर) नगर में आपके ससंघ दो चातुर्मास हुए। सीकर वर्षायोग के पश्चात् आपने दिल्ली महानगर की ओर विहार किया।

भगवान महावीर का २५०० वाँ परिनिर्वाणोत्सव :

वि० सं० २०३१ तदनुसार सन् १९७४ में सम्पन्न होने वाले निर्वाणोत्सव में आपको विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था और दिगम्बर सम्प्रदाय के परम्परागत पट्टाचार्य होने से आपका विशेष अतिथि के रूप में राष्ट्रीय समिति में भी नाम रखा गया था। निर्वाण महोत्सव की प्रत्येक गतिविधि में प्रायः आपसे विचार विमर्श किया जाता था। आपने सम्पूर्ण कार्यक्रमों में इस बात का सदैव ध्यान रखा कि दिगम्बर संस्कृति अक्षुण्ण बनी रहे। इसका कारण यह था कि इस महोत्सव में जैन धर्म के चारों सम्प्रदाय सम्मिलित हुये थे। महोत्सव पर समिति की ओर से प्रकाशित होने वाली भगवान् महावीरस्वामी की जीवनी जो कि चारों सम्प्रदाय को मान्य होनी थी जब आपके पास अवलोकनार्थ आयी तो उस पर आपने अपनी सहमति देने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उसमें दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार कई स्थल अनुचित थे। महोत्सव में होने वाले ऐसे प्रत्येक कार्य में आपने अपनी सहमति देने से इन्कार कर दिया जिसमें वीतराग प्रभु महावीर और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म की आसादना होने की सम्भावना थी। इसी कारण महोत्सव समिति के प्रधान कार्यकर्ता क्षुब्ध भी हुये और कहा कि आप हमें कुछ भी कार्य नहीं करने देना चाहते तो हम समिति में रहकर ही क्या करेंगे? आपने अत्यन्त गम्भीरता से अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करते हुये कहा कि "आप लोगों को क्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं है मैं यह चाहता हूं कि दिल्ली जो कि भारत की राजधानी है उसमें होने वाले महोत्सव सम्बन्धी प्रत्येक कार्यक्रम पर सारे देश की समाज की दृष्टि लगी हुई है और सभी प्रमुख धर्माचार्यों के सान्निध्य में होने वाले इस महोत्सव सम्बन्धी कार्यक्रमों का अनुकरण सारा समाज

करेगा। अतः यहां ऐसा कोई भी कार्यक्रम मैं नहीं होने दूंगा जो दिगम्बर संस्कृति के प्रतिकूल हो और उसका सारा गलत प्रभाव देशभर में पड़े। इसके वावजूद भी आप लोग क्षुब्ध होते हैं और कार्य समिति से स्तीफा देते हैं तो दें मैं तो संस्कृति के अनुकूल कार्यों में ही अपनी सहमति दे सकता हूं।

इस प्रकार अत्यन्त निर्भयता पूर्वक आपने दिगम्बर संस्कृति की रक्षार्थ कार्य किया और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा। आपकी इस कार्य प्रणाली को देखकर आपके दिल्ली पहुंचने से पूर्व जो लोग आपको दिल्ली नहीं जाने देना चाहते थे उन्होंने भी एक स्वर से यह स्वीकार किया कि आपके रहते हुए परम्परा एवं आगम की महती प्रभावना हुई एवं संस्कृति अक्षुण्ण बनी रही। इस वर्ष भी आपके कर कमलों से दिल्ली महानगरी में ८ दीक्षाएं सम्पन्न हुईं। दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर से आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज भी अपने संघ सहित इस महोत्सव में सम्मिलित हुये थे। उभय आचार्यों का वात्सल्य देखकर सारा समाज आनन्द विभोर हो जाता था महोत्सव में मुनि श्री विद्यानंदजी महाराज भी उपस्थित थे और आपने भी उभय आचार्यों की भावनाओं के अनुकूल दिगम्बर संस्कृति की अक्षुण्णता के लिए दोनों आचार्यों से सदैव परामर्श करके ही प्रत्येक कार्यक्रम में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया था।

दिल्ली महानगर से ससंघ मंगलविहार करके आपने उत्तरप्रदेश की ओर प्रस्थान किया एवं गाजियाबाद मेरठ, सरधना आदि स्थानों पर धर्म प्रभावना करते हुए उत्तरप्रदेश के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर के दर्शन करने के लिए पदार्पण किया। हस्तिनापुर भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक भूमि है। यहीं भगवान ऋषभदेव को सर्वप्रथम आहारदान राजा श्रेयांस ने दिया था कौरव पांडव की राज्य भूमि होने का गौरव भी इसी तीर्थक्षेत्र को प्राप्त है। यहीं पर महामुनि विष्णुकुमारजी द्वारा अकम्पनाचार्यादि ७०० मुनिराजों का उपसर्ग दूर हुआ था और रक्षाबन्धन पर्व का प्रारंभ हुआ था और अब आर्यिका ज्ञानमतीजी की दूरदर्शी सूझबूझ से आगम में वर्णित विशाल जम्बूद्वीप की रचना त्रिलोक शोधसंस्थान के माध्यम से हो रही है तथा इस संस्थान के अन्तर्गत अन्य भी कई लोकोपकारी गतिविधियां सम्पन्न हो रही हैं।

वि० सं० २०३१ में जब आचार्यश्री यहां पधारे थे तभी यहीं प्राचीन क्षेत्र कमेटी की ओर से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन था। यहीं पर आपके चरण सान्निध्य में संघस्थ मुनिराज श्री वृषभसागरजी ने यह सल्लेखना ग्रहण की थी और संघ सान्निध्य में अत्यन्त शांत परिणामों एवं पूर्ण चेतनावस्था में कषाय निग्रह करते हुए इस नश्वर शरीर का परित्याग कर उत्तर भारतीय समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया था।

तीर्थ वंदना एवं सल्लेखना महोत्सव के पश्चात् आपने ससंघ उत्तरप्रदेश के सहारनपुर नगर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मुजफ्फर नगर आदि स्थानों पर धर्मप्रभावना करते हुए वर्षायोग से एक माह पूर्व आप सहारनपुर पहुंचे इस वर्ष (२०३२) का वर्षायोग आपने सहारनपुर में ही स्थापित किया था। वर्षायोग सम्पन्न होने के पश्चात् आपने पुनः मुजफ्फरनगर की ओर विहार किया यहां के शीतकालीन त्रैमासिक प्रवास काल में संघस्थ दो मुनिराजों ने आपके चरणसान्निध्य में सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया। यहीं पर आपके कर कमलों से ११ दीक्षायें सम्पन्न हुई। यहां से शामली, कैराना, कांदला आदि ग्रामों में विहार करते हुए बड़ौत नगर में वि० सं० २०३३ का वर्षायोग सम्पन्न किया। कांदला में आ० क० श्री श्रुतसागरजी महाराज जो कि आपके गुरु भाई भी हैं आपके दर्शनार्थ राजस्थान प्रान्त से विहार करते हुए संघ में सम्मिलित हुए। बड़ौत चातुर्मास में भी वे साथ ही थे। बड़ौत चातुर्मास के पश्चात् ससंघ आपने दिल्ली महानगर तथा रोहतक, रेवाड़ी (हरियाणा प्रान्त) आदि की ओर विहार करके राजस्थान प्रान्त में पुनः प्रवेश किया।

राजस्थान के प्रसिद्ध नगर मदनगंज–किशनगढ़ में वि० सं० २०३४ का वर्षायोग अभूतपूर्व धर्म प्रभावना के साथ सम्पन्न किया एवं वर्षायोग के पश्चात् अजमेर नगर की ओर प्रस्थान किया। अजमेर में शीतकालीन प्रवास व्यतीत कर आपने ससंघ ब्यावर की ओर मंगल विहार किया। साथ में आ० क० श्री श्रुतसागरजी महाराज थे, वे अजमेर ही रुक गये क्योंकि उन्हें अपने संघ में मिलना था जिसे छोड़कर वे आपके दर्शनार्थ उत्तरप्रदेश की ओर पहुंचे थे। ब्यावर के पश्चात् भीलवाड़ा होते हुए संघ भीण्डर (उदयपुर) पहुंचा। आपके ससंघ सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा अत्यन्त प्रभावना के साथ सम्पन्न हुई। इसी महोत्सव के अवसर पर शान्तिवीर दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा का नैमित्तिक अधिवेशन भी हुआ। सभा ने धर्म रक्षार्थ आपसे मार्गदर्शन भी प्राप्त किया। भीण्डर से उदयपुर के लिए विहार किया। वि० सं० २०३५ का वर्षायोग उदयपुर में सम्पन्न किया। इस वर्ष भी दो दीक्षायें आपके कर कमलों से सम्पन्न हुई। उदयपुर के वर्षायोग के पश्चात् उदयपुर सम्भाग के छोटे छोटे ग्रामों में आपने मंगल विहार किया और इन ग्रामों में फैली कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा अपने उपदेशों में दी। कहीं कहीं तो आपके उपदेशामृत से प्रेरणा पाकर जीर्णशीर्ण दशा में स्थित मन्दिरों को जीर्णोद्धार करने का संकल्प समाज ने किया। विहार मार्ग में ऐसे ग्राम भी आए जहां इतने विशाल संघ को रहने की व्यवस्था भी नहीं बन पाती थी, आपसे लोगों ने निवेदन भी किया कि बड़े संघ के रहते ग्रीष्मकाल में आपको किन्हीं बड़े स्थानों पर ही विहार करना चाहिए ताकि संघ की व्यवस्था ठीक प्रकार से हो सके। प्राणी मात्र के कल्याण की भावना जो कि सदैव आपके हृदय में विद्यमान रहती है वह शब्दों में प्रगट हुई, आपने कहा कि "बड़े नगरों व ग्रामों में प्रायः साधु विचरते ही हैं। किन्तु इन छोटे छोटे ग्रामों में रहने वाले लोगों में व्याप्त अज्ञानान्धकार

फिर कब दूर होगा । ये लोग कब साधुओं का समागम प्राप्त करके आत्मकल्याण का मार्ग प्राप्त करेंगे । अतः थोड़ा कष्ट पाकर भी इन ग्रामों में विचरण करेंगे तो इन गांवों में निवास करने वाली समाज का भी तो कल्याण होगा ।

इस प्रकार छोटे-छोटे ग्रामों में मंगल विहार करते हुए आप सलूम्बर नगर में पहुंचे और समाज के विशेषाग्रह से आपने वि० सं० २०३६ का वर्षायोग यहीं स्थापित किया । उदयपुर सम्भाग में आपका यह द्वितीय चातुर्मास था । पूर्ववर्ती चातुर्मासों के समान ही इस वर्ष भी अत्यन्त धर्म-प्रभावना के साथ यह वर्षायोग सम्पन्न हुआ । इसके पश्चात् सलूम्बर तहसील के आस पास के छोटे छोटे ग्रामों में पुनः धर्मप्रभावना करते हुए वि० सं० २०३७ के वर्षायोग के समय आप केशरियाजी (ऋषभदेवजी) पहुंचे और इस वर्ष का चातुर्मास यहीं स्थापित किया । शारीरिक दृष्टि से यह क्षेत्र आपके तथा संघस्थ प्रायः सभी साधुओं के लिये अनुकूल नहीं रहा, क्योंकि इस वर्ष इस क्षेत्र में मलेरिया का अत्यधिक प्रकोप रहा और प्रायः सभी साधुओं को ज्वराक्रांत रहना पड़ा । रोग जनित उपसर्ग तुल्य इस अनिष्ट संयोगज दुःख को संघ ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सहन किया । इस वर्ष भी आपके कर कमलों से चार दीक्षायें सम्पन्न हुई पारसौला में ७५ साधुओं के सान्निध्य में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई । ५ दीक्षाएं तथा आपके शिष्य मुनि श्री संयमसागरजी की समाधि भी वहीं हुई । अभी हाल ही प्रतापगढ़ में भी आपके साथ ४० साधुवृन्द थे ।

इस प्रकार दीक्षा ग्रहण करके ३८ वर्षीय दीक्षित जीवन काल में आपने भारतवर्ष के राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रमुख प्रमुख प्रान्तों में, नगरों एवं ग्रामों में मंगल विहार करते हुए अभूतपूर्व धर्मप्रभावना की एवं प० पू० आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज द्वारा आगम विहीत परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा है ।

सरलता की प्रतिमूर्ति :

गृहस्थ हो या साधु (अनगार) आत्मसाधना का प्रमुख आधार सरलता है, निष्कपटता है । आत्मविशुद्धि के लिये सरलता एक अमोघ साधन है । सरल परिणामों से युक्त आत्मा ही निर्मल-पवित्र होती है और साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । आचार्यश्री सरल भाव की ज्योतिर्मय मूर्ति हैं । आपके जीवन में कहीं छुपाव या दुराव वाली बात को स्थान नहीं है । इसी सरलता के कारण आप निर्भीक एवं स्पष्टवादी हैं । कथनी और करनी की समानता वाले सद्गुरु इस संसार में अत्यन्त विरल हैं, आचार्यश्री भी कथनी और करनी की समानता से संयुक्त अद्भुत योगीराज हैं ।

आचार्यश्री इस युग के आदर्श संत हैं। संतजीवन की समग्र विभूतियां उनमें केन्द्रित हो गई हैं। शिशु का सा सारल्य, माता का कारुण्य, योगी की असम्पृक्तता से ओतप्रोत उनका जीवन है। हृदय नवनीत सा मृदु, वाणी में सुधा की मधुरता और व्यवहार में अनायास अपनी ओर आकृष्ट कर लेने वाला जादू ही है। आत्मनिष्ठा के साथ अशेष निष्ठा का निर्वाह करने वाले आचार्यश्री वास्तव में अनेकांत के मूर्तिमान उदाहरण हैं।

सिद्धान्त विरोधी प्रवृत्ति में असहिष्णुता :

आर्ष परम्परा के प्रतिकूल सिद्धान्त विरोधी प्रवृत्ति को आपने कभी भी सहन नहीं किया है। न तो आप स्वयं सिद्धान्त विरुद्ध आचरण करते हैं और न किसी के सिद्धान्त विरुद्ध आचरण को सहन ही करते हैं। भगवान महावीर के २५०० वें परि निर्वाणोत्सव के प्रसंग में ऐसे अवसर भी आये जब संस्कृति के विरुद्ध भी सभा में कार्यक्रमों के प्रमुख अतिथियों ने अपने वक्तव्य देने का असफल प्रयास किया, किन्तु उस समय भी आपने पूर्ण निर्भीकता से उन सिद्धान्त विरुद्ध बोलने वाले लोगों को अच्छी नसीहत देते हुए स्पष्ट शब्दों में सभा के मध्य ही सिंह गर्जना करते हुए कहा कि इनको हमारे धर्म सिद्धान्त के विरुद्ध बोलने का कोई अधिकार नहीं है। उस समय आपने यह संकोच कभी नहीं किया कि सभा में आने वाला मुख्य अतिथि केन्द्रीय सरकार का मंत्री है या अन्य कोई। आप सदैव ही आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में प्रयत्नशील रहते हैं।

मन वचन कर्म की ऐक्य परिणति मूर्तिमान :

विश्व में तीन प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। सर्वप्रथम तो ऐसे व्यक्ति हैं जिनका हृदय बहुत सरल, मधुर और निश्छल प्रतीत होता है। किन्तु हृदय की मधुरता वाणी में प्रगट नहीं होती है, मन का माधुर्य कर्म में भी नहीं उतर पाता है। उनके अन्तःकरण की सरलता वाणी में प्रगट नहीं हो पाती है। दूसरी कोटि के ऐसे व्यक्ति भी बहुत हैं जिनकी मिश्री के समान वाणी मधुर सरस होती है किन्तु हृदय कटुता, विद्वेष, वैमनस्य संयुक्त है। तीसरे प्रकार के व्यक्ति भी विश्व में यत्किंचित् संख्या में मणिवत् प्रकाशमान हैं, उनकी वाणी मधुर, मन उससे भी मधुर, वाणी सरल, सरस और हृदय उससे भी सरल, सरस और पवित्र होता है। आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज का व्यक्तित्व इसी कोटि का है। महान व्यक्तियों के मन, वचन, क्रिया में सदैव एकरूपता होती है और दुरात्मा इससे विपरीत होता है। आचार्यश्री का पावन जीवन मन, वचन, क्रिया और कर्मरूप निर्मल त्रिवेणी का संगम स्थल है अतः वह परम पावन जीवन्त तीर्थ है।

स्नेह सौजन्य की मूर्ति :

आचार्य श्री का हृदय सरोवर स्नेह और सौजन्य से लबालब भरा हुआ है। जो भी व्यक्ति उनके सामने जाता है, स्नेह और सौजन्य से अभिषिक्त हुए बिना नहीं रहता। राजा हो या रंक, श्रीमन्त हो या निर्धन, बालक हो या वृद्ध, नर हो या नारी, अनुरागी हो या विरोधी, निन्दक हो या प्रशंसक सभी पर समान भाव से स्नेह की पीयूष धारा बरसाने वाले आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज अनायास ही सबको अपना बना लेते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति साधारण से असाधारण स्थिति पर पहुंचता है तो वह साधारण व्यक्तियों से अपने आपको ऊँचा मानते हुए गर्वानुभूति करता है। किन्तु आचार्यश्री में ऐसा नहीं है।

कुछ लोगों का कहना है कि श्रद्धा अज्ञान की सहचारिणी है, किन्तु आचार्यश्री ने अपने व्यक्तित्वबल से जहां साधारण जन की श्रद्धा का अर्जन किया है वहीं समाज के विद्वज्जन भी आपके सरल, शांत, सौम्य एवं निस्पृह वृत्ति से प्रभावित हुए हैं। आचार्यश्री की स्मरण शक्ति भी अद्भुत है। आपकी जिह्वा पर जैन दर्शन के संस्कृत प्राकृत भाषा से सम्बद्ध अनेकों श्लोक विद्यमान हैं और आप निरन्तर उठते बैठते उनका पारायण करते रहते हैं।

प्रवचन शैली :

आचार्यश्री की धर्मदेशना प्रणाली अपने ढंग की निराली है, उनके प्रवचनों में न तो दार्शनिक स्तर की सूक्ष्मता है और न ही आध्यात्मवाद की अज्ञेय गहराईयां हैं। लौकिकजनों को अनुरन्जित कर लौकेषणा से अनुप्राणित भाषा का प्रयोग भी उनके प्रवचनों में नहीं होता है। उनके हृदय की निर्मलता सरलता और विरक्तता उनकी वाणी में प्रकट होती है, क्योंकि आगमानुसार संयम से परिपूर्ण उनका प्रवचन तथा उसके अनुरूप ही जीवन भी संयमित है। आपके प्रवचनों में खड़ी हिन्दी में राजस्थानी (मारवाड़ी) भाषा का पुट अत्यन्त मधुर लगता है। आगम समर्थित वैराग्यो-त्पादक आपकी वाणी ने अनेकों भव्यात्माओं को प्रभावित किया है जिसके फलस्वरूप वे अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर हैं। कितने ही पापानुगामी जीवों ने पाप पथ का परित्याग करके धर्ममार्ग को अपनाया है। आप अपने प्रवचनों में सदैव कहा करते हैं कि वास्तविक आनन्द की सिद्धि भोग में नहीं है त्याग में है और व्यक्ति का जीवन भी, समीचीन त्याग से उन्नति पथ पर अग्रसर होता है। भोग आत्म पतन और त्याग आत्मोन्नति का राजपथ है। आचार्यश्री आत्मविद्या के सजग साधक परमयोगी हैं। उनकी आत्मसाधना का प्रत्यक्ष रूप उनके दर्शन मात्र से ही प्रतिबिम्बित होता है।

आचार्यश्री मेरे दीक्षा गुरु हैं अत: मैंने उन्हें असाधारण व्यक्तित्व सम्पन्न एवं अनुपम चारित्र-निधि आदि विशेषणों से अलंकृत किया हो ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता और जलधिका गाम्भीर्य प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है उसी प्रकार महापुरुषों के व्यक्तित्व को निखारने की आवश्यकता नहीं होती वह स्वत: निखरित होता है। महापुरुष जिस ओर चरण बढ़ाते हैं वही मार्ग है, जो कहते हैं वही शास्त्र है और जो कुछ करते हैं वही कर्तव्य बन जाता है। महापुरुष तीन प्रकार के होते हैं। (१) जन्म जात (२) श्रम या योग्यता के बल पर (३) कृत्रिम जिन पर महानता थोपी जाती है। आचार्यश्री जन्म जात महापुरुष तो हैं ही किन्तु योग्यता के बल पर बने महापुरुष भी उन्हें कहा जावे तो अतियोशक्ति नहीं होगी। आपके विशाल व्यक्तित्व की प्रामाणिकता में सबसे बड़ा कारण है आपका निर्दोष आचार।

समस्त भारत वर्ष की सभी संस्थाओं एवं जैन समाज की ओर से तथा दि० जैन नवयुवक मण्डल, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी एवं मुनि वर्धमान सागरजी के मार्ग निर्देशन में ब्र० धर्मचन्द शास्त्री के द्वारा सम्पादित अभिवन्दन ग्रन्थ ५० हजार जनसमुदाय की उपस्थिति में आपको समर्पित किया गया, पर आपने ग्रन्थ लिया नहीं तथा प्रकाशक एवं संयोजन करने वाले सभी बन्धुओं को फटकारा। धन्य है आपका त्याग! जहां पर मानव पद लिप्साओं को छोड़ने में समर्थ नहीं है वहाँ पर आपने समस्त समाज के सामने ग्रन्थ लेने से इंकार कर दिया।

ऐसे स्वपर कल्याणकारी महापुरुष के चरणों में मानव का शीश स्वयं ही झुक जाता है और उसकी हृदतंत्री से स्वत: ही यह भावना मुखर उठती है कि ऐसे युग पुरुष सदियों तक मानव मात्र का पथ प्रदर्शन करते रहें और अपने आध्यात्मिक बल से मूर्च्छित नैतिकता में प्राण प्रतिष्ठा करते रहें। इन्हीं भावनाओं के साथ करुणा के असीम सागर, आर्ष परम्परा के निर्भीक संरक्षक, अध्यात्म-वाद के साक्षात् आचरण कर्ता, अतिसरल, सत्य के तेज:पुन्ज, छल, कपट से अनभिज्ञ, उच्चकोटि के सादगी प्रिय, क्रोध से सहस्रों कोस दूर, स्याद्वाद के प्रबल समर्थक, सरलता के मूर्तिमान, निस्पृही व्यक्तित्व, जन जन के वंद्य आचार्यश्री के परम पावन चरणों में मुझ अल्पज्ञ शिष्य के शतसहस्र प्रणाम!

मुनिश्री पद्मसागरजी महाराज

मुनि श्री १०८ पद्मसागरजी के गृहस्थावस्था का नाम धूलचन्दजी था। आपका जन्म आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व टोंक (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता श्री गद्दूमलजी पंडित व माताजी श्रीमती भोलीबाई थीं। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण व बाकलीवाल गोत्रज थे। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके पिताश्री गोटे का व्यापार करते थे। आपने विवाह नहीं कराया। बालब्रह्मचारी ही रहे। परिवार में एक भाई और हैं।

संसार की नश्वरता को जानकर आपने स्वयं आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी महाराज से खानियां, जयपुर में मुनिदीक्षा ले ली। आपने इन्दौर आदि में चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की।

पदमपुरी में सन् १-९-८१ में आपने चातुर्मास किया था। यहीं पर आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी के सान्निध्य में आपने समाधिमरण किया।

मुनिश्री सन्मतिसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम मोहनलालजी था। आपका जन्म आज से करीब ७० वर्ष पूर्व टोडारायसिंह में हुआ। आपके पिता श्री मोतीलालजी थे। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण थे और गोत्र छावड़ा है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ था।

आपने १०८ श्री आचार्य वीरसागरजी से दीक्षा ली। आपने इन्दौर औरंगाबाद, फल्टन, कुम्भोज, जबलपुर, आरा आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपको तत्वार्थसूत्र का विशेष परिचय था। आप अभी आहार में केवल दूध मात्र ग्रहण करते रहे। आप इसी प्रकार शरीर से आत्मा की दिशा में बढ़ते रहे। सन १९८१ को उदयपुर में आपने समाधि ग्रहण कर ली तथा भौतिक शरीर का त्याग भी यहीं किया।

मुनिश्री आदिसागरजी महाराज
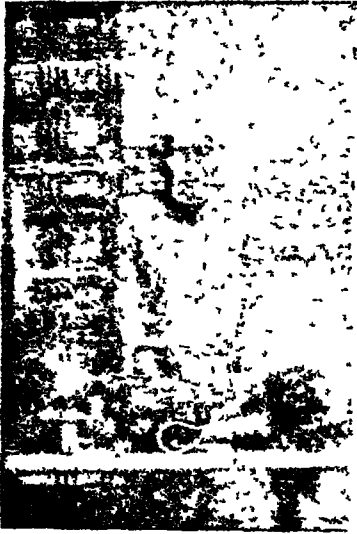
आपका जन्म खण्डेलवाल जातीय अजमेरा गोत्र में हुवा था आप मूलतः दाँता (सीकर) राजस्थान के निवासी थे। आपकी दीक्षा प्रतापगढ़ में वि० सं० १९९० फाल्गुन सुदी ग्यारस को हुई थी। आप आचार्य वीरसागरजी महाराज के प्रथम सुशिष्य थे। छोटों के प्रति वात्सल्य भाव और बड़ों के प्रति विनम्रता का व्यवहार आपका स्वभाव था। आपकी गुरु भक्ति अद्वितीय रही। आप हमेशा कहा करते थे कि बड़ा बनने की चेष्टा मत करो, बड़ा बनना सरल नहीं है।

आप निरन्तर आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर उनका सार प्राप्त कर आत्मा का सच्चा अनुभव भी करते थे।

जब भीषण ज्वर से आपका शरीर क्षीण हो गया और शरीर में तीव्र वेदना थी, तब भी आप ध्यान में लीन परमशान्त और गम्भीर थे।

पू० महाराजश्री की भावना का सार उनको प्राप्त हुवा। प्रातःकाल चार बजे स्वयमेव उठकर पद्मासन लगाकर बैठ गये, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो निर्भीक होकर यमराज का सामना कर रहे हों।

आपने भव भवान्तरसे प्राणियों के पीछे लगने वाली ममता की जंजीर को समता रूपी शस्त्र ने क्षीण कर दिया और यमनाशक संयम को स्वीकार किया।

ख्याति, लाभ, पूजा के लिये जिसकी भावना है वह समाधिमरण नहीं कर सकता।

परन्तु आपने हंसते २ णमोकार मंत्र का जाप्य करते हुए अन्तःसमाधि में लीन होकर गुरुवर्य १०८ आचार्य वीरसागरजी के सान्निध्य में अनन्तानन्त सिद्धों की सिद्धि के क्षेत्र परमपावन सम्मेदशिखर पर भौतिक शरीर का परित्याग कर देव पद प्राप्त किया।

सुमेरु पर्वत की दृढ़ता, सागर की गम्भीरता, वसुधा की क्षमाशीलता, व्यामोह की विशालता, शशि की शीतलता और नवनीत की कोमलता, जिसके समक्ष सदैव श्रद्धा से नत रहती थी, ऐसी अध्यात्म मूर्ति थे श्री आदिसागर महाराज।

मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज

आपका जन्म औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत पिपली ग्राम में हुआ। आपके पूर्वज डेह गांव के खण्डेलवाल जातीय काशलीवाल गोत्र में उत्पन्न हुए थे। आपने नागौर में वि० सं० २००६ की आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन क्षुल्लक दीक्षा एवं वि० सं० २००८ में फुलेरा (राजस्थान) के पंच-कल्याणक महोत्सव के अवसर पर कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुनिदीक्षा ग्रहण की थी। आप दृढ़ श्रद्धानी, परम तपस्वी साधु थे। सं० २००९ में आचार्य संघ के साथ तीर्थराज सम्मेदशिखर की यात्रा को गये। तीर्थराज के दर्शन करने के बाद भादवा सुदी १५ के दिन पूर्ण संयम, नियम उपवास द्वारा कर्मों को काटने के लिये ईसरी में भौतिक शरीर का त्याग किया।

मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज

पूज्य मुनिश्री ने आचार्य वीरसागर महाराज से दीक्षा लेकर अपने को आत्म कल्याण के मार्ग पर लगाया था। दीक्षा लेने के कुछ समय पश्चात् ही आपका समाधि मरण हो गया। आप महान तपस्वी साधु थे।

✡

मुनिश्री अजितकीर्तिजी महाराज

[शिष्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज]

(जीवन परिचय अप्राप्य)

मुनिश्री जयसागरजी महाराज

आपका जन्म जयपुर (राजस्थान) में हुवा था। पूर्ण नाम श्री गुलाबचन्दजी टोंग्या था। सं० २००३ में आपने व्रती जीवन प्रारम्भ किया, आचार्य वीरसागरजी से व्रत स्वीकार किए। सं० २०१३ में मुनिदीक्षा जयपुर में ही ली। सं० २०२४ प्रतापगढ़ में आचार्य शिवसागरजी महाराज के सान्निध्य में आपकी समाधि हुई।

आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज

राजस्थान के प्रसिद्ध शहर बीकानेर में फाल्गुन बदी अमावस्या सम्वत् १९६२ में श्रावक (ओसवाल) गोत्रोत्पन्न श्रीमान् सेठ छोगामलजी, माता श्रीमती गज्जोबाईकी कुक्षिसे आपका जन्म हुआ था। माता-पिता ने आपका नाम श्री गोविन्दलाल रखा, इकलौते और लाड़ले पुत्र होने के कारण आपको फागोलाल भी कहा करते थे।

आपके पिता कपड़े के अच्छे व्यापारी थे। घर की स्थिति अच्छी सम्पन्न थी। आपसे बड़ी एक बहिन श्री लोनाबाईजी भी हैं जो धर्म परायण तथा आत्म कल्याण की ओर अग्रसर होकर धर्म ध्यान में कालयापन करती हैं।

पिता के होनहार, इकलौते लाड़ले पुत्र होने के साथ ही सम्पन्न परिवार में होने के कारण आपके पिताजी ने आपकी शिक्षा को विशेष महत्व न देकर प्रारम्भिक शिक्षा मात्र ही दिलाई। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद आप पिताजी को उनके व्यावसायिक कार्य में सहयोग देते हुये कपड़े का व्यापार करने लगे। कुछ समय बाद आप अपनी कार्य निपुणता के कारण व्यापारी वर्ग में प्रतिष्ठित हुये और आपने व्यापार में प्रचुर सम्पन्नता एवं सम्मान प्राप्त किया।

प्रारम्भ में आपके पिता श्री मुंह पट्टी वाले श्वेताम्बर आम्नाय के कट्टर अनुयायी थे। संयोग की बात कि एक रामनाथ नाम का व्यक्ति जो कि जाति का दर्जी था, आपके मकान के नीचे किराए पर रहता था। वह व्यवसाय भी अपनी जाति के अनुसार सिलाई का करता था। दर्जी होते हुए भी सुयोग्य एवं दिगम्बर जैन आम्नाय के प्रति गहरी श्रद्धा रखता था। इसने अपनी विवेक-

शीलता, निपुणता एवं आत्म श्रद्धा से आपकी माता को दिगम्बर जैन आम्नाय के महत्त्व को बताया और अन्त में आपकी माता के हृदय में दिगम्बर जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा का समावेश किया। फलतः आपकी माताजी श्वेताम्बर आम्नाय के बजाय दिगम्बरत्व के प्रति अटूट श्रद्धा रखने लगीं। कुछ समय पश्चात् आपके पिताश्रीने भी अपनी तीक्ष्ण विवेक शीलता के द्वारा दिगम्बरत्व के महत्व को आंका और दिगम्बर जैन धर्म के प्रति आस्था रखते हुये आचरण करने लगे। यह नीति है कि "मातृ पितृ कृताभ्यासो गुणताम् इति बालक:" अर्थात् माता पिता ही बालकों को गुणवान बनाते हैं, क्योंकि बालक माँ के पेट से पण्डित होकर नहीं निकलता। ठीक यही नीति आपके ऊपर भी चरितार्थ हुई। एक बार आपके पिता व्यापार के लिये कलकत्ते आये। आप भी अपने पिता के साथ कलकत्ते आये तथा कलकत्ते में चावल पट्टी दि० जैन पार्श्वनाथ बड़ा मन्दिर के समीप किराए पर रहने लगे। यहां जैन भाइयों से आपका अच्छा सम्पर्क हुआ। आपके पिता ने आपको नया मन्दिर चितपुर रोड की जैनशाला में पठनार्थ भरती करा दिया। आपने श्री पं० मक्खनलालजी तथा पं० श्री झम्मनलालजी से शिक्षा प्राप्त की। आपके धार्मिक संस्कार दृढ़ होने लगे। इस प्रकार आपने अपनी प्रारम्भिक लौकिक शिक्षा धार्मिक शिक्षा के साथ प्राप्त की।

आपकी माता विशेष धर्म परायण व सद्गृहस्थिन के साथ ही अत्यन्त दयालु व योग्य थीं। इसका पूर्णतः प्रभाव आप पर पड़ा। आपके पिताजी भी एक उच्च घराने के आदर्श व्यवसायी होने के साथ ही जिनधर्म के कट्टर अनुयायी व श्रद्धालु थे। व्यापारी वर्ग में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

जब आपकी उम्र लगभग १७ वर्ष की थी तो पिताश्री ने आपका विवाह बीकानेर निवासी व कलकत्ता प्रवासी सेठ जुगलकिशोरजी की शील रूपा, सुयोग्य सुपुत्री श्रीमती बसंताबाई के साथ सम्पन्न करा दिया। लेकिन आपका गृहस्थाश्रम बालापन से ही बहुत वैराग्य युक्त व्यतीत हुआ। आपकी बड़ी बहिन श्री सोनाबाईजी भी आजकल श्रावकों के नैष्ठिक व्रतोंका पालन करती हुई शुद्ध ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवनयापन कर रही हैं।

आपके सुयोग्य, कर्त्तव्यशील तीन पुत्र श्री माणिकचन्द्रजी श्री हीरालालजी एवं श्री पदमचन्द्रजी हैं, जो पैतृक उद्योग के अलावा प्रेस का भी सञ्चालन करते हैं। आपकी सुयोग्यशीलरूपा तीन पुत्रियाँ भी हैं। बड़ी पुत्री श्री अमराववाई हैं। इनका विवाह पुरलियामें श्री भंवरलालजी के साथ एवं मझली पुत्री श्रीमती ममौलबाई का विवाह कलकत्ता निवासी सेठ श्री उदयचन्द्रजी धारीवाल के यहां सम्पन्न हो चुका है। आपकी छोटी पुत्री सुश्री सुशीला वर्तमान में आर्यिका श्रुतमतीजी हैं तथा गहरी धार्मिक आस्था के साथ त्याग मार्ग की ओर उनकी रुचि है।

जब आपकी उम्र लगभग २७ वर्ष की होगी आपके पिता श्री को एक साधारण सी बीमारी ने पीड़ित किया। उनको यह आभास हुआ कि अब हमारा जीवन अन्तिम लहरमें तैर रहा है। कौन जानता था कि सचमुच यह साधारण सी बीमारी ही इनको प्राण शून्य कर देगी। आपने जीवन को असम्भव जान समाधि ले ली और निर्मल आत्मा में अनन्त गुणों से युक्त भगवान जिनेन्द्रदेव का स्मरण करते हुये असमय ही आपकी आत्मा पार्थिव शरीरको छोड़कर स्वर्ग के सुख में लवलीन हो गई।

दुखित हृदया माँ ने संसारकी इस नश्वरताका प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए निश्चय किया कि असारता से सारता को जाने के लिए जिनेन्द्र भक्तिरूपी वाहन का अवलम्बन लेना ही श्रेयस्कर है। इसके लिए त्याग तपस्या की आवश्यकता है। पति श्री की मृत्यु के बाद ७ वर्ष तक आपने अपनी शक्ति अनुसार जिनेन्द्र भगवान की आराधना करते हुए त्याग और संयम का पालन किया। अन्त समय में समाधि मरण लेकर अतुल सुख से परिपूर्ण ऐसे स्वर्गों में, अपने पुत्र पौत्रों को इस धरातल पर छोड़कर सदा के लिये चली गई।

माता पिता के स्वर्गारोहण हो जाने से फागोलालजी को संसार की असारता का भाव उद्भापित हुआ। अपने हृदय में त्याग तप साधना ही आत्मकल्याण का हेतु है ऐसा विचार कर घर पर रहते हुए आत्म-कल्याण का कारण त्याग, उपवास, संयम आदि धार्मिक क्रियाएं करने लगे। कलकत्ते में "छोगालाल गोविन्दलाल" के नाम से आपका कपड़े का थोक व्यापार होता था। आपका बड़ा पुत्र भी आपके व्यापार में योग देने लगा, श्रीमान् पं० ब्रह्मचारी सुरेन्द्रनाथजी, श्री ब्रह्मचारी श्रीलालजी काव्यतीर्थ एवं श्रीबद्रीप्रसादजी पटना वालों के साथ आपकी शास्त्रीय चर्चाएं तथा ज्ञान गोष्ठियाँ होती थी। ज्ञानार्जन के इस अभ्यास के द्वारा आप शास्त्रीय विद्वान हो गये। आपके अन्तर में गृह त्याग की भावना दिन प्रतिदिन बढ़ती गई, फलतः आप ४० वर्ष की तरुण वय में आजन्म ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने लगे।

विक्रम सम्वत् २००६ को उदासीन आश्रम ईसरी में आपने परम पूज्य आचार्यवर श्री वीर-सागरजी महाराज के प्रथम दर्शन किये थे। तभी से आपकी आत्म-कल्याण की भावना का प्रबलतम उदय हुआ था और उसी समय से सांसारिक वैभव नीरस एवं जल बुदबुदे के समान प्रतीत होने लगे। फलतः घर पर आकर आप उदासीन वृत्ति से रहने लगे। फिर भी आपको हृदय में पूर्णतः शान्ति नहीं मिली और सम्वत् २०११ में टोड़ारायसिंह (राजस्थान) में आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के समीप ७ वीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। इन व्रतों के लेने से आपकी आत्मा में अटूट वैराग्य भावनारूपी ज्वाला ज्वलित होने लगी। फलतः चार माह बाद ही टोडारायसिंह में कार्तिक सुदी १३ संवत् २०११ में ही आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज से आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली

क्षुल्लक दीक्षा के बाद आपका ध्यान आगम ज्ञान के आलोक में विचरने लगा। अल्प समय में अपनी तीक्ष्ण विवेकशीलता के द्वारा आपका ज्ञान आत्मा में आलोकित हो गया। आपने विचार किया कि आत्मा अनन्त शरीरों में रहा परन्तु एक भी शरीर आत्मा को नहीं रख सके। आत्मा और शरीर का यह दुःखदायी संयोग वियोग का अवसर कैसे समाप्त हो ? जब इस समस्या का समाधान स्वयं की विवेक शीलता के द्वारा जान लिया, तब आपने शीघ्र ही हजारों नर-नारियों के बीच अपूर्व उत्साह पूर्वक समस्त अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह का त्याग कर भादों सुदी तीज सम्वत् २०१४ में शुभ दिन जयपुर खानियां में प्रातःस्मरणीय परम पूज्य आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराज के श्री चरणों में नमन कर आत्म शान्ति तथा विशुद्धता के लिये दिगम्बर मुनि का जीवन अङ्गीकार कर लिया।

आपकी परम चारित्रशीला, धर्मानुरागिणी पत्नी भी ५ वीं प्रतिमा के व्रत अङ्गीकार कर धर्माराधन द्वारा आत्मकल्याण की ओर अग्रसर बन जीवनयापन कर रही हैं।

मुनि दीक्षा के बाद आपका प्रथम चातुर्मास ब्यावर, दूसरा अजमेर, तीसरा सुजानगढ़, चौथा सीकर, पांचवाँ लाडनू एवं छटवाँ जयपुर में हुआ। जयपुर चातुर्मास के अवसर पर आपके ऊपर असह्य शारीरिक संकट आ पड़ा था, लेकिन आपने-अपने आत्मबल के द्वारा दुःखी भौतिक शरीर से उत्पन्न वेदना का परिषह शान्ति पूर्वक सहन कर विजय पाई।

आपकी पेशाब रुक गई थी। किसी भी प्रकार बाह्य साधनों द्वारा उसका निकलना असम्भव था। इस विज्ञानवादी विकासोन्मुख युग में ऐसी अनेकों औषधियाँ हैं जिनका सेवन कर या यांत्रिक साधनों द्वारा आपरेशन कर बड़े-बड़े दुःख क्षणमात्र में दूर किये जा सकते हैं, लेकिन आपने अपने तप बल, ज्ञान बल से जिस औषधि को पा लिया उसके सामने उपर्युक्त बाह्य औषधियां अपना मूल्य नहीं रखतीं, इसलिये आपने इन औषधियों व यन्त्रों के सेवन का त्याग कर दिया था और यही आपके त्याग की चरमसीमा का उत्कृष्ट एवम् अनुपम उदाहरण है। अन्त में जब दैव ने अपनी करतूत करली और मुनिश्री द्वारा इस कठोर वेदना को आत्म साधना द्वारा शान्तिपूर्वक सहन करते हुये देख हार मान गया तो स्वतः अविजयीसा होकर मुंह छिपाकर चला गया।

आपने अनन्त वेदना को सहनकर अपने आत्मतेज एवम् कठिन परिषह सहने का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। धन्य है ऐसी तपस्या को, ऐसे त्याग को एवम् ऐसी आत्मकल्याण की साधना को जिसमें चाहे सुख हो या दुःख, रोग हो या संकट, सभी में समानता रह सके। जब चातुर्मास अवधि समाप्त हो गई और जयपुर से विहार कर ससंघ बुन्देलखण्ड के पवित्र अतिशय क्षेत्र पपौराजी की वन्दना के लिए आये तो पुनः आपको इस रोग ने पीड़ा देना प्रारम्भ किया। इस बार

पपौराजीमें जो वेदना हुई वह अत्यन्त असह्य और दुःखदायिनी थी। पुनः आपकी पेशाब रुक गई। अनेक बाह्य साधन जिनमें किसी भी प्रकार हिंसा न हो, अपनाए गए। किसीमें भी सफलता नहीं मिली। एक डाक्टरने आचार्यश्री से विनय की कि यदि महाराजको ध्यानावस्था या मूर्छावस्थाके समय इंजेक्शन लगा दिया जाय तो आराम होनेकी सम्भावना की जा सकती है।

आचार्यश्री से कहे गये उक्त शब्द मुनिश्री ने सुने और तुरन्त मुस्कराकर बोले "भइया साधुओंसे कभी जबरदस्ती नहीं की जा सकती। वे विश्वमें किसी भी प्राणीके आधीन नहीं होते। उन्हें तो अपनी आत्माका कल्याण करना है। यदि आपने इन्जैक्शन लगा दिया या आपरेशन कर दिया तो ठीक है क्योंकि यह तो आपको करना है पर यदि मैंने समाधि ले ली तो? इस प्रश्नका उत्तर कुछ भी नहीं था, अत: डाक्टर साहब मौन रह अपनी बातका प्रतिकूल उत्तर पाकर एवं आपकी इस महान साधनाको देखकर अवाक् रह गए।

अनन्त वेदनाके होनेसे महाराजश्री मौन अवस्थामें लेटे हुए थे। अनेक विद्वान चारों ओर अत्यन्त वैराग्य युक्त व समाधि-मरण पूर्ण उपदेश व पाठ कर रहे थे। महाराजश्री अपने आत्म-ध्यानमें लीन रहते। जब तीव्र वेदनाका अनुभव होता तो मात्र एक दो बार करवट बदल कर उस घोर दुःखको सहन कर लेते थे। जो डाक्टर आये हुये थे आपकी इस महान साधनाको देखकर हाथ जोड़े महाराजश्री के सामने बैठे हुए थे। इस सहनशक्ति को देखते हुये अनेकों नर-नारियोंकी आंखोंसे आंसू बह रहे थे। लोगों से वह वेदना देखी नहीं जाती थी। अन्तमें मुनिश्रीने अपनी आत्म-साधना एवं परिषह क्षमतासे मुक्ति पाई।

आचार्यश्री ने जबकि आप इस वेदनासे पीड़ित थे आपके समीप बैठ जिस वैराग्य पूर्ण एवं संसारकी असारता तथा आत्म-कल्याणके उपदेश आपके समक्ष दिये वह अत्यन्त रोमान्चकारी एवं हृदय-ग्राही थे। उन्हें सुनकर जन-साधारणके ऐसे भाव होते थे कि धन्य है यह मुनि अवस्था और धिक्कार है इस संसारको! भगवन् मैं भी इस अवस्थाको पाऊँ। धन्य है जिन्होंने मुनिपद धारण कर लेने पर भावों और क्रियासे पंच पापोंका त्याग कर दिया, क्रोध, मान, माया रूपी पतनकारी कषायोंसे पिण्ड छुड़ाया, तथा बहिरात्मा बुद्धिके बदले अन्तरात्मा बुद्धिसे आत्माको निर्मल बना लिया। इस प्रकार आत्म-कल्याण करते हुये आप अनेक आत्माओंको इस पथका अवलोकन करानेमें तत्पर हैं।

इस प्रकार मुनि जीवन यापन करनेमें आपको अनेक आपत्तियों, उपसर्गों और परीषहोंका सामना करना पड़ा लेकिन मुनिश्री सदा अपने आत्म-कल्याणके लक्ष्यमें इस प्रकार लवलीन रहे कि इन आपत्तियोंसे आपके तपोतेजमें वृद्धि ही हुई।

धन्य है उस माँ को जो मानवोंके कल्याण-कर्त्ता ऐसे इकलौते पुत्रको जन्म देकर महा भाग्यशालिनी हुई। इस क्षणिक जीवन में आपने जबसे इस पथका अवलम्बन लिया तबसे अतुल जैनागमका ज्ञान ग्रहण करते हुये चारित्र के क्षेत्रमें भी अनवरत अग्रणी हैं। आपके दैनिक जीवनका अधिक उपयोग शास्त्र-स्वाध्यायमें ही होता है। आपका स्वाध्याय स्थायी और शुभोपयोगी होता है। आप अपने उपदेशमें जिन बातोंका निरूपण करते हैं वह विद्वानों को भी आश्चर्यकारी होती हैं।

श्री श्रुतसागरजीके दिव्य व्यक्तित्वमें एक अनोखी प्रभावोत्पादक शक्ति है जिसका अनुभव उनके सम्पर्कमें आने पर ही हो पाता है। जैन आगमके दुरूह और गूढ़तम रहस्यों तक उनकी जिज्ञासु दृष्टि पहुंचती है और वे तत्त्व विवेचनमें आठों याम एक परिश्रमी विद्यार्थीकी तरह रुचि लेते हैं एवं कठोर अध्यवसाय करते हैं।

समाजमें आजकल अनेकान्तवाद तथा स्याद्वादकी उपेक्षा करके किसी भी एकान्त दृष्टिसे पक्ष समर्थन किये जाने के कारण जो अनर्थकारी ऊहापोह मच रही है उसके प्रति भी आपकी दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट और आगम सम्मत है। आपका कहना है कि हमारे पूज्य आचार्योंने तत्त्वज्ञानकी कठोर साधनाके उपरान्त जो विवेचन किया है वह यदि हमारी दृष्टि में ठीक नहीं बेठता तो यह हमारे ज्ञान तथा क्षयोपशमकी कमी है अथवा हमने बातको उस अपेक्षासे समझनेका प्रयास नहीं किया है। ऐसी स्थितिमें हमें अपनी बुद्धिको आचार्योंके कथन और अपेक्षाके अनुसार विकसित करने का प्रयास करना चाहिये। आचार्योंकी वाणीको अपनी बुद्धिके अनुरूप तोड़-मरोड़ करना या एकान्त दृष्टिके पोषणके लिये अर्थका अनर्थ करना उचित नहीं है, और यह हमारा अधिकार भी नहीं है।

वर्तमान में आप आचार्यश्री धर्मसागरजीके संघ के साथ में रह रहे हैं आपके द्वारा आचार्यश्री धर्मसागर अभिवन्दनग्रन्थ का विमोचन २ मार्च १९८२ को भीण्डर में २५ हजार की जनसंख्या में विमोचित किया गया था। उसी अवसर पर एक गोष्ठी का आयोजन भी किया गया। जो दिगम्बर जैनाचार्य एवं आचार्य परम्परा के नाम से हुई थी। वर्तमान में आप यदा कदा लेख आदि लिखकर समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

आपमें वात्सल्य भाव भी कूट-कूटकर भरा है। आचार्यश्री के प्रति विनय और संघके अन्य साधु-साध्वियोंके प्रति आपका व्यवहार उस वात्सल्य और कल्याण-भावनासे ओत-प्रोत रहता है। उनके लिए आपका कथन है कि हम सब छद्मस्थ हैं अतः त्रुटियां हमसे हो सकती हैं, इसलिए निंदककी बात सुनकर भी हमें रोष नहीं करना चाहिये वरन् आत्म-शोधन करके अपने आपको त्रुटि हीन बनाना चाहिये। "जो हमारा है सो खरा है" ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। हमें तो हमेशा सत्यको स्वीकार करनेके लिए तैयार रहना चाहिए और कहना चाहिये कि—"जो खरा है सो हमारा है।" ऐसी परम पवित्र आत्माके प्रति कोटिशः नमन हैं।

श्री सिद्धसागरजी महाराज

झाबुआ मध्यप्रदेशमें सेठ चम्पालालजी जैन की गिनती प्रतिष्ठित घरानों में होती है। जिनशासन सेवा और साधु वैयावृत्ति की भावना कुलपरम्परा से ही उन्हें मिली थी। इसे ही वे अपना धर्म मानकर जी रहे थे। पत्नी दोलीबाई भी उन्हें मिली तो लगभग ऐसे ही विचारों की। इस धर्मशील दम्पति को वि० सं० १९६९ भाद्रपद शु० पंचमी को पुत्ररत्न का लाभ हुआ तो नाम रखा उन्होंने मथुरादास। स्कूली पढ़ाई में मथुरादास मैट्रिक से आगे नहीं बढ़ सका पर तत्वज्ञान वैराग्य में वह उतना बढ़ा जहां औरों का पहुंचना मुश्किल था। निर्ग्रन्थ गुरुओं को 'आहारदान' देते ही उसमें वैराग्य की किरण फूट पड़ी और इन्दौर में पू० आ० श्री वीरसागरजी म० से सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। वि० सं० १९९५ पौष शु० पंचमी को पूज्य आचार्यश्री से ही क्षुल्लक दीक्षा का सुयोग मिल गया। बाल ब्रह्मचारी मथुरादास क्षु० सिद्धसागरजी म० वन गये। यह सब गुरु कृपा का फल है। बहुत बड़े पुण्यात्माओं को गुरु कृपा मिल पाती है। शास्त्रों का अध्ययन करके आपने कुछ रचनाएँ भी की हैं। दीक्षाकाल से लेकर अब तक निम्नलिखित स्थानों में चातुर्मास करके धर्मामृत की वर्षा की है—

इन्दौर, कचनेर, कन्नड़, कारंजा, सज्जनगांव, झालरापाटन, रामगंजमंडी, नैनवां, सवाई-माधोपुर, नागौर, सुजानगढ़, नरायना, दूदू, मौजमाबाद, केकड़ी, टोडारायसिंह, मदनपुरा, जयपुर। मौजमाबाद में तेरह चातुर्मास कर चुके हैं तथा सन् ६९ से सन् ७३ छोड़कर मौजमाबाद में ही विराजमान हैं।

वर्तमान में ग्राम मौजमाबाद में चातुर्मास कर रहे हैं यह अतिशय क्षेत्र है यहाँ एक मन्दिर तीन शिखर का विशाल मन्दिर है जिसमें भूमिके नीचे २ भौंहरे (तलघर) हैं जिसमें अतीव सुन्दर मनोरम मूर्तियां विराजमान हैं। मन्दिर को देखने हेतु दूर २ से यात्रीगण आते हैं। बाजार में एक छोटा मन्दिर है तथा गांवके बाहर एक नशियांजी है जो अपनी प्राकृतिक छटा से आकर्षक केन्द्र है। यहाँ पर धर्मानुरागी श्रावकों के ४०-५० घर हैं यहां जिनमन्दिरजी में बड़ा भारी शास्त्र भण्डार है। करीब-करीब दिगम्बर जैन वांगमयके सभी ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

सुन्दर साधना :

आपकी सौम्यमुद्राके दर्शन से ही यह स्पष्ट झलकता है कि आपकी गम्भीर प्रकृति है। सदा मौन पूर्वक आप अपनी साधना करते हैं। ध्यान, सामायिक, षड्आवश्यक पालन में अति उत्साह है। जब कभी बोलने का अवसर आवे तो सुमधुर परिमित एवं हित कारक आदि अनेक गुण आपमें ऐसे हैं जो आत्म कल्याणेच्छुओंके लिए अनुकरणीय है जो व्यक्ति एक बार भी आपके दर्शन कर लेता है उसे यह इच्छा बनी ही रहती है कि मैं ऐसी प्रशान्त मूर्ति के फिर कभी दर्शन करूं। रात दिन आपका समय पठन-पाठन में व्यतीत होता है। 'जैन गजट' आदि अखबारों में आपके लेख कविता एवं शंका-समाधान प्रकाशित होते रहते हैं।

आप द्वारा रचित पुस्तकों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

(१) आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज की पूजन

(२) संस्कृत शान्तिनाथ स्तोत्र

(३) जीवन्धर की वैराग्य वीणा

(४) चिन्तामणि पार्श्वनाथ पूजा

(५) सत् शिक्षा

(६) पराक्रमी वरांग

(७) लघु समाधि साधन

(८) पंचाध्यायी तत्वार्थसूत्र आदि।

अनुवाद :

(१) सन्मति सूत्र (२) धर्मरत्नाकर (३) ध्यानकोष (४) आराधना समुच्चय (५) कम्मपयडि चूर्णि (६) पांच द्वात्रिंशतिकाऐं (७) द्रव्य संग्रह (८) भक्तामर स्तोत्र (९) अभ्रदेवकृत श्रावकाचार (१०) श्री योगदेवकी सुखबोध तत्वार्थवृत्ति एवं भगवती आराधना।

इस प्रकार आप एक बहुत अच्छे कवि, लेखक, ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, साधक महान आत्मा हैं। आपका उत्तम क्षमा के दिन जन्म है, आप वास्तव में उत्तम क्षमा के साक्षात् अवतार हैं। क्रोध मात्र तो आपके पास आता ही नहीं।

क्षुल्लक श्री सुमतिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम मदनचन्द्रजी था। आपका जन्म संवत् १९५० में किशनगढ़ (अजमेर) में हुआ। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी थे व माता गुलाबबाई थी। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही रही। आपके एक भाई था। आपके दो विवाह हुए। गार्हस्थ जीवन सुखसम्पन्न था।

आपने संवत् २०२२ में मँगसिर कृष्णा एकम को स्वर्गीय १०८ आचार्य वीरसागरजी महाराज से खानियां में क्षुल्लक दीक्षा ली। आपने खानियां व्यावर, अजमेर, जयपुर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये।

आर्यिका इन्दुमतीजी

आर्यिकाश्री १०५ इन्दुमतीजी का जन्म सन् १९०५ में हुआ था। मारवाड़ में डेह नामक ग्राम को आपकी जन्मभूमि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके पिता श्री चन्दनमलजी पाटनी थे और माता जड़ावबाई थी। आपने दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जाति को विभूषित किया था।

चन्दनमलजी जहां कुशल व्यापारी थे, वहां धर्मात्मा भी थे और उनकी गृहिणी जड़ावबाई तो उनसे दो कदम आगे थी। आपके चार पुत्र हुए—ऋद्धिकरण, गिरधारीलाल, केशरीमल, पूनमचन्द्र। आपके तीन पुत्रियां हुईं गोपीबाई, केशरीबाई, मोहनीबाई। मोहनीबाई का विवाह चम्पालालजी सेठी के साथ हुआ तो सही पर छह माह के भीतर ही उनका स्वर्गवास हो गया। इससे दोनों परिवार दुःखी हुए।

पिता की प्रेरणा पाकर मोहनीबाई जिनेन्द्र पूजन व स्वाध्याय में काफी समय बिताने लगी। आपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा की। जब श्री १०८ मुनि शान्तिसागरजी का संघ सम्मेदशिखरजी की वन्दना के लिए आया तो उनके दर्शनों से आपके विचार और भी अधिक विरागकी ओर बढ़े। चूंकि आप मुनिश्री के प्रवचन अपने हजार आवश्यक काम छोड़कर भी सुनती थी। इसलिए विषय वासनाओं से विरक्ति बढ़ती ही रही।

उन दिनों, आचार विचार में मारवाड़ बहुत पिछड़ा था । पर जब १०८ मुनिश्री चन्द्रसागरजी विहार करते हुए सुजानगढ़ आये तब यहां के श्रावकों ने भी अपने को सुधार लिया । जब मोहनीबाई को उक्त मुनिश्री के आने और चातुर्मास की बात ज्ञात हुई तो मोहनीबाई भी अपनी माता के साथ दर्शन करने के लिए आई और मां के साथ ही स्वयं भी दूसरी प्रतिमा स्वीकार करली ।

चातुर्मास के बाद मुनिश्री ने विहार किया तब मोहनीबाई भी उनके साथ अनेकों नगरों में गयी । वे आहार दान तथा धर्म श्रवण के कार्य करती थीं । सन् १६३६ में आपने सातवीं प्रतिमा स्वीकार कर ली । आपके भाई (ऋद्धिकरण) भाभी ने दूसरी प्रतिमा ली और मां ने पांचवीं प्रनिमा के व्रत स्वीकार किये । यहीं आपका परिचय अध्यापिका मथुराबाई से हुआ ।

जब चन्द्रसागरजी ने कसाबखेड़ा (महाराष्ट्र) में चातुर्मास किया तब मोहनीबाई और मथुराबाई ने उनसे आर्यिका की दीक्षा बाबत निवेदन किया । मुनिश्री ने आगापीछा सोचकर उन्हें सन् १६४२ में क्षुल्लिका दीक्षा दी । अब ब्रह्मचारिणी मथुराबाई का नाम विमलमती रखा गया और ब्रह्मचारिणी मोहनीबाई को इन्दुमती कहकर पुकारा गया । आप दोनों ने पीछी कमण्डलु, श्वेत साड़ी व चादर के सिवाय सभी परिग्रह का त्याग कर दिया और ज्ञान तथा ध्यान की साधना करने में लगी ।

जब सुजानगढ़ निवासी चांदमल धन्नालाल पाटनी ने मुनिश्री चन्द्रसागरजी से बड़वानी की ओर विहार करने और स्वनिर्मित मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा में सम्मिलित होने के लिए प्रार्थना की तब इन्दुमतीजी भी संघ के साथ चली ।

जब नागौर में मुनिराज आचार्य श्री वीरसागरजी का चातुर्मास हुआ तब आपने उनसे आर्यिका दीक्षा ली और अपनी साध पूरी की । उनके संघ में रहकर आपने अनेक तीर्थो की यात्रा की । आपने भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में विहार कर धर्म प्रभावना की है ।

सन् १६८२ में तीर्थराज सम्मेदशिखरजी पर आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था । आपने उसे स्वीकार नहीं किया । धन्य है आपका त्याग तथा सिंहवृत्ति जीवन । ८० वर्ष की उम्र में आप परम शान्त जितेन्द्रिय हैं । जिनागम पर आपकी अपार आस्था है ।

आर्यिका वीरमतीजी

श्री १०५ आर्यिका वीरमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम चांदबाई था। आपका जन्म आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व जयपुर (राजस्थान) में हुआ था आपके पिता का नाम श्री जमुनालाल था तथा आपकी माता गुलाबबाई थी। आप खण्डेलवाल जाति की भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा व धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपका विवाह श्री कपूरचन्द्रजी के साथ हुआ।

स्वयं के चारित्र व आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी के आगमन से भावों में विशुद्धि हुई अत: सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र में क्षुल्लिका की दीक्षा ली। विक्रम संवत् १९९५ में इन्दौर में स्वर्गीय १०८ आचार्य वीरसागरजी से आर्यिका की दीक्षा ली। आपको संस्कृत व हिन्दी पर विशेष अधिकार है। आपने खातेगांव, उज्जैन, इन्दौर, झालरापाटन, जयपुर, ईसरी, कोटा, उदयपुर आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने दूध के अलावा अन्य समस्त रसों का त्याग किया है।

आर्यिका विमलमतीजी

आपका जन्म ग्राम मुंगावली (मध्यप्रदेश) में परवार जातीय श्री रामचन्द्रजी के यहां वि० सं० १९६२ मिती चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। आपका विवाह श्री हीरालालजी भोपाल (म० प्र०) निवासी के साथ वाल्य अवस्था में हुआ, मगर दुर्दैववश आपके पति का असमय में ही निधन हो गया। वारह वर्ष की अल्प आयु में आपका विधवा होना आपके लिए वड़ी भारी विपत्ति थी।

वाद में आपने विद्याध्ययन वम्वई में किया, १९ वर्ष की आयु के वाद आप अध्यापिका के पद पर नागौर (राजस्थान) में श्रीमान् सेठ मोहनलालजी मच्छी द्वारा कन्या पाठशाला में नियुक्त हुई। संयोगवश पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी मुनि-महाराज विहार करते हुए नागौर पहुंचे। उस समय पूज्य महाराज से आपने द्वितीय प्रतिमा का चारित्र ग्रहण किया।

आठ वर्ष पाठशाला में पढ़ाने के बाद अध्यापिका पद से त्यागपत्र दे दिया और पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज के संघ में विहार करने लगीं, तत्पश्चात् संवत् २००० के कार्तिक कृष्णा ५ के रोज क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की।

सं० २००० फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के रोज पूज्य श्री १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज का बड़वानी क्षेत्र में स्वर्गवास हो गया, वाद में आपने पूज्य श्री १०८ वीर सागरजी महाराज से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सं० २००२ को आर्यिका दीक्षा ग्रहण की।

तत्पश्चात् आपने अनेक नगरों एवं ग्रामों में विहार एवं चातुर्मास किया।

आपका शरीर वायु के प्रकोप से भारी होने के साथ साथ कमजोर भी होने लगा। अत: सं० २०२० के वाद आपने लम्वी दूरी का विहार करने में असमर्थ रहने के कारण नागौर के आसपास व खास नागौर में ही ज्यादा चातुर्मास किये।

कुछ वर्ष पहले आपके गिर जाने से अचानक एक पैर की हड्डी में फ्रेक्चर हो गया जिससे बहुत समय तक वेदना की असह्य पीड़ा रही।

आपका दैनिक समय प्रायः स्वाध्याय में ही बीतता था। आपका मुख्य दैनिक स्वाध्याय पाठ आदि निम्न प्रकार चलते थे।

तत्वार्थसूत्र, भक्तामर स्तोत्र, सहस्रनाम, कल्याणमन्दिर, एकीभाव, स्वरूपसंबोधन, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, पार्श्वनाथस्तोत्र, ऋषि मण्डल स्तोत्र, सरस्वती स्तोत्र, णमोकार मंत्र का माहात्म्य, महावीराष्टक स्तोत्र, मंगलाष्टकम् पंच भक्ति पाठ, प्रथमानुयोग व द्रव्यानुयोग का स्वाध्याय एवं प्रतिक्रमण आदि।

आपके द्वारा अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ जिनके मुख्य नाम ये हैं। कल्याण पाठ संग्रह, नित्यनियम पूजा, नित्यनियम पाठ पूजा, भक्तामर कथा (हिन्दी अनुवाद), शांति विधान (हिन्दी अनुवाद), देववंदना, समाधि तन्त्र, इष्टोपदेश, स्वरूपसंबोधन, जिनसहस्र स्तवन, द्वादशअनुप्रेक्षा, सूतक निर्णय व नवधाभक्ति आराधना कथाकोष (संस्कृत) आदि। आराधना कथाकोष तीनों भाग भी हिन्दी व संस्कृत में छपकर प्रकाशित होगये हैं।

चरित्रनायिका श्री १०५ विमलमती आर्यिकाजी सत्समाधि के साथ यहीं पर अपने भौतिक देह को वैशाख सुदी १, वि० सं० २०३४ में छोड़ चुकी हैं। अब तो धार्मिकजनों को उनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग-उपदेश के अनुगामी होते हुए उनके द्वारा प्रचारित जिनवाणी के अध्ययन करते हुए अपना हित करते रहना चाहिये।

आर्यिका कुन्थुमतीजी

आपने आचार्य वीर सागरजी महाराज से सं० २००३ में आर्यिका दीक्षा ली। आप इस समय ८० वर्ष के लगभग हैं। फिर भी अपने व्रतों को ससंयम पाल रही हैं। आप इस समय शिखरजी में पू० सुपार्श्वमती माताजी के सान्निध्य में आत्म साधना कर रही हैं।
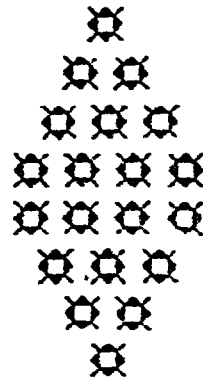
आर्यिका सुमतिमतीजी

१०५ आ० सुमतिमती माताजी (खण्डेवाल : बिलाला गोत्र) जयपुर की थीं। आपने आचार्य श्री वीरसागरजी से जयपुर में आर्यिका दीक्षा ली। संघ का विहार मारवाड़, डेह, नागौर की ओर हुवा। नागौर में ही आप समाधि मरण पूर्वक स्वर्ग वासिनी हुई। आपका अधिकांश समय विशेष धर्मध्यान पूर्वक ही व्यतीत हुवा।
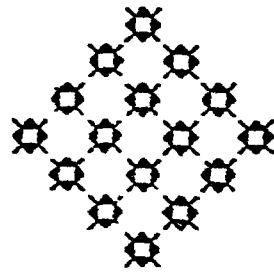
आर्यिका पार्श्वमतीजी

आसोज वदी तृतीया विक्रम सम्वत् १९५६ के दिन जयपुर के खेड़ा ग्राम में बोरा गोत्रमें आपका जन्म हुआ था। जन्मके समय माता-पिताने आपका नाम गेंदावाई रखा।

आपके पिताका नाम मोतीलालजी एवं माताका नाम जड़ाववाईजी था। आप अपने तीन भाइयोंके बीच अकेली लाड़ली बहिन थीं। समयका दुखदायी चक्र चला और आपके दो भाई असमय में ही इस नश्वर संसारसे विदा हो गए। संसारकी इस असारता को देखकर आपके छोटे भाई ब्रह्मचारी मूलचन्द्रजीने धर्मका आश्रय लिया जो आजकल आत्म-कल्याणकी ओर तत्पर हैं।

जीविकोपार्जनके उद्देश्यसे आपके पिता श्री सपरिवार खेड़ा ग्रामसे जयपुर चले आये थे और मोदीखानेका व्यवसाय करने लगे थे। उस समय आपकी उम्र मात्र पांच वर्षकी थी।

जव आपकी अवस्था आठ वर्षकी हुई तब आपके पिता श्रीने आपका पाणिग्रहण जयपुर निवासी श्रीमान् लक्ष्मीचन्द्रजी कालाके साथ सम्पन्न कर दिया। आपके स्वसुर श्री सेठ दिलसुखजी अच्छे सम्पन्न प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। सात ग्रामकी जमींदारी आपके हाथ थी। स्वसुर घरके सभी व्यक्ति योग्य और सुशिक्षित थे, फलत: आपकी विशेष धार्मिक शिक्षा भी स्वसुर घर पर ही हुई। इसके पूर्व आपकी स्कूली शिक्षा मात्र कक्षा तीन तक ही थी।

आपके पति श्री लक्ष्मीचन्द्रजी काला एक होनहार और कर्त्तव्यशील व्यक्ति थे तथा अध्यापनका कार्य करते थे। अध्यापन कार्यके साथ ही अध्ययनमें भी आपने उत्तरोत्तर वृद्धि की किन्तु बी० ए० पास करनेके दो माह बाद ही दुर्देव वश इनका अचानक असमयमें स्वर्गवास हो गया।

कर्मकी इस दुखदायी गतिके कारण यौवनावस्थामें ही आपको वैधव्य धारण करना पड़ा। उस समय आपकी उम्र २४ वर्षकी थी। आपको अपने गार्हस्थ जीवनकी अल्प अवधिमें सन्तानका सुख प्राप्त न हो सका। संसार की इस दुखदायी असारताने आपके अन्तरमें वैराग्यकी प्रबल ज्योतिको जला दिया। आप उदासीन वृत्तिसे घरमें रहकर नियम व्रतोंका कठोरतासे पालन करने लगीं।

आपकी आत्माका कल्याण होना था अत: वैधव्य प्राप्त करनेके ८-९ वर्ष बाद विक्रम सम्वत् १९९० में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराजसे जयपुर खानियां में ७ वीं प्रतिमाके व्रत अङ्गीकार कर लिए। आपके परिणामोंमें निर्मलता आई और अन्तरमें वैराग्य का उदय हुआ,

फलतः विक्रम सम्वत् १९९७ में आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराजसे सकनेरमें क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण करली ।

इस अवस्थामें आकर आपने कठोर व्रतोंका अभ्यास किया और ज्ञान-चारित्रमें उत्तरोत्तर वृद्धिकी जिससे आपकी आत्मामें प्रबल वैराग्यकी ज्योति जगमगा उठी, फलतः रविवार आसौज वदी पूर्णमासी विक्रम सम्वत् २००२ में प्रातः समय झालरापाटन में अपार जन-समूहके वीच जय-ध्वनिके साथ आचार्य वीरसागरजी महाराजसे आर्यिकाकी दीक्षा ग्रहण करली ।

इस प्रकार अपनी आत्माको तप और साधनासे उज्ज्वल करती हुई ज्ञान और चारित्रके माध्यमसे मुक्तिके मार्ग पर अग्रसर हैं ।

आर्यिका सिद्धमतीजी

दिल्लीमें अग्रवाल सिंहल गोत्रोत्पन्न श्रीमान् लाला नन्दकिशोरजीके घर माता श्री कट्टोदेवी की कुक्षिसे विक्रम सम्वत् १९५० के आसौजमें आपका जन्म हुआ । आपका नाम दत्तोबाई था ।

आपके पिता श्री उदार हृदयी, होनहार और अच्छे कार्यकर्ता थे । घरकी स्थिति सम्पन्न थी, तथा दिल्लीमें काठसे तैयार किया हुआ सामान बेचते थे ।

जव आपकी वय ८ वर्षकी थी तब आपका विवाह दिल्लीमें ही श्रीमान् लाला मौरसिंहजीके सुपुत्र श्री वजीरसिंहजीके साथ सम्पन्न हुआ था । आपके स्वसुर रेल विभागमें माल गोदामके सबसे वड़े अधिकारी थे । विवाहके ५ वर्ष वाद ही जव आपकी उम्र १३ वर्षकी थी आपके ऊपर दुःखके वज्रका प्रहार हुआ और आपके पतिका देहावसान हो गया । इस बालापन की अवस्थासे ही आपको वैधव्य धारण करना पड़ा । इस घोर संकटके आ जानेसे आपके पिताने दिल्लीमें एक विदुषी को आपकी शिक्षाके लिये निश्चित किया और उन्हींके द्वारा आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा हुई ।

जैसे-जैसे आपने यौवनावस्थामें प्रवेश किया तदनुसार आप सुशिक्षित होती हुईं धर्म परायरा होती गईं, और दैनिक गृहस्थी ओर कर्त्तव्योंके साथ धार्मिक कार्योंको प्राथमिकता देती हुईं आत्म-कल्याणकी ओर उन्मुख हुईं ।

माता पिताकी इकलौती लाड़ली पुत्री होने और बालापनसे विधवापन जैसे घोर संकट में आ जानेसे आपकी माताको चिन्ता हुई कि इस गृहस्थी और अटूट सम्पत्तिको कौन सम्भालेगा । अतः आपकी माताने आपसे आग्रह किया कि बेटी कोई बालक गोद ले लो जो हमारे बाद इस घरको सम्हाले रहे ।

आपकी प्रवृत्ति तो वैराग्यकी ओर थी फिर भी माताजीकी हठके कारण आपको एक बालक (श्री अनूपचन्द्र) को गोद लेना पड़ा । इस समय आपकी अवस्था २३ वर्षकी थी । बालक अनूपचन्द्र अपनी धर्म माताकी गोदमें आकर वैभव सम्पन्न होने लगा । बड़ा हुआ, शादी हुई और ५ पुत्र रत्नोंके साथ ४ पुत्रियोंका सौभाग्य मिला ।

आपकी आत्मा सांसारिक वैभवोंके प्रति मोहीके बजाय निर्मोही होती जा रही थी । बालक अनूपचन्द्रको गोद लेनेके २ वर्ष बाद ही आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराजका संघ दिल्ली आया हुआ था । उस समय आपने शूद्र स्पर्शित जल न पीनेका नियम ग्रहण कर लिया । तीन माह बाद ही हस्तिनापुरमें पुनः आचार्यश्री से सातवीं प्रतिमा तक के व्रत अङ्गीकार कर लिए ।

परिणामोंमें विशुद्धि आई और अन्तरमें वैराग्यकी ज्योति जलने लगी तथा ८ वर्ष के कठोर व्रताभ्यासके बाद सिद्धवर कूटमें आपने आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजसे फाल्गुन सुदी पंचमी सम्वत् २००० में क्षुल्लिका की दीक्षा ले ली ।

तप संयम और साधनाके साथ ज्ञान और चारित्रमें वृद्धि हुई जिससे आपके हृदयमें शुद्ध वैराग्यकी भावनाका उदय हुआ और आसौज बदी एकादशी रविवार विक्रम सम्वत् २००६ में आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजसे नागौरमें आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर ली । निमित्तकी बात है आपके छोटे देवर की शादी हुए दो माह ही व्यतीत हुए थे कि आपकी देवरानी को दुर्दैव ने वैधव्य धारण करा दिया, जिससे उसके अन्तरमें इस संसारकी असारताका नग्न चित्र अंकित हुआ, और वह भी गृह-त्याग, क्षुल्लिकाकी दीक्षा ग्रहण कर कठोर व्रतोंका पालन कर शरीरको तपाभ्यासी बनाती हुई अपनी आत्मा को निर्मल बना रही हैं । इसका निमित्त आपकी प्रबल वैराग्य भावना को मानना पड़ेगा ।

इस प्रकार आप धर्म मर्यादाको अक्षुण्ण बनाए हुये जीवमात्रके कल्याणकी भावनाके साथ अपनी आत्माको कर्म मलसे रहित उज्ज्वल बना रही हैं ।

✲

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

सन् १९३४ वि० सं० १९९१ आसौज की पूर्णिमा जिस दिन चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं को पूर्ण कर असली रूप में दृष्टिगत हो रहा था इस दिन को लोग 'शरद पूर्णिमा' के नाम से जानते हैं और ऐसी किंवदन्ति भी चली आ रही है कि उस दिन आकाश से अमृत झरता है। कई स्थानों पर लोग शरद पूर्णिमा की रात्रि में खुले आकाश में खाने की वस्तुएं रखते हैं और प्रात: इस कल्पना से सबको बांट-कर उसे खाते हैं कि उसमें अमृत के कण मिश्रित हो गए हैं। इसी चांदनी रात्रि में माँ मोहिनी की गोद में एक दूसरा चाँद आया जिसका नाम रखा गया 'मैना'।

मैना ने जो विशेपतापूर्ण कार्य अपने बचपन में ही कर डाले जो कि हर संतान के लिए तो सोचने के विपय भी नही हो सकते।

मन् १९५२ का पुन: वही शरद पूर्णिमा का पवित्र दिवस जब मैना अपने १८ वर्ष को पूर्ण कर १९ वें में प्रवेश करने जा रही थी, वाराबंकी उ० प्र० में आ० श्री देशभूषण महाराज के चरण सान्निध्य में सप्तम प्रतिमा रूप आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अत: शरद पूर्णिमा विशेष रूप से उनके वास्तविक जन्मदिन को सूचित करता है। यहीं से आपका नवजीवन प्रारम्भ हुआ। सन् १९५३ चैत्र वदी एकम श्री महावीर जी में आ० देशभूषण महाराज के कर-कमलों से ही आपने क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की और वीरमती नाम को प्राप्त किया। सन् १९५६ में आ० श्रीवीरसागरजी के कर-कमलोंसे माधोराजपुरा (राज०) में आर्यिका दीक्षा प्राप्त कर आर्यिका ज्ञानमती वन गई।

आ० ज्ञानमती माताजी भारत देश में जैन समाज की प्रथम हस्तियों में से हैं जिन्होंने विश्व में ब्राह्मी सुन्दरी और चन्दना के आदर्श को उपस्थित किया है। कुमारी कन्या का इस ओर कदम

बढ़ाना उस समय के लिए एक आश्चर्य और संघर्ष का विषय था किन्तु भगवान महावीर की परम्परा सदैव जयशील रही है उसीके अनुरूप पू० ज्ञानमती माताजी अपनी प्रतिभाओं के द्वारा जैन शासन की ध्वजा उन्नत रूप से लहरा रही हैं। इन्होंने आज से १४ वर्ष पूर्व विद्वानों की बढ़ती हुई मांग को देखकर अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद किया जो विश्व विद्यालयों के अध्ययन में सुगम और सुबोध रूप से अपना स्थान रखती है। उसके अनन्तर समाज की चहुंमुखी रुचियों को दृष्टि में रखकर इन्द्रध्वज विधान महाकाव्य, मूलाचार, नियमसार, बालविकास आदि शताधिक ग्रन्थों की रचना की है जिनके द्वारा जनसामान्य लाभान्वित हो रहा है। इनमें से लगभग ६०-७० ग्रन्थ त्रिलोक शोध संस्थान के माध्यम से प्रकाशित हो चुके हैं। नारी जाति के लिए यह प्रथम रिकार्ड है कि इतनी बहुमात्रा में किसी आर्यिका द्वारा इतना महान् साहित्य सृजन हुआ हो। "सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका" जो कि आपके द्वारा ही चतुरानुयोगों में निबद्ध हैं घर बैठे ही लोगों को साक्षात् तीर्थंकर की वाणी सुना रही है यह अपने आप में एक अनूठी पत्रिका है।

हस्तिनापुर की पवित्र धरा पर जम्बूद्वीप स्थल पर आपकी गुरुभक्ति का प्रतीक आ० वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ भी सन् १९७९ में स्थापित हुआ। होनहार विद्यार्थी प्राचीन आचार्य परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर समाज के समक्ष कुशल वक्ता और विधानाचार्य के रूप में आ रहे हैं यह प्रसन्नता का विषय है।

सन् १९८२ का ४ जून का दिवस इतिहास पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा जिस दिन पू० माताजी के शुभाशीर्वाद से भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी के कर कमलों से "जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति" रथ का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन प्रारम्भ हुआ। यह ज्ञानज्योति आज देश के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करती हुई भगवान महावीर के अहिंसा अपरिग्रह सिद्धान्तों को जन-जन को सुना रही है और जन-जन में ज्ञान की ज्योति जला रही है।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की धनी पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी वास्तव में इस युग के लिए एक धरोहर के रूप में हैं जिनसे सर्वदा ज्ञान की गंगा प्रवाहित हो रही है। हम सबका भी यह कर्तव्य है कि उस ज्ञान गंगा में स्नान कर अपने को पवित्र बनावें तथा शरद्पूर्णिमा के पवित्र दिवस पर हम सभी जन्म जयंती उत्सव मनावें और अनंत ज्ञानामृत पान का संकल्प करें।

पू० माताजी आरोग्य लाभ करते हुए चिरकाल तक संसार के मिथ्यात्व अंधकार दूर कर सम्यग्ज्ञान प्रकाश से जनमानस को आलोकित करते रहें, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ। पूज्य माताजी के चरणों में शत-शत वन्दन।

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

आज दिगम्बर जैन समाज में जहां अनेक तपस्वी विद्वान आचार्य मुनिगण विद्यमान हैं वहीं अपने तप और वैदुष्य से विद्वत्संसार को चकित करने वाली आर्यिका साध्वियां भी विद्यमान हैं। इन्हीं में से एक हैं आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी। आपकी बहुज्ञता, विद्याव्यासंग, सूक्ष्म तलस्पर्शिनी बुद्धि, अकाव्यतर्कणा शक्ति एवं हृदयग्राह्य प्रतिपादन शैली अद्भुत् है और विद्वत् संसार को भी विमुग्ध करने वाली है।

राजस्थान के मरुस्थल नागौर जिले के अन्तर्गत डेह से उत्तर की ओर १६ मील पर मैनसर नाम के गांव में सद्‌गृहस्थ श्री हरकचन्दजी चूड़ीवाल के घर वि० सं० १९८५ मिती फाल्गुन शुक्ला नवमी के शुभ दिवस में एक कन्यारत्न का जन्म हुआ—नाम रखा गया "भंवरी"। भरे पूरे घर में भाई बहिनों के साथ बालिका भी लालित-पालित हुई पर तब शायद ही कोई जानता होगा कि यह बालिका भविष्य में परमविदूषी आर्यिका के रूप में प्रकट होगी।

अपने घरों में कन्या के विवाह की बड़ी चिन्ता रहती है और यही भावना रहती है कि उसके रजस्वला होने से पूर्व ही उसका विवाह संबंध कर दिया जाय। भंवरीबाई भी इसका अपवाद कैसे रह सकती थी। उनका विवाह १२ वर्ष को अवस्था में ही नागौर निवासी श्री छोगमलजी बड़जात्या के ज्येष्ठ पुत्र श्री इन्दरचन्दजी के साथ कर दिया। परन्तु मनचाहा कब होता "अपने मन कुछ और है विधना के कुछ और" विवाह के तीन माह बाद ही कन्या जीवन के लिये अभिशाप स्वरूप वैधव्य ने आपको आ घेरा। पति श्री इन्दरचन्दजी का आकस्मिक निधन हो गया। आपको वैवाहिक सुख न मिला विवाह तो हुआ परन्तु कहने मात्र को। वस्तुतः आप बाल ब्रह्मचारिणी ही हैं।

अब तो भंवरीबाई के सामने समस्याओं से घिरा सुदीर्घ जीवन था। इष्ट वियोग से उत्पन्न हुई असहाय स्थिति बड़ी दारुण थी। किसके सहारे जीवन यात्रा व्यतीत होगी ? किस प्रकार निश्चित जीवन मिल सकेगा ? अवशिष्ट दीर्घजीवन का निर्वाह किस विधि होगा ? इत्यादि नाना भांति की विकल्प लहरियां मानस को मथने लगीं। भविष्य प्रकाशविहीन प्रतीत होने लगा।

संसार में शीलवती स्त्रियां धैर्यशालिनी होती हैं, नाना प्रकार की विपत्तियों को वे हंसते हंसते सहन करती हैं। निर्धनता उन्हें डरा नहीं सकती, रोग शोकादि से वे विचलित नहीं होती परन्तु पति वियोग सदृश दारुण दुःख का वे प्रतिकार नहीं कर सकती हैं, यह दुःख उन्हें असह्य हो जाता है।

ऐसी दुखपूर्ण स्थिति में उनके लिए कल्याण का मार्ग दर्शाने वाले विरले ही होते हैं और सम्भवतया ऐसी ही स्थिति के कारण उन्हें "अबला" भी पुकारा जाता है। परन्तु भंवरीबाई में आत्म—"धर्म" बल प्रकट हुआ उनके अन्तरंग में स्फूरणा हुई कि इस जीव का एक मात्र सहायक या अवलम्बन धर्म ही है। अपने विवेक से उन्होंने सारी स्थिति का विश्लेषण किया और महापुरुषों व सतियों के जीवन चरित्रों का परिशीलन कर धर्म को ही अपनी भावी जीवन यात्रा का साथी बनाने का दृढ़ निश्चय किया। अब पितृ घर में ही रह कर प्रचलित स्तोत्र पाठादि, पूजन, स्वाध्यायादि में ही अपनी रुचि जागृत की। माता पिता के संरक्षण में इन क्रियाओं को करते हुए आपके मन को बड़ी शांति मिलती।

अब आपका अधिकांश समय धर्म ध्यान में ही बीतता, संसार से विरक्ति की भावना की जड़ें पनपने लगीं। अपनी ७-८ वर्ष को आयु में आपको महान् योगी तपस्वी साधुराज १०८ आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जब वे डेह से लालगढ़, मैनसर पधारे थे।

विक्रम सम्वत् २००५ का चातुर्मास नागौर में पूर्ण कर आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी भदाना, डेह होते हुए मैनसर पहुंची थी। भंवरीबाई आपका सान्निध्य पाकर बहुत प्रमुदित हुई। माताजी के संसर्ग से वैराग्य की भावना बलवती हुई। भंवरीबाई को माताजी के जीवन से बहुत प्रेरणा मिली माताजी भी वैधव्य के दुःख का तिरस्कार कर संयम मार्ग में प्रवृत्त हुई थी। भंवरीबाई को आर्यिकाश्री से अमूल्य वात्सल्य प्राप्त हुआ और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि आत्मकल्याण का सम्यग्मार्ग तो यही है, शेष तो भटकना है। अतः आपने मन ही मन संयम ग्रहण करने का निश्चय किया। अब से आप माताजी के साथ ही रहने लगीं। आपके साथ ही रहकर अनेक तीर्थक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों आदि के दर्शन करती हुई मुनिसंघों की वैयावृत्ति व आहार दान का लाभ लेती हुई नागौर, सुजानगढ़, मेडतारोड़, ईसरी, शिखरजी, कटनी, पार्श्वनाथ ईसरी आदि स्थानों पर वर्षायोग में रहकर जयपुर खानियां में आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी के संघ के दर्शनार्थ पहुंची। आचार्यश्री वहां चातुर्मास हेतु विराज रहे थे। आर्यिका इन्दुमतीजी ने भी आचार्य संघ के साथ चातुर्मास वहीं किया।

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज ने भंवरीबाई के वैराग्य भाव, अच्छी स्मरण शक्ति एवं स्वाध्याय की रुचि देखकर संघस्थ ब्रह्मचारी श्री राजमलजी को (वर्त्तमान में विद्वान मुनि १०८ श्री अजितसागरजी) आज्ञा दी कि ब्र० भंवरीबाई को संस्कृत, प्राकृत का अध्ययन कराये तथा अध्यात्म ग्रन्थों का स्वाध्याय कराये । विद्यागुरु का ही महान प्रताप है कि आप आज चारों ही अनुयोगों के साथ साथ संस्कृत भाषा में भी परम निष्णात हो गई । ज्यों ज्यों आपका ज्ञान बढ़ने लगा उसका फल वैराग्य भी प्रकट हुआ ।

वि० सं० २०१४ भाद्रपद शुक्ला ६ भगवान सुपार्श्वनाथ के गर्भ कल्याणक के दिन विशाल जनसमूह के मध्य द्वय आचार्य संघों की उपस्थिति में (आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज भी तब ससंघ वहीं विराज रहे थे) ब्र० भंवरीबाई ने आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के कर कमलों से स्त्री पर्याय को धन्य करने वाली आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । भगवान सुपार्श्वनाथ का कल्याणक दिवस होने से आपका नाम सुपार्श्वमती रखा गया । आचार्यश्री के हाथों से यह अन्तिम दीक्षा थी । आसोज बदी १५ को सुसमाधिपूर्वक उन्होंने स्वर्गारोहण किया ।

नवदीक्षिता आर्यिका सुपार्श्वमतीजी ने पूज्य इन्दुमतीजी के साथ जयपुर से विहार किया । अनेक नगरों ग्रामों में देशना करती हुई आप दोनों नागौर पहुंची । पूज्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी ने वि० सं० २०१५ का वर्षायोग यहीं करने का निश्चय किया था । गुरुदेव के समागम से ज्ञानार्जन विशेष होगा तथा प्रसिद्ध प्राचीन शास्त्र भण्डार के अवलोकन का सुअवसर मिलेगा यही सोचकर आप नागौर पधारी थीं । यहां आपने अनेक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया । गुरुदेव के साथ बैठकर अनेक शंकाओं का समाधान किया और आपके ज्ञान में प्रगाढ़ता आई ।

वस्तुतः वि० सं० २००५ से ही आप मातृतुल्य इन्दुमतीजी के वात्सल्य की छत्रछाया में रही हैं । आज आप जो कुछ भी हैं उस सबका सम्पूर्ण श्रेय तपस्विनी आर्या को ही है । आपकी गुरुभक्ति भी श्लाघनीय है । माताजी की वैयावृत्ति में आप सदैव तत्पर रहती हैं ।

आपका ज्योतिष ज्ञान, मंत्र, तंत्रों, यंत्रों का ज्ञान भी अद्वितीय है । आपके सम्पर्क में आने वाला श्रद्धालु ही आपकी इस विशेषता को जान सकता है अन्य नहीं ।

आपकी प्रवचन शैली के सम्बन्ध में क्या लिखूं ? श्रोता अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाते । विशाल जनसमुदाय के समक्ष जिस निर्भीकता से आप आगम का क्रमबद्ध, धारा प्रवाह प्रतिपादन करती हैं तो लगता है साक्षात् सरस्वती के मुख से अमृत झर रहा है । आपके प्रवचन आगमानुकूल

अकाट्य तर्कों के साथ प्रवाहित होते हैं। समझने के लिए व्यावहारिक उदाहरणों को भी आप ग्रहण करती हैं। परन्तु कभी विषयान्तर नहीं होती। चार चार, पांच पांच घण्टे एक ही आसन से धर्म चर्चा में निरत रहती हैं। उच्च कोटि के विद्वान भी अपनी शंकाओं को आपसे समीचीन समाधान पाकर संतुष्ट होते हैं।

सबसे बड़ी विशेषता तो आपमें यह है कि आपसे कोई कितने ही प्रश्न कितनी ही बार करे आप उसका बराबर सही प्रामाणिक उत्तर देती हैं। और प्रश्न कर्ता को सन्तुष्ट करती हैं। आपके चेहरे पर खीज या क्रोध के चिह्न कभी दृष्टिगत नहीं होते।

अब तक के जीवन काल में आपके असाता कर्म का उदय विशेष रहा है, स्वास्थ्य अधिकतर प्रतिकूल ही रहता है परन्तु आप कभी अपनी चर्या में शिथिलता नहीं आने देती। कई वर्षों से अलसर की बीमारी भी लगी हुई है कभी कभी रोग का प्रकोप भयंकर रूप से बढ़ भी जाता है फिर भी आप विचलित नहीं होतीं। णमोकार मंत्र के जाप्य स्मरण में आपकी प्रगाढ़ आस्था है और आप हमेशा यही कहती हैं कि इसके प्रभाव से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। आपकी वचन वर्गणा सत्य निकलती हैं। ऐसे कई प्रसंगों का उल्लेख स्वयं माताजी ने इन्दुमतीजी का जीवन चरित्र (इसी ग्रन्थ का दूसरा खण्ड) लिखते हुए किया है। दृढ़ श्रद्धान का फल अचूक होता है। निष्काम साधना अवश्य चाहिए।

आसाम, बंगाल, विहार, नागालैण्ड आदि प्रान्तों में अपूर्व धर्मप्रभावना कर जैन धर्म का उद्योत करने का श्रेय आपको ही है। महान विद्यानुरागी, श्रेष्ठ वक्ता अनेक भाषाओं की ज्ञाता चतुरनुयोगमय जैन ग्रन्थों की प्रकाण्ड विदुषी, न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त साहित्य की मर्मज्ञा, ज्योतिष यंत्र, तंत्र, मंत्र, औषधि आदि की विशेष जानकार होने से आपने सहस्रों जीवों का कल्याण किया है। और आज भी आप कठोर साधना में लीन होते हुए स्वपर कल्याण में रत हैं।

आपके द्वारा लिखित एवं अनुवादित ग्रन्थ सूची—

(१) परम अध्यात्म तरंगिणी (२) सागार धर्मामृत (३) नारी चातुर्य (४) अनगार धर्मामृत (५) महावीर और उनका सन्देश (६) नय विवक्षा (७) पार्श्वनाथ पंचकल्याणक (८) पंचकल्याणक क्यों किया जाता है (९) प्रणामांजलि (१०) दश धर्म (११) प्रतिक्रमण (१२) मेरा चिन्तवन (१३) नैतिक शिक्षाप्रद कहानियां भाग-दस। (१४) प्रमेय कमल मार्त्तण्ड (१५) मोक्ष की अमर बेल रत्नत्रय (१६) राजवार्त्तिक (१७) नारी का चातुर्य (१८) आचार-सार (१९) लघु प्रबोधिनी कथा (२०) रत्नत्रयचन्द्रिका।

आप तपस्विनी, स्वाध्यायशीला, व्यवहार कुशल, सौम्याकृति, शत्रुमित्र समभावी हैं। आपने पूरा जीवन संसारी प्राणियों को करुणाबुद्धि पूर्वक सन्मार्ग दिखाने में तथा स्वयं कठोर तपस्या करने में लगाया। आपने सैकड़ों लोगों को ब्रह्मचर्य व्रत एवं प्रतिमा के व्रत देकर उन्हें चारित्र मार्ग में दृढ़ किया। आप शान्त और निर्मल स्वभाव की धर्मपरायण माताजी हैं।

आर्यिका वासुमतीजी

श्री १०५ आर्यिका वासुमतीजी के बचपन का नाम लाडबाई था। आपका जन्म आज से ७५ वर्ष पूर्व जयपुर (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता का नाम चान्दूलालजी था जो सब्जीका व्यापार किया करते थे। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आप बड़जात्या गोत्रज हैं। आपका विवाह श्री चिरंजीलालजी के साथ हुआ था।

नगर में मुनिश्री १०८ शान्तिसागरजी के आगमन से आपमें वैराग्य वृत्ति जाग उठी। आपने विक्रम संवत् २०११ में आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी से खानियां में आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने खानियाँ, अजमेर, सुजानगढ़, सीकर, दिल्ली, कोटा, उदयपुर, लाडनू इत्यादि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने तेल, दही, मीठा आदि त्याग कर रखा है।

आर्यिका शान्तिमतीजी

श्री १०५ आर्यिका शान्तिमतीजी का गृहस्थ अवस्था का नाम कुन्दनबाई था। आपका जन्म आज से लगभग पचपन वर्ष पूर्व नसीराबाद (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता श्री रोडमलजी थे तथा माताजी बसन्तीबाई थी। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण हैं। आपका जन्म गंगवाल परिवार में हुआ था। विवाह बम्ब गोत्रमें हुआ था। आपके परिवार में दो भाई हैं। आपकी लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपके पति हीरा-जवाहरात का व्यावसाय करते हैं।

श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की सत्प्रेरणा से प्रभावित होकर आत्मकल्याण हेतु जयपुर में क्षुल्लिका दीक्षा ली। बादमें नागौर में श्री १०८ आचार्य वीरसागरजी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। आपके चातुर्मास पदमपुरी, सुजानगढ़, नागौर, अजमेर आदि स्थानों पर हुए। आपने दूध के अलावा पांचों रसों का त्याग कर दिया है। आप संयम और विवेक शीला हैं। देश और समाज को सन्मति के सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती रहें।
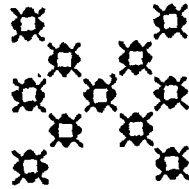
श्री शिवसागराचार्य स्तुतिः

ध्यानैकतानं सुगुणैकधानं ध्वस्ताभिमानंदुरिताभिहानम् ।
मोक्षाभियानं महनीयगानं सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम् ।।

यो लीन आसीत्सुतपःसमूहे नो दीन आसीद् दुरिताभिहान्याम् ।
यः सागरोऽभूत्सुखशान्तिराशेः सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम् ।।

हिंसादि पापं प्रथिताभितापं संहृत्य दूरं सुकृतैकपूरम् ।
यो वृत्तभारं सुदधेऽतिसारं सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम् ।।

येन क्षता मन्मथमानमुद्रा येन क्षताबोधचयातिनिद्रा ।
येन क्षता मोहमहाभितन्द्रा सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम् ।।

योऽनेकसाधुव्रजपालनाय साध्वीचयस्यापि सुरक्षणाय ।
आसीत्प्रदक्षो विगतारिपक्षः सूरिं प्रवन्दे शिवसागरं तम् ।।

आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके द्वितीय

पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य वर्ग

मुनि श्री ज्ञानसागरजी
मुनि श्री वृषभसागरजी
मुनि श्री अजितसागरजी
मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी
मुनि श्री सुबुद्धिसागरजी
मुनि श्री भव्यसागरजी
मुनि श्री श्रेयान्ससागरजी
क्षुल्लक श्री योगीन्द्रसागरजी
आर्यिका विशुद्धमतीजी
आर्यिका बुद्धमतीजी
आर्यिका आदिमतीजी
आर्यिका अरहमतीजी
आर्यिका चन्द्रमतीजी
आर्यिका राजुलमतीजी
आर्यिका नेमीमतीजी
आर्यिका भद्रमतीजी

आर्यिका दयामतीजी
आर्यिका कनकमतीजी
आर्यिका जिनमतीजी
आर्यिका संभवमतीजी
आर्यिका सन्मति माताजी
आर्यिका कल्याणमतीजी

आर्यिका विद्यामतीजी
आर्यिका श्रेयांसमतीजी
आर्यिका श्रेष्ठमतीजी
आर्यिका सुशीलमतीजी
आर्यिका विनयमतीजी
क्षुल्लिका सुव्रतमतीजी

मुनिश्री ज्ञानसागरजी

राजस्थान प्रदेश में जयपुर के समीप राणोली ग्राम है। वहाँ पर एक खण्डेलवाल जैन कुलोत्पन्न छाबड़ा गोत्री सेठ सुखदेवजी रहते थे। उनके पुत्रका नाम श्री चतुर्भुजजी और स्त्रीका नाम घृतवरीदेवी था। ये दोनों गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए रहते थे। उनके पाँच पुत्र हुए। जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. छगनलाल, २. भूरालाल, ३. गंगाप्रसाद, ४. गौरीलाल और ५. देवीदत्त। इनके पिताजी का वि० सं० १९५६ में स्वर्गवास हो गया, तब सबसे बड़े भाई की आयु १२ की थी और सबसे छोटे भाईका जन्म तो पिताजी की मृत्यु के पीछे हुआ था। पिताजी के असमय में स्वर्गवास हो जाने से घर के कारोबार की व्यवस्था बिगड़ गई और लेन-देन का धन्धा बैठ गया। तब बड़े भाई छगनलालजी को आजीविका की खोज में घर से बाहर निकलना पड़ा और वे घूमते हुए गया पहुंचे और एक जैन दुकानदार की दुकान पर नौकरी करने लगे। पिताजी की मृत्यु के समय दूसरे भाई और प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता भूरामलकी आयु केवल १० वर्ष की थी और अपने गांव के स्कूल की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। आगे की पढ़ाई का साधन न होने से एक वर्ष बाद अपने बड़े भाई के साथ आप भी गया चले गये और किसी जैनी सेठ की दुकान पर काम सीखने लगे।

लगभग एक वर्ष दुकान का काम सीखते हुआ कि उस समय स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस के छात्र किसी समारोह में भाग लेने के लिए गया आये उनको देखकर बालक भूरामल के भाव भी पढ़ने को बनारस जाने के हुए और उन्होंने यह बात अपने बड़े भाई से कही। वे घर की परिस्थितिवश अपने छोटे भाई भूरामल को बनारस भेजने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे, तब आपने पढ़ने के लिए अपनी दृढ़ता और तीव्र भावना प्रकट की और लगभग १५ वर्ष की उम्र में आप बनारस पढ़ने चले गये।

जब आप स्याद्वाद महाविद्यालय में पढ़ते थे तब वहां पर पं० बंशीधरजी, पं० गोविन्दरायजी, पं० तुलसीरामजी आदि भी पढ़ रहे थे। आप और सब कार्यों से परे रहकर एकाग्र विद्याध्ययन में संलग्न हो गये। जहां आपके सब साथी कलकत्ता आदि की परीक्षाऐं देने को महत्व देते थे वहां आपका

विचार था कि परीक्षा देने से वास्तविक योग्यता प्राप्त नहीं होती वह तो एक बहाना है। वास्तविक योग्यता तो ग्रन्थ को अद्योपान्त अध्ययन करके उसे हृदयंगम करने से प्राप्त होती है। अतएव आपने किसी भी परीक्षा को देना उचित नहीं समझा और रातदिन ग्रन्थों का अध्ययन करने में ही लगे रहते थे। एक ग्रन्थ का अध्ययन समाप्त होते ही तुरन्त उसके आगे के ग्रन्थ का पढ़ना और कण्ठस्थ करना प्रारम्भ कर देते थे, इस प्रकार बहुत ही थोड़े समय में आपने शास्त्रीय, परीक्षा तक के ग्रन्थों का अध्ययन पूरा कर लिया।

जब आप बनारस में पढ़ रहे थे तब प्रथम तो जैन व्याकरण साहित्य आदि के ग्रन्थ ही प्रकाशित नहीं हुए थे, दूसरे वे बनारस, कलकत्ता आदि के परीक्षालयों में नहीं रखे हुए थे, इसलिए उस समय विद्यालय के छात्र अधिकतर अजैन व्याकरण और साहित्य के ग्रन्थ ही पढ़कर परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया करते थे। आपको यह देखकर बड़ा दु:ख होता था कि जब जैन आचार्यों ने व्याकरण साहित्य आदि के एक से एक उत्तम ग्रन्थों का निर्माण किया है तब हमारे जैन छात्र उन्हें ही क्यों नहीं पढ़ते हैं ? पर परीक्षा पास करने का प्रलोभन उन्हें अजैन ग्रन्थों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता था तब आपने और आपके सदृश ही विचार रखने वाले कुछ अन्य लोगों ने जैन न्याय और व्याकरण के ग्रन्थ जो कि उस समय तक प्रकाशित हो गये थे काशी विश्वविद्यालय और कलकत्ता के परीक्षालय के पाठ्यक्रम में रखवाये। पर उस समय तक जैन काव्य और साहित्य के ग्रन्थ एक तो बहुत कम यों ही थे, जो थे भी उनमें से बहुत ही कम प्रकाश में आये थे। अत: पढ़ते समय ही आपके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अध्ययन समाप्ति के अनन्तर मैं इस कमी की पूर्ति करूंगा। यहां एक बात उल्लेखनीय है कि आपने बनारस में रहते हुए जैन न्याय, व्याकरण, साहित्य के ही ग्रन्थों का अध्ययन किया। उस समय विद्यालय में जितने भी विद्वान अध्यापक थे वे सभी ब्राह्मण थे और जैन ग्रन्थों को पढ़ाने में आना कानी करते और पढ़ने वालों को हतोत्साहित भी करते थे किन्तु आपके हृदय में जैन ग्रन्थों के पढ़ने और उनको प्रकाश में लाने की प्रबल इच्छा थी। अतएव जैसे भी जिस अध्यापक से सम्भव हुआ आपने जैन ग्रन्थों को ही पढ़ा।

इस प्रसंग में एक बात और भी उल्लेखनीय है कि जब आप बनारस विद्यालय में पढ़ रहे थे, तब वहां पं० उमरावसिंहजी जो कि पीछे ब्रह्मचर्य प्रतिमा अंगीकार कर लेने पर ब्र० ज्ञानानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं, का जैन ग्रन्थों के पठन पाठन के लिए बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा। वे स्वयं उस समय धर्मशास्त्र का अध्ययन कराते थे। यही कारण है कि पूर्व के पं० भूरामलजी और आज के मुनि ज्ञानसागरजी ने अपनी रचनाओं में उनका गुरुरूप से स्मरण किया है।

आप अध्ययन समाप्त कर अपने ग्राम राणोली वापिस आ गये। अब आपके सामने कार्य क्षेत्र के चुनाव का प्रश्न आया। उस समय यद्यपि आपके घर की परिस्थिति ठीक नहीं थी और उस समय

विद्वान विद्यालयों से निकलते ही पाठशालाओं और विद्यालयों में वैतनिक सेवा स्वीकार कर रहे थे किन्तु आपको यह नहीं जचा और फलस्वरूप आपने गांव में रहकर दुकानदारी करते हुए स्थानीय जैन वालकों को पढ़ाने का कार्य निःस्वार्थभाव से प्रारम्भ किया और एक बहुत लम्बे समय तक आपने उसे जारी रखा।

जब आप वनारस से पढ़कर लौटे तभी आपके वड़े भाई भी गया से घर आ गये और आप दोनों भाई दुकान खोलकर अपनी आजीविका चलाने लगे और अपने छोटे भाईयों की शिक्षा दीक्षा की देख रेख में लग गये। इस समय आपकी युवावस्था, विद्वत्ता और गृह संचालन, आजीविकोपार्जन की योग्यता देखकर आपके विवाह के लिए अनेक सम्वन्ध आये और आपके भाईयों और रिश्तेदारों ने शादी कर लेने के लिए बहुत आग्रह किया, पर आप तो अध्ययन काल से ही अपने मन में यह संकल्प कर चुके थे कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जैन साहित्य निर्माण और उसके प्रचार में अपना समय व्यतीत करूंगा। इसलिए विवाह करने से आपने एकदम इन्कार कर दिया और दुकान के कार्यों को भी गौण करके उसे बड़े और छोटे भाईयों पर ही छोड़कर पढ़ाने के अतिरिक्त शेष सर्व समय को साहित्य की साधना में लगाने लगे। फलस्वरूप आपके अनेक संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों की रचना की तालिका इस प्रकार है।

संस्कृत रचनाऐं :—

१. दयोदय—अहिंसाव्रत धारी की कथा का गद्य-पद्य में चित्रण किया गया है।

२. भद्रोदय—इसमें असत्य भाषण करने वाले सत्यघोष की कथा पद्योंमें दी है।

३. सुदर्शनोदय—इसमें शीलव्रती सुदर्शन सेठ का चरित्र-चित्रण अनेक संस्कृत छंदों में है।

४. जयोदय—इसमें जयकुमार सुलोचना की कथा महाकाव्य के रूप में वर्णित है। साथ में स्वोपज्ञ, संस्कृत, टीका तथा हिन्दी अन्वयार्थ भी दिया गया है।

५. वीरोदय—महाकाव्य के रूप में श्री वीर भगवान् का चरित्र-चित्रण किया गया है।

६. प्रवचनसार—आ० कुन्दकुन्द के प्रवचनसार की गाथाओं का हिन्दी पद्यानुवाद है।

७. समयसार—आ० कुन्दकुन्द के समयसार पर आ० जयसेन की संस्कृत टीका का सर्वप्रथम सरल हिन्दी अनुवाद किया गया है।

८. मुनि-मनोरजंन शतक—इसमें सौ संस्कृत श्लोकों के द्वारा मुनियों का कर्तव्य वर्णित है।

हिन्दी रचनाऐं—

१. ऋषभावतार—अनेक हिन्दी छन्दों में भ० ऋषभदेव का चरित्र-चित्रण है।

२. गुणसुन्दर वृत्तान्त—इसमें भ० महावीर के समय में दीक्षित एक श्रेष्ठी पुत्र का चरित्र है।

३. भाग्योदय—इसमें धन्य कुमार का चरित्र चित्रण है।

४. जैनविवाह विधि—सरल रीति से वर्णित है।

५. सम्यक्त्वसारशतक—हिन्दी के सौ छन्दों में सम्यक्त्वका वर्णन है।

६. तत्वार्थसूत्र टीका—अनेक उपयोगी चर्चाओं के साथ हिन्दी अनुवाद है।

७. कर्तव्य पथ प्रदर्शन—इसमें श्रावकों के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है।

८. विवेकोदय—यह आ० कुन्दकुन्द के समयसार गाथाओं का हिन्दी पद्यानुवाद है।

९. सचित्त विवेचन—इसमें आगम प्रमाणों से सचित्त और अचित्त का विवेचन है।

१०. देवागम स्तोत्र—यह आ० समंतभद्र के स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद है।

११. नियमसार—यह आ० कुन्दकुन्द के नियमसार गाथाओं का पद्यानुवाद है।

१२ अष्टपाहुड़—यह आ० कुन्दकुन्द के अष्टपाहुड़ गाथाओं का पद्यानुवाद है।

१३. मानव-जीवन—मनुष्य जीवन की महत्ता बताकर कर्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा।

१४. स्वामी कुन्दकुन्द—और सनातन जैन धर्म अनेक प्रमाणों से सत्यार्थ जैन धर्म का निरूपण कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों के आधार पर किया गया है।

जब आपके एक भाई की पत्नी का मरण हुआ तब आपको काफी दु:ख हुआ। संसार को असार समझा। आपने संवत् २०१८ में ज्येष्ठ शुक्ला १० मीं को श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी

महाराज से मांगुर (बेलगांव) में मुनि दीक्षा ले ली । आपने शिखरजी, नसलापुर, मांगुर, कोल्हापुर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये इन स्थानों पर आपके विहार करने से काफी धर्मप्रभावना हुई। आपने मुनि दीक्षा ली ही थी कि दूसरे दिन से आप असाध्य रोग से ग्रसित हुए । कालान्तर में शुभ कर्म के उदय से आप स्वस्थ हुए । एक प्रकार से आपका दूसरा जन्म हुआ । आपने शक्कर, गुड़, घी आदि रसों का त्याग कर रखा था ।

आप अपने आदर्श जीवन चरित के माध्यम से देश और समाज को सदैव सबल बनाकर सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा देते थे ।

मुनि श्री वृषभसागरजी महाराज

कार्तिक कृष्णा अमावस्या सं० १६५८ की धन्य घड़ीमें अग्रवाल सिहल गोत्रमें महाभाग्य लाला श्री फूलचन्द्रजी के घर माता श्री छोटीबाई की कोख से जिला मुजफ्फरनगर के ऐलम नामक ग्राम में आपका जन्म हुआ था। वह माता पिता धन्य हैं जिनने ऐसे पुण्यशील व्यक्ति को जन्म दिया।

बालापन में आपका नाम, "कश्मीरीलाल" रखा गया। जन्म के समय आपके माता पिता की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। आपके पिताश्री उदार प्रकृति, सन्तोषी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा देहली की एक फर्म में खजांची का कार्य करते थे। आपसे छोटे दो भाई श्री विशम्बर-दयालजी एवम् श्री उमरावसिंहजी हैं। जेठ सुदी चतुर्दशी सम्वत् १६६७ के दिन पिताश्री का देहावसान हो गया। उस समय आपकी उम्र मात्र ९ वर्षकी थी। घर का सारा भार आपके ऊपर आ पड़ा। पिताजी की मृत्यु के कुछ समय बाद ही खारी बावली देहली की एक सरकारी पाठशाला में आपने मुण्डी एवम् उर्दू की अल्प शिक्षा प्राप्त की। उसी समय ३ माहके लगभग अंग्रेजी भाषा के अभ्यासका भी मौका मिला और ज्ञानार्जन किया। हिन्दी भाषा का ज्ञान स्वयं के अभ्यास से घर पर ही प्राप्त किया और पिताश्री के स्थान पर उसी फर्म में खजांची का कार्य सीखने लगे।

१६ वर्ष की आयु में जिला मेरठ के बमनौली ग्राममें श्री हुशयारसिंह की बहिन श्रीमती महादेवी के साथ आपका विवाह हो गया। श्री हुशयारसिंह एक बड़े उदार, धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष हैं। आजकल बड़ौतमें अनाज के अच्छे व्यापारी हैं, आपकी धर्मपत्नी श्रीमती महादेवीजी दो प्रतिमा के व्रतों का पालन करती हुई घर पर ही गृहकार्य के अलावा आत्मोन्नति की ओर अग्रसर हैं।

आपके पूर्वज (कुटुम्बी जन) श्वेताम्बर मुँह पट्टी वालों के अनुयायी थे। अपने पूर्वजोंकी परम्परानुसार आप भी श्वेताम्बर सन्तों के समीप जाया करते थे। एक दिन आप श्वेताम्बर स्थानक में बैठे थे। आपके यहां से एक मील दूर भनेड़ा ग्राम था वहाँ पर दिगम्बर जैनों द्वारा दशलक्षण

व्रत की समाप्ति पर क्षमादिवस, रथ यात्रा आदि कार्यक्रम हो रहा था। एक सज्जन ने आपको उस उत्सवमें सम्मिलित होने का आमंत्रण दिया।

भनेड़ा ग्राम के जिन मन्दिरजी में गए तो प्रथमत: दिव्य सौम्य, शान्त दिगम्बर छवि मुद्रा में भगवान जिनेन्द्रप्रभु की मूर्ति देखी तथा एक श्रावक को अत्यन्त शुद्ध निर्मल भावों से उस परम वीतरागी सर्वज्ञ प्रभु की पूजन करते हुए सुना जिसका प्रभाव आपके हृदय पटल पर पत्थर पर खींची गई रेखा के समान अमिट पड़ा।

थोड़े समय बाद ही एक शास्त्र सभा में आप पहुँचे और शास्त्र वक्ता सतगुरु उपदेश के प्रसंग में रत्नकरण्ड श्रावकाचार का निम्नलिखित श्लोक सुनने को मिला—

"भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ।।"

इस श्लोक को सुनकर विचार किया तो सुगुरु और कुगुरु एवम् परिग्रही एवम् निष्परिग्रही का अन्तर स्पष्ट समझ में आ गया, आपने जीवन पर्यंत कुगुरु को नमस्कार न करने की प्रतिज्ञा ली।

जब आप २० वर्षके थे उसी समय श्री जुगलकिशोरजी अग्रवाल ने जैन धर्म का प्रारम्भिक ज्ञान, दर्शन पाठसे छह ढाला तक का देते हुए देहली में किराये पर अपना मकान देते हुये आश्रय दिया। आपके प्रथम गुरु यही थे जिनकी छत्र-छाया में जैन धर्म के प्रारम्भिक ज्ञान का अभ्यास किया।

आपके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। प्रथम पुत्रका नाम श्री जम्बूप्रसादजी और छोटे पुत्रका नाम श्रीमन्धरदासजी है। आजकल आपके दोनों पुत्र सब्जी मण्डी में कपड़े की दुकान करते हैं। आपके दोनों पुत्र योग्य, सुशील, आज्ञाकारी एवम् उदार प्रकृति के हैं। आपकी माँ परम धर्मपरायण संयमी एवम् सरल स्वभावी थीं। आहार देनेमें उन्हें बहुत सन्तोष होता था और आप प्राय: मुनि, त्यागी, श्रावक आदि को आहार दान देती रहती थीं।

जब आचार्यवर श्रीशान्तिसागरजी महाराज का संघ मथुराजी में आया हुआ था तब आपको महाराजश्री के दर्शन करने का सौभाग्य मिला तथा जीवन में प्रथम बार मुनि को आहार देने का अवसर मिला। इसी अवसर पर आपने जीवन पर्यंत शूद्र जल का त्याग कर दिया।

जब आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का संघ खुरजा से दिल्ली आया था तब संघ को दिल्ली लाने का श्रेय आपको ही था। उसका कारण आपकी अतुल श्रद्धा और भक्ति थी। संघ दिल्ली में २८ दिन रहा। इस अवधि में आपने अपनी धर्मपत्नी के साथ प्रतिदिन आहार दान का पुण्य संचय किया और इसी समय से आपमें धार्मिक भावना का प्रबलतम भाव उत्पन्न हुआ। आपकी धार्मिक भावना को सफलतम् एवम् उन्नतिकर बनाने का श्रेय क्षुल्लक श्री ज्ञानसागरजी महाराज को था। अब भी आप परम पूज्य क्षुल्लक ज्ञानसागर (मुनि श्री सुधर्मसागरजी) के प्रति अनन्त हार्दिक श्रद्धा रखते हुए उन्हें आदि गुरु एवं परम उपकारी मानते हैं।

आपका सराफी का व्यापार अच्छी प्रगति पर रहा। आपने सांसारिक एवम् धार्मिक दोनों क्षेत्रोंमें मान्यतायें प्राप्त कीं। आपके द्वारा जो शास्त्र प्रवचन होता था वह हृदयग्राही होता था। लोगों की श्रद्धा आपके प्रति काफी बढ़ गई थी जिससे जैन समाज में आपका पद प्रतिष्ठित व्यक्तियों की श्रेणी में गिना जाता था।

जब हमारे देश का संविधान बनाया जा रहा था और उसमें जैन धर्म का स्थान हिन्दू धर्म के अन्तर्गत समाहृत किया जा रहा था तब आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का संकेत पाकर इस सम्बन्ध में अन्य विद्वानों के सहयोग से अनेकों प्रमाण प्रस्तुत कर निश्चित करा दिया कि हिंदू एवं जैन धर्म परस्पर स्वतन्त्र धर्म हैं। यह एक दूसरे के आधीन नहीं हैं। फलतः विधान में यह मान्यता स्वीकार की गई। इसका समाचार जब सर्व प्रथम कुछ विद्वानों के साथ आप आचार्यश्री के पास ले गए तो आचार्यश्री ने आपको आशीर्वाद देते हुए अन्न ग्रहण किया था।

इस प्रकार आप समाज के बीच जन-प्रिय हुए, अतः आपको श्री दिगम्बर जैन सिद्धान्त प्रचारिणी समिति का मन्त्री मनोनीत किया गया। इस पद पर आपने और भी अनेकों कार्योंका अपनी प्रज्ञा के द्वारा सम्पादन किया। आपका व्यवसाय भी खूब चला तथा पारिवारिक स्थिति सम्पन्न हो गई, लेकिन काललब्धि ने आपके हृदय में परिवर्तन ला दिया और आपकी सांसारिक वैभवों के प्रति उदासीनता बढ़ने लगी। फलतः सन् १९३१ में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्ति-सागरजी महाराज के समीप बड़ौत में दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये। घर आकर उदासीन वृत्ति से संयम पूर्वक रहने लगे।

पश्चात् आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज जब ससंघ सवाईमाधौपुर पधारे हुये थे तभी आपने आचार्यश्री से पांचवीं प्रतिमा के व्रत अङ्गीकार करते हुये ईसरी चातुर्मास के शुभावसर पर दीक्षित न होने तक घी न खाने की प्रतिज्ञा ली और फुलेरा में हुए पंच कल्याणक महोत्सव के

शुभावसर पर आपने आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत अङ्गीकार कर लिए। इसीं बीच अयोध्या में आए धार्मिक संकट को दूर करने में आपने जो विजय पाई वह बहुत सराहनीय है। घटना इस प्रकार है :—

आचार्यवर श्री देशभूषणजी महाराज की सत्प्रेरणा से श्री पारसदासजी आदि दिल्ली वालों की ओर से तीर्थ क्षेत्र अयोध्या में भगवान ऋषभदेव की ३३ फुट उत्तुङ्ग खड्गासन सुन्दर संगमरमर की मूर्ति २४ अक्टूबर १९५७ को अयोध्या स्टेशन पर आई थी। मूर्ति एक स्पेशल गाड़ी पर रखकर जैक आदि यांत्रिक साधनों द्वारा स्टेशन से एक बगीचे में लाई जा रही थी। एक मोड़ पर थोड़ी-सी उतार पड़ने के कारण गाड़ी स्वतः २-३ फीट आगे चल दी। मूर्ति का कन्धा एक मकान के कोने से लग गया जिससे सारा मकान बीच से दरार खा गया। इस पर अयोध्या के कुछ पण्डों ने मिलकर मूर्ति को तोड़ने और नग्न मूर्ति अयोध्या में स्थापित न करने की जिद्द की। इस सङ्कट में दिल्ली वासियों ने मई १९५८ में आपको अयोध्या भेजा। (लेखक भी उस समय अयोध्या में ही अध्ययन करता था।) आप उस समय ब्रह्मचारी ही कहलाते थे। आपने वहाँ के विद्रोहियों को नम्रता एवं प्रेम पूर्वक समझाया। अयोध्या के काफी अजैन भाई आपसे प्रभावित हुए। ऐसा समय देखकर आपने अनेकों मांसाहारियों को मांस तथा मद्य सेवन न करने के नियम लिवाए। इस प्रकार कार्य सम्पन्न कर तया विद्रोहियों के हृदय में प्रेम की धारा बहाकर आप वापिस दिल्ली लौट आए।

समय बीता और परिणामों में निर्मलता आई। जब आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज का संघ अजमेर आया तब आप दिल्ली से अजमेर आए और घर पर यह समाचार भेज दिया कि मैंने रेल और मोटर का त्याग कर दिया है तथा दीक्षा ले रहा हूं। आपके पुत्र सपरिवार आए और बोले पिताजी मैं आपको हवाई जहाज द्वारा घर ले जाऊंगा तथा दीक्षा नहीं लेने दूँगा। धन्य है वह समय जब पुत्रों को मोह और पिता को प्रबल वैराग्य। ऐसे समय में पिता पुत्र की नेह निवृत्ति का दृश्य। आपने अपने निश्चय को नहीं बदला तथा कार्तिक सुदी एकादशी सम्वत् २०१६ के दिन आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली।

क्षुल्लक दीक्षा के बाद आपका पहला चातुर्मास सुजानगढ़ ग्राम में हुआ। चातुर्मास के समय एक दिन पारणा कर रहे थे तो तीन मक्खियाँ लड़ती हुई दूध में गिर पड़ी और मर गई। जिससे आपको शुद्ध वैराग्य की भावना का उदय हुआ और आपने आचार्य श्री से मुनि दीक्षा की विनय की फलतः आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज ने सुजानगढ़ में अपार जन-समूह के बीच जयध्वनि के साथ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी सम्वत् २०१७ के शुभ दिन आपको दिगम्बरी मुनि दीक्षा दी।

मुनि दीक्षा के बाद आपका प्रथम चातुर्मास सीकर दूसरा लाडनू (.राजस्थान) और तीसरा जयपुर खानियाँ में हुआ । आपने जब से यह मुनि पद ग्रहण किया तब से आज तक अनेकों व्यक्तियों के हृदय में सम्यग्दर्शन की भावना को जाग्रत किया । नियम और सप्त व्यसनों का त्याग करते हुये यज्ञोपवीत देकर हजारों को सुपथ पर पहुंचाया । सैकड़ों मांसाहारियों को आजीवन मांस, मधु का त्याग कराया और अनेकों से नशीली वस्तुओं के सेवन न करने के व्रत लिवाये । इस प्रकार संघमें विहार कर भगवान महावीर स्वामी के दिव्य संदेशोंको फैलाते हुये मानव आत्माओं के कल्याण के लिये बड़ा महत्वशाली कार्य कर रहे हैं ।

आपके श्री युगल चरणों में कोटिशः नमन ।

मुनि श्री अजितसागरजी महाराज

विक्रम सम्वत् १९८२ में भोपाल के पास आष्टा नामक कस्बे के समीप प्राकृतिक सुरम्यता से परिपूर्ण भौरा ग्राम में पद्मावती पुरवाल गोत्रोत्पन्न परम पुण्यशाली श्री जवरचन्द्रजी के घर माता रूपाबाई की कुक्षि से आपका मङ्गल जन्म हुआ था। जन्म के वाद माता पिता ने आपका नाम राजमल रखा।

शील रूपा माँ रूपाबाई सुगृहणी, कार्य कुशल एवं धर्म परायण महिला हैं। फलतः उनके आदर्शों का असर होनहार सन्तान पर भी पड़ा। आपके पिता श्री स्वभाव से सरल, धार्मिक बुद्धि के व्यक्ति थे। वे वजनकसी का कार्य करते थे। जन्म के समय आपकी आर्थिक स्थिति साधारण थी।

आपसे वड़े तीन भाई श्री केशरीमलजी, श्री मिश्रीलालजी एवं श्री सरदारमलजी हैं, और आजकल घर पर ही अपने उद्योग के साथ परिवार सहित धार्मिक जीवन यापन कर रहे हैं।

आपकी रुचि प्रारम्भ से ही विरक्ति की ओर थी। बालापन से ही आपका स्वभाव, सरल, मृदु एवम् व्यवहार नम्रता पूर्ण रहा। विद्यार्थी जीवन में आपकी बुद्धि प्रखर एवम् तीक्ष्ण थी। वस्तु परिज्ञान आपको शीघ्र हो जाता था। आपकी प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा कक्षा चार तक ही इन्दौर जिला के 'अजनास' ग्राम में हुई। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के वाद सम्वत् २००० में आपने आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराज के प्रथम दर्शन किए फलतः आपके हृदय में परम् कल्याणकारी जैन धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा ने जन्म लिया। १७ वर्ष की अल्प आयु में ही आचार्य श्री की सत्प्रेरणा से प्रभावित होकर आप संघ में शामिल हो गये और जैनागम का गहन अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। जैसे जैसे आपकी निर्मल आत्मा को ज्ञान प्राप्त होता गया वैसी-वैसी आपकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर होने लगी। विक्रम सम्वत् २००२ में ही आपने झालरापाटन (राजस्थान) में आचार्यवर श्री वीर-सागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा तक के वृत अंगीकार कर लिए।

इस अवस्था में आकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की कठिन प्रतिज्ञा लेकर सांसारिक भोग-विलासों को ठुकराते हुये कठोर व्रतों का अभ्यास कर शरीर को दुर्द्धर तपस्या का अभ्यासी वनाया। इस पवित्र ब्रह्मचर्यावस्था में आकर आपने अपने अथक श्रम से जिस आगम का ज्ञान प्राप्त किया उससे आपकी समाज के वीच उचित प्रतिष्ठा हुई।

सफलता पूर्वक अनेक पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं में व्रत विधान कराने के कारण "प्रतिष्ठाचार्य" आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त अनेक श्रावक श्राविकाओं को आगम की उच्च शिक्षा देनेके कारण "महापण्डित"—तथा अपनी विद्वत्ता पूर्ण प्रवचन लेखन शैली के कारण "विद्यावारिधि" के पद से समाज ने आपकी साधना को अलंकृत किया।

आपमें एक विशिष्ट गुण का प्राधान्य पाया जाता है, वह यह है कि जब भी आप तर्क संगत विद्वत्ता पूर्ण विशेष कल्याण कारक कोई भी कार्य करते तो उसका श्रेय अन्य किसी व्यक्ति विशेष को इंगित कर देते, तथा स्वयं नाम प्रतिष्ठा के निर्लोभी वने रहते। कार्य का सम्पादन स्वयं करते और उसकी प्रतिष्ठा, इज्जत के अधिकारी अन्य व्यक्ति होते—यह आपकी व्यामोह विहीनता, महानता, प्रवल सांसारिक वैराग्य और क्षणभंगुर शरीर के प्रति निर्ममत्व के साथ ही मानव समाज के कल्याण की उत्कृष्ट भावना का प्रतीक था।

यदि आपकी विशिष्ट कार्य सम्पन्नता से प्रभावित होकर किसी व्यक्ति विशेष ने आपके गुणों की गरिमा गाई तो आप उससे प्रसन्न होने के वजाय अप्रसन्न ही हुए। धन्य है आपकी इस महानता को। आपके द्वारा प्रशिक्षित अनेक श्रावक श्राविका अपना आत्म-कल्याण करते हुए क्षुल्लक, क्षुल्लिका व आर्यिकाओं के रूप में धर्म साधन कर आपकी गुण गरिमा का परिचय दे रहे हैं।

इस प्रकार ज्ञान और चारित्र में श्रेष्ठता पाजाने पर आपके अन्तर में वैराग्य की प्रबल ज्योति का उदय हुआ तथा सीकर (राजस्थान) में अपार जन-समूह के वीच परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से समस्त अंतरंग और बहिरंग परिग्रह का त्याग करके कार्तिक सुदी चतुर्थी सम्वत् २०१८ की शुभतिथि व शुभ नक्षत्रमें आपने दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण कर ली। आचार्य श्री ने आपका नाम संस्कार श्री अजितसागर नाम से किया। दीक्षित नाम पूर्व नाम की अपेक्षा यथार्थवादी होता है अर्थात्—"यथा नाम तथा गुण" की युक्ति को चरितार्थ करने वाला ऐसा अजितसागर नाम पूज्य आचार्यवर ने रखा।

नवीन वय, सुगठित सानुपातिक और वलिष्ठ शरीर, सौम्य शान्त मुद्रा, चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज, ऐसी अवस्था में नग्न मुद्रा धारण कर अपनी विषय वासना को कठोर नियंत्रण में करते हुये समाज के वीच सफल नग्न परीक्षण देना कितना कठिन है ? यह एक ऐसी अवस्था होती है जहां पर

शारीरिक मोह छोड़ते हुये लज्जा और इन्द्रियों पर महान विजय पानी होती है। इन्द्रिय-निग्रह का महान आदर्श उपस्थित करना होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आप अपने तेजोबल से मुनि धर्म का कठोरता से पालन करते हुये अपनी दिनचर्या का अधिकांश समय जैनागम के अध्ययन अध्यापन में व्यतीत करते हैं।

आपका संस्कृत ज्ञान परिपक्व एवं अनुपम है। आपने निरन्तर कठोर अध्ययन एवम् मनन से जिस ज्ञान का भण्डार अपनी आत्मा में समाहृत किया उससे अच्छे-अच्छे विद्वान दाँतों तले अंगुली दबाकर नत हो जाते हैं। आपने ५ हजार श्लोकों का संग्रह किया है जो शीघ्र ही समाज के सामने आ रहा है।

आपके अध्ययन की प्रक्रिया को मात्र इस उदाहरण से कह सकते हैं कि—जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा की सफलता के लिए अति निकट परीक्षा अवधि में तन्मयता और श्रम के साथ अध्ययन करता है उससे कहीं बहुत तीव्र लगन के साथ महाराज श्री अपने आत्म-कल्याण रूपी परीक्षा की सफलता के लिये अनवरत तैयारी करते रहते हैं।

आपने अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन कराया है।

जब हम आपके जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो यह पाते हैं कि आपने मात्र १७ वर्ष का समय घर में व्यतीत किया और फिर आचार्य श्री के संघ में मिलकर आत्म कल्याण की ओर मुड़ गये। अल्प वय में इतना त्याग, इतना वैराग्य और ऐसी कठोर ब्रह्मचर्य व्रत की साधना के साथ मुनि धर्म जैसी कठोर चर्या का पालन करना विरले पुरुषार्थी महापुरुषों के लिए ही संभव हो सकता है। आप विशाल संघ के साथ यत्र तत्र सर्वत्र विहार करते रहते हैं।

अन्तमें ऐसे महान् साधक श्री गुरु के पावन युगल चरणों में उनकी इस उत्कृष्ट महानता के लिये बार बार नमन है।

मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज

जयपुर प्रान्त के सारसोप ग्राम में चैत्र वदी चौथ सम्वत् १९५८ के दिन मंगल वेला में परम शीलवती माता सुन्दरबाई की कुक्षि से अग्रवाल सिंहल गोत्र में आपका जन्म हुआ। आपके पिता श्री छगनलालजी ने आपका जन्म नाम घासीलाल रखा।

आपके पिताजी ग्राम के प्रमुख प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। ग्राम में इन्हीं का शासन था। जब आपका जन्म हुआ था, आपके पिताजी एक वड़े जमींदार थे। आप अपने माता पिता के प्रथम पुत्र होने के कारण अत्यन्त प्रिय व लाडले थे। जन्म के समय वड़ा उत्सव मनाया गया था। आपके पिताजी तीन भाई थे।

आपसे छोटे दो भाई और हुए। वड़े श्री रामनिवासजी हैं। इन्होंने शादी कराने का विचार नहीं किया। आजकल घर पर ही व्यापार करते हुये श्रावकों के कर्त्तव्यों का पालन कर जीवनयापन कर रहे हैं। छोटे भाई श्री राजूलालजी थे। माता पिता को दो सन्तानें प्रायः विशेष लाडली होती हैं। प्रथम और अन्त की सन्तान। अतः आपके छोटे भाई श्री राजूलालजी विशेष प्रिय व लाडले होने के साथ ही उदार प्रकृति, सन्तोषी एवं कार्य कुशल युवक थे। शादी के बाद उनके एक पुत्र श्री भैरवलालजी हुए इसके पश्चात् असमय ही में उनका देहावसान हो गया।

विक्रम सम्वत् १९७१ में जबकि आपकी उम्र मात्र १३ वर्ष की थी, पिताजी ने आपके विवाह का निश्चय किया, एवं ग्राम वैंड के सेठ रामनाथजी की सुपुत्री श्रीमती झारसीदेवी के साथ आपका विवाह कर दिया। वैंड ग्राम एक अच्छा कस्बा है जहाँ पर जैनियों की अच्छी जन-संख्या के साथ ही सुन्दर जैन मन्दिर है।

शादी के पश्चात् आपके तीन पुत्र हुए। अन्तिम पुत्र का जन्म विक्रम सम्वत् १९८६ में शादी के १५ वें वर्ष वाद हुआ था। प्रथम दो पुत्रों की तो बाल्यावस्था ही में मृत्यु हो चुकी थी। तृतीय पुत्र श्री रामपालजी के जन्म के ६ मास वाद ही आपकी धर्म पत्नी का साधारण सी बीमारी में धर्म-ध्यान पूर्वक देहावसान हो गया। पुत्र रामपाल का लालन-पालन आपकी माताजी ने ही किया। आजकल श्री रामपालजी लेन-देन एवं कपड़े का ही व्यवसाय करते हैं। व्यवहार कुशल, योग्य एवं उदार होने के कारण ग्राम में आपकी प्रतिष्ठा है।

श्री रामपालजी की प्रथम पत्नी का शादी के कुछ वर्षों वाद ही देहावसान हो जाने से दूसरी शादी कर दी गई। अपने गृहस्थी के कर्त्तव्यों के साथ ही भाई रामपालजी धार्मिक कर्त्तव्यों का भी पूर्णरूपेण पालन करते हुये सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

घासीलालजी की प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा विल्कुल भी नहीं हुई, घर पर ही एक ब्राह्मण अध्यापक से आपने मात्र बारहखड़ी की शिक्षा प्राप्त की थी। अल्प शिक्षित होने पर भी अपना उद्योग सफलता पूर्वक करते थे।

जव आप मात्र १२ वर्ष की अवस्था में थे आपके पिताजी म्यादी बुखार से पीड़ित होने के कारण असमय ही में सम्वत् १९७० के वैसाख महीने में नश्वर शरीर से मोह छोड़ हमेशा के लिये संसार से विदा हो गए।

पिताजी की मृत्यु के वाद अपने भाई बन्धुओं, परिजनों एवं विशेषकर श्री चिरंजीलालजी दरोगा का शुभ निमित्त पाकर आप में जैन धर्म के प्रति विशेष आस्था का उदय हुआ। ठीक भी है जव किसी जीवात्मा का कल्याण होना होता है तब वह किसी भी स्थिति में हो ज्ञानी या अज्ञानी, वाल या वृद्ध उसकी परिणति काल-लब्धि द्वारा उसी प्रकार कल्याण की ओर प्रवृत्त हो जाती है। इस विषय में उदाहरण प्रायः सबके सुनने व देखने में आते हैं। ठीक यही स्थिति आपकी भी हुई। सम्वत् १९८० में जब आपकी उम्र लगभग २२ वर्ष की होने जा रही थी आपने जीवन पर्यन्त रात्रि भोजन, विना छना हुआ जल का त्याग करते हुए, दनिक जिनेन्द्र दर्शन, पूजन, प्रक्षाल आदि करने के नियम धारण कर लिये।

समय का चक्र वदला और सम्वत् २००० में एक साधारण सी बीमारी में जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति करते हुये आपकी माताजी का देहावसान हो गया। माता की मृत्यु हो जाने से आपके अन्तर में संसार की नश्वरता का नग्न चित्र उपस्थित हुआ और आपके हृदय में वैराग्य ने प्रवेश किया तथा दिन प्रतिदिन अग्नि शिखा की तरह वैराग्य भावना का उदय होता गया।

विक्रम सम्वत् २०१० में परम पूज्य आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराज का संघ जयपुर खानियाँ में आया हुआ था। आप संघ के दर्शनार्थ गए, एवं प्रथम वार मुनियों को आहार देने का सौभाग्य प्राप्त कर परम पूज्य मुनि श्री सन्मतिसागरजी महाराज की सत्प्रेरणा से आपने द्वितीय प्रतिमा के वृत अंगीकार कर लिये, तथा घर चले आए। इतने पर भी आपको संतोष नहीं हुआ, वैराग्य भावना दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। फलतः अपना सारा कारोबार अपने पुत्र को देकर व पुत्र मित्र परिजनों के साथ ग्रह सम्पदा का परित्याग कर, आचार्य शिवसागरजी महाराज का संघ सीकर (राजस्थान) में आया हुआ था तव, आपने पौष वदी एकम सम्वत् २०१७ की शुभ घड़ी में

आचार्यश्री से क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। आचार्यश्री ने आपका दीक्षित नाम सुपार्श्वसागर रखा।

क्षुल्लक अवस्था में आकर आपने जैनागम का ज्ञान पाते हुये धर्म का निर्दोष आचरण कर कठोर व्रतों का अभ्यास किया तथा अपने शरीर को दुर्द्धर तपस्या का अभ्यासी बनाया।

क्षुल्लक अवस्था में जब आपका चातुर्मास सम्वत् २०१६ में लाडनू (राजस्थान) में हो रहा था, आपने ३० दिन के कठोर उपवास किए थे। इस अवधि में ४ दिन मात्र दूध लिया था। इसी प्रकार जयपुर खानियां में भी चातुर्मास के शुभावसर पर सम्वत् २०२० में ३२ दिन का उपवास करते हुए चार दिन प्रासुक जल लेकर अपनी तप साधना का उत्तम परिचय दिया। उपवास के बाद पारणा श्री हरिश्चन्द्रजी टकसाली की सप्तम प्रतिमा धारणी माताजी श्री रामदेई के यहाँ हुई थी। उस समय जयपुर के २००० नर-नारियों का अपार जन-समूह आहार दान का दृश्य देखने के लिए उमड़ पड़ा था।

क्षुल्लक अवस्था में आपकी इस तपस्या एवं कठिन साधना के अभ्यास को देखकर महामुनि श्री वृषभसागरजी महाराज (आ० श्री शिवसागरजी संघस्थ) ने संसार को क्षणभंगुर असारता को दिखाते हुए आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने का उत्तम पथ दर्शाते हुए मुनि दीक्षा लेने की प्रेरणा दी। मुनिश्री की इस प्रेरणा से प्रेरित होकर आपने कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी विक्रम सम्वत् २०२० में जयपुर खानियां में चातुर्मास के शुभावसर पर पन्द्रह हजार से अधिक जन-समूह के बीच आचार्यवर परम पूज्य श्री शिवसागरजी महाराज से समस्त अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह का त्याग करके आत्म शान्ति तथा विशुद्धता के लिये दिगम्बर मुनि का जीवन अंगीकार कर लिया।

इस प्रकार कठिन साधना में निरत दुर्द्धर तप करते हुए संघ सहित विहार कर बुन्देलखण्ड में प्रविष्ट हुए एवं मुनि दीक्षा के बाद प्रथम चातुर्मास अतिशय क्षेत्र पपौराजी में हुआ।

मुनि अवस्था में अतिशय क्षेत्र पपौराजी में भी पूरे भाद्र मास में ३२ दिवस का कठोर उपवासों का व्रत निर्विघ्नता से पूरा कर आपने अपनी तप साधना का परिचय दिया। पारणा के समय ७-८ हजार जन-समूह आहार दान के दृश्य को देखने के लिए आकाश में आच्छादित मेघों की भांति पपौरा प्रांगण में फैला हुआ था। पारणा श्रीमान् गोविन्ददासजी कापड़िया खिरिया वालों के यहाँ हुई थी।

दिल्ली में ६१ दिनों का उपवास किया गया मात्र ५-६ दिनों बाद दूध एवं पानी लेते थे।

इस प्रकार की कठोर तप साधना एवं उपवास अवधि में आपका दैनिक कार्यक्रम उसी प्रकार रहता था जैसा कि पूर्व में होता था। प्रतिदिन स्वाध्याय शास्त्र प्रवचन के साथ ही आप अपने

नैमित्तिक कर्तव्यों को दृढ़ता पूर्वक करते थे । शारीरिक शिथिलता लेशमात्र भी नहीं पाई जाती थी, मात्र ४ घण्टे रात्रि के अन्तिम प्रहर में जिनेन्द्र स्मरण करते हुये आपका शयन होता था । आपकी इस तप साधना को देखकर हजारों अजैन भी धन्य-धन्य करते हुये नत हो जाते थे ।

आप आचार्यवर श्री शिवसागरजी महाराज के परम विनयी शिष्य हैं । आपका दैनिक कार्य-क्रम का अधिकांश समय जैनागम के अध्ययन एवं लगन में ही व्यतीत होता है । आप यथार्थ में मूक साधक हैं ।

आचार्य धर्म सागरजी के संघ सान्निध्य में मुजफ्फरनगर (U. P.) में आपने सल्लेखना धारण की तथा ८ माह तक दूध, छाछ, पानी लिया अंत में वह भी त्यागकर ५७ साधुओं के मध्य में आपने समाधि मरण किया बहलना (मुजफ्फरनगर में) आपकी विशाल चरण छतरियों का निर्माण हुवा है । धन्य है आपका जीवन ।

धन्य है आपकी इस वैराग्यमयी भावना को । आप इस भौतिक शरीर से ममता को अनुपयोगी वस्तु की भांति छोड़कर आत्म-कल्याण में अग्रसर हैं । आपके पावन चरणों में कोटिशः नमन है ।

मुनिश्री सुबुद्धिसागरजी महाराज

परम पूज्य १०८ मुनिश्री सुबुद्धिसागरजी महाराज का जन्म राजस्थान की पवित्र भूमि प्रतापगढ़ नगर के निवासी संघ शिरोमणि गुरुभक्त सेठ श्री पूनमचन्दजी घासीलालजी विशा हूमड़ की धर्मपत्नी श्री नानीवाई की कुक्षि से संवत् १९५७ में हुआ। जन्मनाम श्री मोतीलालजी रक्खा गया आपके तीन वड़े भ्राता थे सबसे वड़े अमृतलालजी जो कि १८ वर्ष की उम्र में ही दिवंगत हो चुके तथा सेठ सा० गेंदमलजी एवं दाड़मचन्दजी व बहन श्री रूपाबाईजी थे सबसे छोटे मोतीलालजी दूज के चन्द्रमा के समान वृद्धि करते पांच वर्ष के हुवे तभी पिता श्री भारत की महानगरी वम्बई में व्यौपार निमित्त सपरिवार चले गये वहां पर क्रम-क्रम से व्यौपार करते हुये भाग्योदय हुवा सो बम्बई के जौहरी बाजार में आपका नाम प्रसिद्ध जौहरियों में गिना जाने लगा। अरब देशों में जाकर मोतियों की खरीद करने आदि से करोड़ों की सम्पत्ति प्राप्त करली आपका पूरा परिवार धर्मात्मा था। आपके पिता श्री एवं सभी के अंतरंग में एक उत्कृष्ट भावना जाग्रत हुई कि प० पू० चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज के साथ संघ सहित तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की यात्रा करना; आचार्य श्री का संघ दक्षिण प्रांत में विराजमान था वहां पहुंचे महाराज श्री से निवेदन किया और विशेष आग्रह करने पर स्वीकृति प्राप्त हो गई। बड़े भाई साहब गेंदमलजी की उम्र करीब पेंतीस वर्ष एवं श्री मोतीलालजी की उम्र २५ वर्ष के करीब थी। पिताजी मौजूद थे सभी परिवार तन मन धन से जुट गया बड़ी तैयारी के साथ, संघ का विहार दक्षिण भारत से कराया और उत्तर भारत के गांव-गांव नगर-नगर में विहार कराते हुवे चले, अनेक त्यागी एवं आगे अनेक श्रावक श्राविका ये साथ चलते रहे, संघ बढ़ता रहा, सभी भाई स्वयं आचार्य श्री के साथ साथ चलते थे, कमंडल उठाते, साधुओं की खूब वैयावृत्ति करते एवं आहार दान आदि देकर महान हर्ष एवं उदारतापूर्वक करीब एक वर्ष तक अपने मकान पर ताले बन्द रहे पीछे की तरफ देखा ही नहीं। धन्य है ऐसे दाता और पात्र। लाखों का खर्च हुवा पूरा परिवार संघ की चर्या में रत था। साथ ही प्रतापगढ़ के श्री शांतिनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार एवम् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायी, जब संघ सहित तीर्थराज शिखरजी पहुंचे वहां पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई और बम्बई खास में कालबादेवी रोड पर

स्वयम् की वनी हुई विल्डिंग को गिराकर उस स्थान पर श्री पार्श्वनाथ दि० जैन विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया जो करोड़ों की लागत से तैयार हुवा और वहां भी पंचकल्याणक हुवा इस प्रकार लाखों करोड़ों का दान देकर इस युग में महान कार्य किया है इसके अलावा भी परम पू० १०८ समाधि सम्राट आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ में हमेशा जाते रहते और आहार-दान आदि देकर समय समय पर पूरी व्यवस्था करते थे।

सं० २०२४ के साल में परम पू० १०८ आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज का चातुर्मास उदयपुर (राज०) था उस समय आप श्री सेठ मोतीलालजी जौहरी दर्शनार्थ पधारे आचार्य श्री की प्रेरणा मिली तत्काल वैराग्य उमड़ आया और आचार्यश्री से दीक्षा के लिये निवेदन किया और अच्छा मुहूर्त देखकर वहुत वड़ी धर्म प्रभावना के साथ मिती भाद्रपद शुक्ला १५ के दिन क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर दी आपकी धर्मपत्नि का नाम हुलासी बाई था जिनका दीक्षा के चार वर्ष पूर्व ही स्वर्गवास हो गया था आपके पीछे तीन पुत्र पाँच पुत्री थे। वड़े श्री राजमलजी जौहरी, श्री सन्मतिकुमार, श्री अशोककुमार। इसप्रकार करोड़ों की सम्पत्ति एवं पूरा हरा भरा सम्पन्न परिवार भारी वैभव को ठुकराकर साधु वन गये। चातुर्मास के बाद संघ का उदयपुर से विहार होकर करीव ६ महीने में सलूम्बर पहुंचा और वहां पर आपने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और आप मुनि श्री १०८ सुबुद्धि-सागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुवे और चारित्र शुद्धि आदि और भी अनेक व्रतों को करते हुवे कठिन व्रत उपवास करते रहे हैं इस वक्त आपकी उम्र ८३ वर्ष के करीब है और कई वर्षों से आप परम पू० १०८ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी मुनि अजितसागरजी के साथ रहकर निरन्तर ध्यान अध्ययन करते हैं गत वर्ष सं० २०३९ के सलूम्बर चातुर्मास में आहार में केवल ५ वस्तु रखकर बाकी सभी प्रकार की वस्तुओं का आजीवन त्याग कर दिया है १. गेहूं, २. चावल, ३. दूध, ४ मट्ठा, ५. केला इस वृद्ध अवस्था में इस प्रकार का त्याग करते हुवे चातुर्मास में अभी भी एकातर आहार में उठते हैं। इस प्रकार केवल समाधि का लक्ष बना हुवा है। आपके वड़े भाई श्रीमान सेठ सा० गेंदमलजी ने भी परम पू० १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से नीरा (महाराष्ट्र) चातुर्मास के समय क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली उसके बाद कुछ समय गजपंथा क्षेत्र पर रहकर धर्म साधना करते थे और जब अंतिम समय निकट आया उनके बम्बई आने के भाव हुवे और अपने निजी वनाये हुवे श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर कालबादेवी रोड़ पर आप पधारे। एक दिन सुबह उनकी तवियत कुछ विशेप खराब हुई और उसी समय अकस्मात् जीवन में संचित किये हुए महान पुण्य के उदय से परम पू० १०८ आचार्य श्री सुमतिसागरजी का संघ सहित दर्शनार्थ वहीं आना हुवा। उनसे उसी वक्त आपने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और एक घन्टे बाद ही महामंत्र णमोकार मंत्र का जाप्य

करते हुवे इस पर्याय को छोड़कर स्वर्गवासी बन गये । वास्तव में आपने व आपके पूरे परिवार ने धर्म क्षेत्र में जो कार्य किया है अनुपम है साथ ही अनुकरणीय भी है ।

मुनिश्री भव्यसागरजी

मुनि श्री १०८ भव्यसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम लादूलालजी था । आपका जन्म जेठ सुदी तीज, विक्रम संवत् १९७९ नैनवा में हुआ था । आपके पिता श्री मिश्रीमलजी थे जो कपड़े का व्यापार व नौकरी किया करते थे । आपकी माता श्री बरजाबाई थी । आप खंडेलवाल जाति के भूषण हैं व वैद गोत्रज हैं । आपकी धार्मिक शिक्षा द्रव्य संग्रह व रत्नकरंडश्रावकाचार तक हुई । आपका विवाह भी हुआ । परिवार में आपके चार भाई व तीन बहिनें हैं ।

स्वाध्याय एवं चन्द्रसागरजी की प्रेरणा से आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई । जयपुर खानियांजी में आपने ऐलक दीक्षा ले ली । कार्तिक सुदी तेरस विक्रम संवत् २०१७ में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी से सुजानगढ़ में मुनि दीक्षा ले ली । आपने अजमेर, सुजानगढ़, खानियां, सीकर, लाडनूं, बूंदी आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की ।

आपने चारों रसों का त्याग तथा गेहूं, चना, बाजरा, मटर आदि का त्याग किया है ।

परम पू० १०८ श्री श्रेयान्ससागरजी महाराज

ये पृथ्वी रत्नों को उत्पन्न करती है इसलिये इसको रत्नगर्भा कहते हैं। उसी प्रकार जगत् उद्धारक, तरण-तारण पुत्रों को जन्म देने से माता को भी जगन्माता कहते हैं। ऐसे ही एक महान जगन्माता की कूख से महाराष्ट्र प्रान्त औरंगाबाद जिला के अपने ननिहाल वीरगांव में ६ जनवरी ई० सन् १९१९ तदनुसार शक संवत् १८४० पौष सुदी ४ चंद्रवार की अरुणसंध्या में दैदीप्यमान बालक का जन्म हुआ।

जो अपने त्याग, तपस्या से भारत भूमि में प्रसिद्ध है। जिनको इस भारत भूमि का बच्चा बच्चा जानता है। जिसमें कठोर तपस्वी, महान् विद्वान्, आचार्यकल्प, महामुनिराज प० पू० स्व० १०८ श्री चन्द्रसागरजी जैसे तपःपूत साधुरत्न ने जन्म लिया। इसी प्रकार स्व० पू० आ० १०८ श्री वीरसागरजी महाराज जैसे श्रेष्ठ रत्न से जो जाति पावन बनी है। ऐसे महान कुल और महान जाति में इस पुण्यात्मा बालक का जन्म हुआ। जिनका शुभनाम फूलचन्दजी रक्खा गया।

स्व० प० पू० १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज आपके बाबाजी; तथा स्व० आ० १०८ श्री वीरसागरजी महाराज आपके गृहस्थावस्था के नानाजी हैं। आपके पिताजी का शुभ नाम श्रीमान् सेठ लालचन्दजी और माताजी का नाम कुन्दनबाई है। जो आज आर्यिका १०५ श्री अरहमती नाम से विद्यमान हैं। आपके पिताजी भी व्रती थे।

सभी मिलके आपके २० भाई बहन थे। लेकिन दुर्भाग्यवश आज ७ भाई १ बहन विद्यमान हैं। इनमें से कोई डॉक्टर, कोई इंजिनियर, कोई व्यापारी सभी अपने अपने कार्य में तत्पर हैं। रेल-पटरी पर दौड़ में सबसे आगे रहना आपका बचपन का शौक था। आपने पूना में एस० पी० कॉलेज से इन्टर आर्ट परीक्षा पास की।

सन १९३८ में श्री गोंदा निवासी श्रीमान सेठ दुलीचन्दजी, माणिकचन्दजी बड़जात्या की सुपुत्री सौ० (श्रीमती) लीलाबाई जी के साथ आपका विवाह हुआ। आपके शरद, विकास ये दो सुपुत्र

और क्षमा, शीला नामक दो सुपुत्रियाँ हैं। गृहस्थावस्था में आपने परम्परागत आढत, तम्बाखू व्यापारादि के द्वारा न्यायपूर्वक धनोपार्जन किया। फलतः आप श्रीरामपुर नगर के सेठजी कहलाते थे। "पहाडेदादा" नाम से भी आप विख्यात थे। दान देना, सहायता करना, परोपकार करना इन बातों में आपकी शुरू से ही रुचि थी।

भरी पूरी जवानी, भरे पूरे परिवार के बीच विषय भोग के लुभावने साधनों के सुलभ होते हुए भी संसार रूपी कीचड़ से निकल कर आत्मकल्याण की तरफ आपका मन आकर्षित होने लगा। धार्मिक संस्कार संपन्न पत्नी की शुभ प्रेरणा से आपने स्व० प० पू० १०८ श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज के पास तम्बाखू सेवन त्याग, रात्रि भोजन त्याग ले लिये। खानिया में स्व० आ० प० पू० १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से प्रतिदिन पंचामृताभिषेक, पूजन करने का नियम लिया। तदुपरान्त पू० १०८ श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज से शूद्रजल त्याग, द्वितीय प्रतिमाव्रत ग्रहण किये। श्रीसिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीजी के पावन पहाड़ पर अखंड ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया। पू० सुपार्श्वसागरजी महाराज के सान्निध्य में सप्तमप्रतिमाव्रत ग्रहण किये।

भर जवानी अवस्था, इन्द्रिय विषय के सुखोपभोगों से युक्त संपन्नावस्था, पुत्र-पुत्रियाँ एवं अन्य विशाल परिवार के रहते हुए भी उन सभी का निःसंकोच परित्याग कर असिधारा समान कठोर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करने के आपके उत्कृष्ट भाव हुए।

सन् १९६५ श्री अतिशय क्षेत्र महावीरजी शांतिवीर नगर के पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर करीब ४० हजार जनसमुदाय के बीच स्व० आ० प० पू० १०८ श्री शिवसागरजी महाराज के करकमलों से आप दोनों पति-पत्नी की दीक्षा ग्रहण विधि बड़े ठाट से हुई। आप दोनों ने दीक्षा धारण कर एक महान आदर्श जैन समाज में उपस्थित किया।

आपके इस आदर्श विरक्त जीवन का प्रमुख बीज आपके व्रती माता-पिता के धर्म संस्कार ही हैं। आपके दीक्षा के पूर्व ही २ साल आपकी माता श्री कुन्दनबाईजी ने स्व० पू० १०८ श्री सुपार्श्व-सागरजी महाराज से क्षुल्लिका वृत ग्रहण किये थे। आपके दीक्षा के समय क्षुल्लिका माताजी ने भी पू० आ० १०८ श्री शिवसागरजी से आर्यिका व्रत ग्रहण किये। आपके गुरुदेव ने आपको श्री श्रेयांस-सागरजी नाम से, पत्नी को श्री श्रेयांसमतीजी नाम से, माताजी को श्री अर्हमती शुभ नाम से विभूषित किया।

दीक्षा लेने के बाद आपने सबसे प्रथम आत्मसाधना की ओर ध्यान दिया। अभीक्ष्णज्ञानोप-योगद्वारा सम्यग्ज्ञान की साधना की। न्याय, धर्म, व्याकरण, सिद्धान्तशास्त्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया। जिनके फलस्वरूप ज्ञान विकास के साथ साथ आपका चारित्र उज्ज्वल हुआ।

तपश्चरण की गंभीरता से आपका तेजोदीप्त मुख मंडल प्रत्येक दर्शनार्थी को विनयावनत बनाता है। कठिन से कठिन किसी भी विषय को सरलता से समझाने की आपकी प्रवचन शैली से श्रोतागण सुनकर मंत्र मुग्ध हो जाते हैं।

स्वयं मोक्षमार्ग पर चलते हुए साथ साथ भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में प्रेरित करके उनका उद्धार करने में आप निरन्तर लगे रहते हैं। जिसके फलस्वरूप हर गांव में अनेकों नर-नारी, बच्चा-बच्ची हर तरह के व्रतोपवासादि ग्रहण करते हैं।

सन् १९७१ में आपके उपस्थिति में जयसिंगपूर में इन्द्रध्वज विधान संपन्न हुआ। उसी समय ऐलक, क्षुल्लकादि त्यागियों का विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया। सन् १९७२ चौमासा के बीच बारामती में संघस्थ ब्रह्मचारिणी वसंतीबाई हतनोर वालों की आर्यिका दीक्षा तथा नवयुवक श्रीमंधर गांधी फलटण वालों की क्षुल्लक दीक्षा; सन् १९७३ फलटण चौमासा के बीच ब्र० श्री धूलिचन्दजी पारसोडा वालों की मुनि दीक्षा, श्री ब्र० रतनबाईजी मेहता फलटण वालों की क्षुल्लिका दीक्षा आदि दीक्षाएँ आपके करकमलों से हुई हैं। जो सांप्रत क्रम से आर्यिका १०५ श्री सुगुणमतीजी, क्षु० १०५ श्रीसुभद्रसागरजी, मुनि १०८ श्री धर्मेन्द्रसागरजी, क्षु० १०५ श्री श्रद्धामतीजी नाम से प्रख्यात हैं। सन् १९७४ अकलूज नगरी में आपके उपस्थिति में विद्वत् सम्मेलन तथा अखिल भारतीय शास्त्री परिषद अधिवेशन संपन्न हुए। जिसमें एकान्त पक्षीय धर्म विरुद्ध सोनगढ़ के मन्तव्यों पर प्रकाश डाला गया। तथा विद्वानों को जैन समाज के उत्थान प्रति जागरूक किया गया।

आपके मंगलमय उपदेश की प्रेरणा से औरंगाबाद दि० जैन मंदिर की नव निर्माण योजना; वैजापूर के समवसरण तुल्य विशाल शिखरबंद मंदिर योजना; पारसोडा, लासूर, उठडादि गांवों में मंदिर निर्माण; तथा और भी जगह चैत्य चैत्यालयों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार हुआ है। अभी वर्तमान में श्री सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीजी के मंदिर जीर्णोद्धार और नव मंदिर निर्माण का महान कार्य होने जा रहा है। ये सभी कार्य आपकी प्रेरणा के ही उज्ज्वल फल हैं।

मुनि बनने के बाद आ० श्री १०८ शिवसागरजी महाराज के सान्निध्य में ज्ञान, ध्यान, तपोरत रहते हुए आपने महावीरजी, कोटा, उदयपुर प्रतापगढ़ में चातुर्मास किये। गुरुदेव के स्वर्गारोहणोंपरान्त संघ से पृथक् होकर धर्मप्रचार करते हुए आपके क्रमशः किशनगढ़, औरगाबाद, बाहुबली (कुम्भोज), बारामती, फलटण, श्रीरामपूर, नान्दगांव, इन्दौर. अजमेर, ईसरी, सुजानगढ़ में चातुर्मास संपन्न हुए।

आपने तीर्थराज सम्मेदशिखर जी की यात्रा की जो ब्र० धर्मचन्द शास्त्री ने कराई। ब्र० ऐराजी, ब्र० सुधर्मा जी, ब्र० श्री सुलोचना जी आदि साथ में थे।

वर्तमान में आप मांगीतूंगी का उद्धार कर रहे हैं। आपने इस क्षेत्र के लिए १ करोड़ का योगदान दिलाया है।

धन्य है वो धरा, धन्य है वो माता !!! धन्य है वो पिता, धन्य है वो कुल, धन्य है वो जाति जिन्होंने ऐसे तेजस्वी रत्नों को प्रसूत कर धर्मध्वजा फहराई है। ऐसे महान् सन्त के पुनीत चरणों में मेरा शत शत वंदन हो।

धन्य है वो माता, धन्य है वो पिता।
जिनके पावन दर्शन से नश जावे मिथ्यातम का माथा ।।
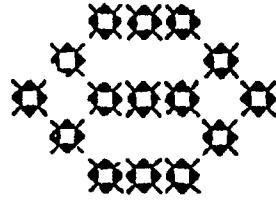
क्षुल्लक योगीन्द्रसागरजी

क्षुल्लक श्री १०५ योगीन्द्रसागरजी का ग्रहस्थावस्था का नाम हेमचन्द्रजी था। आपका जन्म आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व राठोड़ा (उदयपुर) राजस्थान में हुआ था। आपके पिता श्री पाड़ाचन्द्रजी थे। जो खेती एवं व्यापार करते थे। आपकी माताजी का नाम माणिकबाई था। आप नरसिंहपुरा जाति के भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह भी हुआ। परिवार में आपके तीन भाई, एक बहिन, चार पुत्र एवं चार पुत्रियां हैं।

आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी की सत्संगति के कारण आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई। अतः विक्रम संवत् २०२४ में उदयपुर में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। आपने प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म की आशातीत वृद्धि की।

विदुषीरत्न आर्यिका १०५ विशुद्धमती माताजी

गृहस्थाश्रम का नाम— श्री सुमित्रा बाई।

जन्म स्थान— रीठी, जि० जबलपुर (म० प्र०)।

पिता— श्रीमान् सिं० लक्ष्मणलालजी

माता— सौ० मथुराबाई।

भाई— श्री नीरजजी जैन एम० ए० और श्री निर्मल-कुमारजी जैन मु० सतना (म० प्र०)।

जाति— गोलापूर्व।

जन्म तिथि— सं० १९८६ चैत्र शुक्ला तृतीया शुक्रवार दिनांक १२-४-१९२८ ई०।

लौकिक शिक्षण— १. शिक्षकीय ट्रेनिंग (दो वर्षीय)
२. साहित्य रत्न एवं विद्यालंकार।

धार्मिक शिक्षण— शास्त्री (धर्म विषय में)।

धार्मिक शिक्षण के गुरु— परम माननीय विद्वद्-शिरोमणि पं० डा० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर (म० प्र०)।

कार्यकाल— श्री दि० जैन महिलाश्रम (विधवाश्रम) का सुचारु-रीत्या संचालन करते हुए प्रधानाध्यापिका पद पर करीव १२ वर्ष पर्यन्त कार्य किया एवं अपने सद् प्रयत्नों से संस्था में १००८ श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय की स्थापना कराई।

वैराग्य का कारण— परम पू० प० श्रद्धेय आचार्य १०८ श्री धर्मसागर महाराजजी के सन् १९६२ ई० सागर (म० प्र०) चातुर्मास में पू० १०८ श्री धर्मसागर महाराजजी की परम निरपेक्ष वृत्ति और परम शान्तता का आकर्षण एवं संघस्थ प० पू० प्रवर वक्ता १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज के मार्मिक सम्बोधन।

आर्यिका दीक्षागुरु— परम पू० कर्मठ तपस्वी अध्यात्मवेत्ता, चारित्र शिरोमणि, दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज।

शिक्षा गुरु— परम पू० सिद्धान्तवेत्ता आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज।

विद्या गुरु— परम पू० अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी उपाध्याय १०८ श्री अजितसागरजी महाराज।

दीक्षा स्थान— श्री अतिशय क्षेत्र पपौराजी (म० प्र०)।

दीक्षा तिथि— सं० २०२१ श्रावण शुक्ला सप्तमी दिनांक १४-८-६४ ई०।

वर्षा योग— सं० २०२१ में पपौरा क्षेत्र पर दीक्षा हुई पश्चात् क्रमशः श्री अतिशय क्षेत्र महावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, भिण्डर, उदयपुर, अजमेर, निवाई, रेनवाल (किशनगढ़), सवाई माधोपुर, सीकर, रेनवाल (किशनगढ़), निवाई, निवाई, टोडारायसिंह आदि।

जिन मुखोद् भव साहित्य-सृजन—

१. टीका—श्रीमद् सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार की सचित्र हिन्दी टीका।

२. भट्टारक सकल कीर्त्याचार्य विरचित सिद्धान्तसार दीपक अपर नाम त्रैलोक्य दीपिका की हिन्दी टीका।

३. तिलोयपण्णत्ती—आचार्य यतिवृषभ प्रणीत की हिन्दी टीका।

मौलिक रचनाएँ— १. श्रुत निकुञ्ज के किञ्चित् प्रसून (व्यवहार रत्नत्रय की उपयोगिता) २ गुरु गौरव, ३. श्रावक सोपान और बारह भावना।

संकलन— १. शिवसागर स्मारिका, २. आत्म प्रसून।

सम्पादन— १. समाधि दीपक, २. श्रमण चर्या। ३. निर्वाण कल्याणक एवं दीपावली पूजन विधि, ४. श्रावक सुमन संचय आदि।

विशेष धर्म प्रभावना— आपकी प्रखर और मधुर वाणी से प्रभावित होकर श्री दि० जैन समाज जोवनेर जि० जयपुर ने श्री शान्ति वीर गुरुकुल को स्थायित्व प्रदान करने हेतु श्री दि० जैन महावीर चैत्यालय का नवीन निर्माण कराया एवं आपके सानिध्य में ही वेदी प्रतिष्ठा कराई। जन धन एवं आवागमन आदि अन्य साधन विहीन अलयारी ग्राम स्थित जिन मन्दिर का जीर्णोद्धार, २½ फुट ऊँची १००८ श्री चन्द्रप्रभु भगवान की नवीन प्रतिमा तथा संगमरमर की नवीन वेदी की प्राप्ति एवं वेदी प्रतिष्ठा आपके ही सद्प्रयत्नों का फल है। इसी प्रकार अनेक स्थानों पर कलशा-रोहण महा महोत्सव हुए, जैन पाठशालाएँ खोली गईं, श्री दि० जैन धर्मशाला टोडारायसिंह का नवीनीकरण भी आपकी ही सद्प्रेरणा का फल है।

संयमदान— श्री ब्र० सूरज बाई मु० ड्योढी जि० जयपुर की क्षुल्लिका दीक्षा, श्री ब्र० मनफूल बाई मातेश्वरी श्री गुलाबचन्दजी, कपूरचन्दजी सर्राफ टोडाराय-सिंह, जि० टोंक को अष्टम प्रतिमा एवं श्री कजोड़ीमलजी कामदार, जोवनेर जि० जयपुर आदि को द्वितीय प्रतिमा के व्रत आपके कर कमलों से प्रदान किये गये।

आर्यिका बुद्धमतीजी

आपका जन्म वि० सं० १९६७ में जबलपुर में गोलापुरा जातीय श्री बसोरेलालजी की धर्मपत्नी जमनाबाई की कोख से हुवा। आपका नाम कस्तूर बाई था। आपका वैवाहिक जीवन श्री कपूरचन्दजी के साथ सानन्द बीत रहा था लेकिन बचपन में आपकी शिक्षा प्रवेशिका तक आरा आश्रम में सम्पन्न होने के कारण बचपन से ही धर्म के प्रति आपकी प्रगाढ़ आस्था थी। सं० १९९३ में आपने जादर में आर्यिका माताजी धर्ममतीजी से क्षुल्लिका दीक्षा धारण कर ली। तत्पश्चात् सं० २०१७ में स्व० आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज सा० से आपने आर्यिका दीक्षा लेकर ईडर, डूंगरपुर घाटोल, जयपुर, सांभर, फुलेरा, ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ़, सीकर, कोटा, लाडनूं, खुरई आदि स्थानों पर चातुर्मास करते हुये धर्म प्रभावना की।
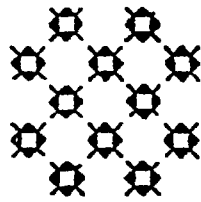
आर्यिका आदिमतीजी

श्री १०५ आर्यिका आदिमतीजी के बचपन का नाम अंगुरीबाई था। आपके पिता श्री जीवनलालजी हैं। माता भगवानदेवी हैं। गोपालपुरा (आगरा) को आपकी जन्म-भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने लौकिक शिक्षा कक्षा ८ वीं तक प्राप्त की और धार्मिक शिक्षा विशारद तक प्राप्त की।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह हुआ तो सही पर भाग्य को यह स्वीकार नहीं था, इसलिए ड़ेढ वर्ष बाद ही आपके पति को डाकू हमेशा के लिए ले भागे। अब आपको संसार दुखमय सूना सूना लगने लगा। आप कण्ठस्थ किये हिन्दी, संस्कृत भाषा के धर्म पाठों से अपूर्व शान्ति पाती थीं।

कालान्तर में आपने घर के भाई वहनों का मोह छोड़ा और घर छोड़कर साधु संघ में ही रहीं। वातावरण के साथ ही आपका जीवन क्रम वदला। संवत् २०१८ में सीकर (राजस्थान) में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ले ली।

आपने नेमीचन्द्राचार्य कृत गोम्मटसार कर्मकाण्ड की हिन्दी टीका कर जैन समाज का महान उपकार किया है।

आप समय पर लेख आदि भी लिखती रहती हैं वर्तमान में आचार्य श्री धर्मसागरजी के संघ के साथ आत्मसाधना में निरत हैं।

आपने लाडनू, कलकत्ता, श्रवणबेलगोला, शोलापुर, सनावद, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपकी रस परित्याग व्रत पर वड़ी आस्था है। आप जैसी विदुषी साध्वी से ही धार्मिक समाज का अहर्निश कल्याण सम्भव है।

आर्यिका अरहमतीजी

श्री १०५ आर्यिका अरहमती को लोग गृहस्थावस्था में कुन्दनवाई कहकर पुकारते थे। आपके पिता श्री गुलावचन्द्रजी थे, माता हरिणीवाई थी। वीर गांव की यह एक ही वीरवाला निकली जिसने लोक जीवन के साथ परलोक के जीवन को भी सम्हाला। आप जाति से खण्डेलवाल और पहाड़िया गोत्रज हैं। यद्यपि आपकी लौकिक धार्मिक शिक्षा नहीं के वरावर ही हुई तथापि सत्संग-धर्मश्रवण से आपने काफी लाभ उठाया। आपका विवाह लालचन्दजी से हुआ था।

वचपन के सामाजिक संस्कार सवल हुए। वैधव्य जीवन में विरक्ति की भावना वढ़ी। भला जिसके ज्येष्ठ मुनिश्री चन्द्रसागरजी, काका आचार्य वीर सागरजी, पुत्र मुनिश्री श्रेयान्ससागरजी, हो और जो १५ वर्षों तक १०८ मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी के धार्मिक वातावरण में वढ़ी हो, वह भला

संसार में कैसे रहती ? निदान १०८ मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी से संवत् २०२० में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली और अगले वर्ष ही संवत् २०२१ में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से शान्ति वीर नगर श्री महावीरजी में आर्यिका दीक्षा भी ले ली।

यद्यपि आप ६५ वर्षों की हो गई पर आपकी धार्मिक चर्या में सावधानी बढ़ती ही जा रही है। आपने श्री महावीरजी, जयपुर, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। जिह्वा इन्द्रिय को वश में करने के लिए नमक, तेल, दही का त्याग कर रखा है। आपने चारित्र शुद्धि कर्मदहन तीस चौबीसी जैसे व्रत अनेक वार किये हैं।

आर्यिका चन्द्रमतीजी

आपका जन्म आज से ६५ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् १९५६ में सतारा जिलान्तर्गत गिरवी नामक ग्राम में हुआ था। माता पिता ने आपका नाम मानीबाई रखा। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे तथा सराफी की दुकान करते थे। जन्म के समय आर्थिक स्थिति अच्छी सम्पन्न थी। आपकी माता का नाम कस्तूरबाईजी था। मां का वात्सल्य बालापन से ही छिन गया था। जिस समय आपकी माताजी का स्वर्गवास हुआ उस समय आप १२ वर्ष की थी। आपके भाई रामचन्द्रजी अपनी सात बहिनों के बीच अकेले ही थे। दुर्दैव का चक्र चला और आपकी ५ बहिने इस नश्वर संसार से हमेशा के लिए विदा ले गई। आप और आपकी एक बहिन श्री बालुबाई ही सात बहिनों के बीच जीवित रह सकीं।

बालापन से माँ का प्यार छिन जाने के कारण आपका लाड़-प्यारमयी जीवन पिता की गोद में व्यतीत हुआ। आपकी स्कूली शिक्षा भी कक्षा ४ तक ही हुई तथा धार्मिक शिक्षा का अभ्यास स्वयं के अध्ययन व मनन से घर पर ही प्राप्त किया।

जब आप गृह कार्य में सुयोग्य होती हुई लगभग २० वर्ष की हुई तब आपका पाणिग्रहण सोलापुर अन्तर्गत मोहर ग्राम में श्रीमान् सेठ मोतीलालजी के लघु पुत्र श्री हीरालालजी के साथ सम्पन्न हो गया। आपके स्वसुर अच्छे सम्पन्न परिवार के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तथा थोक व्यापार किया करते थे। आपके पति श्री हीरालालजी अपने चार भाइयों के बीच सबसे छोटे थे।

आपकी शादी हुए केवल आठ वर्ष हो व्यतीत हुए कि आपके ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा और आपको वैधव्य धारण करना पड़ा। गार्हस्थ जीवन की अल्प अवधि में आपको एक मात्र पुत्री चि० 'विद्युल्लता' का ही सौभाग्य मिल सका। काल की इस दुखःदायनी विचित्रता को देखकर आपके अन्तर में संसार की नश्वरता के प्रति विराग हुआ और आपने कालिञ्जा आश्रम में अपना आश्रय लिया। इस आश्रम में आकर आपने धार्मिक शिक्षा का गहन अध्ययन और मनन किया, पश्चात् एक सुयोग्य विदुषी महिला बनकर इसी आश्रम में कुछ वर्षो तक अध्यापन का भी कार्य किया। अपने जीवन के १६ वर्ष कालिञ्जा आश्रम में ही अध्ययन और अध्यापन में व्यतीत किए।

परम तपस्वी आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी के सद्उपदेशों ने भी आपको वैरागी बना दिया। जब चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी का ससंघ चातुर्मास कालिजा में हुआ तब आपने आचार्य वीरसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा तक के व्रत अंगीकार किए थे, उस समय आपकी वय ३५ वर्ष की थी। इस प्रकार आपने सप्तम प्रतिमा तक के व्रतों को १५-१६ वर्ष तक पालन कर अपनी आत्मा को निर्मल और निर्मोही बना लिया।

"प्रायः यह पाया जाता है कि पिता के गुण पुत्र में और माता के गुण सुता में आते हैं।" यही बात आपकी एक मात्र लाडली प्रिय पुत्री विद्युल्लता में पूर्णतया चरितार्थ होना पाई गई। विरागिनी माँ की प्रज्ञा, आगम के प्रति गहन श्रद्धा, और परम वैराग्य का पूरा पूरा प्रभाव लाडली पुत्री के ऊपर पड़ा है।

शील शिरोमणि बहिन विद्युल्लता आजकल प्रधानाध्यापिका व अधिष्ठात्री के रूप में सप्तम् प्रतिमा तक के व्रतों का पालन करती हुई सोलापुर के आश्रम में है। इनका हृदय हमेशा वैराग्य की ओर झुका रहता है, और यही कारण है कि इनकी भी अभिलाषा महाव्रतों को ग्रहण करने की है। विद्युल्लता जैसी सुयोग्य शीलरूपा सुपुत्री को पाकर आपका मातृत्व भी धन्य हो गया।

कार्तिक शुक्ला पञ्चमी विक्रम सम्वत् २०१३ में परम पूज्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से जयपुर खानियां में चातुर्मास के शुभावसर पर आपने क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण कर ली। आचार्य श्री ने आपका दीक्षित नाम श्री चन्द्रमती रखा।

क्षुल्लिका की दीक्षा के वाद आपके अन्तर में वैराग्य की लौ दिन प्रतिदिन उग्र रूप धारण करती गई और चैत्र बदी पड़वा विक्रम सम्वत् २०१४ में गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर परम पूज्य तपोनिधि आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आपने आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर ली।

अपनी उग्र तपस्या के द्वारा आत्मा को कर्म-मल से रहित करती हुई आप मुक्ति मार्ग के पथ पर अविचल रूप से बढ़ रही हैं।
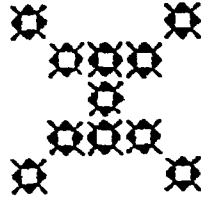
आर्यिका राजुलमतीजी

विक्रम सम्वत् १९६४ में अकोला क्षेत्र के कारञ्जा नामक ग्राम में वघेलवाल गोत्रोत्पन्न पिता श्री ववनसाजी के घर माता श्री बजावाईजी की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था। आपको दो भाइयों तथा दो वहिनों का संयोग भी मिला। भाइयों में श्री मोतीलालजी व श्री झब्बूलालजो हैं। तथा बहिनों में ज्येष्ठ आप एवं छोटी वहिन श्री मौनावाईजी हैं।

माता पिता ने आपका जन्म नाम श्री रूपाबाईजी रखा था। आपके पिताश्री अच्छी स्थिति के सम्पन्नशाली व्यक्ति थे तथा सराफा की दुकान करते थे। वह उदार हृदयी, सन्तोषी और शान्त प्रवृत्ति के योग्य व्यक्तियों में से एक थे। यही कारण था कि इनके सुलक्षणों का पूरा पूरा प्रभाव होनहार सन्तान पर भी पड़ा।

जब आपकी उम्र मात्र १२ वर्ष की थी तब आपके पिता श्री ने आपका पाणिग्रहण कारञ्जा ग्राम में ही श्रीमान् सेठ नागोसाजी के पुत्र श्री देवमनसाजी के साथ किया। भाग्य की वात थी कि उसी ग्राम में माता पिता और उसी ग्राम में सास स्वसुर, दोनों ही कुल श्रेष्ठ सम्पन्न तथा ऐश्वर्यशाली थे। आपकी सास श्री सोनाबाईजो भी एक आदर्श महिला थीं।

विवाह हुये डेढ़ वर्ष ही व्यतीत हुआ था कि दुर्दैव का चक्र चला और आपके पतिश्री का स्वर्गवास हो गया। उस समय आप १४ वर्ष की अबोध बालिका ही थीं। इस दुःखदायी वज्र प्रहार के हो जाने से आपको अध्ययन के उद्देश्य से सोलापुर आश्रम का सहारा लेना पड़ा। अपनी कुशाग्र

बुद्धि और आदर्श कार्य कुशलता का परिचय देते हुये अध्ययन के बाद, उसी आश्रम में आपने अध्यापन का कार्य सम्हाला । इस कार्य में आपको जितनी भी सफलता मिली वह आपकी यश: कीर्ति के लिए पर्याप्त है ।

इस प्रकार अध्ययन और अध्यापन का लगभग १६ वर्षीय लम्बा समय आश्रम में व्यतीत हुआ । आपने आश्रम में एक अबोध असहाय बालिका के रूप में प्रवेश लिया और एक सुयोग्य विदुषी महिला के रूप में अधिष्ठात्री बनकर आश्रम से विदा ली ।

"जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन्न, जैसा पीये पानी वैसी बोले बानी" इस लोकोक्ति को शब्दश: चरितार्थ करती हुई आपके अन्तर में संसार की असारता के साथ आत्मोन्नति की भावना का उदय हुआ और परम पूज्य श्री समन्तभद्रजी महाराज से ७ वीं प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर लिये । यह मुनि श्री अत्यन्त सुयोग्य महातपस्वी बाल ब्रह्मचारी और आचार्यवर हैं । यही आपकी आत्मा को सत्पथ पर लाने वाले मूल मार्ग दर्शक व आदि गुरु हैं ।

समय अपनी अबाधगति से निकलता गया तदनुसार आपके भावों में निर्मलता आई, परिणामों में वैराग्य ने प्रवेश किया और सद्गुरु आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के सद्उपदेशों ने प्रभावित किया, फलत: चैत्र वदी पड़वा विक्रम सम्वत् २०१२ में गिरनारजी सिद्ध क्षेत्र पर आचार्य श्री से क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण करली । आचार्य श्री ने आपका दीक्षित नाम राजमतीजी रखा । अपनी कठिन साधना के साथ ज्ञानाभ्यास के द्वारा ज्ञान और चारित्र में उत्तरोत्तर वृद्धि की, फलत: आपके अन्तर में शुद्ध वैराग्य की ज्योति जगमगा उठी । आपने लोक में स्थित जीवों की रक्षा के लिये पीछी, शुद्धि के लिए कमन्डलु तथा शारीरिक लज्जा की मर्यादा बनाए रखने के लिए मात्र एक धोती को छोड़कर समस्त अन्तरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग करने का निश्चय किया, और कार्तिक शुक्ला चतुर्थी सम्वत् २०१८ के दिन सीकर में परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आर्यिका की दीक्षा ग्रहण की ।

आप अनेक भव्य जीवों को सतपथ का अवलोकन कराती हुई आत्म कल्याण की ओर अग्रसर हैं । ऐसी भव्य आत्मा के श्री चरणों में नमन है ।

आर्यिका नेमीमतीजी

पू० माताजी का जन्म श्रावण वदी ७ सं० १६५५ की शाम को जयपुर में हुआ। आपके पिताजी का नाम रिखवचन्दजी विन्दायक्या व मातु श्री का नाम मेहतावबाई था, आपका वचपन का नाम भंवरकुमारी था, लेकिन पिताजी के १ ही सन्तान होने के कारण प्यार से दौलत कंवर के नाम से पुकारते थे। आपकी शिक्षा उस समय चौथी कक्षा तक हुई और आपका विवाह १० वर्ष की उम्र में लाला नन्दलालजी सा० बिलाला पील्या वाले के सुपुत्र श्री गणेशलालजी के साथ हुआ। लगभग ४० वर्ष तक आप पूर्ण धार्मिक मर्यादा सहित गृहस्थ जीवन पालन करती रही। विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते समय ही आपके हृदय में विशेष धार्मिक अभिरुचि उत्पन्न हुई और स्वाध्याय, दर्शन आदि के दैनिक नियम वन गये। प्रत्येक शास्त्र की समाप्ति पर आप कुछ न कुछ नियम अवश्य लेती थी यथा समय दान भी किया करती थी यही कार्य इनके पति श्रीगणेशलालजी का भी था। आपके पति श्री लाला गणेशलालजी विलाला जयपुर स्टेट के काल में चांदी की टकशाल के ऑफिसर (दारोगा) थे, यहां से पेन्शन हो जाने के पश्चात् दोनों ही पति-पत्नि आचार्य वीर सागरजी महाराज के संघ में ज्यादातर रहने व चौका आदि लगाने लगे, इनके पति ने ७ वीं प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये तथा ८ वर्ष तक इस प्रतिमा में रहे और घर के काम काज से एक प्रकार से उदासीन वृत्ति धारण कर ली उनका विचार जयपुर में श्री १०८ आचार्य वीर सागरजी महाराज के चतुर्मास के समय क्षुल्लक दीक्षा धारण करने का था किन्तु आपके पौत्र चि० नगेन्द्रकुमार के विवाह की तारीख निश्चित हो जाने के कारण धारण नहीं कर सके। जव १०८ पू० शिवसागरजी महाराज ने आचार्य की दीक्षा ली और ये संघ चातुर्मास समाप्त होने पर गिरनारजी के लिये रवाना हुआ तो उनके साथ हो गये और व्यावर में जब ये संघ पहुंचा तो कुछ दिन पश्चात् १ दिन प्रात: ५ वजे सामायिक करते हुए स्वर्ग सिधार गये। उनकी मृत्यु के १॥ वर्ष वाद इन्होंने भी संसार की अनित्यता को देखकर आत्म कल्याण की दृष्टि से स्व० १०८ आचार्य वीरसागरजी महाराज की छत्री के निर्माण के दिन सांसारिक सुखों के समस्त साधनों से सम्पन्न होते हुए भी उनको ठुकरा कर आपने आचार्य शिवसागरजी महाराज से क्षुल्लिका की दीक्षा विशाल जन समुदाय की हर्ष-ध्वनि के वीच ले ली। सं० २०१७ में सुजानगढ़ में आर्यिका की दीक्षा धारण की।

❖

आर्यिका भद्रमतीजी

आपका जन्म कुन्डलपुर क्षेत्र के समीप कुमारी ग्राम में हुवा था। आपके पिता का नाम परमलालजी तथा माताजी का नाम हीराबाई था। शादी के १ वर्ष पश्चात् आप के पति का वियोग हो गया। तब ही से आपने आरा में ब्र० चन्दावाईजी के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की तथा आपने सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। आपने लाडनू में २५ वर्ष तक अध्यापिका रह कर जैन वालिकाओं को धर्म शिक्षा का ज्ञान कराया। सन् १९६३ में खुरई चातुर्मास में आपने आचार्य धर्मसागरजी द्वारा क्षुल्लिका दीक्षा धारण की, तथा आचार्य श्री शिवसागरजी से आर्यिका दीक्षा ली। वर्तमान में आप आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के संघ में रह कर आत्म कल्याण के मार्ग में निरत हैं।

आर्यिका दयामतीजी

आपका जन्म सागर (गोपालगंज) में हुआ। पिताजी का नाम सिंघई श्री गोरेलालजी था। शिक्षा सामान्य थी, किन्तु धार्मिक कार्यों व्रत उपवास में प्रारम्भ से रुचि थी। हिलगन जिला सागर निवासी सिं. छोटेलालजी के साथ विवाह सम्पन्न हुआ था। कुछ समय बाद ही वैधव्य का वज्राघात हो गया। माता कनकमतीजी के सम्पर्क हो जाने से आचार्य श्री शिवसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण करली। अभी मुनि श्री १०८ अजितसागरजी के संघ में विराजमान हैं।
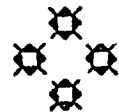
आर्यिका कनकमतीजी

जन्म स्थान बड़ागांव जिला टीकमगढ़ म० प्र० पूर्व नाम चिरोंजाबाई है, श्री सिंघई हजारीलालजी वैद्य आपके पिता का नाम था ६५ वर्ष पहिले श्रीमती स्व० परमाबाई की कूंख से जन्म लिया था, उस समय की प्रथा के अनुसार १२ वर्ष की अल्प वय में झांसी जिले के कारीटोरन के श्री दयाचन्द सिंघई के साथ विवाह हो गया था। मात्र १६ वर्ष की वय में वैधव्य का वज्रपात आ पड़ा। महिलाश्रम सिवनी, उदासीन महिला आश्रम इन्दौर तथा महिला आश्रम सागर में धर्म ध्यान के साथ विशारद तक अध्ययन किया।

सागर, दुर्ग तथा डालटेनगंज में अध्यापन किया श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी से सातवीं प्रतिमा तथा श्री १०८ आचार्य शिवसागरजी महाराज से श्री महावीरजी में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। श्री महावीरजी, कोटा, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, अजमेर, निवाई, सुजानगढ़ आदि स्थानों में चातुर्मास हो चुके हैं। कई रसों का आजीवन त्याग कर दिया है।

आर्यिका जिनमतीजी

आपका शुभ जन्म म्हसवड़ (महाराष्ट्र) में हुआ। आपका जन्म का नाम प्रभावती था। बाल अवस्था में ही माता-पिता का वियोग हो गया। आप एक भाई और एक बहिन सहित आश्रय रहित हो गईं, तब आपका लालन पालन मामा मामी के घर हुआ। षोडशी अवस्था में ज्ञानमती माताजी का सम्पर्क मिला और आप व्रती बन गईं। आजीवन ब्रह्मचारिणी बनकर माताजी के साथ आ गई और माधोराजपुरा (राजस्थान) में आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से क्षुल्लिका की दीक्षा धारण की। आप कुशाग्र बुद्धि के द्वारा परम विदुषी रत्न हैं। बड़े बड़े ग्रन्थों का अध्ययन किया। सीकर नगर में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आप आर्यिका के गुणों को अत्यन्त ही उत्कृष्ट रीति से पालन करती हैं। दर्शन ज्ञान सहित आपका चरित्र सराहनीय है।

आप संघस्थ नवदीक्षित आर्यिकाओं की देख रेख, वैयावृत और सेवा के कार्यों में अत्यन्त दक्ष हैं। भ्रातृत्व स्नेह से भरपूर होकर परस्पर वात्सल्य का रूप इनमें देखने को मिला। पठन पाठन और ज्ञानोपयोग इनकी रुचि के उज्ज्वल उदाहरण हैं।
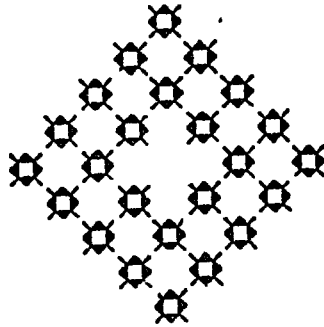
आर्यिका संभवमतीजी

आपका जन्म अजमेर में पन्नालालजी वज के घर पर हुआ। आपकी माताजी का नाम श्रीमती राजमती वाई था। आपका नाम हुलासी वाई रखा गया था। माता की धार्मिक भावना का आप पर प्रभाव पड़ा। आपने अपना जीवन धर्म कार्य में व्यतीत किया। किशनगढ़ में आर्यिकाश्री के समागम से आपको वैराग्य हुआ और आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज का जब चातुर्मास अजमेर में हुआ, तब आपने आर्यिका दीक्षा धारण की।

आर्यिका विद्यामतीजी

आपका जन्म डेह (नागौर) से उत्तर की ओर लालगढ़ (वीकानेर) में वि० सं० १९९२ मिती फाल्गुन वदी १३ को हुआ। आपके पिता श्री नेमचन्दजी वाकलीवाल ने आपके वचपन का नाम शान्तिबाई रखा। वि० सं० २००५ मिती वैसाख कृष्णा ४ को आपका पाणिग्रहण श्री मूलचन्दजी के साथ सम्पन्न हुआ।

वि० सं० २००८ वैशाख सुदी ६ को कलकत्ता महानगरी से श्री मूलचन्दजी एकाएक कहीं चले गये। कई वर्षों तक उनके न आने के कारण इस संसार से ऊब जाना स्वाभाविक था। कुछ समय पश्चात् आपका परिचय आर्यिका १०५ श्री इंदुमतीजी एवं श्री सुपार्श्वमतीजी के साथ हुआ। इनके साथ आपने ज्ञान की गंगा में स्नानकर आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से आर्यिका इंदुमतीजी एवं श्री सुपार्श्वमतीजी के समक्ष, अपार जन-समूह के सामने वि० सं० २०१७ मिती कार्तिक सुदी १३ को सुजानगढ़ में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आपका नवीन नामकरण विद्यामतीजी हुआ।

❖

आर्यिका सन्मतिमाताजी
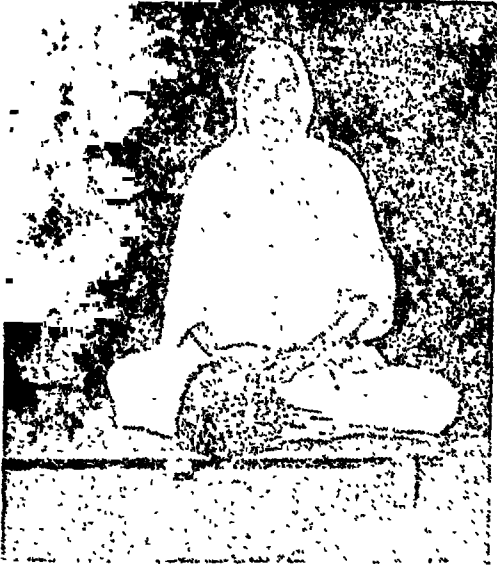
पूज्य १०५ श्री सन्मति माताजी का जन्म वि० सं० १९७७ चैत्र शुक्ला नवमी को वनगोठडी गाँव में हुआ । आपके पिता का नाम भूरामलजी कासलीवाल था और माता का नाम सूरजबाई था और आपका नाम कमलाबाई रक्खा । आपके दो भाई और एक बहन हैं । माताजी का विवाह अल्पायु में ही श्री किस्तूरचन्दजी काला के साथ हुआ था आपके एक पुत्री हुई जिसका नाम गुणमाला है । आप घर सम्पन्न परिवार वाली हैं, भोग सामग्री की सुविधाओं की कोई कमी नहीं थी अतः गृहस्थाश्रम सुख से व्यतीत हो रहा था, किन्तु दुर्दैव को यह सह्य नहीं हुआ स्वल्प काल में ही आपके पति का स्वर्गवासहो गया । युवावस्था में जिन्हें यह दुःख प्राप्त हो जाता है उस दुःख का अनुभव भुक्त भोगी ही जानता है अन्य नहीं । किन्तु आपने अपने जीवन को धर्माचरण की तरफ मोड़ा और साधु संसर्ग से अपने को संसार पथ से त्याग के पथ पर चलाया । मन में वैराग्य की भावना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी और १०८ श्री ज्ञानसागरजी महाराज से दूसरी तथा पांचवीं प्रतिमा के व्रतों को ग्रहण कर लिया । इतने से शान्ति न मिली और पूज्यपाद आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज से वि० सं० २०२२ में कार्तिक शुक्ला १० को क्षुल्लिका दीक्षा ली और पश्चात् आठ महीने बाद ही आ० श्री शिवसागरजी म० से आर्यिका की दीक्षा ग्रहण की । वर्तमान में ज्ञान और चारित्र की उत्तरोत्तर वृद्धि करती हुई आप धर्म ध्यान में रत रहती हैं । आपका कार्य स्वाध्याय और जाप करना ही है आप जाप का कार्य विशेष करती रहती हैं । आपका उपदेश भी कथानक के रूप में अच्छा होता है ।

आर्यिका कल्याणमतीजी

आर्यिका श्री १०५ कल्याणमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम बिलासमती था। आपका जन्म आज से ५५ वर्ष पूर्व मुबारिकपुर (मुजफ्फर नगर) में हुआ था। आपके पिता श्री समयसिंहजी थे व माता श्रीमति समुद्रीबाई थी। आप अग्रवाल जाति के भूषण व मित्तल गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपका विवाह भी हुआ।

गणेशप्रसादजी वर्णी की सत्संगति के कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी व आपने शिखरजी में सातवीं प्रतिमा धारण कर ली। इसके बाद में आपने आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी से विक्रम संवत् २०२२ में शान्तिवीर नगर में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। कोटा में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी से आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने श्री महावीरजी, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आप चारित्रशुद्धि व्रत भी करती हैं। आपने तीनों रसों का त्याग कर दिया है।
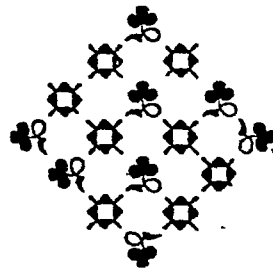
आर्यिका श्रेयांसमतीजी
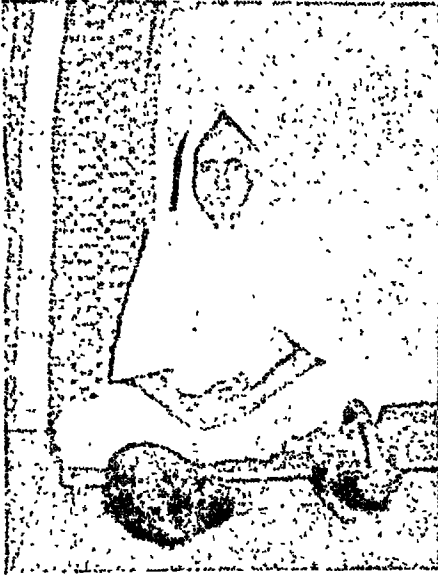
श्री १०५ आर्यिका श्रेयांसमतीजी का गृहस्थ अवस्था का नाम लीलावतीबाई था। आपका जन्म आज से ५० वर्ष पूर्व पूना (महाराष्ट्र) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री दुलीचन्द्रजी व माता का नाम श्रीमती सुन्दरबाई था। आप खण्डेलवाल जाति की भूषण एवं बड़जात्या गोत्रज हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ५ वीं तक हुई। आपका विवाह मूलचन्द्रजी पहाड़े से हुआ। जो आगे चलकर मुनि श्रेयांससागरजी हुए। आपके परिवार में दो पुत्र व दो पुत्रियां हैं।

पति के दीक्षा लेने व संसार की नश्वरता का विचारकर आपने वि० सं० २०२१ में श्री १०८ आचार्य शिवसागरजी से शान्तिवीर नगर (महावीरजी) में दीक्षा ले ली। आपने महावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने तेल, दही, घी, नमक आदि का त्याग किया है।
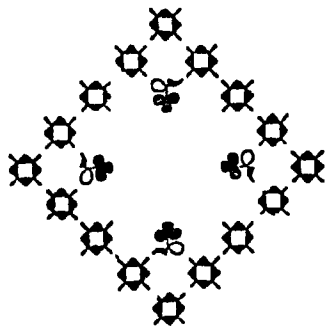
आर्यिका श्रेष्ठमतीजी

श्री आर्यिका श्रेष्ठमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम रतनबाई था। आपका जन्म फतेहपुर सीकरी (राजस्थान) में आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व हुआ आपके पिता का नाम वासुदेवजी था। जो गल्ले का व्यापार करते थे। आपकी माता का नाम इन्द्रादेवी था। आपकी जाति अग्रवाल थी। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा तीसरी तक हुई। आपका विवाह श्री नेमीचन्द्रजी के साथ हुआ। परिवार में आपके दो भाई एवं दो बहिन हैं। आपके नगर में संघ आगमन होने के कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। आपने विक्रम संवत् २०१९ में आचार्य १०८ शिव-सागरजी से दीक्षा ले ली। आपने लाडनूं, कलकत्ता हैदराबाद, सोलापुर, श्रवणवेलगोल, सनावद, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आप चारित्र शुद्धि का उपवास व्रत भी करती हैं।
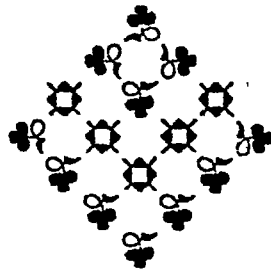
आर्यिका सुशीलमतीजी

श्री १०५ आर्यिका सुशीलमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम काशीबाई था आपका जन्म आज से लगभग अट्ठावन वर्ष पूर्व मस्तापुर में हुआ था। आपके पिता श्री मोहनलालजी थे। आप परवार जाति की भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा १० वीं तक हुई आपके पति धर्मदासजी थे। आपने अध्यापिका का कार्य भी किया। आपके परिवार में दो देवर और एक जेठ हैं।

जब आपके नगर में मुनि-संघ आया तब आपने शान्तिवीर नगर महावीरजी में श्री १०८ आचार्य शिवसागरजी से विक्रम संवत् २०२२ में आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने संघ के साथ कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपने दो रसों का भी यथावसर त्याग किया। आप अपने वर्ग को छलप्रपंच से निकालकर निश्छल निष्कपट बनाने में समर्थ हों यही कामना है।

आर्यिका विनयमतीजी

श्री १०५ आर्यिका विनयमतीजी का बचपन का नाम राजमती था। आपका जन्म आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व मड़ावरा (ललितपुर) में हुआ था। आपके पिता श्री मथुराप्रसादजी थे। व माताजी सरस्वती देवी थी। आप गोला लारी जाति की भूषण थी। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह चतुर्भुजजी के साथ में हुआ। आपके दो भाई व तीन बहिनें थीं।

नगर में संघ का आगमन व प्रधानाध्यापिका सुमित्रावाई का दीक्षित होना आपके वैराग्य का कारण हुआ। आपने विक्रम संवत् २०२३ में कोटा में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी से आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने मीठा, नमक, दही आदि का त्याग कर दिया है। आप देश और समाज की सेवा में इसी प्रकार कार्यरत रहें, आप शतायु हों। यही हमारी कामना है।
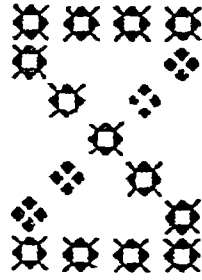
क्षुल्लिका श्री सुव्रतमतीजी

आपका जन्म महाराष्ट्रके हिंगोली ग्राममें विक्रम सम्वत् १९९१ में हुआ था। आपके पिताका नाम श्री भगवान राव और माताका नाम श्रीमती सरस्वती देवी है। आप अपनी चार बहिनों और तीन भाइयोंमें ज्येष्ठ हैं। आपका नाम शान्तीवाई था।

जब आपकी उम्र मात्र ९ वर्ष की थी तब लोहगांवमें श्री अन्नारावजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री मारोतीरावजी के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ, पर समय का खेल कि ६ माह बाद ही आपके पति का देहावसान हो गया।

बालापन में वैधव्य आजानेसे पिताने आपको घर पर रखकर पढ़ाया। आपने कक्षा ६ तक स्कूली शिक्षा प्राप्त करनेके बाद जैन पाठशालामें चतुर्थ भाग तक जैन धर्मकी शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद घर पर ही अध्ययनके द्वारा जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त करती रहीं।

सन् १९५८ में आर्यिका अनन्तमतीजी विहार करती हुई आपके ग्राममें पहुँचीं। आर्यिका माताजीके सदुपदेशोंसे प्रभावित होकर संसार की आसारता से भयभीत हो आपने घर का परित्याग कर दिया और आर्यिकाजी के साथ विहार करती हुई धर्मध्यान पूर्वक व्रतों का अभ्यास करने लगीं।

खुरई में परम पूज्य मुनिराज धर्मसागरजी महाराज के दर्शनों का भी लाभ मिला। मुनि श्रीके दर्शन कर आपके अन्तर में वैराग्य की भावना का उदय हुआ फलतः आपने मुनि श्रीसे कार्तिक शुक्ला एकादशी विक्रम सम्वत् २०२० के दिन ७ वीं प्रतिमा तक के व्रत अङ्गीकार कर लिए। इस प्रकार परिणामों में निर्मलता आई, फलतः कार्तिक शुक्ला एकादशी विक्रम सम्वत् २०२१ के शुभ दिन तपोनिधि आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से अपार जन-समूह के बीच अतिशय क्षेत्र पपौरा में आपने क्षुल्लिका की दीक्षा ली।

* आचार्य वन्दना *

[डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर]

❖

निर्ग्रन्थमुद्रा सरला यदीया प्रमोदभावं परमं दधाना ।
सुधाभिषिक्तेव धिनोति भव्यान् तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।१।।

कामानलातापवितप्त पुंसा माख्याति ब्रह्मव्रतसन्महत्त्वम् ।
यः सन्ततं भोगविरक्तियुक्त स्तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।२।।

हिंसानृतस्तेयपरिग्रहाद्यः कामाग्नितापाच्च निवृत्त्य नित्यम् ।
महाव्रतानि प्रमुदा सुधत्ते तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।३।।

ईर्याप्रधानाः समितीदधानः गुप्तित्रयीं यः सततं दधाति ।
स्वध्यानतोपामृततृप्तचित्त स्तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।४।।

संघस्थसाध्वीनिचयं सदा यः साधुव्रजं चापि सहानुयातम् ।
संत्रायते सावहितः समन्तात्तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।५।।

संसारदेहामितभोगवृन्दाद् विरज्य यः स्वात्मनि संस्थितोऽभूत् ।
स्वाध्यायपीयूषसरो निमग्नं तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।६।।

दिगम्बराचार्यतति प्रधानो निर्बाधवृत्तं सततं दधानः ।
दधाति लोकप्रियतां सदा य स्तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।७।।

शान्त्यब्धि-वीराब्धि-शिवाब्धि दिष्टं श्रेयःपथं दर्शयते जनान्यः ।
अवाग्विसर्गं वपुषैव नित्यं तं धर्मसिन्धु प्रणमामि नित्यम् ।।८।।

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के तृतीय

पट्टाचार्य शिष्य

आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित साधु-वृन्द

आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज

मुनि श्री दयासागरजी
" पुष्पदन्तसागरजी
" निर्मलसागरजी
" संयमसागरजी
" अभिनन्दनसागरजी
" शीतलसागरजी
" सम्भवसागरजी

मुनि श्री वोधसागरजी
" महेन्द्रसागरजी
" वर्धमानसागरजी
" चारित्रसागरजी
" भद्रसागरजी
" बुद्धिसागरजी
" भूपेन्द्रसागरजी

मुनि श्री विपुलसागरजी
,, यतीन्द्रसागरजी
,, पूर्णसागरजी
,, कीर्तिसागरजी
,, सुदर्शनसागरजी
,, समाधिसागरजी
,, ग्रानन्दसागरजी
,, समतासागरजी
,, उत्तमसागरजी
,, निर्वाणसागरजी
, मल्लिसागरजी
,, रविसागरजी
,, जिनेन्द्रसागरजी
,, गुणसागरजी
ऐलक श्री वैराग्यसागरजी
क्षुल्लक श्री पूरणसागरजी
,, संवेगसागरजी
,, सिद्धसागरजी
,, योगेन्द्रसागरजी
,, करुणासागरजी
,, देवेन्द्रसागरजी
,, परमानन्द सागरजी
आर्यिका ग्रनन्तमतीजी
,, अभयमतीजी

आर्यिका विद्यामतीजी
,, संयममतीजी
,, विमलमतीजी
,, सिद्धमतीजी
,, जयमतीजी
,, शिवमतीजी
,, नियममतीजी
,, समाधिमतीजी
,, निर्मलमतीजी
,, समयमतीजी
,, गुणमतीजी
,, प्रवचनमतीजी
,, श्रुतमतीजी
,, सुरत्नमतीजी
,, शुभमतीजी
,, धन्यमतीजी
,, चेतनमतीजी
,, विपुलमतीजी
,, ग्रा० रत्नमती
क्षुल्लिका दयामतीजी
,, यशोमतीजी
,, बुद्धमतीजी
ब्र० प्यारीबाईजी

मुनिश्री दयासागरजी

पू० मुनि श्री दयासागरजी का जन्म स्थान राजस्थान को ऐतिहासिक वीर भूमि जि० चित्तौड़गढ़ में ग्राम बडून है आपने सं० १६८८ को श्री राजाबाई की कुक्षि से जन्म लिया । आपके पिता का नाम रामबगस जी था । वघेरवाल जाति में आपने जन्म लेकर अपनी जाति का नाम ऊँचा किया । गृहस्थ अवस्था का नाम श्री कस्तूरचन्दजी था । शिक्षा सामान्य रही पारिवारिक समस्या आ जाने से शिक्षा को अधूरा ही छोड़ दिया तथा व्यापार कार्य करने लगे । बालकपन से ही धर्म के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति अपूर्व थी । घर की खेती होती थी तो उस कार्य में हिंसा अधिक होती देखकर आपके मन में वैराग्य के भाव उत्पन्न हुए तब आप गृहस्थी के कार्यों को छोड़कर आचार्य श्री धर्मसागरजी की शरण में आए तथा टौंक (राजस्थान) में आपने आचार्य श्री से क्षुल्लक दीक्षा धारण की । संघ में रहकर आप शास्त्र स्वाध्याय करते एवं वैराग्य की ओर आपका लक्ष्य बढ़ता रहा तत्पश्चात् श्री महावीरजी में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पर आपने मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली । आप भारतवर्ष के समस्त तीर्थों की पैदल यात्रा कर आत्म साधना कर रहे हैं । आप सरल एवं सौम्यता की मूर्ति हैं । आप आचार्य श्री के आदेशानुसार उप संघ का भी संचालन कर रहे हैं । आप तप: साधना के कीतिमान पुरुषार्थी सन्त शिरोमणि मुनिराज हैं ।

आपके द्वारा अभी तक १६ दीक्षाएँ दी जा चुकी हैं । आप मूक साधना के प्रतीक मुनिश्री हैं ।

मुनिश्री पुष्पदन्तसागरजी

मुनि श्री १०८ पुष्पदन्तसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम जीवनलालजी था। आपका जन्म आज से लगभग ६२ वर्ष पूर्व मौजमावाद में हुआ था। आपके पिता श्री चांदमलजी थे जो कपड़े के सफल व्यापारी थे। आपकी माता श्री फुलाबाई थी। आप खंडेलवाल जाति के भूषण है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह भी हुआ और परिवार में एक बहिन है।

नित्य प्रति शास्त्र स्वाध्याय करने से आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। आपने श्रावण कृष्णा छठ, विक्रम संवत् २०२१ में आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज से इन्दौर में मुनिदीक्षा ले ली। आपने इन्दौर, झालरापाटन, टोंक, सवाईमाधोपुर, शिखरजी, आरा आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की है। श्री सम्मेदशिखरजी की २०१ वन्दना की। बाहुबली गिरनारजी की भी तीन बार वन्दना की है। आपने घी, मीठा, नमक का त्याग कर दिया है।

मुनिश्री निर्मलसागरजी
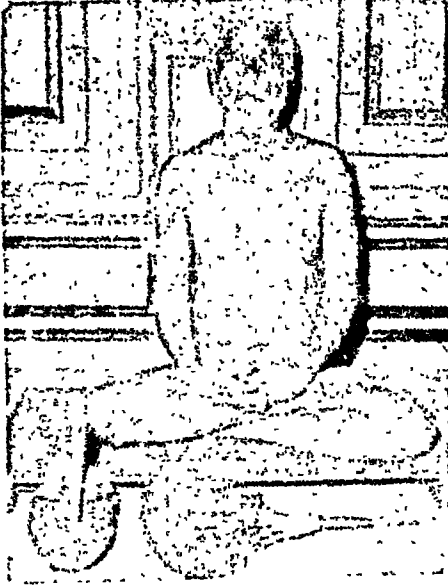
श्री १०८ मुनि निर्मलसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम मदनलालजी जैन था। आज से लगभग सत्तावन वर्ष पूर्व आपका जन्म टोंक (राजस्थान) में हुआ। आपके पिता श्री केशरलालजी थे, इनकी मिठाई की दुकान थी। आपकी माता का नाम धापूबाई था आप अग्रवाल जाति के भूषण हैं। आप मित्तल गोत्रज हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके परिवार में दो भाई थे। आपका विवाह हुआ और एक पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई।

आपने सत्संगति और उपदेशश्रवण से मन में वैराग्य लेने की बात भी विचारी। विक्रम संवत् २०२३ में श्रावण शुक्ला सप्तमी को टोंक में श्री १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। वाद में विक्रम संवत् २०२४ में मंगसिर शुक्ला पंचमी को श्री १०८ आ० धर्मसागरजी से ही मुनि दीक्षा लेली। आपने बूंदी, बिजौलिया, पार्श्वनाथ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आप अपने भव्य जीवन से लोगों को सही अर्थों में भव्य बनने की प्रेरणा देते हुए शतायु हों, यही भावना है।
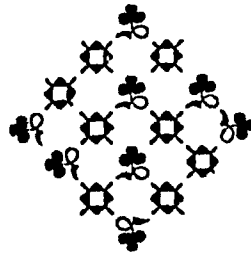
श्री १०८ मुनि संयमसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि संयमसागरजी महाराज का जन्म सं० १९७० में बूंदी में हुआ था आपके पिता का नाम भवानीशंकरजी था। वह काश्तकारी का धंधा और व्यापार करते थे।

संयमसागरजी बचपन से ही धर्म में रुचि रखते थे। उन्होंने संसार को असार जानकर सं० २०२३ में टोंक में क्षुल्लक दीक्षा एवं सं० २०२४ में बूंदी में मुनिदीक्षा आचार्य श्री धर्मसागरजी से ली तथा नियमों के प्रति बहुत कठोर रहे और सब जीवों के उपकार की कामना करते रहे।

जो मुनिराज सम्यग्ज्ञान रूपी अमृत को पीते रहते हैं। जो अपने पुण्यमय शरीर को क्षमारूपी जल से सींचते रहते हैं तथा जो संतोष रूपी छत्र को धारण करते रहते हैं, ऐसे मुनिराज कायक्लेश नामा तप करते हैं। अन्त में पारसोला ग्राम में दिनांक २–६–८३ को समाधिपूर्वक शरीर का त्याग किया। ७६ साधु आपकी समाधि के अवसर पर उपस्थित थे।

मुनिश्री अभिनन्दनसागरजी

श्री धनराजजी का जन्म शेषपुर (सलुम्बर–उदयपुर) में हुआ था। आपके पिताश्री अमरचन्दजी थे व माता रूपीबाई थी। आपकी जाति नरसिंहपुरा व गोत्र बोसा था। आपके तीन भाई व तीन बहिनें थी। आजीविका चलाने के लिए पान की दुकान थी। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ८ वीं तक ही हुई किन्तु धार्मिक शिक्षा काफी है।
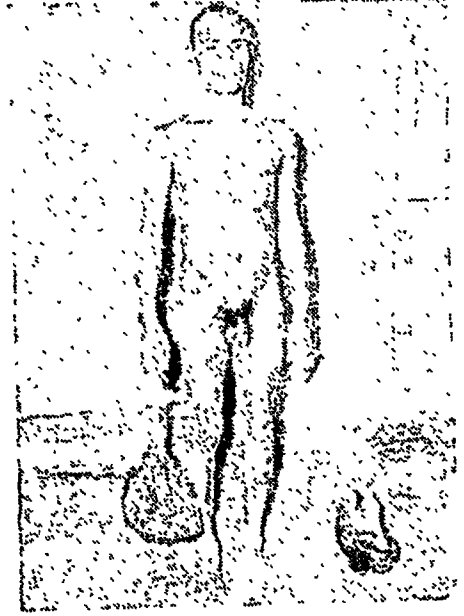
आपने सत्संगति व उपदेशों के कारण वैराग्य लेने की सोची। संवत् २०२३ में मुनि श्री वर्धमानसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। फिर धर्मप्रचार करने के बाद सं० २०२५ में आपने आ० श्री शिवसागरजी से ऐलक दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद आपने कई ग्रामों में भ्रमण करके धर्मोपदेश दिया। अन्त में सं० २०२५ में कार्तिक शुक्ला अष्टमी को मुनि श्री धर्मसागरजी से मुनि दीक्षा ले ली। आपने प्रतापगढ़, घाटोल, नठव्वा, गांमड़ी, दिल्ली, मुजफ्फरनगर, दाताय, श्रवणबेलगोला, आदि स्थानों में चातुर्मास किये।

आपने तेल, नमक, दही आदि का त्याग कर रखा है। आपने अपनी अल्प अवस्था में ही देश व समाज को काफी धर्मामृत का पान कराया है।

२३ वर्ष की आयु, सौम्य शान्त मुद्रा, ऐसी अवस्था में नग्न व्रत धारण कर उन्होंने तपोबल द्वारा मुनि धर्म का कठोरता से पालन किया व अपनी दिनचर्या का अधिकांश समय जैनागम के अध्ययन, अध्यापन में व्यतीत करते हैं। भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव पर उन्होंने दिल्ली के विभिन्न स्थानों पर प्रवचन करके बड़ी जागृति की है।

श्रुतज्ञान का अचिन्त्य महात्म्य है। श्री जिनेन्द्र देव ने जिसे निरूपण किया है। अर्थ और पद रूप से जिसकी अंग पूर्व रूप रचना गणधर देवों ने की है। जिस श्रुतज्ञान के दो भेद हैं अंग पूर्व और अंग बाह्य। द्रव्य श्रुतज्ञान और भाव श्रुतज्ञान के भेद से श्रुतज्ञान के अनेक भेद हैं।

भगवान की वाणी औषधि के समान है, जो जन्म मरण रूपी रोगों को हरती है। जो विषय रूपी रोग का विवेचन करती है। और समस्त दुःखों का नाश करने वाली है, जो उस वाणी का अध्ययन करते हैं, वे निर्मल तप करके केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। मुनिराज की अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की प्रवृत्ति प्रशंसनीय है।
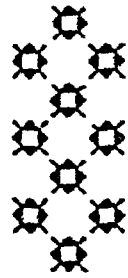
मुनिश्री शीतलसागरजी

आपका जन्म माघ सुदी पंचमी सम्वत् १९५५ के दिन परवार जातीय वाभल्ल गोत्र में श्रीमान् गोपालदासजी मोदी के घर श्रीमती हरबाईजी की कुक्षि से रायसेन जिले के वीरपुर ग्राम में हुआ था। गृहस्थावस्था में आपका नाम नन्हेंलाल था।

आपके माता-पिता उदार हृदयी सन्तोषी व्यक्ति थे। आप अपने माता पिता के बीच एक मात्र लाडले पुत्र थे। घर गृहस्थी का पूरा भार आपके ऊपर ही निर्भर था। आपके पिता ने आपको मात्र प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा ही दिलाई। अल्प शिक्षा प्राप्त कर

आप अपने पिता को व्यापार आदि में सहयोग देने लगे । आपकी आर्थिक स्थिति विशेष सम्पन्न नहीं रही इसीलिए आजीविका की जिम्मेवारी आपके ऊपर थी ।

बाईस वर्ष की अवस्था में बांसादेई के श्रीमान् नन्हेंलालजी के घर श्रीमती कौंसाबाई के साथ आपका विवाह हुआ । पांच वर्ष बाद आप वीरपुरा से व्यापार के उद्देश्य से सागर चले आए और वहीं रहने लगे । आपको तीन पुत्र और चार पुत्रियों का संयोग मिला ।

आपके अन्तर में वैराग्य की निर्मल ज्योति का अंकुरण हुआ फलतः रेशंदीगिरिजी की पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा के समय परम पूज्य मुनिराज आदिसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत अङ्गीकार कर लिये । चार माह बाद ही आहारजी अतिशय क्षेत्र में मुनि श्री धर्मसागरजी महाराज से तीसरी प्रतिमा के व्रत ले लिए । अन्तर में वैराग्य की निर्मल धारा वही फलतः सावन सुदी अष्टमी सम्वत् २०२० के दिन सागर में मुनि श्री से ही सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये । शीघ्र ही वह भी समय आया जब अन्तर में सच्ची वैराग्यता झिलमिलाने लगी और कार्तिक शुक्ला एकादशी सं० २०२१ के दिन अतिशय क्षेत्र पपौराजी में परम पूज्य दि० जैनाचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली । श्री धर्मसागरजी से मुनिदीक्षा महावीरजी में ली । टौंक में समाधिमरण किया ।

संसार की इस क्षण-भंगुर नश्वरता एवं असारता से भयभीत होकर जिस पुरुषार्थ से आपने इस पथ का अवलम्बन किया, वह आपकी सच्ची वैराग्य भावना का प्रतीक है ।
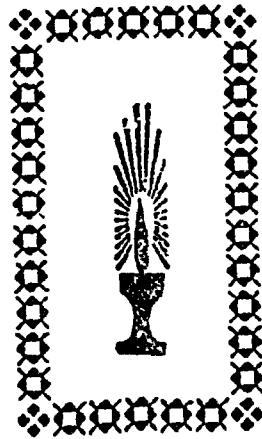
मुनि श्री सम्भवसागरजी

उदयपुर शहर में हूमण जाति में मंत्रेश्वर गोत्रान्तर्गत श्री जवाहरलालजी के घर श्रीमती चम्पूबाईजी की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। आपका जन्म नाम सुरेन्द्रकुमार था। बालक सुरेन्द्र के जीवन पर अपनी दादी की धार्मिक वृत्ति का प्रभाव पड़ा। वे एक धर्म परायण सत्चरित्र सुयोग्य महिला थीं। इनके पिता होनहार कर्मठ व्यक्ति हैं तथा मुनीमी का कार्य करते हैं।

बालक सुरेन्द्र अपनी तीन बहिनों में ज्येष्ठ और माता पिता का एक मात्र पुत्र होने के कारण सभी के लिए अत्यन्त लाडला और प्रिय था। इसकी प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा उदयपुर में ही कक्षा ४ तक हुई। सुरेन्द्रकुमार जब १० वर्ष का था तब एक स्थानकवासी साधु द्वारा किसी महिला को दीक्षा लेते देखकर इसके अन्तर में वैराग्य का उदय हुआ। फलतः दो माह बाद ही इसने कुछ व्रत लेकर धार्मिक वृत्ति का परिचय दिया।

जब १२ वर्ष की अवस्था हुई तब दरियाबाद में हुई मुनिराज आदिसागरजी महाराज की समाधि के अवसर पर संसार की असारता को प्रत्यक्ष देख सुरेन्द्रकुमार विह्वल हो उठा और तभी से गृह त्याग कर दिया। ६ माह बाद ही श्री देवेन्द्रसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत अङ्गीकार कर लिए। भावों में और निर्मलता आई और १४ अगस्त ६४ की शुभ बेला में परम पूज्य आर्यिका ज्ञानमतीजी से हैदराबाद में सप्तम प्रतिमा तक के व्रत अंगीकार कर लिए। अन्तर में विराग की निर्मल धारा बहने लगी और कर्म शत्रुओं से लिप्त निर्मल आत्मा में वैराग्य भावना की ज्योति जलने लगी फलतः तीन माह बाद ही कार्तिक शुक्ला एकादशी के दिन परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से अतिशय क्षेत्र परौराजी में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर निर्मल वैराग्यमयी भावना का आश्चर्यकारी प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। केवल १८ वर्ष की अल्प अवस्था में संसार की असारता से भयभीत हो ऐसे सुमार्ग का अनुसरण कर जिस दृढ़ भावना का परिचय सुरेन्द्रकुमार ने दिया है, वह अनेकों भव्यों को कल्याणकारी संकेत की भांति हितकारी है। श्री महावीरजी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में आचार्य धर्मसागरजी से मुनि दीक्षा सं० २०२५ में ली। तथा मुनि के व्रतों को पाल रहे हैं।

❖

मुनिश्री बोधसागरजी महाराज

मुनि श्री का जन्म बुन्देलखंड में सागर जिले के अन्तर्गत मडखेरा नामक ग्राम में हुआ था। उनके माता-पिता धर्मात्मा थे। वचपन से ही धर्म में बहुत रुचि थी। आचार्य श्री धर्मसागरजी से इन्होंने खुरई में क्षुल्लक दीक्षा ली। ३ साल क्षुल्लक रहे। उसके बाद गुरु श्री धर्मसागरजी से मुनि दीक्षा ले ली और संघ में रहकर स्वाध्याय करने लगे। मुनि दीक्षा लेकर अनेकों तीर्थस्थानों की वन्दना की अन्त में मुजफ्फरनगर में आचार्य श्री के सान्निध्य में समाधि को धारण कर शरीर को छोड़ा।

संसारी जीव जो वीतराग भगवान की शरण में आते हैं, वे आपके स्नेह से नहीं आए हैं, किन्तु आपके चरण कमलों की शरण में आने का कारण अनेक प्रकार के दुःखों से भरा हुआ यह संसाररूपी महासागर ही है। जिसप्रकार गर्मी के दिनों में सूर्य से संतप्त होकर यह जीव छाया और जल से अनुराग करता है, क्योकि छाया और जल संताप को दूर करने वाले हैं, इसीप्रकार आपके चरणकमल भी संसार के दुःखों को दूर करने वाले हैं, इसलिए संसार के दुःखों से अत्यन्त दुःखी हुए प्राणी उन दुखों को दूर करने के लिए आपके चरण कमलों की शरण लेते हैं। इसलिए आपने मुनिव्रत अंगीकार किया।
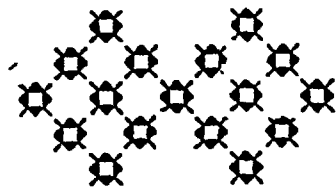
मुनिश्री महेन्द्रसागरजी महाराज
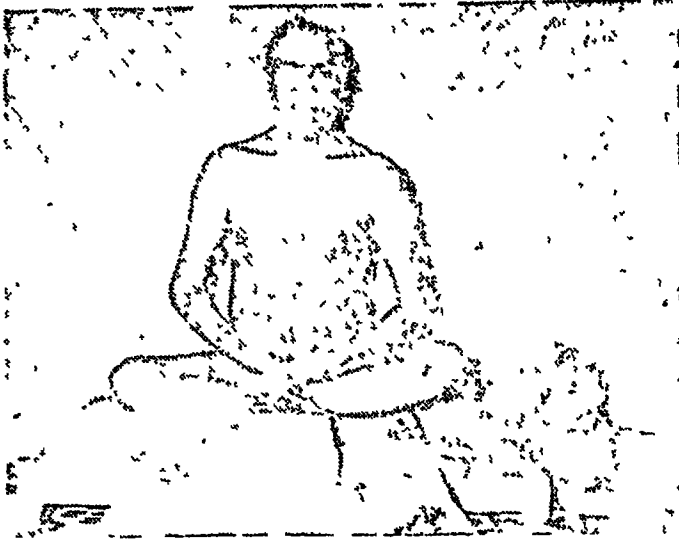
आपका जन्म संवत् १९८३ में टौंक के पलाई ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम बजरंगीलाल एवं माता का नाम श्रीमती कस्तूरबाई था। उनका एक भाई और है। धार्मिक संस्कार होने से उन्होंने बचपन से ही वैराग्य ले लिया। आचार्य महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर टौंक में क्षुल्लक दीक्षा ली। बूंदी में ऐलक दीक्षा ली फिर शान्तिवीरनगर में सं० २०२५ में आपने मुनि दीक्षा ले ली। आपके छोटे भाई ने भी आपसे प्रभावित होकर मुनि दीक्षा धारण कर ली। उदयपुर (राजस्थान) में आपका समाधिमरण हुवा है।

जो मुनिराज पांचों महाव्रतों का पालन करते हैं। पांचों समितियों का पालन करते हैं, तीन गुप्तियों का पालन करते हैं। तेरह प्रकार के चारित्र को प्रयत्नपूर्वक पालन करते हैं, जो ध्यान और अध्ययन में लीन रहते हैं, ऐसे मुनिराज अपने मन में मोक्षसुख को धारण कर कर्मों का नाश करने के लिए तपश्चरण करते हैं, वे आत्मकल्याण कर अनन्त सुखों के स्वामी हो जाते हैं। उन्हींका जीवन धन्य है।
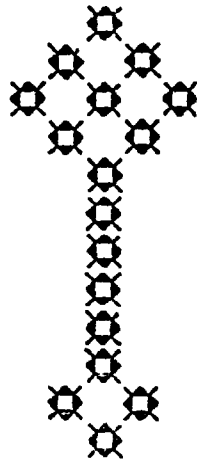
मुनिश्री वर्धमानसागरजी महाराज

महाराज श्री का जन्म सनावद (मध्यप्रदेश) में हुआ था । उनके पिता का नाम कमलचन्द्रजी था । उनकी शिक्षा बी० ए० प्रथम वर्ष तक है । वह संसार के क्षणिक सुखों की ओर से विरुद्ध हो गये और महावीरजी में २०२५ में फाल्गुन सुदी अष्टमी को आचार्य श्री धर्मसागरजी से मुनि दीक्षा ले ली । आप बाल ब्रह्मचारी हैं । अनेक उपसर्ग आने पर भी वह पूर्णरूप से विजयी हुए । अब वह निरन्तर अध्ययन में लगे रहते हैं । अशुभकर्म के उदय से इनकी आंखों की ज्योति चली गई थी । आपने खानियां जयपुर में चन्द्रप्रभु भगवान के सामने शांतिभक्ति नामक स्तोत्र का पाठ किया, फलस्वरूप आंखों की ज्योति फिर से आ गई । यह भगवान की भक्ति का प्रभाव है । क्रोधित हुए सर्प के काट लेने से जो असह्य विष समस्त शरीर में फैल जाता है, वह गारुणी की मुद्रा के दिखाने व उसके पाठ करने से, विष को नाश करने वाली औषधियों को देने से, मंत्र से और होम करने आदि से बहुत शीघ्र शांत हो जाता है । उसीप्रकार हे भगवान्, जो मनुष्य आपके दोनों चरणरूपी अरुण कमलों का स्तोत्र करते हैं, दोनों चरण कमलों की स्तुति करते हैं, उनके समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं और शरीर के समस्त रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । हे भगवन् ! यह भी एक महान आश्चर्य की बात है । अन्य विघ्नों को दूर करने के लिए वहुत परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु रोग और विघ्न आदि केवल आपकी स्तुति करने मात्र से दूर हो जाते हैं । यही कारण है, जब युवक मुनिराज भगवान जिनेन्द्र की स्तुति करने क कारण दृष्टि चले जाने पर भी आंखों की पुनः दिव्यज्योति को प्राप्त हुए । आपकी प्रवचन शैली बहुत ही आकर्षक है । आप सदैव लेखन एवं पठन कार्य में लीन रहते हैं ।

मुनिश्री चारित्रसागरजी महाराज

मुनिश्री का जन्म सं० १९६२ में देवपुरा (राजस्थान) में हुआ था। उनके पिता का नाम किशनलालजी और माताजी का नाम श्रीमती चम्पाबाई था। आपका जन्म नाम पन्नालालजी था।

आपकी शिक्षा कम हुई। छोटी आयु में विवाह हो गया था। परन्तु आप घर रहकर ही यथाशक्ति धर्म चिन्तन किया करते थे। १९२९ में श्री आ० शान्तिसागरजी महाराज संघ सहित उदयपुर पधारे। उनसे दिगम्बर धर्म में चलने की प्रेरणा मिली। फलस्वरूप क्रमशः व्रत धारण करते हुए आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होते गये।

अजमेर में आचार्यवर धर्मसागरजी से उन्होंने २०२३ में मुनि दीक्षा ले ली।

जिसप्रकार चिन्तामणि रत्न तथा कल्पवृक्ष आदि अचेतन हैं, तो भी पुण्यवान पुरुषों को उनके पुण्योदय के अनुसार अनेक प्रकार के इच्छानुसार फल देते हैं। उसीप्रकार भगवान अरहन्त देव यद्यपि रागद्वेष रहित हैं, तथापि उनकी भक्ति से भक्त पुरुषों को भक्ति के अनुसार फल की प्राप्ति हो जाती है। सम्यक् भक्तिज्ञान और चारित्ररूपी रत्नत्रय ही मोक्ष मार्ग का साधन है और उसकी सिद्धि का साधन यह मुनिधर्म ही है। उदयपुर राजस्थान में आपने शरीर को छोड़ा तथा आत्म कल्याण में लगे रहे।

विशेष :—आप बाल ब्रह्मचारी हैं तथा आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज की पूर्व पर्यायी बहिन के सुपुत्र हैं। आचार्य महाराज जब गृहस्थ अवस्था में हीरालाल के नाम से जाने जाते थे, तब २ वर्ष की अवस्था से ही इनका पालन पोषण किया और उन्हीं की प्रेरणा से आपने सन् १९६४ में लगभग १ लाख रुपये की जमीन तथा मकान आदि पैठण क्षेत्र को दान कर दिया।

शुरू से ही आपमें धार्मिक रुचि थी। इसीलिए लगभग ६ वर्ष पूर्व आपने स्व० मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज को पैदल यात्रा करायी तथा साथ में स्वयं भी पैदल यात्रा का लाभ प्राप्त किया।

मुनिश्री भद्रसागरजी महाराज

आपका जन्म झालावाड़ (राजस्थान) में सं० १९७५ बैसाख वदी पंचमी को हुवा था। आपके पिता का नाम बुलाकीचन्दजी जैन तथा मां का नाम श्री केशरबाईजी था। आपका गृहस्थ अवस्था का नाम श्री सूरजमलजी खण्डेलवाल था। आपने आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से सं० २०३३ में मुजफ्फरनगर में मुनिदीक्षा ली थी। आप तपस्वी सन्त हैं तथा मुनि व्रतों का पालन कर रहे हैं।

❖

मुनिश्री बुद्धिसागरजी महाराज
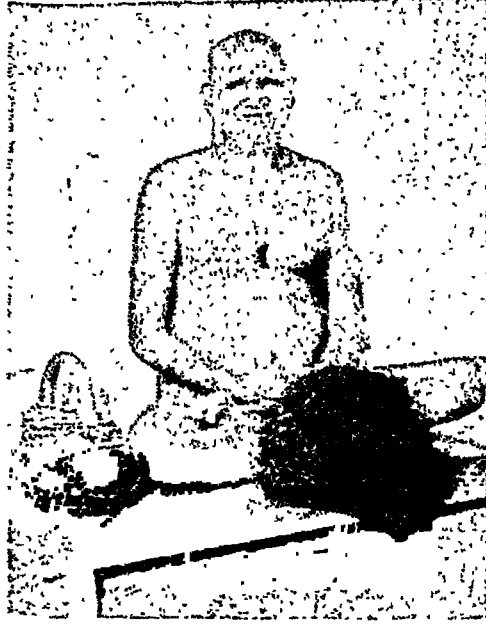
मुनि श्री का जन्म उदयपुर जिले के भिंडर कस्बे की वल्लभनगर तहसील में सं० १९७५ में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री चंपालालजी था। आपके परिवार की गिनती कपड़े के प्रमुख व्यापारियों में थी। स्वर्गीय आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज सा० के उदयपुर चातुर्मास के समय आप संघस्थ मुनिराज आदि त्यागीवृन्दों के दर्शनार्थ पधारे थे तब यकायक ही आपमें वैराग्य उमड़ पड़ा और आपने तत्काल आचार्य श्री चरणों में श्रीफल सर्मापित कर पांचवीं प्रतिमा धारण कर ली। तत्पश्चात् दो वर्ष बाद ही आपने आठवीं प्रतिमा ले ली लेकिन उससे भी आपको चैन कहाँ मिलने वाला था। वैराग्य की भावना आपमें घर कर चुकी थी। परिणाम स्वरूप आपने श्री महावीरजी में प० पू० आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज सा० से क्षुल्लक दीक्षा ले ली और बाद में जयपुर पहुंचकर आचार्य श्री से ही मुनिदीक्षा धारण कर ली। आप वर्तमान में धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत हो विहार करते हुये धर्म प्रचार में लगे हुये हैं।
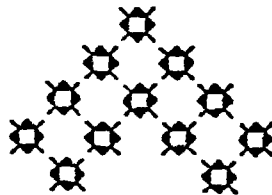
मुनिश्री भूपेन्द्रसागरजी महाराज

मुनि श्री का जन्म उदयपुर जिले के राठोड़ा ग्राम में मिती पोष शुक्ला १० सं० १९७० को श्री जयचंदजी जैन की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरीबाई की कोख से हुआ था। जन्म से ही आपमें धार्मिक संस्कार कूट कूट कर भरे हुये थे। आपके पारिवारिक जनों में ही वैराग्य की भावना घर किये हुये थी। गृहस्थावस्था में आपको श्री कपूरचन्दजी बागावत नरसिंहपुरा के नाम से जाना जाता था। वैराग्य के प्रति अनुराग होने के कारण आपने सं० २०२४ में कार्तिक शुक्ला ११ को उदयपुर में प० पू० आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज सा० से क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। आपको केवल क्षुल्लक दीक्षा से ही संतुष्टि नहीं हुई। दो वर्ष के बाद ही आपने पूर्व दीक्षा तिथि के दिन ही जयपुर में आचार्य श्री से मुनि दीक्षा धारण कर ली। संघ के साथ ही आप विहार करते हुए मदनगंज चातुर्मास हेतु पधारे जहाँ आचार्य श्री के सान्निध्य में ही आपने इस नश्वर शरीर को सदा सदा के लिये त्याग दिया।

मुनिश्री विपुलसागरजी महाराज

आपका पूर्व नाम वीरचन्दजी था। जि० टौंक में पलाई ग्राम में कस्तूरबाईजी की कुक्षि से वि० सं० १९९२ चैत्र सुदी त्रयोदशी के दिन जन्म लिया था। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपने विवाह नहीं करवाया बाल ब्रह्मचारी रहे। माघ सुदी पंचमी सं० २०३२ को मुजफ्फरनगर में आचार्य श्री धर्मसागरजी से मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के मार्ग में लगे हैं। आपका अलौकिक व्यक्तित्व आचरणीय है। आचार्य संघ में रहकर आत्म कल्याण के मार्ग में अग्रसर हैं।
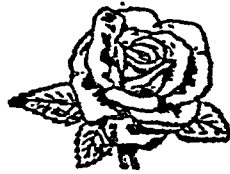
मुनि श्री यतीन्द्रसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि श्री यतीन्द्रसागरजी महाराज का गृहस्थावस्था का नाम श्री देवीलालजी था। आपका जन्म उदयपुर में हुआ था। आपके पिता श्री मगनलालजी व माता श्रीमती गेंदीबाई थी। आप चित्तौड़ा जाति एवं गुढ़ीया जाति के भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके परिवार में दो भाई, चार बहिनें, चार पुत्र व चार पुत्रियां थीं।
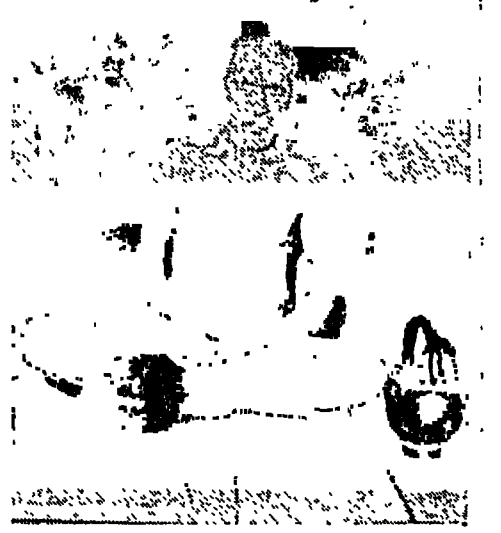
ग्यारह वर्ष की अवस्था से ही मुनियों की सत्संगति के कारण आपमें वैराग्य की भावना जागृत हुई। परिणामत: कार्तिक शुक्ला ग्यारस, विक्रम संवत् २०२४ में उदयपुर में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। एक वर्ष बाद ही आपने विक्रम संवत् २०२५ में आचार्य धर्मसागरजी महाराज से शान्तिवीर नगर (महावीर जी) में मुनिदीक्षा ग्रहण करली। आपको भक्तामर आदि संस्कृत स्तोत्रों का विशेष ज्ञान है। आपने प्रतापगढ़ आदि अनेक स्थानों पर चातुर्मास कर जिनवाणी की आशातीत प्रभावना कर जिनधर्म की काफी वृद्धि की। सोलह-सोलह दिनों के उपवास कर आप सोलहकारण व्रतों का पालन करते हुए अहर्निश ज्ञान, ध्यान, तपोरक्त की उक्ति को जीवन में साकार कर रहे हैं।
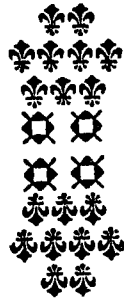
मुनिश्री पूर्णसागरजी महाराज
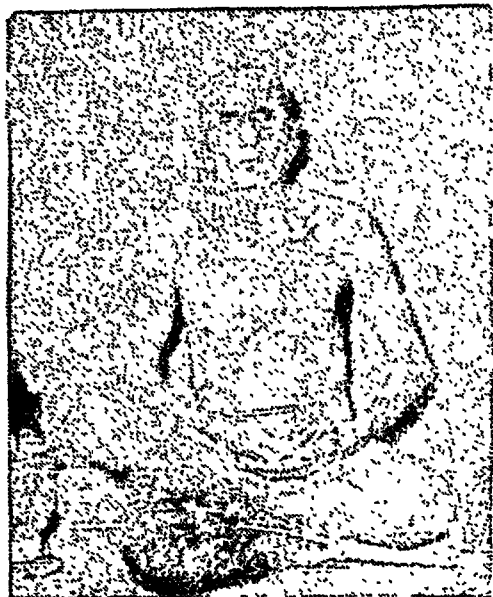
पूज्य मुनि श्री १०८ श्री पूर्णसागरजी महाराज का जन्म अषाढ़ शुक्ला ८ रविवार संवत् १९७० में कुण्डा ग्राम (कुण्डलगढ़) तहसील सराड़ा में हुआ था। आपके गृहस्थावस्था का नाम श्री पूनमचन्दजी था। आपने वीसा नरसिंहपुरा जाति में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम श्री हेमराजजी व माता का नाम कस्तूरी बाई था। आपकी माता की श्रद्धा भी धर्म में अधिक थी। उन्होंने भी दस दस उपवास व अन्य कई व्रतादिक किये।

आपने गृहस्थावस्था में रहकर पति पत्नी दोनों ने एक माह का उपवास किया था साथ ही दस दस उपवास भी किये थे। आपने घर में रहकर ५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। आपने ५ वर्ष तक सरपंच रहकर जनता का भला किया। घर में ही वैराग्य भावना का चिन्तवन करते थे।

आप संवत् २०३२ के मंगसर सुदी चतुदर्शी गुरुवार के दिन सारे गांव को भोजन करा कर, घर का त्याग करते हुए मुजफ्फरनगर में १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के पास पधारे। तथा आचार्य श्री से माघ शुक्ला पंचमी संवत् २०३२ को मुनि दीक्षा धारण की।

महाराज श्री ने झाडोल (सराडा) में वि० सं० २०३६ में पूज्य मुनि श्री संभवसागरजी महाराज के साथ वर्षायोग धारण किया एवं श्रावण माह में अन्न का त्याग रखा और एकान्तर आहार पर उतरते थे।

आप बारह सौ चौंतीस व्रत के अन्तर्गत भाद्रपद माह में सोलह कारण व्रत के ३२ (बत्तीस) उपवास कर रहे थे। इसी व्रत के अन्तर्गत आपने यम सल्लेखना धारण करली। ३० उपवास की समाप्ति के पश्चात् रात्रि को बारह बजे आप एक दम सोये हुए उठ बैठे और पद्मासन लगाकर णमोकार मन्त्र का ध्यान करते हुए भाद्रपद शुक्ला १५ को नश्वरदेह को त्याग दिया। धन्य हैं ऐसे तपस्वी मुनिराज।

✲

मुनिश्री कीर्तिसागरजी महाराज

आपका जन्म जयपुर के समीप निवाई में हुवा था। मुनीमी शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप सुजानगढ़ आये तथा यहाँ पर नौकरी करने लगे। आपने आचार्य श्री के प्रवचनों से प्रभावित होकर आचार्य श्री से जैनेश्वरी दीक्षा लेने के भाव प्रगट किए। आचार्य श्री ने भव्यजीव समझ कर सुजानगढ़ में क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। सन् १९७४ में दिल्ली आचार्य श्री से मुनि दीक्षा ले ली। केशरियानाथजी सं० २०३६ में आपने समाधिमरण किया। आप सरल तथा ज्ञानी ध्यानी मुनि थे।

❖

मुनिश्री सुदर्शनसागरजी महाराज

आपका जन्म बारां (कोटा) राजस्थान में आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व हुवा था। आपने आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से सुजानगढ़ में मुनि दीक्षा ली। दिल्ली में सन् १९७३ में अचानक बुखार आ जाने से आपका समाधि मरण हो गया।

मुनिश्री समाधिसागरजी महाराज

आपने पू० आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से पुनः दीक्षा ली थी। २० वर्षीय मुनि जीवन शरीर की शिथिलता देखकर आपने मुनिपद छोड़ दिया था। आप श्री मल्लिसागरजी जालना वालों के नाम से प्रसिद्ध थे। आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के विशेष संबोधन से आपने पुनः सलूम्बर में मुनि दीक्षा धारण की तथा संयम एवं कठोरता के साथ आपने आचार्य श्री के सान्निध्य में यम समाधि लेकर शरीर को छोड़ा तथा आत्मकल्याण किया। धन्य है आपकी सम्यक् श्रद्धा जिसने आपको पुनः सन्मार्ग पर लगाया।
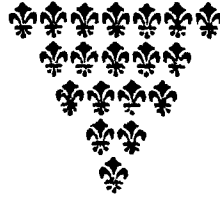
मुनिश्री आनन्दसागरजी महाराज

श्री ताराचन्दजी का जन्म भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली में हुवा था। सामान्य उर्दू में आपकी शिक्षा हुई। आपने कपड़े का कार्य किया तथा गृहस्थ धर्म का पालन किया। आपके २ लड़के हैं। आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज का दिल्ली की ओर विहार हुवा तब से आप आचार्य श्री के सान्निध्य में रहकर आत्म साधना करते रहे। उदयपुर के समीप ऋषभदेवजी में आपने आचार्य श्री से मुनि दीक्षा ली। पाड़वा (उदयपुर) में समाधि लेकर शरीर का त्याग किया। जहाँ पर आपके पार्थिव शरीर का संस्कार किया गया था वह स्थान आनन्दगिरी के नाम से घोषित कर दिया गया है।

मुनिश्री समतासागरजी महाराज
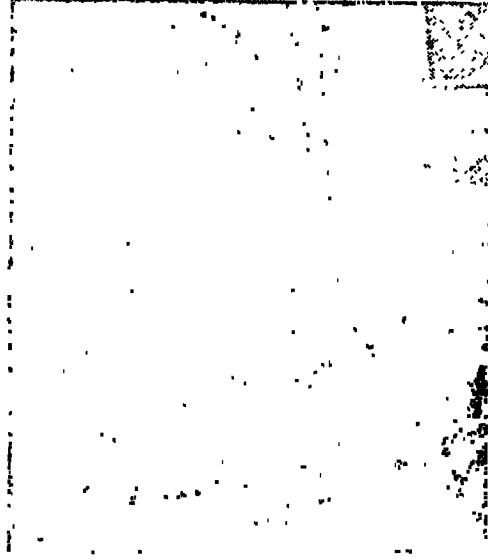
आपका जन्म मध्यप्रदेश में रायसेन नामक जिले में मड़खेरा नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम श्री इन्दरचन्दजी, माता का नाम श्रीमति सोनाबाई था। आपके यहां व्यापार एवं खेती का कार्य होता था। पूरा परिवार धर्म श्रद्धा से ओतप्रोत था। आपके बड़े भाई मुनि श्री बोधसागरजी के नाम से जाने जाते थे। भाई की संगति एवं उनके प्रवचनों से आपके मन में वैराग्य बढ़ा तथा आपने मासोपवासी मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी से ५ वीं प्रतिमा के व्रत धारण किए। संघ में रहकर धर्म साधना करते रहे। पू० आचार्य श्री धर्मसागरजी से केशरियाजी सन् १९८० में आपने मुनि दीक्षा ली। आप प्रतिदिन १०० माला णमोकार मंत्र की जाप्य किया करते हैं तथा प्रायःकर सारा समय मौन में ही व्यतीत करते हैं। आप संघ के तपस्वी सन्त शिरोमणी साधु हैं। आपके चरणों में शत शत वंदन।

मुनिश्री उत्तमसागरजी महाराज

आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में फलटण नगर में सन् १६२६ को हुवा था। आपके पिता का नाम मोतीराम, मां का नाम आलूबाई था। आप ३ भाई बहिन थे। आपकी धर्म में श्रद्धा बचपन से है। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य में आपने वर्षो संघ की सेवा की। आपने तलवाड़ा (बांसवाड़ा) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर आचार्य श्री से दीक्षा के लिए निवेदन किया। आचार्य श्री ने सत्पात्र समझ कर क्षुल्लक दीक्षा दे दी। सावला (उदयपुर) में आपने आचार्य श्री से ऐलक दीक्षा ली तथा पारसौला (उदयपुर) में आपने आचार्य श्री से ही मुनि दीक्षा लेकर आत्मकल्याण के मार्ग में संलग्न हैं। अष्ट कर्मों के नाश करने हेतु आप निरत हैं, धन्य है ऐसी दिगम्बर मुद्रा को, जो ऐसी कठोर साधना कर रहे हैं।

मुनिश्री निर्वाणसागरजी महाराज
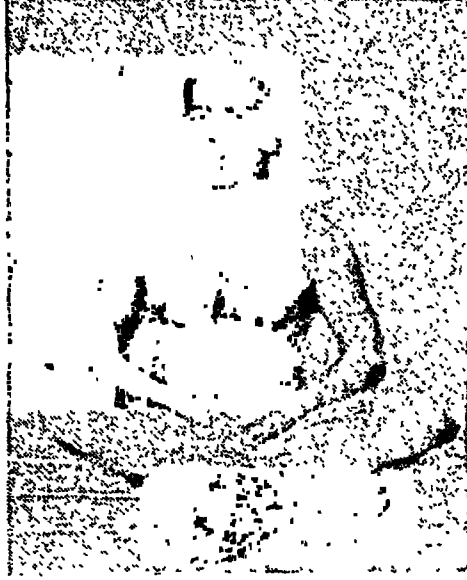
मुनि श्री का जन्म लगभग ३८ वर्ष पूर्व उमरमरा (विलासपुर) मध्यप्रदेश में श्री सरजूप्रसादजी के गृह में हुआ था। आपकी माताजी का नाम श्री मतिदेवीजी था। आपका पूर्व नाम व्रजभान जैन था। मुनि श्री के पूर्व गृहस्थ अवस्था में १३ भाई बहिन थे। आपकी लौकिक शिक्षा ११ वीं तक हुई। सोनागिर क्षेत्र पर मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी के दर्शन से आपके मन में वैराग्य के अंकुर प्रगट हुए। दिल्ली में भगवान महावीर स्वामी के पच्चीस सौ वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में आपने क्षुल्लक दीक्षा आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से ली तथा मुजफ्फरनगर (उ. प्र) सन् १९७६ में माघसुदी पंचमी को दिगम्बरी दीक्षा लेकर आत्मकल्याण कर रहे हैं।

मुनिश्री मल्लिसागरजी महाराज
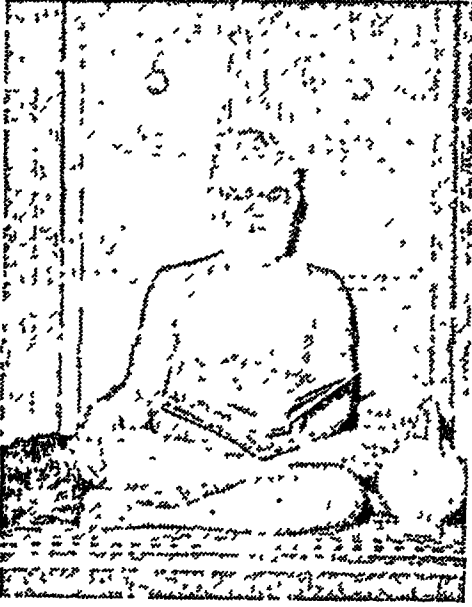
आपका जन्म कर्नाटक प्रान्त के जिला बेलगांव के अन्तर्गत ग्राम सदलगा में मातेश्वरी काशीबाई की कोख से वि० सम्वत् १९७४ में सुप्रभात की शुभलग्न में हुआ था। आपका बचपन का नाम मल्लप्पा था। आपके पिता श्री पार्श्व अप्पा सरल, परिश्रमी, धर्मात्मा, दयालु एवं शान्त स्वभावी थे। उनका तम्बाकू का व्यापार तथा खेतीबाड़ी का कार्य था। ग्राम के गणमान्य व्यक्तियों में उनकी गिनती होती थी।

स्कूल की शिक्षा के उपरान्त हमारे चरित्र नायक श्री मल्लप्पा को पिताजी ने व्यापार में लगा दिया। आपने बड़े परिश्रम और न्याय से व्यापार को चलाया। परन्तु प्रारम्भ से ही आपकी धर्म में रुचि थी। प्रातःकाल उठकर श्री मन्दिरजी में जाना, णमोकार-मंत्र की माला जपना आदि नित्य के कार्य थे। आपका विवाह एक सम्पन्न घराने में हुआ था। आपके चारपुत्र और दो पुत्रियां हुईं।

दस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत पालते हुए आपने माघ शुक्ला ५ वि० सं० २०३२ को मुजफ्फर नगर (उ० प्र०) में परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से अपार जन समूह के समक्ष सीधे ही मुनि दीक्षा ली। आपका नाम श्री मल्लिसागरजी महाराज रखा गया। आचार्य श्री ने आपसे दो माह के लिये नमक त्यागने को कहा परन्तु धन्य है आपका त्याग और गुरुभक्ति कि आपने जीवन भर के लिये नमक का त्याग कर दिया।

आपके गृहस्थ जीवन की धार्मिकता और संस्कारों का प्रभाव आपके परिवार पर बहुत गहरा पड़ा। बड़े पुत्र महावीरजी व बड़ी पुत्री गृहस्थाश्रम में है।

आपके बड़े पुत्र बाल ब्रह्मचारी श्री विद्याधर ने १८ वर्ष की अल्पायु में श्री १०८ आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज से सीधे ही मुनि दीक्षा ली और २३ वर्ष की अल्पायु में ही आचार्य पद से विभूषित किये गये। जिनका दीक्षा महोत्सव अजमेर में अत्यन्त समारोह पूर्वक मनाया गया था।

वे अत्यन्त शान्तस्वभावी, निस्पृही, परमज्ञानी, सुवक्ता तथा कवि व युवा आचार्य श्री विद्यासागरजी हैं।

आप (श्री मल्लिसागरजी) के अन्य दो पुत्रों तथा पत्नी और दोनों पुत्रियों ने आपके साथ दीक्षा ग्रहण की। आपके द्वितीय पुत्र श्री अनन्तनाथ ने ऐलक दीक्षा ली, नाम श्री योगिसागर रखा गया। तीसरे पुत्र का नाम श्री शान्तिनाथ था तथा ऐलक दीक्षा के उपरान्त श्री समयसागर नाम रखा गया। आपकी धर्म पत्नी श्री मतिबाई का नाम श्री आर्यिका समयमतीजी रखा गया। आपकी छोटी पुत्री स्वर्णमाला का नाम दीक्षा उपरान्त प्रवचनमतीजी रखा गया। दोनों ऐलक अब मुनि श्री बन गये हैं जो आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के संघ में हैं।

इसप्रकार आपका पूरा परिवार दीक्षा धारण करके धर्मसाधन और ज्ञानोपार्जन में पूर्णतया रत है। इस काल में जबकि लोग व्रत, संयम तथा चारित्र पालन को कठिन समझते हैं, आपका जीवन एक महान आदर्श उपस्थित करके हम सबकी आंखें खोलने तथा चारित्र की ओर दृढ़ता पूर्वक बढ़कर आत्म कल्याण करने एवं मानव जीवन को सफल बनाने की प्रेरणा देता है।
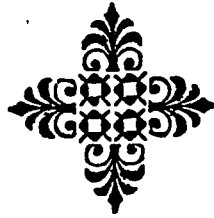
मुनि श्री रविसागरजी महाराज

खाते-पीते घर के हजारीलाल जैन को क्या सूझी कि छोटेपन में साधुओं की जमात में शामिल होने को छटपटा उठे। व्यवहारी जैसी छोटी सी वस्तियों में साधुओं का आना-जाना कभी हुआ हो यह बात तो गांव के अतिवृद्ध को भी ठीक से याद नहीं, सो हजारीलालजी साधुसेवा की अपनी उमगें दूरदराज के शहरों में विराजमान साधुओं की सेवा करके ही पूरी कर पाते थे। साधुसेवा और स्वाध्याय की मेहनत कुछ ऐसा रंग लायी कि वैराग्य की निर्झरणी वहने लगी। श्रावक लक्ष्मीचन्द जैन व चतुरी बाई की यह प्यारी संतान मंगसिर कृ० १३ सन् १९७९ जबलपुर में विराजमान आ० श्री सन्मतिसागरजी म० के चरणों में क्षुल्लक दीक्षा की याचना करने उपस्थित हुई। श्रावकवर्ग के समक्ष दीक्षा विधि पूरी हुई और क्षु० रविसागरजी महाराज की जय हो के नारों से आपके इस अनुकरणीय मार्ग की सराहना की। आचार्य श्री धर्मसागरजी से सावला (राजस्थान) में मुनि दीक्षा ली। सम्प्रति गुरुचरणों में वयावृत्ति करते हुए शास्त्रों का स्वाध्याय कर रहे हैं।
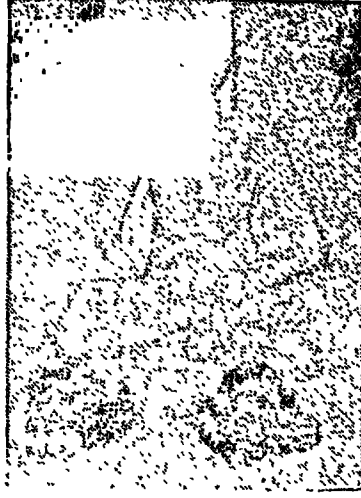
मुनिश्री जिनेन्द्रसागरजी महाराज

आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के नागौर नगर में सन् १९१४ में हुवा। आपके पिता का नाम श्री केसरीमलजी व माता का नाम श्रीमति भंवरीदेवी था। आपका पूर्व नाम रतनलालजी था। आप अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। १९ वर्ष की उम्र में माता पिता का स्वर्गवास हो गया। आपने संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए इम्फाल (मणीपुर) में व्यवसाय शुरू किया तथा धनोपार्जन किया। सन् १९७५ में आपके मन में वैराग्य की भावना का उदय हुवा और इसी भावना से आपने व्यापार से संन्यास धारणकर त्यागमार्ग को अपनाया। सन् १९८० में आपने संन्यासमय जीवन प्रारम्भ किया। १८ अक्टूबर १९८० को नागौर में आपने मुनि श्री श्रेयांससागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। मानव जीवन के सर्वश्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करने के लिए १९८२ में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से साबला (उदयपुर) में मुनि दीक्षा धारण की।

मुनि श्री गुणसागरजी महाराज

१०८ श्री मुनि गुणसागरजी महाराज का जन्म महाराष्ट्र राज्य के बीड़ जिले में सुरम्य उमापुरी ग्राम के श्रीमान् श्रेष्ठी चम्पालालजी पाटनी जाति खण्डेलवाल की धर्मपत्नी माता कस्तूराबाई की कुक्षि से सं० १९९६ में हुआ आपका जन्म नाम राजमल था। आपके और भी तीन बड़े भ्राता उत्तमचन्दजी, गुलाबचन्दजी, पूनमचन्दजी थे। माता-पिता और भाई-बहनों के प्यारे लघु कुंवर राजमलजी ही थे। आप स्वर्गीय आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के भानजे थे। जैसे मामा ने आतमकल्याण का मार्ग ढूंढा उसी मार्ग के आप भी प्रवर्तक हुए। आचार्य महाराज श्री की सतत् प्रेरणा से आप बचपन से ही संघ में रहने लगे। आचार्य श्री की पूर्ण कृपा थी। सं० २०२९ में आपने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये और धीरे धीरे आगे बढ़ते हुए सप्तम प्रतिमा धारण की आप बाल ब्रह्मचारी हैं।

सं० २०२५ में शान्तिवीर नगर में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के समय आचार्य श्री का अकस्मात् स्वर्गवास हो जाने से आपका मन संसार से विरक्त हो गया और आपने नवीन आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की।

भगवान् महावीर २५०० सौवें निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर संघ भारत की महान नगरी दिल्ली में आया। वहां पर आपने आचार्य श्री से मुनि दीक्षा ग्रहण की और आपका नाम गुणसागर रखा। जैसा नाम वैसा गुण आपमें नजर आता है। आप कई वर्षो से १०८ श्री अजितसागरजी महाराज के संघ में निरन्तर धर्म ध्यान में रत हैं।
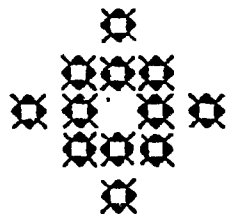
ऐलक श्री वैराग्यसागरजी महाराज

आपका जन्म माघ शुक्ला ८ सं० १९६६ को नवां गांव, उदयपुर (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री गुमानमलजी और माता का नाम श्रीमती चुन्नीबाई था। गृहस्थ अवस्था में आपको श्री चुन्नीलालजो के नाम से संबोधित किया जाता था। गृहस्थावस्था में धर्म के प्रति आपकी तीव्र लगन और वैराग्य के प्रति स्नेह था। परिणामस्वरूप प० पूज्य आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज सा० से आपने सं० २०२८ में क्षुल्लक दीक्षा धारण की। तत्पश्चात् सं० २०२९ में ही मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज सा० से आपने ऐलक दीक्षा ले ली। आपकी समाधि संघस्थ विहार करते हुये वड़ा गांव (खेखड़ा) उ० प्र० में आचार्य श्री के सान्निध्य में हुई।
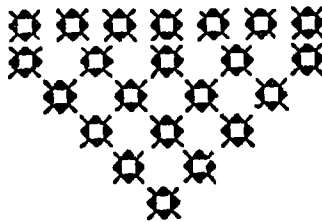
क्षुल्लक श्री पूरणसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक श्री पूरणसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम राजमलजी जैन था। आपका जन्म आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व धरोजा जिला शाजापुर में हुआ था। आपके पिता श्री केशरीमलजी व माता श्री जड़ावबाई थी। आप जैसवाल जाति के भूषण हैं व सावला गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपकी दो शादियां हुईं। आपके परिवार में दो पुत्र एवं दो पुत्रियां हैं।

संसार की नश्वरता को जानकर आपने स्वेच्छा से विक्रम संवत् २०१७ की पूर्णिमा को बूंदी (राजस्थान) में आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने शाहगढ़, सागर, खुरई, झालरापाटन आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने रस त्याग व दही का त्याग कर दिया है।

क्षुल्लक श्री संवेगसागरजी महाराज
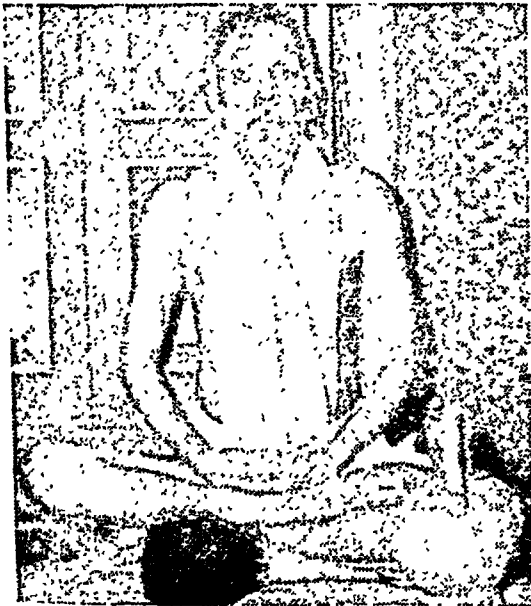
आपका जन्म सं० १९६५ में डूंगरपुर जिले के सरोदा ग्राम में हुवा था। आपके पिता का नाम माणिकचन्दजी तथा माँ का नाम मोतीवाई था। आपके ४ बच्चे थे। अपना सारा जीवन व्यापार आदि में ही व्यातीत किया। वागड़ प्रान्त में आचार्य श्री के आगमन पर आपने आचार्य श्री से ७ वीं प्रतिमा धारण की तथा २-६-८३ को पारसोला (उदयपुर) राजस्थान में परम तपस्वी आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा धारण की। आप संघ में रहकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं।

क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी महाराज

पद	—	क्षुल्लक
जन्म तिथि	—	श्रावण कृष्णा ५ सं० १९८१
जन्म स्थान	—	लाडनूं (राजस्थान)
श्रावक अवस्था का नाम	—	श्री शिवकरणजी
पिता का नाम	—	श्री सेठ मांगीलालजी अग्रवाल
माता का नाम	—	मौजी देवी
क्षुल्लक दीक्षा	—	माह सुद ५ सं० २०३२ सन् १९७६

श्री १०८ आ० धर्मसागरजी महाराज से मुजफ्फर नगर में धारण की ।

क्षुल्लक श्री योगेन्द्रसागरजी महाराज

आपका जन्म राजस्थान के पवित्र जिला बांसवाड़ा सुरम्य भीमपुर गांव में श्रीमान् श्रेष्ठी श्री कस्तूरचन्दजी जाति नरसिंहपुरा माता चमचोबाई की कुक्षि से संवत् १९८१ मार्गशीर्ष शुक्ला २ की शुभ वेला में हुवा। आपका जन्म नाम फूलचन्द रक्खा गया। आप दो भाई थे। छोटे का नाम मणीलालजी था। देवयोग से आपके पिताजी का देहावसान हो गया जब आप तीन या चार वर्ष के थे। माता ने दोनों को बहुत ही लाड़ प्यार से बड़ा किया। जब आप होशियार हुये तो यथा योग्य पाठशाला में पढ़ने भेजा गया और साथ ही धार्मिकज्ञान भी कराया। अल्पवय में ही आपकी शादी करादी गई। आपके तीन पुत्र व तीन पुत्रियां हैं। आपमें बचपन से धार्मिक संस्कार होने से शास्त्रों का अध्ययन आप बड़ी रुचिपूर्वक करते थे। राजनीति में भी आपका स्थान था जो कि १८ साल तक आप निर्विरोध सरपंच के पद पर रहे इसलिये जन साधारण में भी आपका अच्छा प्रभाव था। हर साल जहां तहां साधु संघ विराजमान रहते आप आहारदान के लिये चौका लेकर जाते एवं अनेक बार सपरिवार सम्मेदशिखर, गिरनार, बाहुबली आदि की तीर्थयात्रा एवं जन्म स्थान भीमपुर में नवीन चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन मन्दिर के निर्माण कार्य में एवं वहां दो बार पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि में आप का ही पूर्ण सहयोग रहा एवं सिद्धचक्र विधान आदि जिनभक्ति निरन्तर करते रहते थे।

परम पू० १०८ आचार्य प्रवर श्री शिवसागरजी महाराज का संघ सहित उदयपुर सं० २०२५ का चातुर्मास था जब पूज्य मुनि सुपार्श्वसागरजी महाराज की समाधि के अवसर पर आप सपरिवार चौका लेकर गये और वहां आपने सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये। जब से आपका वैराग्य बढ़ता गया। थोड़े दिनों में ही गृहजाल का त्याग कर दिया और बांसवाड़ा में एवं डूंगरपुर

उदयपुर के जिलों में अनेक गांवों में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं अनेक वेदी प्रतिष्ठा, बड़े बड़े विधानों का आयोजन भी आपने निर्भोमता से केवल धर्म प्रभावना की भावना को लेकर कराये हैं जिससे तीनों जिलों में आपका बहुत ही अच्छा प्रभाव रहा। परम पू० आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज सहारनपुर सं० २०३२ के चातुर्मास के बाद मुजफ्फर नगर संघ का विहार हुआ था। वहां पर आचार्य श्री से आपने नवमी प्रतिमा के व्रत लिये और आपका नाम धर्मभूषण वर्णी रखा। आप विशेष कर संघ के साथ रहते थे। आपके भाई ब्र० मणीलालजी भी आपके साथ एवं आपकी माता ब्र० चमनीबाई तीनों प्राणी साथ में रहकर आहार दान आदि देते हुवे निरन्तर धर्मध्यान करते थे। आचार्य श्री का चातुर्मास २०३८ का बांसवाड़ा में था जब महाराज श्री के सान्निध्य में ही माता चमनीबाई का धर्मध्यान पूर्वक समाधि मरण हो गया।

सं० २०३९ के वैसाख कृष्णा ७ को आदिनाथ दि० जैन मंदिर पारसोला में मानस्तम्भ पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा जो कि आपके द्वारा ही सम्पन्न हुई उसी अवसर पर परम पूज्य १०८ आचार्य शिरोमणि धर्मसागरजी से विशाल मुनिसंघ के सान्निध्य में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। तब इनका नाम योगेन्द्रसागरजी रक्खा गया। अभी आप परम पू० १०८ श्री अजितसागरजी महाराज के संघ में रहते हुवे निरन्तर पठन पाठन एवं धर्मध्यान में रत हैं।
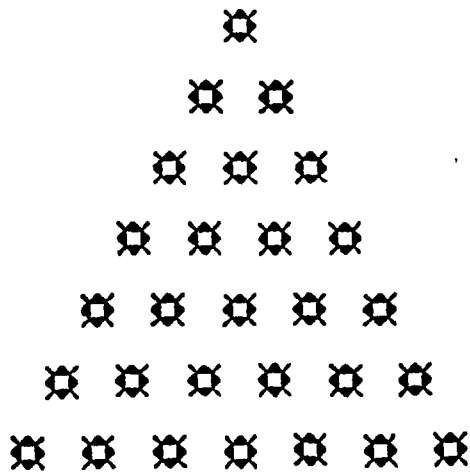
क्षुल्लक श्री करुणासागरजी महाराज

क्षुल्लकजी का जन्म स्थान राजस्थान के वांसवाड़ा जिले में सुरम्य अति रमणीय लोहारिया नगर में श्रीमान धर्मनिष्ठ श्रेष्ठि दाड़मचन्दजी नरसिंहपुरा की धर्मपत्नी माता श्री कुरीवाई की कुक्षि से सं० १९७० फाल्गुन शुक्ला १५ को हुआ। आपका जन्म नाम छगनलाल रक्खा गया आपके तीन भ्राता और एक वहिन थी। आपके छोटे भाईयों का नाम जवेरचन्द, हुकमीचन्द और मीठालाल है। आपके पिताजी गांव के सर्व मान्य व्यक्ति थे। आपकी आर्थिक स्थिति कमजोर होने से तीनों भाई वम्वई धनोपार्जन हेतु गये वहां काफी धन उपार्जन कर अपनी स्थिति सुदृढ़ वनाई। आपके छोटे भाई श्री जवेरचन्दजी ने ३५ वर्ष की उम्र में ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। उन्होंने पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर लोहारिया का जीर्णोद्धार कराया। वांसवाड़ा डूंगरपुर आदि जिलों में भी अनेक मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। धर्मशाला वोर्डिंग जैन पाठशाला आदि का कार्य किया। ऐसे थे आपके लघु भ्राता जिन्होंने परम पू० १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा लेकर मुनि पार्श्वकीर्ति नाम से प्रसिद्ध हुवे और गत वर्ष रूपा पारोली (जि० भीलवाड़ा) में समाधि पूर्वक स्वर्गवास को प्राप्त हुये।

आपने उदयपुर में १०८ मुनि श्री पार्श्वसागरजी से सातवीं प्रतिमा धारण की और इसी वर्ष २०३९ में पारसोला पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के सुअवसर पर १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और आपका नाम करुणासागर रखा।

आप अभी १०८ श्री अजितसागरजी महाराज के संघ में रहकर निरन्तर धर्मध्यान रत हैं।

क्षुल्लक श्री देवेन्द्रसागरजी महाराज

क्षुल्लक श्री देवेन्द्रसागरजी का जन्म राजस्थान के डूंगरपुर जिले में सावला गांव में श्रीमान् कचरूलालजी एवम् माता श्री चम्पीबाई की कुक्षि से सं० १९७७ में हुआ। आपका जन्म नाम देवचन्दजी था। आपके तीन भ्राता पन्नालाल, गेबीलाल, लक्ष्मीलाल थे।

आप स्वभाव से सरल एवम् धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे। आप बाल ब्रह्मचारी हैं आप अपने बड़े भाई गेबीलालजी के साथ जैन पाठशाला में अध्यापन और व्यापार में भी ध्यान देते हुए सादगी पूर्ण जीवन व्यतीत करते रहे। आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज का ससंघ सावला नगर में पदार्पण हुआ और बाहुवली वेदी प्रतिष्ठा के अवसर पर आपने सातवीं प्रतिमा को धारण किया। आप श्री धर्मभूषण वर्णीजी महाराज के साथ रहकर धर्म अध्ययन करते रहे।

पारसोला में सं० २०३९ में मानस्तम्भ की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के सुअवसर पर आपने आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की।

इस समय आप मुनि श्री १०८ श्री अजितसागरजी महाराज के साथ रहकर निरन्तर पठन पाठन करते हुये धर्म ध्यान पूर्वक अपने चारित्र का पालन कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री परमानन्दसागरजी महाराज

गृहस्थ अवस्था का नाम	—	पवनकुमार स्वदेशी
पिता का नाम	—	गोकुलचन्दजी स्वदेशी
माता का नाम	—	प्यारीबाईजी
निवास स्थान	—	इन्दौर
जन्म तिथि एवं जन्म स्थान	—	३०-११-१९५१, श्री सिद्धक्षेत्र माँगीतुंगी
लौकिक-अध्ययन	—	वी. कॉम
दीक्षा तिथि एवं स्थान	—	प. पू. आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महा०
धार्मिक अध्ययन	—	प्रायः चारों अनुयोग
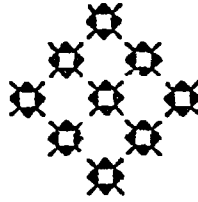
आर्यिका अनन्तमतीजी

आपका जन्म जिला औरंगाबाद में कन्नड़ नामक ग्राम में सेठी कुलोत्पन्न श्रीमान सेठ हीरालालजी के घर माता सरूपाबाई की कोख से सं० १९३९ में हुवा। जन्म के समय आपका नाम सोनाबाई रक्खा।

आपके माता पिता अत्यन्त सरल स्वभावी दानी और जैनागम के परम श्रद्धानी थे। इनके सुलक्षणों का प्रभाव इनकी सन्तान पर पड़ा।

बालिका सोनाबाई का पाणिग्रहण १३ वर्ष की अल्प आयु में आहूल निवासी श्री सुखलालजी काशलीवाल के साथ हुवा था। आपके एक पुत्र तथा एक पुत्री थी। कर्म की गति विचित्र है। विवाह के ९ वर्ष बाद आपके पति श्री सुखलालजी का देहावसान हो गया।

आपके दोनों कुल सम्पन्न और ऐश्वर्यशाली थे किसी भी प्रकार की चिंता नहीं थी। आपने अपने कर कमलों द्वारा दान भी खूब दिया। आपने चालीस हजार की धनराशि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में तथा पांच हजार दीक्षा के शुभावसर पर दान किए थे। इसके अलावा और भी हजारों रुपयों का दान आपने किया। अनेकों जगह जिनेन्द्र प्रभु की मूर्तियां स्थापित कराईं। श्री महावीरजी क्षेत्र में भगवान महावीर की ३ फुट उत्तुंग प्रतिमा स्थापित कराई।

इस प्रकार धन वैभव से सम्पन्न, प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा में उत्तम, दान में शिरोमणि होती हुई भी आपने इन सब सांसारिक वैभवों को क्षणभंगुर समझा। आप बाल्यकाल से ही इस असार संसार से उदासीन थीं और पति के स्वर्गारोहण हो जाने से आपने अपने अन्तर में आत्म कल्याण की भावना को प्रोत्साहन दिया। फलतः उदयपुर में हुए आचार्यवर चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी महाराज के चातुर्मास के शुभावसर पर आचार्य श्री के सद्उपदेशों से प्रभावित होकर ७ वीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए, संघ में रहकर आपने अनेकों वर्षों तक संघ की तन मन धन से भक्ति पूर्वक सेवा की। इतने पर भी आपको सन्तोष न हुआ फलतः आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज की सम्मति से आचार्य वीरसागरजी महाराज से नागौर नगर में मंगसिर शुक्ला षष्ठी शुक्रवार विक्रम सं० २००६ को क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण कर ली। आचार्य श्री ने आपका नाम बदलकर श्री 'अनन्तमतीजी' रखा।

माता अनन्तमतीजी क्षुल्लिका की दीक्षा के बाद अनेक परिषहों को सहन कर कठोर व्रतों का पालन करने लगीं और आत्म कल्याण की ओर तत्पर हो उग्र तप साधना के साथ कठिन व्रतों का अभ्यास करने लगीं। आपकी इस आत्म-कल्याण की कठोर साधना को देखकर आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज ने कार्तिक सुदी एकादशी सं० २०२२ को महाव्रतों के पालने का उपदेश व आज्ञा देते हुये, हजारों नर-नारियों के बीच आपको खुरई (सागर) में "आर्यिका" की दीक्षा दे दी।

इस प्रकार प्रारम्भ से आप धार्मिक प्रभावना व आत्म-कल्याण हेतु तप साधना में तत्पर व अग्रसर हैं। आपको शतशः नमन।
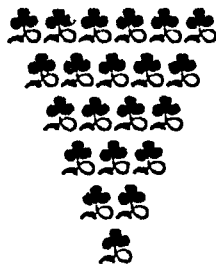
आर्यिका अभयमतीजी

जब परम पूज्य आचार्य श्री १०८ स्व० वीरसागरजी महाराज की शिष्या आर्यिका श्री १०५ ज्ञानमती माताजी ने हैदराबाद में चातुर्मास किया तब ही परम पूज्य आचार्य श्री १०८ स्व० शिवसागरजी महाराज से आज्ञा प्राप्त कर पूजनीया ज्ञानमती माताजी ने ब्रह्मचारिणी मनोरमाबाई को क्षुल्लिका दीक्षा दी और इनका नाम अभयमती रखा। इस उपलक्ष में मनोरमाबाई ने १४-८-१९६४ को अपनी ओर से उमास्वामी श्रावकाचार ग्रन्थ भी प्रकाशित करवाया था।

आपका जन्म आज से ३१ वर्ष पूर्व टिकेतनगर (बाराबंकी) उत्तरप्रदेश में हुआ। आपके पिता श्री छोटेलालजी गोयल हैं। और माता मोहनीदेवी हैं तथा पूजनीया ज्ञानमती माताजी आपकी बड़ी बहन हैं। बचपन में आपको मनोवती कहते थे। मनोरमा बहन की बाल्यकाल से ही घरेलू कार्यों की ओर उतना रुझान न था जितना कि साधु सत्संग धर्मोपदेश-लाभ की ओर था। घर पर आपने तत्वार्थ सूत्र तक धार्मिक शिक्षा ली। आप बचपन से ही उदार व सरल स्वभाव की थी।

संवत् २०१८ में फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में जब लाडनू में मानस्तम्भ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी और आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज ससंघ विराजमान थे तब आप मां के साथ दर्शन के लिए आई और मां को राजी कर आचार्य श्री से एक वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। संघ में ही रहने लगी। संघ के साथ शिखरजी की यात्रा की। आरा नगर में पहुंचने पर आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी महाराज से आपने पांचवीं प्रतिमा के व्रत ले लिये थे। शिखरजी में भगवान् पार्श्वनाथजी की टोंक पर आपने माताजी से सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिये थे। कलकत्ता से संघ पुनः शिखरजी पहुँचा। फिर खण्डगिरि उदयगिरि होता हुआ हैदराबाद पहुँचा। आपने ज्ञानमती माताजी से आर्यिका दीक्षा देने के लिये आग्रह किया तो उन्होंने आचार्यश्री की अनुमति आवश्यक बतायी। आपने आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली।

आपने सर्वार्थसिद्धि, गोम्मटसार तक धार्मिक अध्ययन जहां किया वहां न्याय-व्याकरण के ग्रन्थ भी पढ़े। संघ के नियमानुसार आप अपना अधिकांश समय धर्म ध्यान व शास्त्र स्वाध्याय में लगाती हैं।

आर्यिका श्री विद्यामतीजी

१० जनवरी १९१९ को मुबारिकपुर अलवर जिले में आपका जन्म हुवा था। आपके पिताजी का नाम चिरंजीलालजी एवं माताजी का नाम इमरतीबाई था। आप पालीवाल जाति की हैं। आपकी शादी पालम दिल्ली में हुई आपके दो लड़के हैं। आपके पति का वियोग होने से आपको अपने आप पर निर्भर होना पड़ा तथा आपने शिक्षक का पद सम्भाला तथा २० वर्ष तक स्कूल में बच्चों को शिक्षा दी। संसार से अनायास वैराग्य आया तथा आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से महावीरजी में सं० २०२५ में आर्यिका दीक्षा ली। आप कुशल वक्ता तथा तपस्वी साधु हैं। दशलक्षण, अठाई, सोलह कारण, आदि उपवास आप सदा करती रहती हैं।

आर्यिका विमलमतीजी

श्री १०५ विमलमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम फुलीबाई था। आपका जन्म आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व अडंगाबाद (बंगाल) में हुआ था। आपके पिता श्री छेगमलजी थे। जो प्रेस का काम करते थे। आपकी माता श्री दाखाबाई थी। आप खण्डेलवाल जाति की भूषण हैं। आपकी धार्मिक और लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपका विवाह भी हुआ। आपके परिवार में तीन भाई, दो बहन, तीन पुत्र व तीन पुत्रियां हैं।

गुरु संगति के कारण भावों में विशुद्धि आयी। अतः आपने विक्रम सं० २०२६ में सुजानगढ़ (राजस्थान) में श्री आचार्य विमलसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। आपको णमोकार आदि मंत्र का विशेष ज्ञान है। आपने तेल, दही आदि रसों का त्याग किया है तदनन्तर आचार्य धर्मसागरजी से आर्यिका दीक्षा लेकर आचार्य संघ में धर्म साधनारत हैं।

आर्यिका संयममतीजी

वि सं० १६७६ में मनोवाई का जन्म वागपत मेरठ यू० पी० में हुवा था। पिताजी का नाम श्री मोहनलालजी तथा माताजी का नाम श्री कमलाबाई था। आपने मगसिर सुदी दसमी सं० २०२९ में क्षुल्लिका दीक्षा ली थी। तथा सं० २०३१ में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। आप सरल एवं तपस्वी साध्वी हैं।

आर्यिका सिद्धमतीजी

आपका जन्म सं० १९७१ वैसाख सुदी पूर्णिमा को जयपुर में हुवा था। आपका पूर्व नाम कल्लीबाई था। आपके पिताजी का नाम श्री केशरमलजी था। आपकी मां का नाम श्रीमति बच्ची-बाईजी था। आपकी शिक्षा दूसरी तक ही हुई। सं० २०२९ में कार्तिक सुदी १२ जयपुर में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। आप कठोर तपस्वी हैं। आप समय समय पर १०-१० उपवास करती रहती हैं।

आ० जयमती माताजी

सं० १९९३ में मुजफ्फरनगर (यू० पी०) में श्री पदमप्रसादजी के यहां जन्म लिया था। आपका पूर्व नाम शान्तिबाई था। आपकी माताजी का नाम मीना देवी था। आपने ११ वीं तक लौकिक शिक्षण प्राप्त किया। सं० २०२९ में जयपुर में आपने आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली।

आर्यिका शिवमती माताजी

श्री शीलावाई का जन्म ३८ वर्ष पूर्व श्रवण बेलगोला (कर्नाटक) में श्री धरणप्पाजी के यहां हुवा था। आपके ३ भाई तथा ६ वहिनें हैं। आप बाल ब्रह्मचारिणी हैं। आपकी शिक्षा कन्नड़ी भाषा में हुई थी। पू.आ. ज्ञानमतीमाताजी के उपदेश से आपने गृहस्थ जीवन का त्याग करके आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से मार्गशीर्ष वदी दसमी सन् १९७४ को भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आप निरन्तर आत्म साधना में रत हैं। आप सरल एवं शान्त प्रकृति की हैं।

आर्यिका नियममतीजी

आपका जन्म सदलगा कर्नाटक में हुवा था। आपके माता पिता धार्मिक प्रवृत्ति के थे। धार्मिक संस्कार आपमें छोटेपन से ही थे। आपके ३ भाई १ बहिन तथा मां एवं पिताजी ने जैनेश्वरी दीक्षा ली। आपने भी अल्प वय में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से मुजफ्फर नगर (U. P.) में आर्यिका दीक्षा ली। आपका नाम नियममती रखा गया।

आ० समाधिमतीजी

जेठ सुदी दोज सं० १९६० में रायपुर निवासी श्री मेहरचन्दजी अग्रवाल की धर्मपत्नी श्री भागवन्ती देवी की कुक्षि से फीरीबाई ने जन्म लिया था। जिन्होंने माघ सुदी पंचमी सं० २०२३ मुजफ्फर नगर में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिका समाधिमतीजी नाम धारण किया।

आर्यिका निर्मलमतीजी

जन्मस्थान--बैराठ (जयपुर) राजस्थान

जन्मदिवस—मगसिर बदी १२ सं० १९८०

माता का नाम— गोपालीबाई

पिता का नाम— श्री महादेव सिंघई

जाति— अग्रवाल जैन

पूर्वनाम— मनफूलबाई

आपका जन्म राजस्थान के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। १३ वर्ष की आयु में आपका विवाह हो गया। परन्तु अशुभ कर्म के उदय से ११ महीने के बाद ही वैधव्य का भार आपके सिर पर आगया। इस अवस्था को देखकर घर वाले अनन्त शोक को प्राप्त हुए। परन्तु आपने इस दारुण कष्ट को सम भावना से सहन किया और परिवार के आग्रह करने पर भी दुबारा विवाह करने से मना कर दिया।

आपमें आचार्य देशभूषणजी महाराज, आचार्य शिवसागरजी महाराज और मुनि अजित-सागरजी महाराज के दर्शन एवं उनका धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य का भाव जाग्रत हुआ आचार्य धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका की दीक्षा अंगीकार की। फिर मासोपवासी श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज के संघ में सम्मिलित होकर सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थों की वन्दना की। फिर श्री १०८ दया-सागरजी महाराज के संघ में सम्मिलित होकर बाहुबलीजी की यात्रा की।
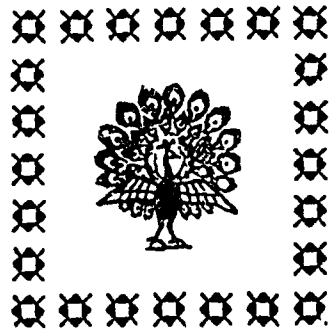
आर्यिका समयमतीजी

श्री १०५ आर्यिका समयमतीजी का जन्म सन् १९२१ में कर्नाटक प्रान्त के वेलगांव जिले के आकोला ग्राम में हुआ। प्रारम्भ से ही आप में धार्मिक प्रवृत्ति थी। जिनधर्म व पूजा आराधना में लीन रहती थीं। श्री मल्लप्पाजी [वर्तमान में मुनि श्री मल्लिसागरजी] की सह धर्मचारिणी रही। आपका गृहस्थ नाम श्रीमति था। आपके चार पुत्रों एवं दो पुत्रियों में बड़े पुत्र को छोड़कर पांचों पुत्र-पुत्रियों ने दीक्षा ले ली है। प्रख्यात युवा आचार्य विद्यासागरजी आपके ही पुत्ररत्न हैं। दोनों छोटे पुत्र भी मुनि हैं जो विद्यासागरजी महाराज के संघ में हैं। छोटी पुत्री स्वर्ण माला जो प्रवचन मति आर्यिका हैं। आपकी बहुत छोटी अवस्था है। आप सबने एक साथ सपरिवार विक्रम संवत् २०३२ माघ शुक्ला पंचमी को मुजफ्फर नगर (उत्तर-प्रदेश) में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से अपार जन समूह के मध्य दीक्षा ली। आप स्वाध्यायी सरल स्वभावी एवं शान्त प्रकृति की हैं।

धन्य धन्य है समयमति ।
समय का मूल्य समझ लिया ॥
सभी पुत्र पुत्री को लेकर ।
समय का सदुपयोग किया ॥

आर्यिका गुणमतीजी

पू० गुणमतीमाताजी का जन्म श्री महावीरजी में हुवा था। आपके पिता का नाम मूलचन्दजी पांड्या था। आपका पूर्व नाम असर्फीबाई था। आपका विवाह भंवरलालजी गंगवाल नीमाज (राजस्थान) के यहां हुवा था। आपके जन्म के समय पिता को धन की (असर्फियों) की प्राप्ति हुई थी इसीलिए आपका प्यार का नाम यही रहा। वचपन से धर्म में रुचि थी। पूजन, भजन, कीर्त्तन में विशेष रुचि रखती थीं। संगीत में अच्छी आस्था रही। आपके २ पुत्र एवं १ पुत्री हैं जो सम्पन्न एवं धार्मिक वृत्ति के हैं।

आचार्य वीरसागरजी से सातवीं प्रतिमा को धारण किया। महावीरजी में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के पुण्य अवसर पर आपने आर्यिका दीक्षा आचार्य धर्मसागरजी से ली।

दीक्षा के वाद आपने समस्त तीर्थों की पैदल वंदना की। आप सरल एवं प्रखर प्रतिभा की धनी हैं। प्रवचन शैली भी मनोरम है श्रोताओं के ऊपर आपके प्रवचनों की अमिट छाप पड़ती है आपके अन्दर गुरु भक्ति अटूट भरी हुई है। आपके द्वारा धर्म की महती प्रभावना होती रहती है। आप चारित्र शुद्धि के १२३४ उपवास भी कर रही हैं जो पूर्ण होने को हैं।

आर्यिका प्रवचनमती माताजी

आपका जन्म कर्नाटक प्रान्त के जिला बेलगांव के अन्तर्गत ग्राम सदलगा में मातेश्वरी श्रीमती देवी की कोख से सन् १६५५ में रक्षाबन्धन के दिन हुआ था। आपका बचपन का नाम सुवर्णकुमारी था। क्योंकि आपके जन्म से १० दिन पहले ही आपके पिता ने २१ तोला सोना खरीदा इसलिए आपका नाम सुवर्णा रखा गया। आपके पिता का नाम श्री मल्लप्पाजी है, वर्तमान में श्री १०८ मल्लिसागरजी महाराज के नाम से मुनि पद में विभूषित हैं और माता श्रीमती देवी वर्तमान में आर्यिका समयमती माताजी हैं।

आपके चार भाई व एक बहिन है, एक भाई सिर्फ घर में रहा और सब दीक्षित हैं। आपकी शिक्षा मराठी व कन्नड़ में सातवीं कक्षा तक हुई है। आपका पूरा परिवार धर्मनिष्ठ है, बच्चों पर माता पिता का असर हुए बिना नहीं रहता। आप बचपन से ही पूजा पाठ आरती भजन आदि गुणों में प्रवीण थीं, आपके बड़े भाई श्री १०८ आचार्य विद्यासागरजी की दीक्षा व उनका प्रवचन सुनकर ही आपके मन में वैराग्य हुवा था। पर घर से कैसे निकलें इस विचार में थे। सन् १६७५ में आचार्य कल्प श्री सुबलसागरजी महाराज के संघ ने सदलगा ग्राम में चातुर्मास किया। रोजाना आहारादि देना, प्रवचन सुनना आदि करते थे। आ० विद्यासागरजी महाराज के दर्शन के लिए राजस्थान आये और ८ अप्रेल १६७५ में सवाईमाधोपुर में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया और कुछ दिनों के बाद श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजी महाराज के पास पहुँचे तथा खतोली ग्राम में अक्षय तृतीया के दिन ७ वीं प्रतिमा धारण कर ली इस प्रकार आपने माघ शुक्ला ५ वि० सं० २०३२ को मुजफ्फर नगर (उ० प्र०) में परम पूज्य श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजी से अपार जनसमूह के समक्ष आर्यिका दीक्षा ली, आपका नाम श्री प्रवचनमती रखा गया आप सतत् मनन चिन्तन अध्ययन करते रहते हैं, आपकी मुख मुद्रा प्रतिसमय प्रसन्न रहती है।
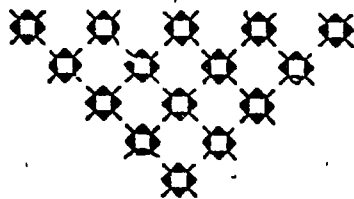
आर्यिका श्रुतमतीजी

आर्यिका श्रुतमती माताजी का पूर्व नाम सुशीला बाई था। आपका जन्म कलकत्ता में १४ अगस्त १६४७ में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री फागुलालजी श्रावक (वर्तमान में आ० क० श्री श्रुतसागरजी महाराज) है तथा माता का नाम बसन्तीदेवी था। बचपन से धर्म प्रवृत्ति के कारण आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। तथा आचार्य धर्मसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किए। आपने विशारद एवं शास्त्री की भी परीक्षा देकर ज्ञानार्जन किया। वर्तमान में पू० आदिमति माताजी से आप संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि का पठन पाठन करती रहती हैं।

भ० महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाण दिवस के शुभ अवसर पर आपने भारत की राजधानी ऐतिहासिक नगरी दिल्ली में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली थी।

मोह ममता को छोड़कर आप धर्म ध्यान-शास्त्र-स्वाध्याय को ही सर्वस्व समझने के लिए सभी को प्रेरणा दे रही हैं। आपने मुजफ्फर नगर, मदनगंज, पदमपुरी, भीलवाड़ा, लुहारिया आदि स्थानों पर चातुर्मास करके धर्म प्रभावना की।
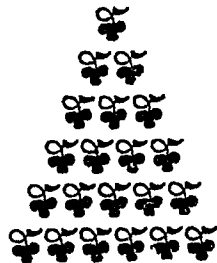
आर्यिका सुरत्नमतीजी

आपका जन्म मध्यप्रदेश में पन्ना जिले के अन्तर्गत गुनौर गांव में हुआ । आपके पिताजी श्री बेनीप्रसादजी व माताजी कमलाबाई जैन की आप तीन में से एक लाड़ली बेटी थी । आपका जन्म संवत् २०१४ में वैशाख बदी ऽऽ के दिन हुआ था । आपका जन्म नाम सुधाकुमारी रखा था । वैसे तो आपको बाल्यावस्था से ही धर्म में अधिक रुचि रही । आपके भाई की दीक्षा देखकर आपको सोलह वर्ष की अल्पायु में ही इस संसार रूपी मोह जाल से वैराग्य हो गया । तभी से आपने घर का त्याग कर दिया और १०८ श्री दयासागरजी महाराज के संघ में दो वर्ष तक रहकर धार्मिक मर्म एवं शास्त्र ज्ञान का मार्मिक अध्ययन किया । २५०० वें निर्वाण महोत्सव के सुअवसर पर प्रात स्मरणीय आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज से आपने दिल्ली में १८ वर्ष की अल्पायु में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया । उन्हीं के सान्निध्य में सन् १६७६ में वसंत पंचमी शुक्रवार के दिन मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) में आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । उसके बाद आप सम्मेदशिखरजी, गोम्मटेश्वर बाहूबलीजी, धर्मस्थल, म.गीतुंगीजी, गजपंथा, पोदनपुर समस्त भारतीय सिद्ध क्षेत्र की यात्रा करते हुए बम्बई में चातुर्मास के साथ-साथ धर्म प्रभावना कर रही हैं ।

आ० शुभमतीजी

आपने बैसाख सुदी तीज सं० २००४ में खुरई (सागर) में श्री गुलाबचन्दजी जैन के यहां जन्म लिया था। आपकी मां का नाम शान्तिबाई है। लौकिक शिक्षा चौथी तक ही रही। सन् १९७२ में आपने अजमेर नगर में आर्यिका दीक्षा आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से ली।

आर्यिका धन्यमतीजी

ब्र० सोनाबाई का जन्म डेह (नागौर) में हुवा था। बचपन में आपकी शिक्षा अल्प ही थी। आपका विवाह नागौर में हुवा था। आपकी एक पुत्री है। जो आज कटक में रहती है। आपका जीवन शान्ति के साथ व्यतीत हो रहा था कि अनायास आपके ऊपर वैधव्यता का बोझ आ पड़ा। आपने उसे सहन किया तथा आचार्य वीरसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किए आपने ३० वर्ष तक संघों में रहकर साधुओं की सेवा वैयावृत्ति की। अन्त में आपने उदयपुर (राजस्थान) में आर्यिका दीक्षा आचार्य श्री धर्मसागरजी से ली। केशरियानाथ तीर्थ पर आपने सल्लेखना ली तथा समाधि मरण कर आत्म कल्याण किया इस अवसर पर ४० साधु थे।

आप सरल, दानसेवी, परोपकारी एवं मिलनसार साध्वी थीं। सारे साधु आपकी भक्ति से प्रभावित थे।

आर्यिका चेतनमतीजी

आपका जन्म राजस्थान प्रान्त में सीकर नगर में हुवा था आपका पूर्व अवस्था का नाम श्री वरगवाई था। आपकी मां का नाम दाखांबाई था। आप परम पू० आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा मुजफ्फर नगर में माघ सुदी पंचमी को लेकर आत्म कल्याण के मार्ग में संलग्न हैं।
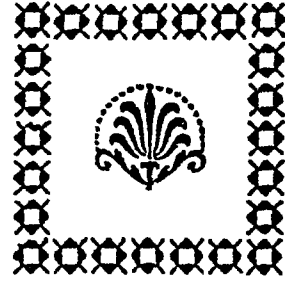
आ० विपुलमतीजी

श्री भागवतीवाईजी बचपन से ही धर्म में रुचि रखने वाली बालिका थी। आपका विवाह शिवपुरी जिला गूडर में श्री गुलाबचन्दजी के साथ हुआ था आपको १ पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई; पर कुछ समय बाद आपके पति का स्वर्गवास हो गया। आपने धर्म मार्ग को अपनाया तथा शेष समय धार्मिक कार्यों में लगाया। १९६२ में गृह त्याग कर आचार्य श्री से आ० दीक्षा लेकर संघ में रहकर आत्म कल्याण के मार्ग में संलग्न हैं। आपके सुपुत्र भी मुनि दीक्षा लेकर आत्म साधना में निरत हैं।

आ० रत्नमतीजी

पू० आर्यिका रत्नमतीजी ने अवध प्रान्त में जन्म लेकर आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से दीक्षा ली है आपका विशेष परिचय प्राप्त नहीं हो सका है।

क्षुल्लिका दयामतीजी

आपका जन्म छाणी निवासी हूमड़ जैन धर्मावलम्बी श्रीमती मणिकाबाई की कोख से सं० १६६० में हुवा। आपके पिताश्री का नाम श्री भागचन्दजी था। आपकी गृहस्थावस्था का नाम फूलीबाई था। आप स्वर्गीय आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज सा० (छाणी) की बहिन थी। आपका विवाह श्री फूलचन्दजी जैन हूमड़ के साथ हुवा था लेकिन बचपन से ही आपको संसार के प्रति विरक्ति हो गई थी। वैवाहिक जीवन में ऐसे अनेक अवसर आये जब आप संसार की असारता का अनुभव कर धर्म मार्ग पर चलने को आसक्त हो गई। सं० २०१६ में डूंगरपुर में दर्शनार्थ भ्रमण करते हुये आपने स्व० आचार्य महावीरकीर्तिजी से सप्तम प्रतिमा धारण कर ली। तत्पश्चात् सं० २०२० में खुरई में प० पू० १०८ मुनिराज श्री धर्मसागरजी महाराज सा० (वर्तमान आचार्य) से क्षुल्लिका दीक्षा धारण की। दीक्षा के पश्चात् कलोल, डूंगरपुर, अजमेर, लाडनू, खुरई आदि स्थानों पर आपके चातुर्मास हुये।

क्षुल्लिका यशोमतीजी

आपका जन्म सन् १९६१ में उदयपुर (राजस्थान) में हुवा था आपके पिता का नाम श्री जवाहरलालजी तथा माता का नाम चम्पाबाई था। आपका पूर्व नाम सुरेखा था। शिक्षा ५ वीं तक ही रही। आपने छोटी अवस्था में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया था। उदयपुर में आपने आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली। आपके बड़े भाई भी वर्तमान में मुनि सम्भवसागरजी के नाम से जाने जाते हैं। बचपन में ही घर को छोड़कर आत्म कल्याण के मार्ग में निरत हैं। आप आचार्य संघ में रहकर आत्म साधना कर रही हैं।

क्षुल्लिका बुद्धमतीजी

आपका जन्म वि० सं० १९६७ में गोलापुरा जाति में जबलपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम बसोरेलाल एवं माता का नाम जमनाबाई था। पूर्व नाम कस्तूरीबाई था। आपने हिन्दी संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। सं० १९८३ में खुरई में मुनि श्री धर्मसागरजी महाराज से क्षु० दीक्षा ग्रहण की।
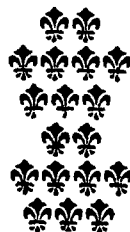
ब्र० श्री प्यारीबाई

जन्मस्थान	—	पारौल (ललितपुर उ० प्र०)
पिता का नाम	—	परमानन्दजी जैन
माता का नाम	—	नन्नीबाईजी
घर की स्थिति	—	सम्पन्न परिवार ।

जन्म लेने के बाद उसका भावी जीवन कैसा होगा, कहा नहीं जा सकता । कौन कितनी आयु लेकर आया, इसे तो केवल, केवली ही जानते हैं । साधारण मनुष्य के ज्ञान का यह विषय नहीं । पारौल (ललितपुर उ० प्र०) में समृद्ध परिवार में श्री परमानन्दजी के घर जन्मी प्यारीबाई ने धीरे धीरे कुछ बसन्त पार कर लिये । माता-पिता को चिन्ता ने आ घेरा । बच्ची के हाथ पीले करने हैं । चिन्ता ने सोना, खाना सब खराब कर दिया । शुभ योग से अपने प्रयत्न के फलस्वरूप श्री परमानन्दजी ने मड़ावरा निवासी श्री रामचन्द्र को अपनी पुत्री के लिये वर रूप में चुन लिया । घर सम्पन्न था । वर बनने वाला लड़का घर में ज्येष्ठ पुत्र था । उसके अन्य दो भाई परमलाल और प्रेमचन्द्र थे । शुभ मुहूर्त में पिता ने श्री रामचन्द्र के साथ अपनी लाड़ली बच्ची का पाणिग्रहण कर दिया । पिता अपने कर्त्तव्य की पूर्णता पर खुश थे किन्तु दुर्दैव कहीं बैठा मन ही मन हँस रहा था । एक वर्ष के भीतर ही हँसती, मुस्कराती बालिका का मुंह, जैसे स्याह हो गया । उसके सारे स्वप्न स्वप्न की तरह ही विलीन हो गये । अब उसकी आंखों को केवल आंसुओं का ही सहारा रह गया ।

उसने साहस बटोरा और अपना ध्यान अध्ययन में लगाने का निश्चय किया । इससे अच्छा शोक निरोध का दूसरा उपाय नहीं था । मड़ावरा से इन्दौर की ओर देखा और उसे कंचनबाई दिगम्बर जैन आश्रम में अध्ययन की सुविधा प्राप्त हो गई । आठवीं कक्षा तक मन लगाकर अध्ययन किया और शुभोदय से उसे अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य प्राप्त हो गई ।

उज्जैन की जैन पाठशाला में ९ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया । बालक बालिकाओं में उसका समय बीतने लगा । समय ने पल्टा खाया सौभाग्य से श्री धर्मसागरजी महाराज का समागम मिला । सिद्धवर कूट में आचार्य श्री विमलसागरजी से दो प्रतिमा के नियम ग्रहण किये । भावों में विशुद्धि आने लगी । उत्तरोत्तर धार्मिक भावना प्रगाढ़ होती गई और आचार्य श्री धर्मसागरजी से सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिये । कदम एक बार आगे बढ़े तो बढ़ते ही गये । श्री १०८ मुनि पुष्पदन्तसागरजी का सान्निध्य मिला और उनसे ८ वीं प्रतिमा के व्रत शिरोधार्य किये । वर्तमान में उनके संघ के साथ ही धर्म साधन करती हुई विचरण कर रही हैं । स्वभाव से सरल एवं मधुर हैं ।

❖

नवदीक्षित मुनि अमितसागरजी

आपका जन्म दुगाह कलां (खुरई) म० प्र० में श्रेष्ठि श्री गुलाबचन्दजी के घर पर दिनांक २६-६-६३ ई० संवत् २०२० को हुआ था । आपके ४ भाई २ वहने हैं, आपने ११ वीं कक्षा पास की, प्रारम्भ से आपकी प्रवृत्ति धार्मिक कार्यों में अधिक समय लगाने की थी, केवल १८ वर्ष की अल्प आयु में ही आपने श्री पुष्पदन्तजी महाराज से १२-२-८१ को ब्र० व्रत ग्रहण कर लिये, जिन्हें आगे ही आगे बढ़ने की एक ही लगन हो, उन्हें कौन रोक सकता है, विद्याध्ययन करते रहे, आप ५-१२-८२ को आचार्य महाराज के चरण सान्निध्य में आये, एवं भीमपुर में आचार्य श्री से २ प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये । २१ वर्ष की अल्पायु में आपके भाव सर्वोत्तम उत्कृष्ट संयमी, महाव्रती मुनि बनने के हुए हैं वे न केवल प्रसंशनीय हैं, बल्कि स्तुत्य हैं जितना गुणानुवाद किया जाय कम है, आपने नन्हें नन्हें बालकों को जो प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षण देकर इतने कम समय में संस्कार डाले हैं वे पौधे निश्चित रूप से अक्षुण्ण वट वृक्ष बनेंगे, आपका मृदुल स्वभाव, गुरु भक्ति, सच्ची लगन निश्चित रूप से देश समाज एवं धर्मानुरागी बन्धुओं को सन्मार्ग की ओर ले जाने में अत्यन्त सहायक होगी इसमें कोई सन्देह नहीं । धन्य है आपके माता पिता को जिन्होंने आपसा पुत्र रत्न उत्पन्न कर सम्पूर्ण कुल को गौरवान्वित कर दिया । ऐसे युवा मुनीश्वर को शत शत वन्दन ।

❖

नवदीक्षित मुनि समकितसागरजी

आपका जन्म सिरगन (ललितपुर) में का० शु० १० संवत् १९८८ में गोलारे (जैन) परिवार में श्रेष्ठि श्री परमानन्दजी की धर्म पत्नी रामकुंवरबाई की कुक्षि से हुआ । आपने सिरगन एवं अन्य स्थानों पर धार्मिक शिक्षण संस्थाओं में विद्याध्ययन करके शास्त्री परीक्षा पास की । ५ वर्ष तक राजस्थान के धार्मिक विद्यालयों में शिक्षक पद पर कार्य किया, २५ वर्ष किराना का व्यापार किया, आ० देशभूषण महाराज से फलटण में ३-९-७७ को दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये, श्रेयांससागरजी महाराज से तीसरी प्रतिमा के व्रत लिये, दिनांक ३-३-८२ को आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से ब्रह्मचर्यव्रत एवं सातवीं प्रतिमा के पारसोला में व्रत लेकर घर चले गये, घर से विरक्ति होने लग गई थी और यदा कदा संघ में शामिल हो जाते थे । अजमेर आकर परम दयालु आचार्य श्री के चरणों में मुनि दीक्षा का श्री फल चढ़ाया, प्रार्थना स्वीकृत हो गई, सम्पूर्ण समाज जानकर हर्ष विभोर हो गया, और दिनांक ४-१०-८४ को आपने दि० जैन मुनि दीक्षा ली आपका कुल परिवार, माता पिता धन्य हो गये, धन्य है आपकी इस जैनेश्वरी दीक्षा को जो आप मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं ।

❖

आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज

द्वारा

दीक्षित शिष्य

आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज

मुनि श्री समतासागरजी

आर्यिका सरलमतीजी

आर्यिका शीतलमतीजी

आर्यिका दयामतीजी

मुनि श्री समतासागरजी

"जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा"

जिसके आदर्श जीवन से दूसरों को अपने जीवन के लिए प्रेरणा मिले, जो कहने की अपेक्षा करके बताए, वास्तव में जीवन वह है। अन्यथा जीवन की घड़ियाँ बीतने में समय यों ही निकलता जाता है।

विद्वत्ता और चरित्र परस्पर पूरक हैं। इनको सुदृढ़ बनाने के लिए श्रद्धा इनकी पृष्ठभूमि है। इन तीनों का सामंजस्य हो जीवन का अन्तिम लक्ष्य रत्नत्रय बन जाता है। इस रत्नत्रय का भव भवान्तरों तक सतत् साधन ही एक दिन साधक को अपने चरम लक्ष्य तक पहुंचाता है—वह चरम लक्ष्य है मुक्ति, निर्वाण या सिद्ध अवस्था।

पण्डित महेन्द्रकुमारजी पाटनी जैसे बाहर रहे उसी तरह सदैव अन्तरङ्ग में भी। जीवन में जो सोचा उसे जीवन में उतारा। अवस्था के साथ साथ आत्महित में प्रवृत्त रहे। आत्मा की अन्तरंग आवाज को बाहर साकार रूप देने में सदैव कटिबद्ध रहे। जीवन के प्रारम्भ में सामान्य और उसके छोर पर जीवन को सार्थकता या कल्याण की ओर प्रवृत्त करना—यह जीवन की सफलता के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण बात रही है।

परमश्रद्धेय धर्मवीर सेठ टीकमचन्दजी सोनी जब कभी हवेली से घीमन्डी आ जाते थे तब सवारी आने में विलम्ब होने पर श्री महावीर दिगम्बर जैन विद्यालय (वर्तमान में राजकीय टीकमचन्द जैन हायर सैकण्डरी स्कूल) में पधारते और विद्यार्थियों से धर्म सम्बन्धी प्रश्न पूछ कर उनके लिए तत्काल पारितोषिक घोषित कर देते थे। प्रधानाध्यापकजी उनसे निवेदन करते थे कि इन बालकों से गणित, अंग्रेजी आदि विषय भी पूछे जाने चाहिए तो सेठ सा० बड़ी सहजता से कहते थे कि ये सब जीविका साधन के विषय हैं। बालक परिश्रम स्वतः करते रहेंगे। विद्यालय की स्थापना का उद्देश्य है धर्मात्मा, चरित्रवान, विद्वान् बनाना—वह पूरा हो रहा है या नहीं, मैं यही देखना चाहता हूं। यदि यहाँ से एक भी छात्र ऐसा निकल गया तो मैं समझूंगा कि मेरा और मेरे विद्यालय का ध्येय पूरा हो गया। मुझे यह लिखते हुए बड़े गौरव का अनुभव हो रहा है कि सेठ सा० की

भावना को पूर्ण साकार बनाने में मेरे सहपाठी श्री पं० महेन्द्रकुमारजी पाटनी आगे आए। समाचार-पत्रों में जब यह समाचार पढ़ने को मिला कि श्री पाटनीजी सेवानिवृत्त हो क्षुल्लक दीक्षा लेने जा रहे हैं तो आत्मा हर्ष से गद्गद् हो गई। विचार आया कि ये जीवन के विकास में भी पीछे नहीं रहे तो जीवन समेटने के समय भी लक्ष्य को नहीं छोड़ा।

पण्डितजी अपने भरे पूरे गृहस्थ जीवन का दायित्व अपने सुयोग्य पुत्रों को प्रसन्नता पूर्वक सौंपकर आत्मकल्याण की ओर बढ़ रहे हैं—इससे अधिक प्रेरणादायक बात और नहीं हो सकती है।

पण्डितजी ने सन् १९१६ में अजमेर जिले के ऊँटड़ा ग्राम में खण्डेलवाल कुल के प्रतिष्ठित परिवार श्री फतेहलालजी पाटनी के यहाँ जन्म लिया। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में ही पाई अनन्तर अपने पितृव्य श्री मिश्रीलालजी पाटनी के कारण अजमेर में शिक्षा प्राप्ति के लिए आए तथा श्री महावीर दिगम्बर जैन विद्यालय में प्रविष्ट हुए। पण्डितजी सभी विषयों में परिश्रमशील और अत्यन्त सुशील छात्र रहे। यही कारण था कि विद्यालय के अध्यापक व प्रधानाध्यापक भी जब कभी किसी विवाद का फैसला करते थे तो इनकी राय को महत्त्व दिया करते थे।

विद्यालय में समाज के मूर्धन्य विद्वान अध्यापक रहे थे। अनेक ग्रन्थों के टीकाकार पं० लाला-रामजी शास्त्री, पं० मुन्नीलालजी, पं० बनारसीदासजी शास्त्री, पं० जवाहरलालजी शास्त्री, पं० विद्या-कुमारजी सेठी एवं पं० वर्धमान पार्श्वनाथजी शास्त्री रहे। पं० मोतीचन्दजी पाटनी, लाला हजारी-लालजी जैन, पं० रामचन्द्रजी उपाध्याय आदि अन्य विषयों के अध्यापक थे। सभी अध्यापकों का जीवन आदर्श था। उनसे केवल पुस्तकीय ज्ञान की ही शिक्षा-दीक्षा नहीं मिली अपितु जीवन की रचनात्मक प्रेरणा भी मिलती रही।

सन् १९३० में पण्डितजी ने विद्यालय छोड़ दिया इसके बाद पं० विद्याकुमारजी के पास स्वयंपाठी बनकर पढ़ते रहे।

वाराणसी की मध्यमा, कलकत्ता की काव्यतीर्थ और सोलापुर से शास्त्री परीक्षा दी। पं० जी ने दो विवाह किए—प्रथम पत्नी से आपके कोई सन्तान नहीं हुई। द्वितीय पत्नी से दो पुत्र हुए। दूसरी पत्नी का निधन हुए भी काफी समय हो गया है। तृतीय विवाह के लिए आपने कतई मना कर दिया।

पं० जी सबसे प्रथम श्री दि० जैन पाठशाला, केसरगंज अजमेर (वर्तमान में श्री दि० जैन उ० प्रा० विद्यालय) में धर्माध्यापक नियुक्त हुए। तीन वर्ष के बाद यहां से त्याग पत्र देकर स्व० रायबहादुर बावू नानमलजी अजमेरा के प्राइवेट पण्डित बनकर कार्य करते रहे।

करीबन सन् १६३६ में मदनगंज में दि० जैन विद्यालय की स्थापना (वर्तमान में के० डी० जैन हायर सैकण्डरी स्कूल) हुई। उसके प्रथम अध्यापक पं० महेन्द्रकुमारजी पाटनी नियुक्त हुए। आपके सतत् प्रयास से विद्यालय प्रगति की ओर बढ़ता गया। पण्डितजी के अध्यापन कार्य एवं कर्त्तव्यनिष्ठा की अमिट छाप विद्यालय में सदा बनी रही। यह विद्यालय राजस्थान में एक सुप्रसिद्ध शिक्षण संस्था है। आप यहाँ से ३१ जुलाई १६७४ को सम्मान पूर्वक सेवानिवृत्त हुए। आपकी इस अनुपम सेवा पर मदनगंज जैन समाज ने भी आपको अभिनन्दन पत्र अर्पित किया।

आपने इस अवसर पर निम्नप्रकार से अपनी दान घोषणा की—

१००१) श्री जैन भवन, मदनगंज

१००१) श्री तेरह पंथी मन्दिरजी मदनगंज

१००१) श्री मंदिरजी ऊँटड़ा

१००१) श्री के. डी जैन हायर सैं. स्कूल मदनगंज

इसके अतिरिक्त छह हजार रुपयों की राशि अपने पुत्रों के पास रखदी है कि जहाँ उचित समझें वहाँ देते रहें। इस प्रकार आपने अपने उपार्जित द्रव्य का वड़ा सदुपयोग कर लिया। आपके दो सुयोग्य पुत्र हैं, बड़े पुत्र श्री चेतनप्रकाश जोधपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं और छोटे पुत्र श्री पदमचन्द, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊनशोध संस्थान अविकानगर (जयपुर) में वरिष्ठ शोधसहायक हैं। इसप्रकार दोनों पुत्र अच्छे पदों पर कार्यरत हैं।

मदनगंज जैन समाज ने पण्डितजी से अपेक्षा की थी कि वे मदनगंज में रहकर समाज व धर्म की सेवा में अपना अधिक योग प्रदान करें। लेकिन पण्डितजी ने आत्म हितार्थ गृह–त्याग कर आचार्य-कल्प १०८ पूज्य श्री श्रुतसागरजी महाराज से क्षुल्लक पद धारण करने के लिए श्रीफल भेंट कर दिया और क्षुल्लक दीक्षा रेनवाल में ली।

पण्डितजी विद्वान होने के साथ साथ दृढ़ चरित्रनिष्ठ भी हैं। आप जीवन में कई कठोर त्याग लेकर सदैव अपने हित में लगे रहे। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि वे जैसे अन्दर वैसे सदैव बाहर रहे। आपकी वृत्ति सादा एवं विचार सदैव उच्च रहे।

आदर्शता के साथ जीवनयापन किया उसी का परिणाम है कि सहर्ष दीक्षा लेकर आत्म कल्याण की ओर अग्रसर हैं तथा उनके सुयोग्य युगल पुत्र एवं सम्पूर्ण परिवार उनकी इस आत्मकल्याण की भावना में बड़े सहायक रहे हैं। यह कहना होगा कि पण्डितजी ने जीवन में सभी कार्य सुन्दर रीति से सम्पन्न किए उसी का परिणाम है कि इनका यह सम्पूर्ण जीवन आदर्श रहा।

आचार्य संघ के साथ रहकर धर्मध्यान करते रहे थे। संघ का विहार श्री महावीरजी की ओर हुवा तब आपने श्री महावीरजी में मुनि दीक्षा ली। संघ का विहार सुजानगढ़ की ओर हुवा तब कालू चातुर्मास के बाद विहार हुवा कि बलूदां राजस्थान में आपकी समाधि हो गई।

आपने जैन समाज के विद्वानों को एक नई दिशा दी तथा त्याग मार्ग को स्वीकार कर आत्म कल्याण किया। आत्मगोपन की वृत्ति के कारण आप विज्ञापन बाजी और प्रचार प्रसार की भावना से कोसों दूर रहें धन्य है ऐसा मोहक व्यक्तित्व।
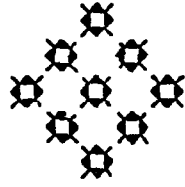
आर्यिका सरलमतीजी

आपका जन्म श्रावण शुक्ला १३ सं० १९९० में मध्य प्रान्त के टीकमगढ़ में श्रेष्ठी श्री चुन्नीलालजी के यहाँ पर हुआ। आपकी माता का नाम सुगनबाई था। आपका पूर्व नाम ब्र० सुमित्राबाई था। उदयपुर में वैसाख सुदी १० सं० २०२६ में आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराजजी से आपने आर्यिका दीक्षा धारण की। आप अपने जीवन को सफल बना रही हैं। आपका त्याग प्रशंसनीय है।

आर्यिका शीतलमतीजी

१०५ श्री शीतलमती माताजी की आयु इस समय ४२ वर्ष की है आपका स्वभाव अति ही शीतल है। आपका जन्म गाँवडी में श्रीमान् न्यालचन्दजी व माता झकुबाई की कोख से हुआ आपका जन्म नाम गेंदीबाई रक्खा आपके दो भाई तीन वहन हैं उसमें सबसे छोटे आप ही हैं। आपका विवाह साबला निवासी श्री गोरधनलालजी से हुआ परन्तु ५ महिनें पश्चात् ही पति का तीन दिन की बुखार में ही स्वर्गवास हो गया १८ वर्ष की आयु में ही ऐसी अवस्था देखनी पड़ी। छोटी उम्र में ही इस पर्याय के दुःख का अनुभव करते हुये अपना समय स्वाध्याय में बिताया। धर्म शिक्षा नहीं मिलते हुये भी आपने अपना जीवन इस तरफ लगाने का ही भाव बनाया। साबला में ज्ञानमती माताजी का आवागमन हुआ उन्हीं की प्रेरणा से आपके विचार बदलते गये फिर आपका मन घर में नहीं लगा और माताजी के साथ ही वहाँ से चले गये कुछ दिन पश्चात् ही आपने प्रतापगढ़ में सं० २०२५ में आ० शिवसागरजी महाराज से श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को दूसरी प्रतिमा के व्रत ले लिये। फिर आप संघ में ही रहने लगी और धर्म ध्यान करने लगी महावीरजी में आपने आ० शिवसागरजी म० के चरणों में दीक्षा का नारियल चढ़ाया परन्तु दुर्भाग्य-वश आ० म० का स्वर्गवास हो गया दीक्षा नहीं हो सकी फिर आपने आ० क० श्रुतसागरजी म० से उदयपुर में सप्तम प्रतिमा ग्रहण की। आपने चारों धाम की यात्रा की और फिर आकर दीक्षा का नारियल साहपुर में चढ़ाया और आपने दीक्षा मदनगंज-किशनगढ़ में ली सं० २०२९ में क्षुल्लिका के रूप में आ० क० श्रुतसागरजी म० से ली और रेनवाल किशनगढ़ में आ० दीक्षा सं० २०३२ में उन्हीं से ली। दीक्षा के बाद आपने अपना पठन पाठन में मन लगाया और श्री अजितसागरजी म० से पढ़ना शुरू किया अब आप दैनिक कार्य सुचारू रूप से करती रहती हैं। स्वास्थ्य कमजोर रहने पर भी आत्म बल से जितना होता है उतना उपवास व्रत भी करती हैं इस प्रकार आत्म कल्याण की भावना वनी रहे यही हमारी भावना है।

आर्यिका दयामतीजी

पूज्य १०५ श्री दयामती माताजी का स्वभाव दयामय ही है। आपका स्वभाव हर समय पर उपकार में ही रहता है आपके पिता श्री गोरीलालजी सिंघई माता श्री महारानी की कुक्षी से आपका जन्म सागर में हुआ। आपका जन्म नाम नन्हीं-बाई रक्खा गया। नन्हींबाई १५ वर्ष की हुई और माता पिता को शादी की चिन्ता होने लगी और आप की शादी छोटेलालजी सिंघई से करदी परन्तु बाल बच्चे नहीं होने के कारण अपने धर्म ध्यान में लीन होते रहे छोटी आयु में ही धर्म ध्यान में रहने से २५ वर्ष घर में रहकर फिर वैधव्य अवस्था प्राप्त होने पर घर में मन नहीं लगा और साधु सम्पर्क में आगई और अपना धर्म ध्यान करती रहीं परन्तु मन में शान्ति नहीं रहती थी फिर सं० २०१८ में आ० श्री धर्मसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये और आ० क० श्री श्रुतसागर जी म० से टोडारायसिंह में सातवीं प्रतिमा ली। व्रतों में रहकर अपना धर्म साधन करते रहे फिर वैराग्य भावनाओं की जागृति हुई और श्रुतसागरजी म० से निवेदन किया कि मुझे आगे बढ़ना है इसमें रहकर आत्म कल्याण नहीं होता। म० श्री ने आपको किशनगढ़ में आर्यिका दीक्षा दे दी। सं० २०२४ से आप अपना धर्म ध्यान सुचारु रूप से करती रही हैं।
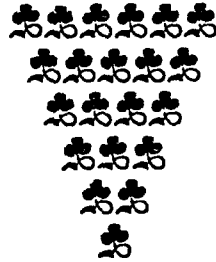
मुनि श्री दयासागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

श्री दयासागरजी महाराज

मुनिश्री सुदर्शनसागरजी
मुनिश्री रयणसागरजी
मुनिश्री ऋषभसागरजी
मुनिश्री समाधिसागरजी प्रथम
मुनिश्री समाधिसागरजी द्वितीय
मुनिश्री समाधिसागरजी तृतीय
मुनिश्री निजानन्दसागरजी
मुनिश्री पार्श्वकीर्तिजी
क्षुल्लक समतासागरजी
क्षुल्लक निरंजनसागरजी
क्षुल्लक उदयसागरजी
आर्यिका सुप्रकाशमतीजी
आर्यिका प्रज्ञामतीजी
आर्यिका सुवैभवमतीजी
आर्यिका निःसंगमतीजी
आर्यिका भरतमतीजी
क्षुल्लिका वैराग्यमतीजी

मुनि सुदर्शनसागरजी महाराज
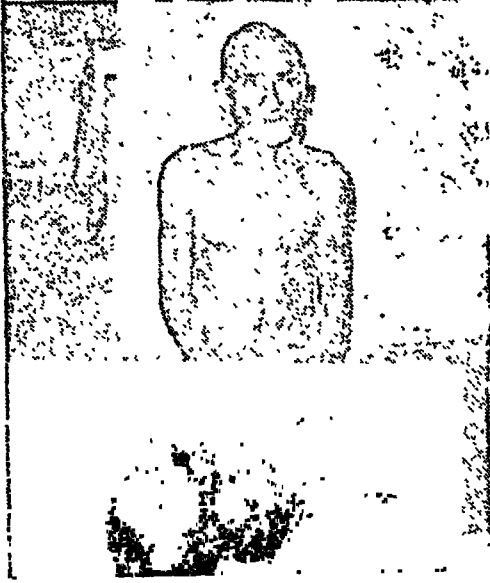
आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के बांसवाड़ा जिले में नरबाली ग्राम में हुवा था। आपके पिता की धार्मिक वृत्ति थी तथा आप पर बचपन से धर्म संस्कार थे। १० वर्ष की अवस्था से आप साधु संगति में रहने लगे थे आपने आचार्य शान्तिसागरजी की काफी सेवा की सैंकड़ों मील तक आप आचार्य श्री के साथ पैदल विहार में साथ रहे। गांव के आप नेता थे सभी मसलों का हल आपके माध्यम से ही होता था। आपने सम्मेदशिखरजी की १५ बार यात्रा की। घाटोल में सं० २०३४ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर आपने मुनि दीक्षा श्री आचार्य धर्मसागरजी के शिष्य दयासागरजी से ली। आपने वागड़ प्रान्त में भ्रमण कर जैन धर्म की प्रभावना की, अब आचार्य श्री के पास हैं।

मुनि रयणसागरजी महाराज

राजस्थान प्रान्त के डूंगरपुर जिले में सागवाड़ा नामक ग्राम में ७-१०-५४ को रुकमणी बाई के यहां जन्म लिया आपके पिता का नाम छगनलालजी गांधी था। आप ४ भाई १ बहिन हैं। आपकी लौकिक शिक्षा ८ वीं तक ही हो पाई। आपका पूर्व नाम आनन्दकुमार था। २५ वर्ष की उम्र में आपके अन्दर वैराग्य के अंकुर प्रगट हो गये तथा आप अपना व्यापार छोड़कर जैन साधुओं की संगति में लग गये तथा आपने ७ फरवरी १९७८ को मुनिदीक्षा श्री दयासागरजी महाराजजी से ले ली। धन्य है आपकी धर्म पौरुषता कि चन्द दिनों में ही आप सर्व परिग्रह त्याग कर भरा पूरा परिवार छोड़कर निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की। अ.प इसीप्रकार तप और त्याग तथा संयम की दिशा में अग्रसर रहें यही भावना है।

❖

मुनि ऋषभसागरजी महाराज

आपका जन्म ईडर गुजरात में हुवा था। गृहस्थ अवस्था का नाम श्री चम्पालालजी था। आप बचपन से धार्मिक कार्यों में विशेष भाग लेते थे, आपके ६ बच्चे थे जो सभी धर्म में रुचि रखने वाले थे। आपने मुनि दयासागरजी महाराजजी से मुनि दीक्षा धारण की। आप तपस्वी मुनिराज थे। आपने अपने जीवन काल में सैंकड़ों उपवास किये। आपने अन्तत: श्रवण बेलगोला में दीक्षा ली। मुनि दीक्षा के बाद आपने 'सर्वतोभद्र' नामक उपवास किए। इसी उपवास के बीच में १५ वें दिन समाधि युक्त मरण हुवली कर्नाटक में किया।

मुनि समाधिसागरजी (प्रथम)

आपका जन्म दाहोद जि० पंचमहल गुजरात में हुवा था। आपका पूर्व नाम श्री वदामीलालजी था। आपकी लौकिक शिक्षा सामान्य ही रही। २० वर्ष की उम्र से व्यापार करना शुरू किया, आप कपड़े के प्रतिष्ठित व्यापारी थे। ६० वर्ष की उम्र में आपने मुनि दीक्षा धारण की। १० उपवास कर सल्लेखना धारण कर समाधिमरण सन् १९७७ में दाहोद में किया। आप आचार्य श्री धर्मसागरजी के शिष्य मुनि दयासागरजी से दीक्षित थे।

मुनि समाधिसागरजी (द्वितीय)

श्री कस्तूरमलजी का जन्म राजस्थान के प्रसिद्ध नगर डूंगरपुर में हुवा था। आपने लौकिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपना जीवन व्यापारिक कार्य में लगाया तथा सन् १९७७ में मुनि दयासागरजी से मुनि दीक्षा ली। तथा डूंगरपुर में ही समाधि लेकर आत्म कल्याण किया।

मुनि समाधिसागरजी (तृतीय)

आप कर्नाटक श्रवण बेलगोला के वासी थे, आपका नाम श्री महादेव था। जैन मठ में आप भट्टारकजी की सेवा आदि किया करते थे। ८० वर्ष की उम्र में आपने मुनि दीक्षा श्री दयासागरजी से लेकर समाधिमरण श्रवणबेलगोला में किया।

मुनि निजानंदसागरजी महाराज

जन्म :— ४-९-१९५३, शुक्रवार

स्थान :— हुबली (कर्नाटक में दूसरा बड़ा शहर)

पूर्वनाम :— अनंतराज पार्श्वनाथ राजमाने

पिता :— पार्श्वनाथ भीमराव राजमाने
(दंतमंजन व्यापारी)

माता :— श्रीमती कमलाबाई राजमाने

भाई :— १. बड़ा निर्मलकुमार-बी ई. सिविल इंजिनीयर
२. बाहुबली-व्यापारी
३. सनत्कुमार-बी. ई. सिविल इंजिनीयर
४. श्रेणिकराज-डिप्लोमा सिविल विद्यार्थी

पिताजी के दो बड़े भाई, चार बहिनें।

गर्भावस्था :—गर्भ में थे, उस समय माताजी १९५३ मार्च में हुई भगवान श्री बाहुबली की महामस्तकाभिषेक में गयी थी। धर्म की संस्कार गर्भावस्था में ही प्रारम्भ हुई।

बाल्यावस्था :—

१. मुनिराजों के दर्शन करने में उत्कट भक्ति।
२. मुनि बनने की इच्छा प्रकट करते।
३. शादी करने की तरफ निरुत्साह।
४. प्रति दिन मंदिर में जाना।
५. पिताजी-माताजी से धार्मिक सभायें घटनायें सुनना।

शिक्षण :—१. बी. कॉम., पदवीधर

वी. कॉम. परीक्षा में कर्नाटक विश्व विद्यालय में प्रथम स्थान।

२. डिप्लोमा धर्म शास्त्र और तत्वशास्त्र में।

३. एम. ए. के दो वर्ष सम्पूर्ण तत्वशास्त्र में।

४. N. C. C. में Under Officer।

समाज संघटना कार्य :—

१. सेक्रेटरी तथा संस्थापक
हुवली जैन तरुण संघ

२. सेक्रेटरी-दक्षिण भारत जैन युवा परिषद्।

३. धारवाड़ जिल्हा मुनि स्वागत समिति, सेक्रेटरी।

४. सेक्रेटरी-संस्थापक—

(हुबली जैन समाज मुनि सेवा संघ)

—: त्याग मार्ग :—

१. शादी नहीं करने की प्रतिज्ञा।
३०-१-१९७६ शुक्रवार दोपहर में।

प्रसंग : आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी से केशलोचन समारंभ में।

स्थल : बेलगाम (कर्नाटक)

२. सप्त व्यसन त्याग— १७-२-१९७६।

३. मुनि दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा।

१. आरणी (मद्रास) १५-३-१९७६ सोमवार।

२. पोदनपुर (बम्बई) १८-३-१९७९ रविवार—

मुनि श्री निर्मलसागर महाराज के सान्निध्य—विशाल जन समुदाय में।

४. अशुद्ध जल का त्याग—२-१०-१९८० गुरुवार, सुबह

स्थान :—हुबली (कर्नाटक)

मुनि श्री दयासागर महाराजजी से।

५. दीक्षा लेने के लिए श्रीफल का अर्पण २२-१०-१९८० केशलोचन समारम्भ में स्थान—हुबली।

६. गृह त्याग :—२७-११-१९८० पूज्य श्री दयासागर महाराजजी के संघ में विहार।

७. ऐलक दीक्षा—२१-१२-१९८० रविवार सुबह।

श्री दयासागर महाराजजी से।

स्थल : दावणगेरी (कर्नाटक)।

८. मुनि दीक्षा—१६-२-१९८१ सोमवार दोपहर।

प० पू० श्री दयासागर महाराजजी से।

स्थल : श्रवण बेलगोला।

प्रसंग : भगवान श्री बाहुबली की सहस्राब्धी महामस्तकाभिषेक के संदर्भ में।

४८ मुनिराज तथा कुल १४० पिच्छीधारी त्यागी और हजारों जनता की उपस्थिति में।

९. चातुर्मास—

१. १९८१ नीरा (महाराष्ट्र)

२. १६८२ कापडणे जि० पूना (महाराष्ट्र) ।

३. १६८३ सूरत–गुजरात ।

६. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महाराजजी के सान्निध्य में ।

१. अतिशय क्षेत्र महुवा जि० सूरत (गुजरात) ता० ५–५–१९८३ से १५–५–१६८३ ।

२. वेदी प्रतिष्ठा—सूरत (गुजरात) ता० २५–६–८३ से २७–६–१६८३ तक

३. सर्व धर्म सम्मेलनों का आयोजन ।

—: महाराजजी से दीक्षा :—

१. क्षुल्लक दीक्षा—११–६–१६८३ सूरत में

२. मुनि दीक्षा—१३–६–१६८३ सूरत में

३. समाधि—१३–९–१६८३ सूरत में ।

मुनि श्री त्यागानंदसागर महाराजजी ।

दीक्षा लेनेवाले :—

श्री नगीनदास कर्मचन्द झवेरी

वोम्वेवाले ।

७ वीं प्रतिमाधारी

आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराजजी से ३५ बरस पहले लिए थे ।
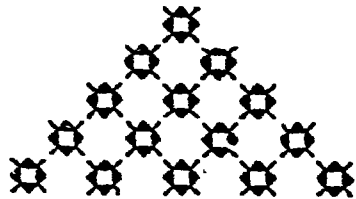
मुनि पार्श्वकीर्तिजी महाराज
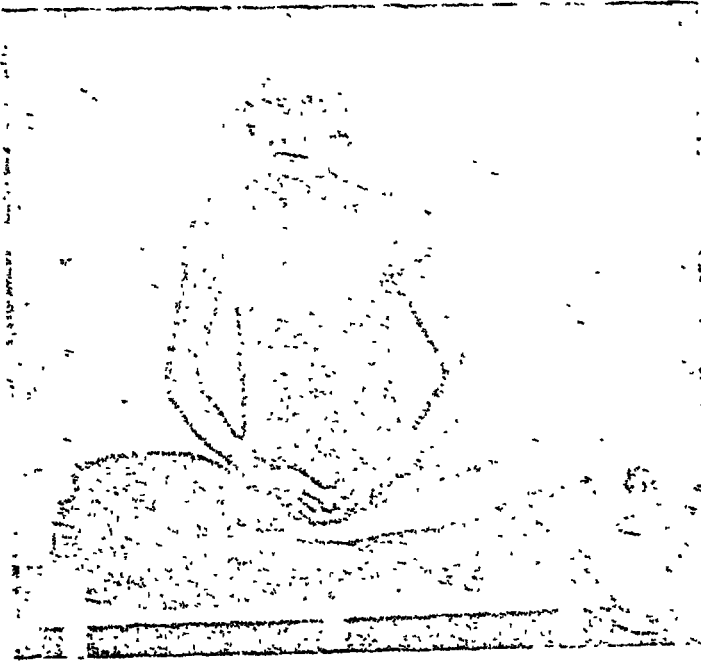
आपका जन्म जिला बांसवाड़ा के तहसील गरी के लोहारिया गांव जाति नरसिंहपुरा में मातेश्वरी कुरीदेवी के कुख से सम्वत् १९७६ में हुआ। आपका नाम जवेरचन्दजी व पिताजी का नाम दाडमचन्दजी था। आपकी माताजी भद्र परिणामी व दयालु थीं। व्रत उपवास करती थीं। आपकी माताजी में एक यह विशेषता थी कि प्रत्येक सन्तान की उत्पत्ति के समय उपवास रखती थीं। आपके पिताजी गांव के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपने १९ साल की अवस्था में व्यापार करना शुरु कर दिया था। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती अमृतबाई है। आपकी इच्छा शुरु से ही दीक्षा लेने की थी। आपने ३८ साल की अवस्था में मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज बम्बई वालों से ब्रह्मचर्य व्रत लिया। सम्वत् २०३१ तारीख २३-२-७५ को श्री सम्मेदशिखरजी में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ली। उसके बाद घाटोल में श्री १०८ धर्मसागरजी के शिष्य दयासागरजी से ऐलक दीक्षा ली। आपकी यह इच्छा थी कि मैं मुनि दीक्षा आचार्य श्री विमलसागरजी के द्वारा श्री सोनागिरीजी में लूं। इस भाव के कारण आप ८ माह में पन्द्रह सौ मील चलकर आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज के चरणों में सोनागिरी आये। वहां आकर आपने आचार्य श्री से सम्वत् २०३६ श्रावण सुदी ९ को चन्द्र प्रभु प्रांगण में मुनि दीक्षा ली। तब से आपको मुनि पार्श्वकीर्तिजी के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

क्षुल्लक समतासागरजी

आपका जन्म कर्नाटक श्रवण बेलगोला के समीप में हुवा था। आपका पूर्व नाम श्री राजेन्द्रकुमारजी था। आपने तीर्थक्षेत्र श्रवण बेलगोला में जैन गुरुकुल में इन्जीनियर तक शिक्षा प्राप्त की। आप कन्नड़, हिन्दी, अंग्रेजी के एक उच्चकोटि के प्रवक्ता हैं। मुनि श्री दयासागरजी महाराज से वम्बई पोदनपुर में क्षु० दीक्षा लेकर आत्म साधना कर रहे हैं। आप बालब्रह्मचारी एवं युवा सन्त हैं।

क्षुल्लक निरंजनसागरजी

आपका जन्म मुजफ्फर नगर (U. P.) जिले में मुबारिकपुर में हुवा था। आपकी बड़ी बहिन ने आर्यिका दीक्षा ली है। आप अग्रवाल जाति के रत्न हैं। ५० वर्ष की उम्र में घर गृहस्थी का त्याग करके महामस्तकाभिषेक गोमटेश्वर के शुभ अवसर पर आपने मुनि दयासागरजी से क्षु० दीक्षा अंगीकार की। आप धर्म साधना में निरत हैं।

क्षुल्लक उदयसागरजी
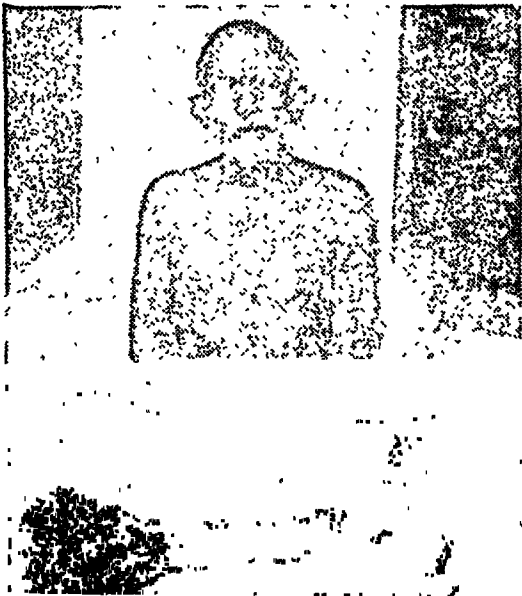
आपका जन्म उदयपुर जिले के सलुम्वर गांव जाति बीसा नागदा में सम्वत् १९६५ में हुआ। आपके पिताजी का नाम रूपचन्दजी व माताजी का नाम भुरीवाई था। आपका गृहस्थावस्था का नाम श्री उदयचन्दजी था। आपके पिताजी व माताजी का स्वभाव धर्म के प्रति बहुत अच्छा था। संवत् २०१८ में आपने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। उसके बाद आपने ७ वीं प्रतिमा श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से उदयपुर में ली। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। उसके बाद संवत् २०३४ में घाटोल में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय मुनि दयासागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। उस समय से आप उदयसागरजी के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे। उसके बाद ऐलक पार्श्वकीर्तिजी महाराज के संघ के साथ में सोनागिर पधारे।

❖

आर्यिका सुप्रकाशमतीजी

सुशीलाजी का जन्म कुण्डा जि० उदयपुर राजस्थान में १९ वर्ष पूर्व हुआ था । ११ वीं तक आपने लौकिक शिक्षा प्राप्त की । १५ वर्ष की उम्र में आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया था । बम्बई पोदनपुर त्रिमूर्ति में आपने मुनि दयासागरजी महाराज से १७ जनवरी ८२ में आर्यिका दीक्षा धारण की । इस युवा अवस्था में आपने परिवार से मोह छोड़कर जैनेश्वरी दीक्षा ली । आप सरल एवं तपस्वी साध्वी सन्त हैं । नव-युवतियों के लिये एक आदर्श मार्ग आपने प्रशस्त किया ।

आर्यिका प्रज्ञामतीजी

आपका जन्म उदयपुर जिला कुंडां में हुवा था । आपकी माता का नाम कुनणबाई था । पिता का नाम श्री रामचन्द्रजी था । आपका पूर्व नाम ललिता था । आप नरसिंहपुरा जाति की हैं । १४ वर्ष की उम्र में आपका विवाह हो गया पर अभी मेंहदी की लाली हल्की भी ना हो पायी थी कि उतर गई । शीघ्र ही अपना चित्त धर्मध्यान की ओर लगाया तथा मुनि दयासागरजी से अक्षय तृतीया के दिन धाटोल में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर आर्यिका दीक्षा धारण कर ली दीक्षोपरान्त आपका नवीन नामकरण प्रज्ञामतीजी हुवा ।

आर्यिका सुवैभवमतीजी

आपका जन्म गुजरात प्रान्त में जिला पंचमहल दाहोद नगर में हुवा था। आपके पिता का नाम पन्नालालजी गांधी तथा मां का नाम शान्तिबाई था। आप ५ भाई तथा ४ बहिन हैं। आपके पिता एक प्रतिष्ठित व्यापारी हैं तथा साधु भक्ति अपूर्व है। पू० मुनि दयासागरजी महाराज का चातुर्मास दाहोद में हुवा तब मुनि श्री के प्रवचनों से आपके अन्दर वैराग्य जगा तथा तभी आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। आपकी शिक्षा १२ वीं तक है व मूल भाषा गुजराती है तथा हिन्दी कन्नड़ी संस्कृत का भी ज्ञान आपको है। आपका जीवन सरल एवं शान्तिमय है। निरन्तर पठन कार्य में लगी रहती हैं। बम्बई में परम पू० मुनि दयासागरजी महाराज से त्रिमूर्ति पोदनपुर में आर्यिका दीक्षा १ जनवरी १९८२ में धारण की। आप निरन्तर ज्ञान साधना में निरत हैं।

आर्यिका निःसंगमतीजी
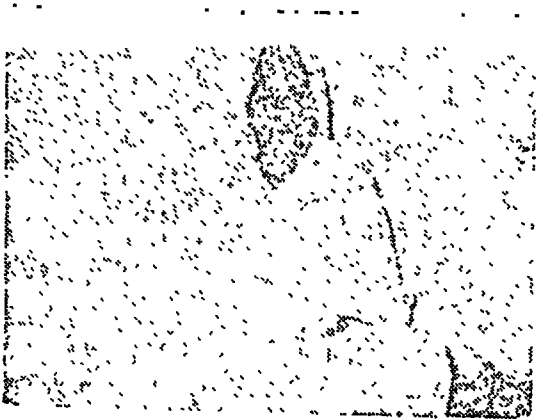
महाराष्ट्र प्रान्त की ऐतिहासिक नगरी नागपुर में १३-२-३६ श्रेष्ठी श्री सुमेरुचन्दजी के घर जन्म लिया था। आपकी माता का नाम दशोदीबाई था। आपने ११ वीं कक्षा पास करने के बाद 'विज्ञान प्रशिक्षण' की ट्रेनिंग ली तथा छिन्दवाड़ा में कन्या विद्यालय में २० वर्ष तक अध्यापिका का कार्य किया। आपके पति का नाम श्री गुरुदयालजी जैन था। आपके ३ बच्चे हैं। आपकी धार्मिक रुचि अत्यन्त थी। पू० मुनि दयासागरजी महाराज के प्रवचनों से आपके अन्दर वैराग्य जागा तथा पति से आज्ञा लेकर परिवार के समक्ष छिन्दवाड़ा में मुनि दयासागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। ज्ञानोपार्जन में आपकी साधना अथक अनवरत और अध्यवसाय पूर्ण रही। आपने भरे पूरे परिवार के प्रति जितनी भी निर्ममता दिखाई सचमुच श्रद्धेय है।

❋

आर्यिका भरतमतीजी

आपका जन्म हूमाई जिला डूंगरपुर निवासी श्री जीतमलजी सिंघवी के यहां कार्तिक सुदी १५ सम्वत् १९८४ में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती माणकबाई था। आपका गृहस्थावस्था का नाम चमेलीबाई था। आपकी शादी रामगढ़ में श्री गणेशलालजी के साथ हुई। अशुभ कर्मों के उदय से ५ वर्ष बाद आपको वैधव्य दुःख सहन करना पड़ा। आपने ब्रह्मचारी अजितसागर के निमित्त से दो प्रतिमा धारण की जिससे आपमें विशेष वैराग्य आया। उसके बाद आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी के शिष्य दयासागरजी से सम्वत् २०३४ में क्षुल्लिका दीक्षा ली उसके बाद आपने संघ सहित गांव लोहारिया में चातुर्मास किया। वहां आपने ३२ उपवास किए। उसके बाद ऐलक पार्श्वकीर्तिजी के संघ में चलकर श्री सोनागिरि आयीं। आने के पश्चात् आपने आर्यिका दीक्षा लेने का निर्णय लिया और आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से सम्वत् २०३६ श्रावण सुदी १२ रविवार तारीख ५-८-७९ को सोनागिर में आर्यिका दीक्षा ली। उस समय आपका नाम भरतमती माताजी रखा गया।

क्षुल्लिका वैराग्यमतीजी

आपका जन्म जिला डूंगरपुर के सावला गांव में जाति दशा हुमड़ में मातेश्वरी लक्ष्मीदेवी के कूख से संवत् २०१४ में हुआ। आपका नाम कचरीबाई पिताजी का नाम रोहिन्दा लक्ष्मीलालजी था। आपकी माताजी का स्वभाव भद्र परिणामी है और उनकी धर्म के प्रति अच्छी रुचि है। आपकी शादी जिला बांसवाड़ा के गांव खमेरा में हेमराजजी के सुपुत्र कन्हैयालालजी के साथ हुई कन्हैयालालजी की यह दूसरी शादी थी। गृह कलह के कारण आपके जीवन में मोड़ आया। इस कारण से आपमें वैराग्य आया। उसके बाद मुनि दयासागरजी का संघ मिला, जहां क्षुल्लक पार्श्वकीर्तिजी के सहयोग से गांव घाटोल में आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली। तबसे आप वैराग्यमती माताजी के नाम से पुकारी जाने लगीं।

✲

मुनिश्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

श्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज

मुनिश्री पदमसागरजी

आर्यिका पार्श्वमतीजी

क्षुल्लक पदमसागरजी

क्षुल्लिका प्यारमतीजी

मुनि श्री पदमसागरजी महाराज

आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के कोल्हापुर जिले में सन् १९०९ में हुआ था। पिता का नाम चम्पालाल एवं माता का नाम गंगावाई था। आपका जन्म नाम अन्नू था। कन्नड़ी में अध्ययन किया। २५-२-१९६६ में घर बार छोड़कर वीर ग्राम में क्षुल्लक दीक्षा ली तथा मुनि दीक्षा श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरजी में मुनि पुष्पदन्त-सागरजी से ली। आप आत्मकल्याण के लिये प्रयत्नशील हैं, प्रतिदिन स्वाध्याय रत रहते हैं, हिन्दी भाषा का भी अध्ययन कर रहे हैं।

आर्यिका पार्श्वमतीजी

जन्मस्थान — दरियावाद (बाराबंकी) उ० प्र०
नाम — स्नेहलता जैन
पितृ नाम — श्री बनारसीलालजी
मातृ नाम — श्रीमती मखानादेवी
शिक्षा — चौथी हिन्दी
जन्म सम्वत् — २००८ भाद्रपद कृष्णा अष्टमी
दीक्षा स्थान — त्रिलोकपुर (नेमनाथ अतिशय क्षेत्र)
दीक्षा गुरु — श्री १०८ मुनि पुष्पदन्तसागरजी
दीक्षा नाम — श्री १०५ पार्श्वमतीजी
पारिवारिक स्थिति— सुखी समृद्ध सम्पन्न परिवार
कुटुम्बी जन — पांच बहिनें, तीन भाई, तीन भोजाई, भतीजे, भतीजी लगभग १५० व्यक्तियों का परिवार छोड़कर दीक्षा ग्रहण की।

❖

क्षुल्लक पदमसागरजी

गृहस्थ नाम— श्री गमकलालजी हुमड़
जन्म स्थान— सूरत (गुजरात)
दीक्षा गुरु — मुनि पुष्पदन्तसागरजी
दीक्षा — कार्तिक शुक्ल मास वीर नि० सं० २५०६ रविवार आपने अपने भरे पूरे परिवार को त्याग कर परमार्थ पथ का आश्रय लिया तथा आत्म कल्याण किया अन्त समय में आपने मुनि दीक्षा धारण कर समाधिमरण किया।

क्षुल्लिका प्यारमतीजी

आप मुनि पुष्पदन्तसागरजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं। आपका विशेष परिचय अप्राप्य है।

आचार्यकल्प श्री सन्मतिसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित शिष्य
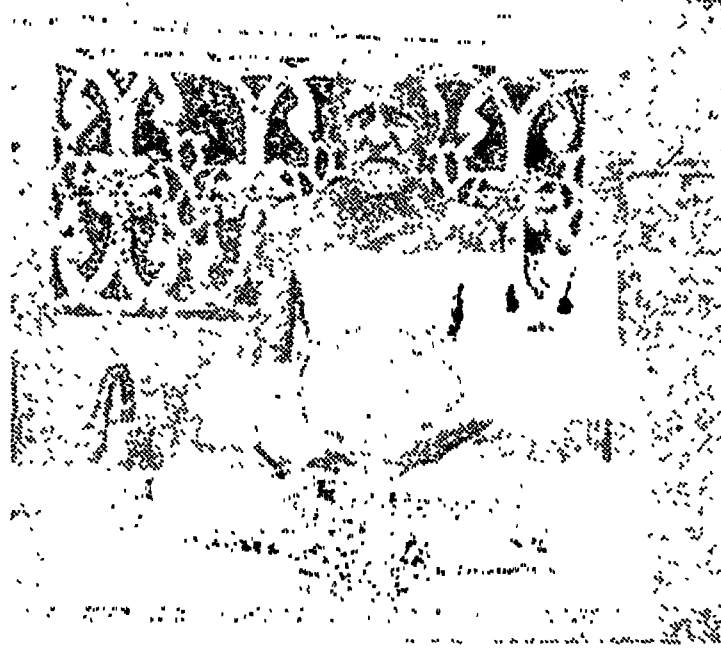
श्री सन्मतिसागरजी महाराज

मुनिश्री नेमिसागरजी
मुनिश्री विमलसागरजी
मुनिश्री पदमसागरजी
मुनिश्री कुन्थुसागरजी
आर्यिका चन्द्रमतीजी
आर्यिका शांतिमतीजी

क्षुल्लक सुपार्श्वसागरजी
क्षुल्लक हेमसागरजी
क्षुल्लक विजयसागरजी
क्षुल्लक चारित्रसागरजी
क्षुल्लक मानसागरजी

मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज

आपका जन्म राजस्थान प्रदेश के प्रमुख नगर जयपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम जमनालालजी एवं माता का नाम गुलाबबाई था। सं० २०२१ में आपने श्री गजपंथाजी के पुण्य तीर्थ पर क्षुल्लक दीक्षा ली एवं मुनि दीक्षा (महाराष्ट्र) औरंगाबाद में श्री सन्मतिसागरजी से ले ली। पश्चात वे गुरु के साथ विहार करते रहे एवं अनेकों भाइयों को उपदेश देकर उनका कल्याण किया। वे महान तपस्वी थे और व्रत उपवास करते ही रहते थे। आप १-१ माह के उपवास करते थे। गाजियाबाद दिल्ली में आपकी समाधि हुआ।

☼

मुनिश्री विमलसागरजी महाराज

श्री १०८ श्री विमलसागरजी महाराज का जन्म राजस्थान के जयपुर राज्य में अति ही सुरम्य गांव दोसा में धर्मात्मा श्रेष्ठी श्री भुरामलजी की धर्म पत्नि गेंदीबाई छावड़ा जाति खण्डेलवाल की कुक्षी से सं० १९६९ वैसाख शुक्ला ९ शुभ तिथि शुभ दिन में हुआ। आपका जन्म नाम सोभागमल रखा गया। आप क्रम क्रम से वृद्धि को प्राप्त हुये। माता पिता ने आपको पाठशाला में विद्याध्ययनार्थ रक्खा। १५ वर्ष की उम्र में ही आपकी शादी करा दी। आपकी धर्म पत्नि श्री कस्तूरीबाई से धर्मचन्द नामक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। आप अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे और आपके भी एक ही पुत्र रत्न हुआ।

पार्श्वमती माताजी अजमेर वालों की प्रेरणा से आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। कुछ समय उपरान्त आपने मुनि श्री १०८ श्री मल्लिसागरजी महाराज से सं० २००३ जयपुर में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली और आपका नाम क्षुल्लक विजयसागर रखा। कुछ अशुभ कर्मों के उदय से आप को रोगों ने घेर लिया। पर आप कष्टों से डरने वाले नहीं थे आप दृढ़ता से रोगों का सामना करते रहे।

सं० २०२८ टोडारायसिंह में आप श्री ने मुनि दीक्षा आचार्य क० श्री सन्मतिसागरजी महाराज से ली। आपका जीवन अत्यन्त सरस है तथा अनेक प्रकार के कठिन व्रत उपवास करते हैं।

वर्तमान में आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी १०८ मुनिराज अजितसागरजी महाराज के संघ में रह कर निरन्तर धर्म ध्यान सेवन करते हुए चर्या का पालन करते हैं।

मुनिश्री पदमसागरजी महाराज

आप आ० क० श्री सन्मतिसागरजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं, विशेष परिचय अप्राप्य है।

मुनिश्री कुन्थुसागरजी महाराज

आप आ० क० श्री सन्मतिसागरजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं, विशेष परिचय अप्राप्य है।

आर्यिका चन्द्रमती माताजी

पूज्य आर्यिका रत्न विदुषी १०५ श्री चन्द्रमती माताजी अल्प उम्रवाली निशदिन पठन पाठन ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग व संयम में लवलीन रहती हैं आपकी उम्र करीब ३५ वर्ष की है आपका जन्म नावाँ (कुचामन रोड) में विक्रम् संवत् २००५ कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को हुआ था। दीपावली का दिन था, चारों तरफ रोशनी ही रोशनी फैल रही थी इसलिए आपका जन्म नाम रोशनबाई रखा गया पिताजी का नाम श्रीमान सेठ सीतारामजी गोधा एवं माता का नाम श्री वृजेश्वरीबाई था। जब आपकी उम्र पाँच वर्ष की हुई तब माता पिता ने पढ़ने हेतु विद्यालय में भरती किया। पढ़ने में आप बहुत तेज थीं परीक्षा में भी सबसे प्रथम उत्तीर्ण होती थीं। विद्यालय में पांचवी कक्षा तक अध्ययन किया। साथ साथ माता पिता जैन धर्म के संस्कार भी डालते गये। माता पिता को आपके प्रति बहुत ही लाड प्यार था जब आपकी उम्र १६ वर्ष की हुई तब आपका पाणिग्रहण खाचरियावास निवासी श्रीमान् सुकुमालचन्दजी के साथ विक्रम संवत् २०२१ में हुआ था आपका सुहाग दस वर्ष तक रहा। आगे पाप कर्म के उदय से आपके पति श्री सुकुमालचन्दजी का अल्प उम्र में ही स्वर्गवास हो गया। इस भारी दुःख का कोई पार नहीं, जो वैधव्य स्त्री होती है वो ही इन दुःखों को जान सकती है पति का वियोग होना स्त्रियों के लिए बहुत दुःख की बात है परन्तु इतना भारी दुःख आने पर भी आपने रोने धोने व शोक संताप की तरफ मन को न लगाकर निशदिन धर्म के प्रति अपने मन को लगाकर दिन व्यतीत करते थे यह संसार असार है दुःखमय है प्रति समय आयु क्षीण होती जाती है मनुष्य जन्म बार बार मिलने वाला नहीं है ऐसा विचार कर आपने एक साल में ही आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज के संघ में आ० सन्मति माताजी के पास आ गये। आने के बाद आ० विशुद्धमतीजी, विनयमतीजी व सन्मतिमाताजी से पठन पाठन अध्ययन किया। इसप्रकार वैराग्य के भाव बढते गये। माताजी ने सबसे प्रथम शान्तिवीर नगर में आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज से पंचम प्रतिमा के व्रत लिये और त्याग व संयम को कष्ट नहीं जाना। आपने सुजानगढ़ में आ० कल्प श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। सप्तम प्रतिमा लेने पर भी आपका मन तृप्त नहीं हुआ। फिर आपने विक्रम संवत् २०३४ में कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा (एकम) के दिन नागौर में पूज्य आचार्य कल्प १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज के

पास अल्पायु में ही आर्यिका दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा के अवसर पर आपने एक घन्टा भर जनता को धर्मोपदेश व वैराग्य के भाव सुनाये । दीक्षा नाम आ० चन्द्रमतीजी है अब वर्तमान समय में भी आत्महित के कारण निरन्तर ज्ञान, ध्यान का अभ्यास करते ही रहते हैं चारित्र पालन के साथ साथ ज्ञानाभ्यास हिन्दी व संस्कृत का ज्ञान बढ़ाया । मधुर मधुर व्याख्यानों के द्वारा जनता को धर्मोपदेश सुनाते हैं उपदेश की शैली बहुत ही मीठी है व जनता को आकर्षित करती है शरीर से तो कमजोर व दुबले पतले दिखाई देते हैं परन्तु आत्म बल के द्वारा ज्ञान व चारित्र की वृद्धि के लिए निरन्तर ग्रन्थों का अध्ययन करते ही रहते हैं मन में क्लेश कषाय भाव जल्दी उत्पन्न नहीं होते हैं इसप्रकार स्वपर कल्याण करते रहें यही हमारी भावना है ।

आर्यिका शांतिमती माताजी

१०५ श्री शान्तिमती माताजी सवसे वयोवृद्ध आर्यिका हैं यथा नाम तथा गुण के वाक्यानुसार बड़ी शांत प्रकृति की साध्वी हैं । तात्विक चर्चा में रुचि रखती हैं । आपका जन्म हमेरपुर में श्रीमान अम्बालालजी वड़जात्या की धर्मपत्नी श्री फुंदीबाई की कुक्षी से हुआ । आपका जन्म नाम गुलाबबाई था आपका विवाह टोडारायसिंह निवासी श्री गुलाबचन्दजी पाटनी से हुआ । आपकी वैराग्य भावना वाल्यावस्था से ही थी परन्तु स्त्री पर्याय के कारण परिस्थिति वश शादी करनी पड़ी परन्तु वैराग्य भावना आगे बढ़ने लगी आपके तीन लड़कियां और दो लड़के हैं घर में सब तरफ से सम्पन्न कार्य है परन्तु भावना नहीं रुकी और आर्यिका श्री इन्दुमतिजी का ससंर्ग मिला और उनसे आपने दो प्रतिमा के व्रत लिये । पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज का टोडारायसिंह में शुभागमन हुआ । उनके उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि आपने उनसे ही पांचवीं प्रतिमा के व्रत धारण किये । और सीकर में आ० श्री शिवसागरजी महाराज से आपने सातवीं प्रतिमा धारण की । पश्चात् आर्यिका दीक्षा टोडारायसिंह में पूज्य मुनिराज श्री १०८ सन्मति सागरजी म० से वि० सं० २०२८ में मंगसिर कृष्णा ६ को ग्रहण की । सम्पूर्ण परिवार आदि त्याग कर उत्तरोत्तर त्याग तपश्चर्या एवं ज्ञान को बढ़ाया । स्कूली शिक्षा विल्कुल नहीं पाने पर भी आप अभ्यास के द्वारा स्वाध्याय पाठ क्रिया आदि सब करती हैं उपदेश भी देती हैं । तथा ज्ञान ध्यान स्वाध्याय में अपना जीवन लगाकर स्वपर कल्याण कर रही हैं ।

❖

क्षुल्लक सुपार्श्वसागरजी महाराज

पुरुषार्थ चतुष्टय में अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष को साधने के लिये संयम की चौखट पर थाप दिये विना जो चल पड़ते हैं वे मारीचि की स्मृति जगाये रखने के सिवाय भला संसार में और कौनसा महान् कार्य कर रहे हैं। टोडारायसिंह (टोंक) में अध्यात्म की अनबूझ पहेली में उलझे श्रावकों में वहस की वात भी सदैव "मार्ग" की रही है। सनातनियों और अध्यात्मपंथियों की यह कोरी उठापटक प्रविड प्राणायाम ही सिद्ध होती यदि सुवालाल जैन क्षुल्लक दीक्षा लेकर हमारे मध्य न आये होते। खण्डेलवाल फूलचन्द जैन और उनकी पत्नी एजनवाई आर्ष परम्परा के उपासक तो रहे हैं। परन्तु यह तो उनने भी नहीं सोचा होगा कि फाल्गुन शु० १० सं० १९६६ में जन्मी उनकी यह संतान शास्त्रीय चर्चा को एक दिन आचरण का जामा पहन कर सवकी पूज्य वन जायगी। राजपूताने की तपती रेत में तृपा शान्त करने के साधन सुदूर-दूर तक अलभ्य जैसे भले ही रहे आयें पर धर्मामृत की वर्षा का कभी अकाल नहीं पड़ा। यह बात सुजानगढिया और लाडनूं वाले भली भांति जानते हैं। पू० मुनि श्री सन्मतिसागरजी म० का सं० २०३२ कार्तिक शु० ६ को सुजानगढ़ में पदार्पण हुआ तो गुरु सान्निध्य मिलते ही सुवालाल के हृदय में वैराग्य की तरंगें हिलोर मारने लगीं। गुरु ने श्रावक समुदाय के समक्ष जैनेश्वरी क्षुल्लक दीक्षा प्रदान करते हुए आपको "सुपार्श्वसागर" के नाम से संवोधित किया। गुरु कृपा से आज ७१ वर्ष की आयु में भी पू० सुपार्श्वसागरजी म० निरन्तर शास्त्राभ्यास करते हुए असहाय संसारी प्राणियों की नैया भवसागर से पार उतारने में लगे हुए हैं। आपने दीक्षा काल से लेकर अव तक नागौर, उदयपुर, जयपुर, टोडारायसिंह नगरों में चतुर्मास करके अनगिनत प्राणियों को चारित्र धर्म का मर्म समझा कर उनका असीमित संसार सीमित कर दिया।

क्षुल्लक श्री हेमसागरजी

रजपूती साहस की कहानियों में बूंदी को भी कुछ हिस्सा मिला है। नैनवा एक छोटा सा गांव इसी जिले की सरहदी में बसा है जिसके आंचल में विराग की साहस कथा सिमटी पड़ी है। श्री फूंदालाल खण्डेलवाल अपनी पत्नी केसरबाई के साथ हमेशा साधु संगति और वैयावृत्ति में समय बिताते थे। सं० १९७८ आषाढ की अमावस्या को उनके घर एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ जो उनके गुणों की अनुकृति मात्र था। पिता ने स्नेह के साथ पुत्र का नाम कल्याणमल रखा। शायद ठीक भी था भविष्य में इससे जगकल्याण की सम्भावना उन्हें पालना झुलाते ही दिख गई थी। सं० २०२३ कार्तिक शु० १३ को टोंक में पू० आ० श्री धर्मसागरजी म० के शुभागमन के समय कल्याण मल ने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर स्वकल्याण पथ में अपने कदम बढ़ा दिये। इससे ठीक आठ वर्ष बाद मालपुरा (टोंक) में सं० २०३१ ज्येष्ठ शु० ५ को पू० मुनि श्री सन्मतिसागरजी म० (टोडारायसिंह वाले) से क्षुल्लक दीक्षा लेकर अपना नाम सार्थक कर दिया। दीक्षा देकर आचार्य श्री ने आपका नाम क्षुल्लक हेमसागर रखा। आप भी हेम सदृश अपनी कांति से समाज में निर्मल रत्नत्रय के बीज बो रहे हैं। आपने अब तक मालपुरा नगरफोर्ट, उनियारा, सिवाड, दूनी में चातुर्मास कर श्रावकों पर अनुग्रह किया है। जिन शासन की प्रभावना के लिये वेदी प्रतिष्ठा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, मंदिर जीर्णोद्धार आदि कार्यों के लिये सतत् प्रेरणा करते रहते हैं।

❖

क्षुल्लक श्री विजयसागरजी

आपका जन्म दोसा जिला जयपुर (राजस्थान) में श्री भूरामलजी की धर्मपत्नी श्री गेंदाबाई की कुक्षि से वैसाख सुदी नवमी सं० १९६९ में खण्डेलवाल जाति में जन्म लिया। आपकी शिक्षा सामान्य ही रही। सं० २००३ में मुनि मल्लिसागरजी महाराज से जयपुर में क्षुल्लक दीक्षा ली। आपने भारत वर्ष के अनेक प्रान्तों में विहार कर धर्म प्रभावना की। आज भी आप आ० क० सन्मतिसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के पथ पर संलग्न हैं।
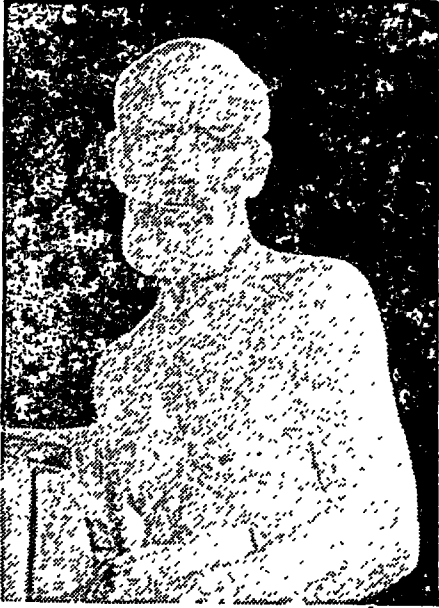
क्षुल्लक चारित्रसागरजी

आपने देवगांव, तालुका कन्नड़ जिला औरंगाबाद में दिनांक २८–२–१९१८ में जन्म लिया था। आपका पूर्व नाम चन्दूलालजी शाह था। धार्मिक परिवार में जन्म होने के कारण आपने भी अपने मन को धर्म में लगाया तथा मुनि सुमतिसागरजी से ५ वीं प्रतिमा के व्रत धारण किए। मराठी में शिक्षा प्राप्त की तथा सन् १९६४ आडूल महाराष्ट्र में मुनि सन्मतिसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ली। आपने दहीगांव क्षेत्र पर एक गुरुकुल की स्थापना कराई जो विधिवत चल रहा है। आपके माध्यम से सैंकड़ों जीव आत्म कल्याण कर रहे हैं। ☼

क्षुल्लक मानसागरजी

वस्त्र व्यवसायी बाबूलाल जैन ने पुण्य की एक हल्की सी सुगन्ध न बिखेरी होती तो ऊँचे-ऊँचे सागौन वृक्षों से आच्छादित जबलपुर जिले के जंगलों में सुदूर तक बसी अकृतपुण्य के साकार रूप भील-कोल की बस्तियों के मध्य "बचैया" गांव महत्वहीन ही बना रहता। सन् १९७९ में श्रावक प्रमुख श्री उदयचन्द जैन एवं मोतीलाल जैन की विनती स्वीकार कर पू० आ० श्री सन्मतिसागरजी म० बाकलग्राम में पधारे तो पुण्य के सुवासित समीर से फिर वह समूचा इलाका ही नहा गया। गृह विरक्त बाबूलाल जैन ने गुरु आगमन की चर्चा सुनी तो चरणों का शरण गहने दौड़ आया। गुरु कृपा से उसकी मुराद पूरी हुई। दम्पत्ति श्री भाषकलाल झुलकूबाई की संतान को आचार्य श्री ने ७ दिसम्बर ७९ को बाकल के श्रावकों के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर 'मानसागर" नाम विख्यात किया। इस प्रकार वि० सं० १९६५ से इस भव की नर पर्याय में पड़ी आत्मा के कर्मास्रवों के स्रोतों पर संवर की डांट लगाई। गुरु चरणों में रहकर क्षुल्लक मानसागरजी शास्त्रों के अध्ययन–मनन में अपनी आत्मा को लगाकर वैराग्य भावना भा रहे हैं। ☼

मुनिश्री श्रेयांससागरजी नांदगांव

द्वारा दीक्षित शिष्य
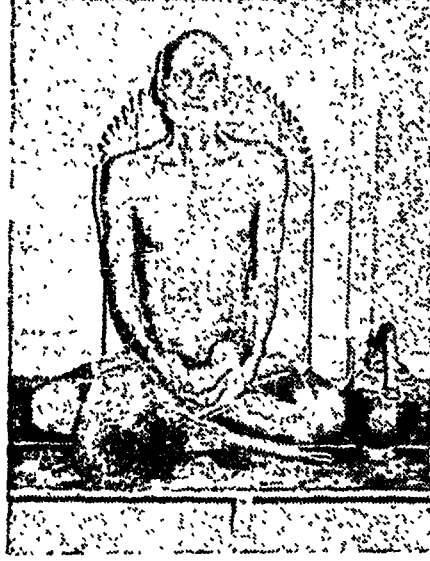
श्री श्रेयांससागरजी महाराज

मुनिश्री धर्मेन्द्रसागरजी

आर्यिका सुगुणमतीजी

मुनिश्री धर्मेन्द्रसागरजी महाराज

आपका जन्म राजस्थान प्रान्त के ग्राम पारसोला में पिता श्री किशनलालजी के यहां हुआ। आपकी माता का नाम श्री घीसीबाई था। आपने मुनि श्रेयांससागरजी महाराज से मुनि दीक्षा फलटण महाराष्ट्र में २२ फरवरी १९७३ को ली। आपने फलटण, श्रीरामपुर, नांदगांव, इन्दौर, मुरेना, अजमेर, ईशरी आदि स्थानों पर चातुर्मास किए तथा धर्म प्रभावना की।

आर्यिका सुगुणमती माताजी

आपका जन्म नाम बसन्तीबाई था। आपके पिता का नाम गुलाबचन्दजी एवं माताजी का नाम असराबाई था। आप खण्डेलवाल जाति में उत्पन्न हुई। जन्म स्थान अकलूज था। आपने मुनि श्रेयांससागरजी से श्रावण सुदी सप्तमी दिनांक १६-८-७२ को दीक्षा ली।

आपने बारामती, फलटण, गजपन्था, नांदगांव, अजमेर, ईशरी, सुजानगढ़ आदि स्थानों में चातुर्मास किया।

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित शिष्य

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज

❖

आचार्य श्री विद्यासागरजी
मुनिश्री विवेकसागरजी
क्षुल्लक श्री स्वरूपानन्दजी

❖

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
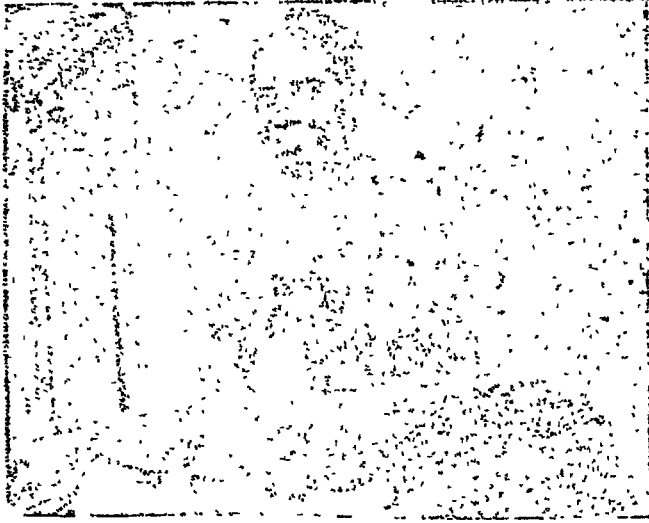
पू० श्री विद्यासागरजी का समस्त परिवार जैन धर्म की साधना में है, आपका जन्म वेलगांव (कर्नाटक) सदलगा नामक ग्राम में हुआ, आपके पिताजी का नाम मल्लप्पाजी तथा माताजी का नाम श्रीमतिजी था। आपका जन्म सं० २००३ आसोज सुदी १५ को हुवा था। आपका बचपन का नाम भी विद्यासागर ही था। आपकी मातृ भाषा कन्नड़ है। नवमी कक्षा तक आपकी लौकिक शिक्षा हुई। आप इस समय संस्कृत हिन्दी के उच्चकोटि के विद्वान हैं आपने हिन्दी एवं संस्कृत में उच्चकोटि की रचनायें की हैं। आपने असाढ़ सुदी पंचमी संवत् २०२५ में मुनि ज्ञानसागरजी से अजमेर में मुनि दीक्षा ली तथा आत्म साधना में संलग्न हैं। आप युवा मुनि हैं तथा आपका पूरा संघ युवा ही है। चारित्र के धनी युवा संघ दिगम्वरत्व की साधना कर भ० महावीर के मार्ग को आगे वढ़ा रहे हैं। तपोनिष्ठ आचार्य श्री विद्यासागरजी की काया निरन्तर तप के कारण स्वर्णरंगी दिखती है, आपके प्रवचनों के लिए भीड़ उमड़ पड़ती है। निर्मल चारित्र, बाल व्रह्मचारी मुनि श्री विद्यासागरजी के २ भाई, पिताजी, माताजी एवं दोनों वहिनें जैनेश्वरी दीक्षा लेकर आत्म साधना कर रही हैं। आपके माताजी, पिताजी एवं २ बहिनें आचार्य श्री धर्मसागरजी से दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के मार्ग में निरत हैं।

मुनिश्री विवेकसागरजी महाराज

आपका जन्म ग्राम मरवा जिला जयपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सुगनचन्दजी तथा माता का नाम रजमतीबाई था। आप छाबड़ा गोत्रज हैं आपकी प्रारम्भ से ही धर्म की ओर विशेष रुचि थी। पिताश्री परिवार सहित आजीविकोपार्जन हेतु बासम जाकर रहने लगे। आपके भाव दिन प्रतिदिन वैराग्य की ओर बढ़ते रहे, आपको विद्यासागरजी का संयोग मिला, आपने पहली प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर वैराग्य मयी जीवन की ओर प्रवेश किया। कुछ दिन पश्चात् आचार्य विमलसागरजी से दूसरी प्रतिमा ली, तथा आर्यनन्दि गुरु के सान्निध्य में सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। इसप्रकार उत्तरोत्तर त्याग मार्ग की ओर बढ़ते-बढ़ते आचार्य ज्ञानसागरजी से नसीराबाद (अजमेर) में फाल्गुन कृष्णा ५ शुक्रवार सं० २०२५ के दिन संसार तारक परम दैगम्बरी दीक्षा धारण की आचार्य श्री ने आपके विवेक की सराहना करते हुए आपका नाम विवेकसागर रखा। आप बहुत ही कठिन तपस्या में रत रहते हैं, आपकी प्रवचन शैली बहुत ही सरल है, गुरु आदेश से अपनी विवेक असि को भाजते हुए कर्मों की कड़ियां काट रहे हैं।

क्षुल्लक स्वरूपानन्दजी महाराज

आपका जन्म ५-७-५१ को ग्राम नांदसी जिला अजमेर में हुवा था। आप खण्डेलवाल जाति में छाबड़ा गोत्रज हैं, बचपन का नाम श्री दीपचन्दजी था। आपकी शिक्षा एम० कॉम० तक हुई। आपने मुनि ज्ञानसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। आप अच्छे वक्ता तथा उच्चकोटि के लेखक भी हैं। आपके प्रवचनों से जैन जगत में काफी धर्म प्रचार होता था। संयोग से असाता कर्म का उदय हुआ। आपने क्षुल्लक दीक्षा का त्याग कर दिया। अब पुनः गृहस्थ के व्रतों को पाल रहे हैं।

❖

मासोपवासी मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी

द्वारा दीक्षित शिष्य
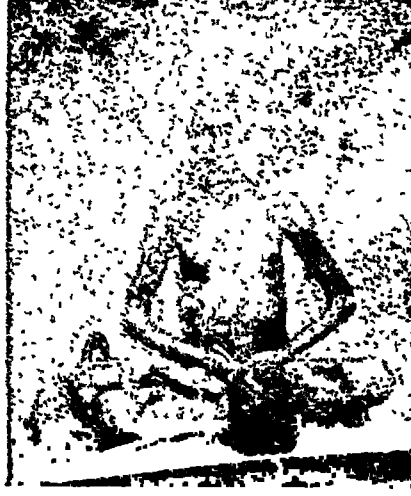
श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज
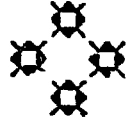
१. मुनि श्री विनयसागरजी
२. मुनि श्री विजयसागरजी
३. क्षुल्लक श्री सुरत्नसागरजी
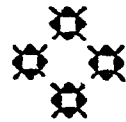
मुनि श्री विनयसागरजी

आपका जन्म बांसवाड़ा जिले के पास घाटोल में शक्तिचन्द्रजी कोठारी के यहां हुआ था। पिता के उत्तम संस्कारों से उनमें शुरू से ही धार्मिक संस्कार पड़े और आप मुनियों की भक्ति में लीन हो गये। मुनिवरों के दर्शनार्थ मीलों तक पैदल ही चले जाया करते थे। एक बार आचार्य श्री शान्तिसागरजी के केशलोंच को देख कर वह बड़े प्रभावित हुए और संसार को असार जान कर उन्होंने उसी समय कुछ व्रत लिये। फिर घर रह कर ही धर्मसाधना करने लगे। पूज्य श्री १०८ सुपार्श्वसागरजी के साथ उन्होंने सम्मेदशिखरजी की यात्रा की और वहीं पर सं० २०२९ में श्री सुपार्श्वसागरजी से मुनि दीक्षा ले ली।

मुनि श्री विजयसागरजी

आपका जन्म सं० १९६७ को देवपुरा में हुआ था। माता का नाम चुन्नीबाई और पिताजी का नाम श्री टेकचन्द्रजी चित्तौड़ा था आपका बचपन का नाम अम्बालाल था। आपका विवाह छोटी आयु में ही हो गया था। वर्तमान समय में ४ पुत्र व १ पुत्री है, जो धर्म ध्यान पूर्वक गृहस्थ जीवन यापन कर रहे हैं।

श्रावण सुदी तेरस सं० २०२९ को आपने घर बार छोड़ दिया और सिद्धक्षेत्र श्री सम्मेदशिखरजी में पूज्य मासोपवासी मुनिवर श्री सुपार्श्वसागरजी से आसोज सुदी दसमी सं० २०२९ को मुनि दीक्षा ली। आपका दीक्षा नाम श्री विजयसागरजी रखा गया।

क्षुल्लक श्री सुरत्नसागरजी

आपका जन्म गुनोर जि० पन्ना में श्री बैनीप्रसादजी के यहाँ हुआ था। आप ६ भाई बहिन हैं। आपकी बहिन पूर्वनाम सुधा जो अब आ० सुरत्नमती के नाम से जानी जाती हैं। आपने मासोपवासी मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज से कटनी में क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आप जैन ग्रंथों के उच्चकोटि के लेखक व वक्ता हैं। आप हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, मराठी, गुजराती आदि भाषा के जानकार हैं। आपकी प्रवचन शैली अति ही उत्तम है। आधुनिक शैली से विषय का प्रतिपादन करना आपकी विशेषता है। अल्प आयु के आप प्रभावी एवं तपस्वी साधु हैं।

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित साधु वृन्द
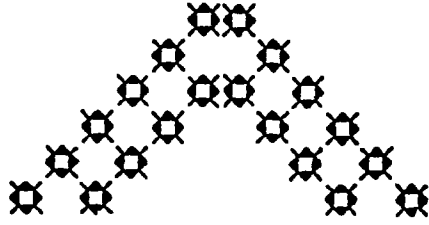
मुनिश्री समयसागरजी
मुनिश्री योगसागरजी
मुनिश्री नियमसागरजी
मुनिश्री चेतनसागरजी
मुनिश्री ओमसागरजी
मुनिश्री क्षमासागरजी
मुनिश्री गुप्तिसागरजी
मुनिश्री संयमसागरजी

ऐलक श्री भावसागरजी
ऐलक श्री परमसागरजी
ऐलक श्री निःशंकसागरजी
ऐलक श्री समतासागरजी
ऐलक श्री स्वभावसागरजी
ऐलक श्री समाधिसागरजी
ऐलक श्री करुणासागरजी
ऐलक श्री दयासागरजी
ऐलक श्री अभयसागरजी

मुनिश्री समयसागरजी महाराज

आचार्य विद्यासागरजी के छोटे भाई श्री शांतिनाथजी का आज से २५ वर्ष पूर्व सदलगा में जन्म हुआ था। आपकी शिक्षा मराठी में हुई थी। आपके माताजी व पिताजी एवं दो बहनें आचार्य श्री शान्तिसागरजी के तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से मुनि, आर्यिका दीक्षा लेकर आत्म कल्याण कर रहे हैं। आपके भाव भी आत्म कल्याण करने के हुए तथा भाई (श्री विद्यासागरजी) के सान्निध्य में १५-३-८० को आकर द्रोणगिरी क्षेत्र में मुनि बन गये। तथा अब आप जैन धर्म की प्रभावना कर जैन धर्म के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचा रहे हैं। आप संघ के परम तपस्वी सन्तों में से एक सन्त हैं। निरन्तर ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं।

मुनि श्री योगसागरजी महाराज

श्री अनंतनाथ जी का जन्म २७ वर्ष पूर्व सदलगा जिला वेलगांव में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री मल्लप्पाजी तथा माताजी का नाम श्रीमति देवी है। आपकी लौकिक शिक्षा आठवीं तक ही है। आपके २ भाई मुनि हैं। मां पिताजी एवं दो वहिनें भी साधु पद पर हैं। आपने युवा अवस्था में १५-४-८० को सागर में मुनि दीक्षा ली। आप आत्म साधना में तत्पर हैं तथा जैन धर्म की प्रभावना कर रहे हैं।

मुनिश्री नियमसागरजी महाराज

नियमसागरजी का जन्म २७ वर्ष पूर्व सदलगा (बेलगांव) में श्री बाबूरावजी पाटील के घर हुआ । आपके भाई ने मुनि दीक्षा ली तथा उनके उपदेशों से संसार को असार जानकर आप भी मुनि बन गये । आप कुशल वक्ता भी हैं । आपका पूर्व नाम श्री महावीर जैन था ।

मुनिश्री चेतनसागरजी महाराज

श्री आदिनाथ का जन्म लगभग ३० वर्ष पूर्व सदलगा जिला बेलगांव कर्नाटक में श्री बाबूरावजी पाटील के घर हुआ । आपकी माता का नाम श्रीमति सोनादेवी था । आपकी शिक्षा ५ वीं तक ही रही । सन् ८१ में आपने मुनि दीक्षा ले ली तथा स्वपरोपकार में निरत हैं ।

मुनिश्री ओमसागरजी महाराज

श्री नानूभाई का जन्म आज से ३७ वर्ष पूर्व मोरवी (गुजरात) में, श्री मूलजी भाई के घर हुआ था । आप अच्छे एवं कुशल सिविल इन्जीनियर पोलो टैकनिक थे । आप क्षत्रिय कुलोत्पन्न हैं । जैन धर्म में आपकी अत्यन्त श्रद्धा थी इसी कारण आपने अपना जीवन आत्म कल्याण में लगाया । दिनांक २९-१०-८१ को नैनागिरी क्षेत्र पर आपने मुनि दीक्षा लेकर मनुष्य पर्याय को सार्थक किया । आपका वर्तमान नाम ओमसागरजी है ।

मुनिश्री क्षमासागरजी महाराज

श्री वीरेन्द्रकुमारजी सिंघई का जन्म सागर में श्रेष्ठी श्री जीवेन्द्रकुमार सिंघई के यहां हुवा था। आप सरल तथा शान्त स्वभावी एक युवा तपस्वी सन्त हैं। आपने एम० टेक० पास करने के बाद मुनि श्री विद्यासागरजी महाराज से क्रमशः क्षुल्लक एवं ऐलक दीक्षा ली दिनांक २०-८-८२ को आपने मुनि दीक्षा ली। आप आत्म कल्याण के मार्ग में निरत हैं। धन्य है ऐसे मानव जीवन को जो भ० महावीर के मार्ग को आज भी आगे बढ़ा रहे हैं।

मुनिश्री गुप्तिसागरजी महाराज

श्री नवीनकुमारजी का जन्म गढाकोटा जि० सागर (M.P.) में हुवा था। हायर सैकण्डरी तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने मुनि श्री विद्यासागरजी के निकट आकर नैनागिरी क्षेत्र पर मुनि दीक्षा ली।

मुनिश्री संयमसागरजी महाराज

सतीशकुमारजी का जन्म कटंगी जबलपुर में श्री पन्नालालजी बड़कुल के यहां हुआ था। हायर सैकण्डरी तक शिक्षा प्राप्त की। आप युवा अवस्था में ही मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के मार्ग में संलग्न हैं।

ऐलक श्री भावसागरजी महाराज

महेन्द्रकुमारजी का जन्म शाहपुरा जि० जबलपुर में हुआ । आपके पिता का नाम बाबूलालजी था । बी० काम० तक लौकिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने नैनागिरी क्षेत्र पर ऐलक दीक्षा ली ।

ऐलक श्री परमसागरजी महाराज

जयकुमारजी का जन्म ईशरवारा जि० सागर में श्री रूपचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीमति शान्तिदेवी की कुक्षि से हुआ आपने लौकिक शिक्षा बी० कॉम० तक प्राप्त की है । दि० १०-१-८० को नैनागिरी में ऐलक दीक्षा ली ।

ऐलक श्री निःशंकसागरजी महाराज

श्री राजधरजी बण्डा के निवासी थे । आपके दूसरे सुपुत्र का नाम महेशकुमार था । आपकी लौकिक शिक्षा हायर सैकण्डरी तक ही हो पाई थी । आपने १०-२-८३ को मधुबन में ऐ० दीक्षा ली ।

ऐलक श्री समतासागरजी महाराज

प्रवीणकुमारजी ने देवरी (सागर) में जन्म लेकर मध्यप्रदेश को पवित्र किया । हायर सैकण्डरी तक शिक्षा प्राप्त की । आपके पिता का नाम श्री राजाराम जी था । आपने मुनि विद्यासागरजी से ऐ० दीक्षा धारण की ।

ऐलक श्री स्वभावसागरजी महाराज

अशोककुमारजी का जन्म देवरी (सागर) में हुआ । आपके पिताजी का नाम श्री फूलचन्दजी तथा माताजी का नाम श्रीमति गुलाबरानी था । आपकी शिक्षा एम० एस० सी० तक थी । १०-२-८३ को मधुबन में ऐलक दीक्षा ली । आप सरल स्वभावी एवं वैराग्य से ओतप्रोत थे । आपके आगे भी मुनि दीक्षा धारण करने के भाव हैं ।

ऐलक श्री समाधिसागरजी महाराज

श्री राजेन्द्रकुमारजी का जन्म कुशम्बा (महाराष्ट्र) में हुआ । आपने लौकिक शिक्षा बी०-कॉम० प्रथम वर्ष तक प्राप्त की । १०-३-८३ को सम्मेदशिखरजी पर आपने ऐ० दीक्षा धारण की ।

ऐलक श्री करुणासागरजी महाराज

श्री सुरेशकुमार जी का जन्म सगौरिया जि० नरसिंहपुर में श्री भागचन्द्रजी के यहां हुआ था । आपने बी० एस० सी० तक शिक्षा प्राप्त कर शिखर जी में ऐलक दीक्षा ले ली ।

❖

ऐलक श्री दयासागरजी महाराज

आपका जन्म बन्डाबेलई जि० सागर में श्री प्रभाचन्दजी जैन की धर्मपत्नी श्री बिमलादेवी को कुक्षि से हुआ था । आपका पूर्व नाम सतीशकुमार था आपने लौकिक शिक्षा हायर सैकेण्डरी तक प्राप्त की । १०-३-८३ को मधुवन में आपने ऐलक दीक्षा ली ।

❖

ऐलक श्री अभयसागरजी महाराज

आपका पूर्व नाम श्री बाहुबली था, आपके पिताजी का नाम श्री हुकमचन्द जी सोधिया तथा माताजी का नाम श्रीमति चन्दानीदेवी था । आपकी लौकिक शिक्षा एम० कॉम० तक हुई थी । आपने १०-२-८३ को सम्मेदशिखरजी सिद्ध क्षेत्र पर ऐ० दीक्षा धारण की ।

❖

मुनिश्री निजानन्दसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित शिष्य

मुनि श्री निजानन्दसागरजी महाराज

❖

मुनिश्री त्यागानन्दजी

मुनिश्री त्यागानन्दजी महाराज

आपका पूर्व नाम नगीनदास झवेरी था। बोरीवली बम्बई में आपका निवास स्थान था। १९४८ में गजपंथा सिद्ध क्षेत्र पर आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किये। क्षु० दीक्षा ११-९-८३ को एवं मुनि दीक्षा १३-९-१९८३ को एवं समाधि भी १३-९-८३ को सूरत गुजरात में हुई। आपने मुनि निजानन्दसागरजी से मुनि दीक्षा अन्तिम समय में ली थी।

❖

मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज (दक्षिण)

द्वारा दीक्षित शिष्य
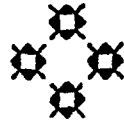
मुनि श्री नेमिसागरजी
मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी (दक्षिण)
मुनि श्री सीमंधरसागरजी
मुनि श्री नेमिसागरजी

मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज

पूज्य मुनिराज का जन्म पंजाब के एक छोटे से गांव में हुआ था। बहुत छोटी सी अवस्था में आप देहली में श्रीमान लाला रणजीतसिंहजी के यहां गोद आ गये थे। आपका बचपन का नाम नेमीचन्द्र था। आप बचपन से ही सांसारिक कार्यों में उदासीन रहे।

धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि रखते थे। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने क्षुल्लक दीक्षा परम पूज्य मुनि १०८ श्री सुमतिसागरजी महाराज के पास कचनेर ग्राम में आज से २५ साल पहले ग्रहण की, पूज्य मुनि १०८ श्री सुमतिसागरजी महाराज के पास संवत् २०१२ में टांकाटुका ग्राम में मुनि-दीक्षा ग्रहण की। आप पूज्य महाराजश्री के साथ ही विहार करते हैं। आप स्वभाव के बड़े मृदु एवं मितभाषी हैं। आपके प्रवचन प्रभावशाली होते हैं। आपके ज्ञान का क्षयोपशम महान है। निरतिचार पूर्वक महाव्रतों का पालन करते हैं।

मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी महाराज (दक्षिण)

आपने महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में महूत ग्राम में भीकमचन्द पिता एवं गऊबाई माता की कुक्षि से चैत सुदी पंचमी को लुहाड़े गोत्र में जन्म लिया था। आपका पूर्व नाम श्री रतनलालजी था। आपने आचार्य शांतिसागर जी से १९९० में क्षुल्लक दीक्षा ली। मुन्नूर ग्राम में सं० २००३ में सुमतिसागरजी महाराज से फाल्गुन सुदी तीज को मुनि दीक्षा स्वीकार की। भारत भर में विहार किया तथा अनेकों जगह धर्म प्रभावना की, अन्त में उदयपुर में आपने समाधि धारण की। आचार्य शिवसागरजी के सान्निध्य में विधि पूर्वक समाधिमरण किया।

❖

मुनिश्री सीमन्धरसागरजी महाराज

आपका जन्म हालगे (वेलगांव) कर्णाटक में हुवा था। आपके पिता खेती एवं साहुकारी का कार्य करते थे। पूर्व नाम जिनप्पा चतुर्थ था। आपके पिता का नाम श्री मालप्पा तथा माता का नाम पद्मावती था। आपकी लौकिक शिक्षा मिडिल प्रवेशिका तक ही रही। आप १५ वर्ष की उम्र में ब्रह्मचारी बन गये। आपने ९-११-५३ को मुनि मल्लिसागरजी से बेलगांव में क्षुल्लक दीक्षा ली। ऐलक दीक्षा १-७-५८ को मुनि सुपार्श्वसागरजी से औरंगाबाद में ली तथा मुनि दीक्षा भी श्री सुपार्श्वसागरजी से सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरी में २६-१२-५८ को ली। आपने अपने जीवन काल में

७ दीक्षाएँ दीं। जैन समाज ने आपको बाराबंकी में ४-३-१९७४ में आचार्य पद प्रदान किया। आप भारतवर्ष में विहार करके जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना कर रहे हैं।

मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज

आपका जन्म राजस्थान प्रदेश के प्रमुख नगर जयपुर में हुआ था। उनके पिता का नाम जमनालाल एवं माता का नाम गुलाब बाई था। सं० २०२१ में उन्होंने श्री गजपंथा जी के पुण्य तीर्थ पर क्षुल्लक दीक्षा ली एवं मुनि दीक्षा (महाराष्ट्र) औरंगाबाद में श्री सुमतिसागर जी से ले ली। फिर वह गुरु के साथ विहार करते रहे एवं आत्मार्थियों को उपदेश देकर उनका कल्याण किया। मुनि श्री महान तपस्वी हैं और व्रत उपवास करते ही रहते हैं।

आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

आ० श्री देशभूषणजी महाराज

मुनिश्री सुबलसागरजी
मुनिश्री ज्ञानभूषणजी
मुनिश्री सन्मतिभूषणजी
मुनिश्री विद्यानन्दजी
मुनिश्री सिद्धसेनजी
मुनिश्री बाहुबलिजी
मुनिश्री सुमतिसागरजी
मुनिश्री शांतिसागरजी
मुनिश्री निर्वाणसागरजी
क्षुल्लक श्री चन्द्रभूषणजी
,, नन्दिषेणजी

क्षुल्लक श्री पदमसागरजी
,, भद्रबाहुजी
,, आदिसागरजी
,, इन्द्रभूषणजी
,, वृषभसेनजी
,, जिनभूषणजी
आर्यिका सुव्रतामतीजी
आर्यिका शांतिमतीजी
,, यशोमतीजी
,, दयामतीजी
,, अनन्तमतीजी

क्षुल्लिका जिनमतीजी
,, चारित्रमतीजी
,, आदिमतीजी
,, अजितमतीजी
,, कमलश्री माताजी
,, जयश्री माताजी
,, चन्द्रसेनाजी
,, कृष्णमतीजी
,, वीरमतीजी
,, राजमतीजी
,, श्रेयांसमतीजी
,, विजयमतीजी

मुनिश्री सुबलसागरजी महाराज

आपका जन्म मैसूर प्रांत जिला बेलगाम, तहसील अथणी, नंदगांव देहात में पाटिल (क्षत्रिय) वंश में शिवगौडा नाम के सम्यक्दृष्टि, सरल स्वभावी श्रावक की धर्मपत्नी, अनेक गुण संपन्न शीलवती श्री गन्धारी माता की कुक्षी से दिनांक ४-१-१९१६ में हुआ। आपका नाम परगौड़ा रखा गया। आपकी शिक्षा कक्षा ४ तक रही। माता-पिता के धर्म संस्कारों के साथ-साथ आप देव-दर्शन, शास्त्र-श्रवण आदि धार्मिक क्रियाओं का पालन करने लगे। अठारह वर्ष की आयु में आपकी शादी धर्म-परायणा सुश्री चंपावती बाई के साथ हुई। आपके चार पुत्रियाँ एवं एक पुत्र होते हुए भी गृहस्थाश्रम से उदासीन, जैसे जल से भिन्न कमल की तरह, आप धार्मिक कार्यों में बढ़ते रहे।

संसार से विरक्ति के कारण नसलापुर गांव में चातुर्मास के समय श्री १०८ वीरसागरजी महाराज से १०-८-१९५६ शुक्रवार को क्षुल्लक दीक्षा ले ली। चन्द्रसागर नाम रखा गया। कुछ वर्ष यत्र-तत्र भ्रमण एवं चातुर्मास करने के बाद श्री देशभूषणजी महाराज से सन १९५९ फाल्गुन मास में ऐलक दीक्षा धारण की। अनन्तर सन् १९६१ में मांगूर गांव में आचार्यरत्न देशभूषणजी महाराज ने श्री १००८ ऋषभनाथ तीर्थंकर पंचकल्याणक किया तथा वहीं पर आचार्य रत्न महाराजजी के कर कमलों से जेठ शुक्ला दशमी सन् १९६१ को श्री चन्द्रसागर ऐलक को मुनि दीक्षा दी। उस समय आपका श्री १०८ सुबलसागर नाम रखा गया।

मुनि दीक्षा के २०-२५ दिन बाद असाता कर्म के उदय से आप अधिक बीमार हो गये। शरीर बहुत क्षीण हो गया। परन्तु आयु कर्म अवशेष रहने पर धीरे-धीरे आपका स्वास्थ्य ठीक हो गया। अस्वस्थ रहने के कारण गुरु संघ को छोड़कर दक्षिण में यत्र-तत्र भ्रमण करते रहे।

इसी प्रकार भ्रमण करते हुए आपके संघ का पिछले वर्ष ग्राम डोड़वाल जिला बेलगाम में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर धर्मोपदेश से वहां के समाज ने ३।। लाख रुपयों की लागत से "अनाथालय आश्रम" की स्थापना की, जिसका कार्य अभी शुरू है।

धर्मामृत व कल्याणकारी उपदेश जिनके मुखारविन्द से झरते हों, ऐसे श्री १०८ सुबल-सागरजी महाराज कोटिशः दीर्घायु हों।

❖

मुनिश्री ज्ञानभूषणजी महाराज
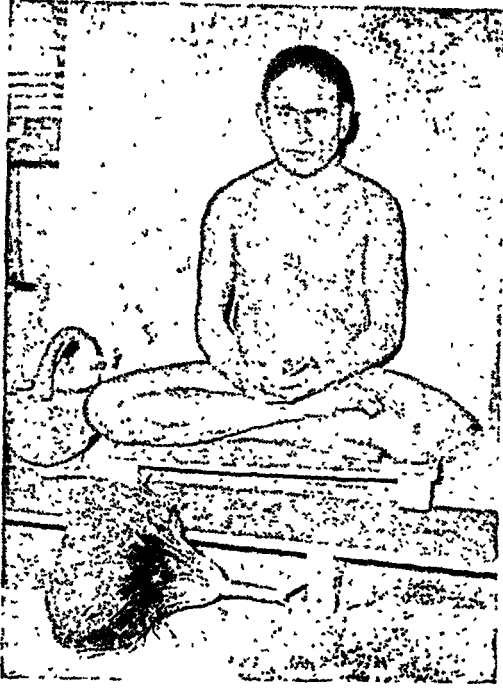
परम पूज्य विद्यालंकार बाल ब्रह्मचारी वाणी भूषण आचार्य रत्न देश भूषणजी महाराज के परम शिष्य दया निधान परम तपोनिधि आचार्य कल्प श्री १०८ ज्ञान भूषणजी का जन्म मध्य प्रदेश ग्वालियर स्टेट जिला मोरेना परगना अम्बाह ग्राम एसहा में शुभ नक्षत्र में हुआ। इनके पिता का नाम श्रीलाल व माता का नाम सरस्वती था। सरस्वती देवी के कूख से तीन पुत्र व एक पुत्री ने जन्म लिया। इनके बचपन का नाम श्री पोखेराम था तथा इनके बड़े भाई का नाम लज्जाराम व इनके छोटे भाई का नाम कपूरचंद था व बहिन का नाम रामदेवी रखा गया। इन सभी में पोखेराम अद्वितीय व कुलदीपक जन्में। पोखेराम का जन्म असाढ़ सुदी सप्तमी बुधवार की रात्रि में वि० सं० १९७७ में हुआ था। श्री पोखेराम के पिता श्रीलालजी व्यापार के काम से कलकत्ता आया जाया करते थे। इनके घर में घी का तथा गिरवी रखने का व्यापार होता था। श्री पोखेराम ने केवल चार वर्ष तक स्कूल में शिक्षण प्राप्त किया व बाल्यकाल के व्यतीत होने के बाद आप अपने पिता के साथ कलकत्ता जाने आने लगे और बाद में वहीं (कलकत्ता) में वहु वाजार में कपड़े की दुकान पर काम करने लगे, बचपन से ही धर्म में रूचि थी तथा हमेशा जिन मंदिर में सेवा पूजा करते थे। एक दिन रात्रि में सोते समय रात्रि के चार बजे एक भविष्य वोधक आश्चर्य जनक स्वप्न देखा, वह स्वप्न संकेत कर रहा था कि पोखेराम यह मार्ग तुम को सम्मेदशिखरजी का रास्ता बता रहा है इस मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग से न जाना। इनकी प्रवृत्ति शुरू से ही वैराग्य की ओर झुकी हुई थी।

यह पहला अवसर था कि एक दिन यह शुभ सूचक स्वप्न देखा, प्रातः उठते ही उस स्वप्न का ध्यान कर बिना किसी को कहे दुकान वन्द कर सम्मेद शिखर की यात्रा करने व स्वप्न को सार्थक करने निकल पड़े। माघ शुक्ला पंचमी का दिन था, मीठी मीठी सर्दी भी थी, हावड़ा से गाड़ी में बैठ कर ईसरी स्टेशन पर उतर कर पैदल मार्ग से चल दिये। आपने स्वप्न में जो जो चिन्ह देखे थे वे अव प्रत्यक्ष दीखने लगे। जैसे जैसे मधुबन की ओर बढ़ते जा रहे थे कि स्वप्न की वातें स्मरण होती आ

रही थी। शाम को आप सम्मेदशिखरजी पहुँचे तथा रात्रि वहीं बिताई और सुबह तीन बजे उठ कर पहाड़ पर दूसरे और लोगों के साथ चढ़े तथा सम्मेदशिखरजी की वंदना की। पुनः दूसरे दिन वंदना करते हुए जब पार्श्वनाथजी के टोंक पर पहुँचे तो पारस प्रभु को प्रणाम कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और कहा कि आज से मुझे सम्पूर्ण प्रकार की स्त्रियों का त्याग है। उस समय आपकी उम्र १८ वर्ष की थी। १८ वर्ष में ब्रह्मचर्य व्रत लेना इनके त्यागमयी एवम् संयमी जीवन एवं उच्च विचार का परिचारक था। गिरि से लौटने के बाद पिताजी ने इनको शादी के लिये कहा लेकिन आपने तो व्रत धारण कर लिया था अतः इन्कार कर दिया कि मैं शादी नहीं करूंगा। कलकत्ता में ही आपको आचार्य रत्न श्री १०८ श्री देश भूषणजी महाराज के दर्शनों का पुण्य लाभ मिला, आचार्य श्री का चातुर्मास कलकत्ता में हुआ तथा आप व आपकी बहिन रामदेवी ने चौका लगाया। चातुर्मास पूरा होने पर आचार्य श्री ने सम्मेदशिखर को प्रस्थान किया तो आप भी भक्तिवश संघ के साथ चल दिये। वहाँ पहुँच कर आपने दूसरी प्रतिमा के बारह व्रतों को धारण किया। तथा उसके बाद श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषणजी ने इनकी अगाढ भक्तिवश वैयावृत्ति की भावना देखकर आज्ञा दी कि पोखेराम बेटा तुम हमारे साथ बाहुबली की यात्रा के लिये चलो। महाराज की आज्ञा को पोखेराम ने सहर्ष स्वीकार किया और महाराज के साथ चल दिये। आप आचार्य देश भूषणजी के संघ में ही रहने लगे, तथा वैशाख सुदी तेरस सं० २०२० बुधवार के दिन आचार्य श्री देशभूषणजी ने आपको क्षुल्लक दीक्षा दी और ज्ञानभूषण शुभ नाम आपका रक्खा। तीन वर्ष नो माह आपने क्षुल्लक अवस्था में व्यतीत किये और श्री शान्तिमतीजी से आपने व्याकरण एवं धर्म ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त किया तथा पंडित अजितप्रसादजी से सर्वार्थसिद्धि पढ़ी। इसके बाद माघ शुक्ला सप्तमी शुक्रवार सन् १९६९ में आचार्य देशभूषण महाराज से मुनि दीक्षा लेकर महाव्रतों को धारण किया। इस प्रकार आप अनेक तीर्थों की वन्दना करते हुए, जगह जगह विहार करते हुए लोगों को धर्मोपदेश देते हैं।
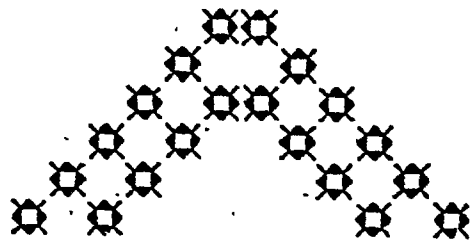
मुनिश्री सन्मतिभूषणजी महाराज

आपका जन्म हरियाणा प्रान्त के रोहतक जिला सोनीपत के पास हुलाहेड़ी में भादों सुदी चौदस सं० १९६४ में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री दयाचन्दजी अग्रवाल था। आपका परिवार धर्मात्मा है। आप ७ भाई हैं। मां का स्वर्गवास छोटेपन में हो गया था, उस समय आप ४ वर्ष के थे। आपकी भुआ सुखदेई देवी थी। आपने सातों भाईयों का पालन पोषण किया। आपकी शिक्षा सामान्य ही थी। आपने हिन्दी-मुन्डी पढ़कर बही खाते के काम में अपने आपको लगा दिया। आपका समय समय पर धर्म के कार्यों में ध्यान रहता था। सभी प्रकार से सुख और शांति होने पर भी आपको सं० २०१८ में वैराग्य हो गया तथा सर्वस्व परिवार वालों को सौंपकर ५४ वर्ष की आयु में सब परिग्रह का त्याग कर दिया। आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से सं० २०२६ में मुनि दीक्षा ली। आपका नाम सन्मतिभूषणजी रक्खा। सं० २०३६ में आपने सिद्धक्षेत्र सोनागिर पर समाधिमरण कर इस पार्थिव शरीर का त्याग किया।

उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज
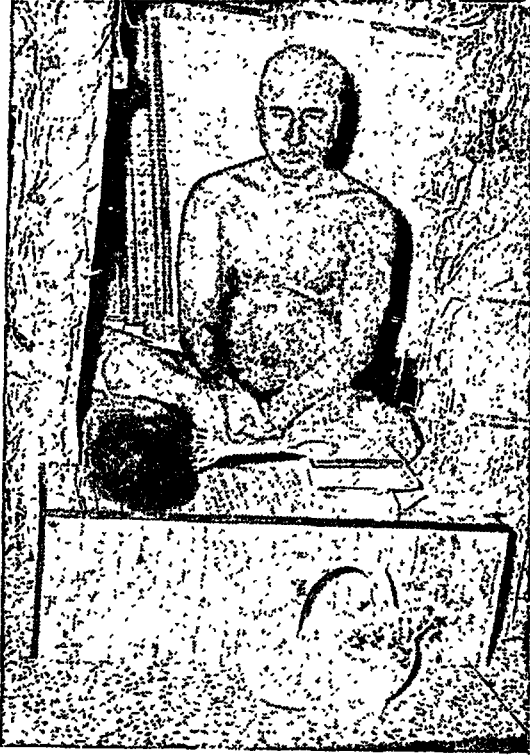
आँखों में दिव्य ज्योति, अधरों पर बोध पूर्ण स्मृति-रेखा, छवि में वीतरागत्व की सौम्यता, दिगम्बर ऋषि जिनके प्रशस्त भाल पर चिन्तन और अनुभूति पक्ष का साधना-मूलक जीवन विसर्जन और तपोनिष्ठ व्यक्तित्व के धनी मुनिश्री विद्यानंदजी महाराज आज जैन जगत शिरोमणि संत हैं ।

मुनिश्री का जन्म दक्षिण भारत के उसी बेलगांव जिले में २५ अप्रेल १९२५ में हुआ था, जिसे आचार्यरत्न चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी महाराज की कर्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। आपकी माता श्रीमती सरस्वती देवी और पिता श्री कालचन्दजी उपाध्याय बेलगांव के शेडवाल नामक ग्राम के रहने वाले हैं । माता पिता के धार्मिक विचारों का प्रभाव ही बालक सुरेन्द्र (मुनिश्री विद्यानंदजी का बचपन का नाम) के व्यक्तित्व और आचार विचार पर स्पष्ट परिलक्षित होता है । मुनि श्री विद्यानंद की शिक्षा श्री शान्तिसागर विद्यालय में हुई और ब्रह्मचर्य की दीक्षा दिसम्बर १९४५ में तपोनिधि श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ने दी । मुनिश्री के मन में बाल्यावस्था से ही मुनि बनने की प्यास थी ।

मुनिश्री की सबसे बड़ी विशेषता उनका बेलागपन और समन्वय की प्रवृत्ति है । आप प्राचीन धार्मिक विचारों के अनुशीलन के साथ साथ आधुनिक सभी अच्छाईयों के समर्थक हैं । समस्त धर्मों के मूल तत्वों का आदर करते हैं और जैनदर्शन एवं आगम के अनुकूल आत्मिक साधना के पथ पर चलते हैं । मानव की समानता के पोषक एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" में इनकी आस्था है ।

मुमिश्री जहाँ "स्वान्त:सुखाय" इन्द्रिय निग्रह और तपश्चरण द्वारा अपने आत्म-सृजन में लीन हैं वहां वे "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" समीचीन धर्म का उपदेश भी करते हैं । सतत् लगन और स्वाध्याय द्वारा उन्होंने तत्वों का यथार्थ ज्ञान एवं वस्तु स्वरूप का मूर्त–अनुभव प्राप्त किया । अपने प्रवचन में जिन वचनामृतों का दान करते हैं उसे लेने हजारों की संख्या में धर्म श्रद्धालु आते हैं ।

उनका शेष समय साहित्यसृजन में लगता है। आपकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, प्रांजल और प्रसादगुण युक्त है। आपके प्रवचनों में जैसे अमृत की मिठास घुली हो। एक सम्मोहन और आन्तरिक प्रभाव आपकी वाणी में है।

विश्वधर्म की रूपरेखा, पिच्छी और कमंडलु, कल्याणमुनि और सम्राट सिकन्दर, "ईश्वर क्या और कहां है ? देव और पुरुषार्थ आदि ३० पुस्तकों की रचना की है। आपने भ० आदिनाथ पर विशेष शोध कार्य चल रहा है।

आज धर्म को केवल मन्दिरों तक सीमित कर दिया है, परन्तु मुनि श्री के चरण जहां जहां जाते हैं एक नये तीर्थ की स्थापना हो जाया करती है। लाखों जैन बन्धुओं की अटूट भीड़ आपके दर्शनों और प्रवचनों के श्रवण हेतु उमड़ पड़ती है।

जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त गीता, वेद, स्मृति, पुराण, उपनिषद्, ग्रन्थसाहिब, मुस्लिम साहित्य एवं बाईबिल आदि का गहन अध्ययन किया है। आपने ३२ प्रकार की रामायणों का अवलोकन एवं अध्ययन कर समीक्षात्मक विवेचन किया है। श्रमण संस्कृति के तपःपूत साधक मुनिश्री का दैनिक जीवन बड़ा ही अनुशासित है और प्रत्येक कार्य ठीक समय से करते हैं। आपके पास ज्ञान का अथाह सागर जैसे भरा पड़ा है। आंग्ल-भाषा का अच्छा ज्ञान है और आवश्यकता पड़ने पर आप विदेशी विद्वानों को इसी भाषा के माध्यम में अपनी बात कहते हैं।

आपने आकाशवाणी से जैन भजनों और गीतों के प्रसारण करने को प्रोत्साहन दिया और अनेकों बड़े काम किये। जैन नवयुवकों को अपने संस्कारों के प्रति हमेशा सचेष्ट करते रहते हैं। और अपनी वाणी द्वारा एक धर्म क्रान्ति का मन्त्र फूंक देते हैं। हजारों नास्तिक आपके प्रभाव से आस्तिक बन धर्म के प्रति श्रद्धालु बन गये।

आप वर्ष में एक माह से अधिक मौन रहते हैं और वह समय आत्म चिन्तन एवं ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन में लगाते हैं। हजारों विद्वानों, लेखकों और इतिहास विशारदों को जैन संस्कृति पर नयी बात लिखने, अन्वेषण करने और शोधात्मक निबन्ध लिखने के लिए प्रेरित करते हैं।

पू० ऐलाचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के निर्देशानुसार भ० बाहुबली स्वामी का १००० वां महामस्तिकाभिषेक अति ही धूमधाम से सम्पन्न हुवा। धर्मचक्र, मंगलकलश आप की ही देन हैं। धर्मस्थल पर भी प्रतिष्ठा आप के निर्देशन में हुई। आपके द्वारा जन कल्याण होता रहता है। आपकी प्रवचन शैली अभूतपूर्व है आप एक ऐसे युगीन आध्यात्मिक संत हैं जिन्होंने जैन दर्शन को विश्व-मंच पर लाकर खड़ा कर दिया और अहर्निश जिनकी साधना सिर्फ इस शाश्वत अहिंसा धर्म के उन्नयन हेतु चल रही है।

❖

मुनिश्री सिद्धसैनजी महाराज

जव आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज ने कोल्हापुर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई थी तव आपने मधुर कंठ से पूजा कराई थी । आप खोतसाहब के नाम से प्रसिद्ध थे, आपको हर व्यक्ति सम्मान की दृष्टि से देखता था । राजकीय क्षेत्र में आपका महत्वपूर्ण स्थान था । आप महाराष्ट्र मंत्रीमंडल के सदस्य रह चुके हैं । भ्रष्टाचार का बढ़ावा देखकर राजकीय कार्यों से घृणा होने लगी तथा वीतरागता का पथ अपनाया । आपने लौकिक शिक्षा L. L. B. तक की । आप निरन्तर धार्मिक चर्चा में लीन रहते थे । आपने भारतवर्ष में सर्वत्र पद विहार करके धर्म प्रभावना की । आप गिरनार क्षेत्र की वंदना करने जा रहे थे, रास्ते में आपका स्वास्थ नरम हो गया तथा इसी बीच आपकी समाधि हो गई ।

श्रीबालाचार्य १०८ बाहुबली मुनि महाराज

आपका जन्म शुक्रवार तारीख १६ दिसम्बर १९३२ शके १८५४ मार्गशीर्ष वद्य तृतीया पुष्य नक्षत्र पर रुकड़ी जिला कोल्हापुर महाराष्ट्र राज्य में एक सीधेसाधे किसान परिवार में हुआ । रात के आठ वजे खेत पर घास फूस की कुटी में जन्म लेने वाला यह वालक साथ में शुभ शकुन लेकर ही आया । जन्म से पहले आधा घँटा कुटी के वाहर सियारों ने शोर मचाया था मानों वे वता रहे थे कि "होशियार ! इस महान भारत देश में एक महाज्ञानी महात्मा जन्म ले रहे हैं ।"

वही बालक वर्तमान काल में अपने गाँव और देश का नाम रोशन कर रहा है ।

आपके पूज्य माताजी का नाम आक्कुबाई और पिताजी का नाम वलवंतराव था । अब वे दोनों स्वर्गवासी हैं ।

बचपन में बदन से गठीले होने से लोग बंबू कहके बुलाते थे। आगे चलकर यही नाम संभू, संभाजी और संभवकुमार बन गया।

आप ७ साल की उम्र तक बीमार ही थे। सिर्फ ककड़ी खाने से बीमारी खतम हो गयी। नमक और मिरच खाना यह बचपन की खास आदत थी।

१९४२ से स्कूल की पढ़ाई शुरू हो गयी। रुकड़ी के पाठशाला में चौथी तक पढाई हुई। स्कूल में आप सदा विनम्र होशियार रहे थे।

आगे की शिक्षा सातवीं कक्षा तक बाहुबली गुरुकुल में हुई। वहाँ शिक्षा के साथ जैन धर्म के असली संस्कार हो गये। वहीं पर अपने मन में ख्वाब बनाये और निश्चय किया कि मैं आगे चलकर धर्मसेवा हो करूँगा।

बाहुबली आश्रम के खर्च का बोझ ज्यादा होने के कारण आपके पिताजी ने आपको वापस रुकड़ी में महात्मा गांधी विद्या मंदिर से आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कराई। जिसके बाद स्कूल छोड़ना पड़ा।

बाद में घर की छोटी सी दुकान और खेती का काम करने लगे। काम करते करते जब कभी फुरसत मिलती तो साइकिल लेकर बाहुबली या कहीं अन्य धार्मिक स्थान जहाँ जैन धर्म का पवित्र स्थान हो वहाँ जाया करते थे।

जिस तरह बचपन से ही आप सन्यस्त और धर्मशील रहना चाहते थे। ब्रह्मचारी रहकर संसारी जीवन छोड़ने की बचपन में ही आपने प्रतिज्ञा की थी।

सन् १९५३ से १९६० तक आपने जन कल्याण कार्य भी किया। छोटे बच्चों को नाट्य, गाना आदि सिखाते थे। गाँव के बाहर १९५९ में एक घास-फूस की कुटी बनाकर बच्चों के पढ़ाई के लिये आश्रम भी खोला था। गाँव में एक नाटय संस्था भी खोली थी।

१९५९ में आपने किसान और शिक्षकों के साथ भारत दर्शन यात्रा भी की है।

महाराज के प्रवचन को सुनकर आपके मन में वैराग्य की भावना जागृत हो गई और महाराज के संघ में पहुँचकर ब्रह्मचर्य और क्षुल्लक दीक्षा ले ली।

शुक्रवार तारीख २४ मार्च १९६७ को आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण महाराजजी के शुभ हस्ते और श्री श्रवण बेलगोल के महा गोम्मटेश्वर मंदिर के पवित्र स्थान पर सुबह ८॥ से ९॥ तक

ब्रह्मचारी "संभवकुमार को" क्षुल्लक दीक्षा दी गयी और उसी वक्त आपको श्री क्षुल्लक १०५ बाहुबली नाम दिया गया।

बुधवार तारीख २६ फरवरी १९७५ माघ बदी प्रतिपदा को दोपहर के ४.११ बजे तारंगा सिद्ध क्षेत्र में आचार्य श्री १०८ देशभूषण मुनिश्री ने आपको मुनि दीक्षा दी। आपने उस वक्त निश्चय-पूर्वक अपने वस्त्रों का और सर्वस्व का त्याग किया और १०८ बाहुबली मुनि बन गये।

जिसके बाद आपने गिरनार होकर दक्षिण भारत की तरफ विहार किया।

सन् १९७६ को आपका चातुर्मास कोथली-कुपानवाडी में हुआ। जहाँ पर आपने आचार्य श्री १०८ देशभूषण मुनिश्री को शांतिगिरी का कार्य करने में हाथ बँटाया था और वहाँ पर भी एक बड़े क्षेत्र का निर्माण जैसा कि जयपुर में चूलगिरी का है, हो रहा है।

मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज
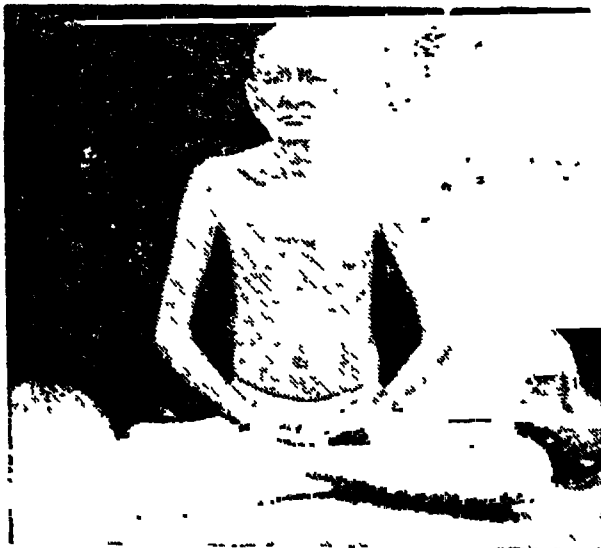
अगहन बदी अमावस्या विक्रम सं० १९५२ में वृन्दावन मथुरा श्रेष्ठी श्री रामदयालजी गर्ग के यहां पर अग्रवाल जाति में जन्म लिया था। आपने हिन्दी की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। जैनागम के अनेकों ग्रंथों का विधिवत पारायण किया तथा संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी के अच्छे प्रवक्ता बन गये। आपने दिव्यसन्देश, सामायिकध्यानदर्पण, अहिंसा की पुकार, जैन धर्म प्रकाश, नामक ग्रन्थों को लिखकर समाज को नई दिशा दी। जहानाबाद में आपने व्रती गुरुकुल की स्थापना कराई। सामाजिक क्षेत्र में आपका काफी योगदान रहा। जीवन में वैराग्य भावना थी अतः पायसागरजी महाराज से सं० २००५ में सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किए एवं अयोध्याजी में आचार्य देशभूषणजी महाराज से सं० २००९ में क्षुल्लक दीक्षा ली। अन्त समय में मुनि बनकर समाधि प्राप्त की।

❖

मुनिश्री शान्तिसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि शान्तिसागरजी का पहले का नाम शिवप्पा था। आपका जन्म आज से ७२ वर्ष पूर्व बेलगांव जिले के चन्दुर गांव में हुआ था। आपके पिता श्री सत्यन्धरजी थे। आपकी माताजी रुक्मणिदेवी थी। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ४थी तक हुई और धार्मिक शिक्षा प्रवेशिका तक हुई। आपका पैतृक व्यवसाय कृषि था। बाद में व्यापार करने लगे थे। आपके परिवार में एक भाई दो बहनें हैं। आपका विवाह भी हुआ पर घर में मन नहीं लगा। आप घर में रहकर भी वैरागी थे।

प्रतिदिन के शास्त्रश्रवण, देव पूजन और गुरू उपदेश से आपके भावों में विशुद्धता आई, अतएव आपने २-४-१९४३ को सांगली जिले के भोसे गांव में श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराज से मुनि दीक्षा ली। आपने सांगली, इलाहबाद, मधुवन, बडौत, कलकत्ता आदि स्थानों पर चातुर्मास किए। वहां आपके रहने से बड़ी धर्म प्रभावना हुई। आपने मोक्षशास्त्र दशभक्त्यादि के पाठों का काफी मनन किया। आपने तेल दही का त्याग कर दिया है।

मुनिश्री निर्वाणसागरजी महाराज
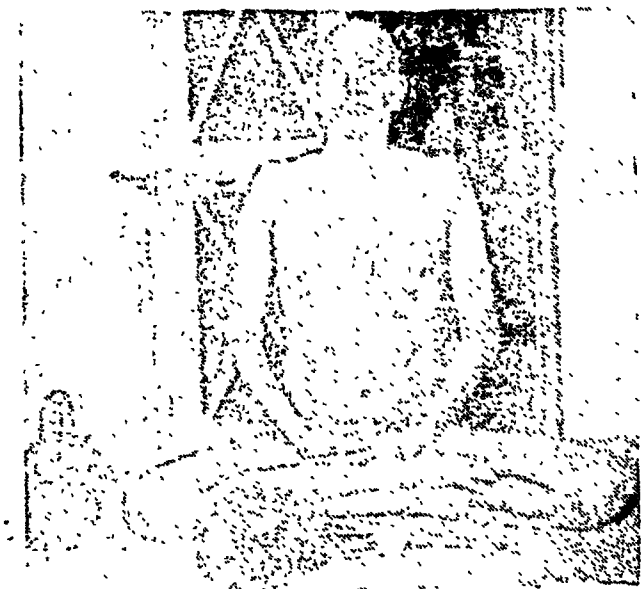
परम पू० मुनि श्री का जन्म राजस्थान जयपुर के ढ़्याणी आसलपुर ग्राम में भाद्रप्रद शुक्ला त्रयोदशी संवत् १९७६ को पू० मातेश्वरी रूणीबाई की कोख से हुवा था। आपका पूर्व नाम चिरंजीलाल था। आप खण्डेलवाल वैश्य जाति छाबड़ा गोत्र से सम्वन्ध रखते हैं। बचपन से ही धार्मिक रुचि थी। आप बालब्रह्मचारी रहे। आप जैसे जसे बड़े हुए वैसे वैसे ही संसार को असार जानकर उदासीनता की ओर बढ़ते गये जिसके फलस्वरूप आपने आचार्य विमलसागरजी से ईशरी में क्षुल्लक दीक्षा ली। तत्पश्चात् श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराज से माघ शुक्ला सप्तमी २०२५ को जयसिंहपुरा में मुनि दीक्षा ली। दीक्षा के बाद अनेकों स्थानों पर चातुर्मास किए। आपने फुलेरा चातुर्मास किया तथा यहीं पर समाधिमरण किया।

❖

क्षुल्लक श्री चन्द्रभूषणजी महाराज

आपके पिता का नाम वीरगौड़ा पाटिल था। सदलगा तालुका चिकोड़ा जि० बेलगांव में १९३१ को आपका जन्म हुवा था। आपने मराठी में शिक्षा पाई, आपका गृहस्थ अवस्था का नाम जिनगौड़ा था। आप आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा लेकर आत्म कल्याण कर रहे हैं। आप निरन्तर स्वाध्याय में रुचि रखते हुए धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करते रहते हैं।

❖

क्षुल्लक श्री नन्दिषेणजी

श्री १०५ क्षुल्लक नन्दिषेणजी का पहले का नाम निगप्पा सेठी था। आपका जन्म आज से लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व म्हेसवाड़ी जिला बेलगांव में हुआ। आपके पिता श्री धरमप्पा सेठी थे, जो कृषि फार्म पर कार्य करते थे। आपकी माता का नाम अम्मादेवी था। आप चतुर्थ जाति के भूषण हैं। आप सेठी गोत्रज हैं। आपने धार्मिक अध्ययन स्वयं ही किया। आपके परिवार में तीन भाई और दो बहिनें हैं। विवाह भी हुआ। तीन पुत्र और चार पुत्रियां हुईं।

गुरुजनों के धर्मोपदेशों को सुनकर आपने संसार असार समझा। वैशाख शुक्ल पक्ष २०२५ में कोथली (बेलगांव) में श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको दसभक्ति आदि पाठ कण्ठस्थ हैं आपने कोथली, टिकैतनगर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपने घी, गुड़ आदि रसों का त्याग भी किया।

❖

क्षुल्लक श्री पदमसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक पदमसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम देवलाल मारवाड़ा था। आपका जन्म आषाढ़ वदी चौदस विक्रम संवत् १९५३ में नैनवां (बूंदी) राजस्थान में हुआ था। आपके पिता श्री रामचन्द्रजी व माता श्री छन्नावाई थी। आप अग्रवाल जाति के भूषण व गर गोत्रज हैं। धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। विवाह भी हुआ।

आपने स्वयं के अनुभव से संसार को नश्वर जानकर आचार्य श्री १०८ देशभूषणजी महाराज से वैशाख सुदी ११ को विक्रम संवत् २०२१ में सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिये। इसके बाद आषाढ़ वदी चौदस विक्रम संवत २०२१ में आपने आचार्य श्री १०८ देशभूषणजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। टोंक, लावा, चोरू आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने तीनों रसों को त्याग दिया है।

क्षुल्लक श्री भद्रबाहुजी

मगुर (औरंगाबाद) में अम्बालालजी का जन्म हुवा था। आपकी मातृ भाषा मराठी रही है। आपके पिताजी का नाम श्री शंकरलालजी था। तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में आपने चौथी प्रतिमा मुनि धर्मसागरजी से धारण की तथा सातवीं प्रतिमा आ० शन्तिसागरजी से ली। पश्चात् क्षुल्लक दीक्षा देशभूषणजी महाराज से १९५८ में ली। आपने महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, विहार, गुजरात, राजस्थान, दिल्ली आदि प्रान्तों में विहार कर, प्रवचन देकर धर्म प्रभावना की है। आप सरल एवं शान्तस्वभावी साधु थे।

क्षुल्लक श्री आदिसागरजी महाराज

आपका जन्म ई० सन् १८८६ में सिरस गांव तहसील एलिचपुर में हुवा था। इनका गृहस्थावस्था का नाम देवीदास था। इनके पिता का नाम श्री काशीनाथजी तथा माता का नाम श्रीमती वनाबाई था। इनका जन्म विशुद्ध धार्मिक वंश में होने के कारण जन्म से ही धर्म की भावना घर कर गई थी। इनके पिता श्री काशीनाथजी ने मराठी भाषा में आदि पुराण की रचना की थी। आपको भी बचपन से धर्म के प्रति रुचि होने के कारण धार्मिक छंद एवं कवित्त आदि लिखने का शौक था। युवा अवस्था में तो आप जैन कवियों में श्रेष्ठ कवि माने जाने लगे थे। धार्मिक संस्कारों के कारण ६० वर्ष की आयु में आपको संसार से विरक्ति हो गई। आपने ई० सन् १९४९ में परम पू० १०८ श्री श्रुतसागरजी मुनिराज से सप्तम प्रतिमा धारण कर ली। तीन मास के पश्चात् ही आचार्य श्री १०८ श्री देशभूषणजी के पास पहुँचकर आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। आपने मराठी भाषा में पद्मपुराण की रचना की है जो मराठी भाषियों के लिये काफी हितकर सावित हुई है।

क्षुल्लक श्री इन्द्रभूषणजी महाराज

उत्तर भारत में जब विप्लव की आंधी चली तो सभी धर्मों के आयामों को कुछ न कुछ क्षति पहुँची। जैन धर्म-साहित्य का इतिहास पढने वाले सभी पाठक पंचम काल के दुष्परिणामों से भली भांति अवगत हैं। मौर्य सम्राट के स्वप्नों में यह बात झलकी थी। उस समय भी दक्षिण को टिमटिमाती धर्मज्योति का रक्षा स्थल समझा गया। आज भी जैनधर्म की प्रभावना करने वाले अधिकांश साधु दक्षिण की ही देन है। तमिलनाडु के मद्रास जिले में टच्यूर एक छोटा सा कस्बा है। पुंचामी नयनार श्रावक अपनी पत्नी पट्टममाल के साथ इसी ग्राम में रहकर धर्मसाधना किया करता था। पुण्ययोग से २४ अक्टूबर १६१० को उसे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम माणिक्य नयनार रखा गया। मणि की तरह ही निर्मल विचारों से उसका चित्त ओत-प्रोत रहता था। एक दिन गुरु-दर्शन से एकाएक उसके मन में वैराग्य का वीज अंकुरित हो उठा और उसने पू० विद्यासागरजी म० से सम्मेदशिखर के पादमूल में सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। विराग की चरम परिणति २० मई ७० को शमनेवाडी स्थान में पू० आ० श्री देशभूषणजी महाराज के पादमूल में पूरी हुई। गुरु ने आपको क्षुल्लक दीक्षा देकर क्षुल्लक इन्द्रभूषण महाराज आपका नाम रखा। यद्यपि आपकी शिक्षा प्राइमरी तक है फिर भी आपने अपनी लगन से शास्त्रों का अध्ययन करके मेरूमंदरा जीवसंबोधना (तमिल-कन्नड) ग्रन्थ लिखकर अपने ज्ञान का क्षयोपशम कर डाला। सम्प्रति आप सदुपदेशों से श्रावकों को लाभान्वित कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री वृषभसेनजी महाराज

पंच परावर्तन चक्र में भ्रमण करते हुए जीव को दो चीजें सदा अलभ्य ही बनी रहीं। एक तो सद्गुरु की संगति और दूसरी जिनधर्म की प्राप्ति। वैसे नरतन पाया तो अनेक बार परन्तु हर वार की कहानी एक नयी कहानी गढने के सिवाय कुछ और मुखरित नहीं हो सकी। शलाका पुरुषों का चारित्र जानने वाले भी इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि कर्म बिना किसी भेदभाव के अपना रस देने में जरा भी कंजूसी नहीं करते। यदि ऐसा न होता तो धर्म का इतिहास ही भ० वृषभदेव के समय से कुछ और ही लिखा जाता। अ० लाट (कोल्हापुर) के वलवंतराव भी अपने अनेक जन्मों के उत्थान-पतन की कहानी समेटे हुए आश्विन कृ० १४ वी० सं० २४३५ सन् १९०८ को घुलाप्पा जनकाप्पा गिरिमल्ल के घर में जन्मे तो काललब्धि का साया लेकर ही जन्मे। शान्तप्पा लाल के लिए सुखद सपने संजोती हुई इस तथ्य से सर्वथा बेखबर ही रही कि विराग की प्रतिध्वनियां आंगन में गूंजने लगी। भला सुकोमल मातृत्व ने उसके अतीत के संस्कारों की ओर झांकने की फुर्सत ही कब समझी। सन् १९६२ में वैशाख शु० १० की वह धन्य घड़ी भी आ पहुंची जब करुणानिधान पू० १०८ आ० श्री देशभूषणजी महाराज के दर्शन का सौभाग्य वलवंतराव को अनायास ही मिल गया। आसन्न भव्य की काललब्धि आ चुकी थी। संसार सागर से तिरने के लिए भव्यात्मा ने गुरु चरणों में निवेदन कर विराट् जनसमुदाय के समक्ष केशलोंच करके क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली और आपका नाम वृषभसेन घोषित हुआ। संसार सागर से तिरने के लिए पंथी को गुरुचरणों का आश्रय मिला। निरत स्वाध्याय करते हुए आपने जिनागम के रहस्य को प्रकट करने वाली हिन्दी मराठी कन्नड़ भाषाओं में अनूठी रचनाएं की जिनमें आहार शुद्धि और चौका विधान, अंडी आणि दूध, समाधिमरणोत्सव, अहिंसेचा विजय कृतियां प्रमुख हैं।

७१ वर्ष की अवस्था में भी आप निरतिचार चारित्र का पालन करते हुए ग्राम ग्राम में भ्रमण कर धर्म प्रभावना कर रहे हैं। निश्चय ही आज के समय में साधु समुदाय के समक्ष स्थिति-करण का महान कार्य उपस्थित है। पू० श्री वृषभसेनजी महाराज अहर्निश इस कार्य में लगे हुए हैं यह हम श्रावकों का अहोभाग्य ही है। अन्यथा इस कलिकाल में ऐसा सुमार्ग किसे कब कब मिल पाता है (खद्योतवत्सुदेष्टारौ हा द्योतन्ते क्वचित्)।

क्षुल्लक श्री जिनभूषणजी महाराज

आप आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं। विशेष परिचय अप्राप्य है।

आर्यिका सुव्रतामतीजी

विक्रम सं० १९५० में हव्वड़ी तालुका धारवाड़ में श्री रायप्पाजी के यहां पर अम्माचवा ने जन्म लिया। आपकी मातृ भाषा कन्नड़ी थी तथा स्कूल से शिक्षा प्राप्त की। १० वर्ष की उम्र में आपकी शादी रागप्पाजी के साथ हो गई। बचपन से ही धर्मपरायणता आपके हृदय में कूट कूट कर भरी थी इसी कारण दोनों ने छठी प्रतिमा के व्रत मुनिश्री पायसागरजी से ले लिए, घर में रहकर धर्मसाधना करते। वैराग्य तीव्र हुवा कि पति ने क्षुल्लक दीक्षा ली तथा स्वयं ने आर्यिका दीक्षा ले ली। आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज ने आपका नाम सुव्रतामती रखा। आपने १८ चातुर्मास किये तथा अपना सारा समय धर्मध्यान में लगाती थीं।

आर्यिका शान्तिमतीजी

बाराबंकी निवासी श्री कुन्थुदासजी की धर्मपत्नी श्री पद्मावती की कूख से चन्द्रावती ने वि० सं० १९८३ को जन्म लिया था । आपकी शिक्षा मिडिल तक थी । आपने छोटी सी अवस्था से जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया । अष्टसहस्री, सर्वार्थसिद्धि, गोम्मटसार, न्यायदीपिका, आदि ग्रन्थों को कंठस्थ याद कर गुरु को सुनाये । आप प्रवचन कला में दक्ष थी । आपको केंसर की भी शिकायत थी फिर भी धर्मध्यान नहीं छोड़ा तथा तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में आर्यिका दीक्षा ली । आपने ३२ चातुर्मास विभिन्न प्रान्तों में किए तथा जैन समाज ने आपके प्रवचनों से लाभ उठाया । आपकी शैली सरल एवं आदर्शता लिए हुए थी ।

आर्यिका यशोमती माताजी

आपका जन्म हरियाणा के सुप्रसिद्ध नगर सोनीपत में संवत् १९६७ में श्रेष्ठी श्री कुंवरसैनजी अग्रवाल के यहां हुवा था । आपकी माताजी का नाम गिन्दोड़ीबाई था, आपका जन्म नाम मैनावाई था । आपने पू० आचार्य देशभूषणजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली । आप धर्म साधना में संलग्न हैं ।

आर्यिका दयामतीजी

कौन जानता था कि वालिका फूलीबाई एक दिन इस संसार के समस्त सुखों और वैभव की चकाचौंध कर देने वाली चमक दमक को एक ही झटके में तिलान्जलि दे संघ में शामिल हो जाएगी।

आपका वचपन का नाम जैसा कि ऊपर वताया जा चुका है फूलीबाई था। आपके पिताजी का नाम श्री भागचन्द्र एवं माताजी का नाम मानकवाई था। आपका जन्म छाणी (उदयपुर) राजस्थान में हुआ। आप सुविख्यात आचार्य शान्तिसागरजी की सहोदरा बहिन हैं।

वचपन से ही आपके हृदय पटल पर वैराग्य भावना अंकुरित हो वर्द्धन एवं संरक्षण पाती रही। निरन्तर संगति व उपदेश श्रवण करते रहने से एक दिन वैराग्य भावना जागृत हुई और हुआ यह कि आप सांसारिक आकर्षणों से स्वयं को मुक्त समझकर उससे परे हो गई।

नारी सहज में ही ममत्व भरी होती है और फिर वह नारी जो मां वन चुकी हो उसके ममत्व का क्या कहना किन्तु धन्य है ऐसी नारी जिसको पुत्र, पति एवं भ्रातृ प्रेम के वन्धनों ने भी न वांध पाया हो।

वि० संवत २०२० में खुरई नामक स्थान में आचार्य श्री धर्मसागरजी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ली तथा आर्यिका दीक्षा संवत् २०२३ में आचार्य देशभूषणजी महाराज से दिल्ली में ली। आप डूंगरपुर में श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराज के संघ में शामिल हुई।

णमोकारादि मंत्र का आपको विशेष ज्ञान है। धर्म प्रेम की जैसी सद्भावना आपके हृदय-स्थल में है, वैसी भावना नारी जगत में यत्र तत्र सौभाग्य से ही मिलती है। महिला समाज को आप पर गर्व है।

दुर्ग, दिल्ली, जयपुर, उदयपुर और सुजानगढ़ नामक स्थानों में अपने चातुर्मास किया। दही, तेल और रस आपके लिए त्याज्य हैं।

आपके उपदेशों को सुनकर श्रोता स्वतः मंत्र मुग्ध से रह जाते हैं।

आर्यिका अनन्तमतीजी

एक तपस्विनी नारी के कंकाल मात्र शरीर में कितनी सशक्त, कितनी तेजस्वी आत्मा निवास करती है यह जानना हो तो आर्यिका अनन्तमतीजी के दर्शन कर लीजिये। रोग की पीड़ा, अन्तराय का क्षोभ और कठोर क्लांति की साधना उनके मुख पर कदापि नहीं पावेंगे। आप एक ऐसी आर्यिका हैं जो वर्ष में ३–४ मास ही आहार लेती हैं। प्रायः मौन रहकर धर्म ध्यान में लीन रहती हैं।

तपस्विनी आर्यिका अनन्तमतीजी का जन्म १३ मई १९३५ को गढ़ी गांव में हुआ था। आपके पिता लाला मिट्ठनलालजी थे और माता पार्वतीदेवी थी। दोनों ही धर्मपरायण थे। स्थानकवासी मान्यताओं के विश्वासी थे। आपके तीन पुत्र व चार पुत्रियां हुई। जिनमें से चौथी का नाम इलायची देवी था और जिसने इस युग में इलायची कुमारी की कहानी दुहरा दी।

बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने से परिवार के लोग गढ़ी छोड़ कर कांधला आ गये थे। इलायची देवी ने ८ वर्ष की आयु से ही त्याग की दिशा में बढ़ना शुरू किया। कांधला में बालिका स्थानक और दिगम्बर जैन मन्दिर दोनों जगहों पर जाने लगी और दोष मूलक वस्तु जानकर त्याग करने लगी। १३ वर्ष की अवस्था में तो रात्रि में पानी तक पीने का आजीवन त्याग कर दिया।

जब आपने भगवान महावीर का जीवन चरित्र पढ़ा तब आपके मन में यह सुदृढ़ विश्वास हुआ कि अपरिग्रह मूलक दिगम्बर परम्परा से ही आत्मकल्याण होगा अन्यथा नहीं। फलतः आप जहां कट्टर दिगम्बर परम्परा की पोषक बनी वहां महावीर–सी विरक्ति हेतु तरसने लगीं। आप भोग से योग की ओर चलने का उपक्रम करने लगीं। जिन आभूषणों के लिए अन्य स्त्रियां प्राण देती हैं उन्हें आपने हमेशा के लिए त्याग दिया। जिस वासना की पूर्ति के लिए अन्य महिलाएं अनेक कुकृत्य करने में भी संकोच नहीं करती हैं आपने उस वासना का बलिदान ब्रह्मचर्य व्रत लेकर कर दिया। यद्यपि आप अभी न क्षुल्लिका थो न आर्यिका तथापि आपकी साधना उनसे किसी प्रकार कम नहीं थी।

आप घण्टों सामायिक करती, लोग देवी कहकर पूजते, दर्शनों के लिए भक्त उमड़ते, आशीर्वाद पाकर फूले नहीं समाते। आप विचारती कि बिना दीक्षा लिये जब यह हाल है तो दीक्षा लेने पर क्या होगा। १८ वें वर्ष में आपने दीक्षा लेने का विचार परिवार के सामने रखा तब परिवार ने घर में ही रहकर साधिका बनने के लिए कहा—पर अगले वर्ष जब आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज विहार करते हुए आ गये तब अपूर्व अवसर हाथ आया जानकर आपने दीक्षा देने के लिए

प्रार्थना की। परिवार की अनुमति लेकर आचार्य श्री ने दीक्षा देकर आपको अनन्तमती नाम दिया। केशलुन्चन की क्रिया देखते हुए तो लोग अतीव विरक्ति का अनुभव करते थे। शरीर से आत्मा की दिशा में बढ़ते देख कर सभी सन्तुष्ट दिखते थे।

आहार सम्बन्धी कठोर नियमों के कारण अनेकों बार अन्तराय आया और दस पन्द्रह दिन तक आया पर आपके सुमुख की सौम्यता शान्ति सुषमा नहीं गयी। आचार्य श्री के साथ सम्मेदशिखर पर पहुंचने पर आपने आर्यिका दीक्षा देने की प्रार्थना की तो उपयुक्त समझकर आचार्य श्री ने दीक्षा भी दे दी। आठ वर्ष तक गुरू चरणों में रहने के बाद—गिरनार क्षेत्र के दर्शन की लालसा लिये आप क्षुल्लिका विजयश्री के साथ चली, एक से अधिक उपसर्ग आये, रोगों ने घेरा, शरीर ने साथ छोड़ना चाहा पर आपने चिन्ता नहीं की। गिरनार पहुंचकर आपने चातुर्मास का संकल्प पूरा किया।

क्षुल्लिकाश्री जिनमतीजी

माताजी का जन्म सिनोदिया ग्राम, जि० जयपुर, राजस्थान में मंगसर बदी पंचमी सं० २०७९ में हुआ। इनके पिता का नाम श्रीगोपीलालजी सोगानी व माता का नाम किस्तूर बाई था। इनका जन्म नाम छिगनोबाई था। इनसे छोटे चार भाई क्रमशः मोहनलालजी, भागचन्दजी, मदनलालजी, कैलाशचन्दजी तथा तीन बहिनें गट्टूबाई, सन्तोषबाई एवं सुगनबाई हैं। आपकी शादी १३ (तेरह) वर्ष की अवस्था में श्रीमान् रिखबचन्दजी पाटनी कांकरा निवासी के सुपुत्र श्री मांगीलालजी के साथ हुई। इनके क्रमशः दो पुत्रियाँ विमलाबाई व ताराबाई हुईं। शादी के ९ साल बाद ही इनके पति श्री मांगीलालजी का स्वर्गवास हो गया। अपनी दोनों पुत्रियों की शादी करने के बाद संसारी कार्यों से इनका मन उचट गया व भगवान की भक्ति की ओर ध्यान आकर्षित हो गया।

आज से करीब २४ वर्ष पूर्व आर्यिका श्री धर्ममतीमाताजी का समागम हुआ । उन्हीं की प्रेरणा से आसाढ़ बदी १४ के दिन ग्राम कोछोर (सीकर) में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से पांचवीं प्रतिमा के व्रत लिये । इसके बाद आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज का चातुर्मास सीकर हुआ । इसी चातुर्मास की आषाढ़ सुदी सप्तमी को आचार्य श्री से माताजी ने सातवीं प्रतिमा के व्रत लिये एवं माताजी ने दीक्षा हेतु श्री महाराज से निवेदन किया । महाराज ने कार्तिक बदी ४ का मुहूर्त दीक्षा हेतु निकाला किन्तु एन वक्त पर माताजी के घर वालों ने दीक्षा नहीं लेने दी व माताजी को घर ले गये । किन्तु माताजी का मन तो भगवान की खोज में था अत: छः साल बाद एक रोज ८ (आठ) दिन का नाम लेकर माताजी देहली चले गये । वहाँ आचार्य देशभूषणजी महाराज एवं धर्ममती माताजी के सान्निध्य में महाराज श्री के कर कमलों से मंगसर सुदी २ सं० २०२२ में क्षुल्लिका दीक्षा धारण कर ली ।

क्षुल्लिका दीक्षा के बाद माताजी, आर्यिका धर्ममती माताजी के संघ में रहकर भारत के कोने कोने में धर्म प्रचार करती रही हैं । माताजी अपने विभिन्न चातुर्मास क्रमश: जयपुर, स्थोनिधि, (द० भा०) बेलगांव (दक्षिणी भारत) कोथली, फुलेरा, धूलिया (महाराष्ट्र) एवं खानियां आदि कई स्थानों पर करती आ रही हैं ।

जहाँ जहाँ भी माताजी गयी हैं वहाँ वहाँ विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान, जाप, मंडल विधान आदि का आयोजन करवाती रही हैं । जयपुर में साधुओं हेतु शुद्ध वैयावृत्त औषधि निर्माण का कार्य भी इन्हीं के प्रयासों से प्रारम्भ किया गया है । जिसका वर्तमान में वैद्य श्री सुशीलकुमार संचालन कर रहे हैं ।

सं० २०३९ में धर्ममती माताजी का स्वर्गवास हो जाने से माताजी अकेली रह गई ।

सौभाग्य से इस साल १०५ क्षुलिका जिनमती माताजी का चातुर्मास ग्राम रानौली, जिला सीकर (राज०) में बड़ी धूमधाम से हो रहा है । ६१ वर्षीय माताजी के मृदुभाषी स्वभाव एवं सारगर्भित उपदेश से न केवल जैन समाज के लोगों में ही एक नया मोड़ आया है अपितु अन्य धर्मावलम्बियों पर भी काफी अच्छा प्रभाव पड़ रहा है । कई क्षत्रियों ने तो रात्रि भोजन, माँस, मदिरा का त्याग एवं आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करने का व्रत ले लिया है । जब से माताजी यहाँ पधारे हैं तब से ही विभिन्न विधानों, मंडलों, अखण्ड णमोकार मंत्र जाप आदि का कार्यक्रम बराबर चल रहा है । माताजी के उपदेशों का सबसे ज्यादा असर छोटे बच्चों पर पड़ रहा है । जिसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि शायद ही कोई बच्चा ऐसा होगा जो माताजी के उपदेश में न जाता हो । इनके आगमन से सारा दिगम्बर जैन समाज रानौली मंत्र मुग्ध हो गया है ।

क्षुल्लिका चारित्रमतीजी

आपका जन्म बेलगांव दक्षिण में हुवा था। आपके पिता का नाम संगप्पा एवं माता का नाम जीवाका था। विक्रम सं० १९६५ में आपका जन्म हुआ था। वि० सं० १९७६ में आपकी शादी श्री वीरप्पा पाटिल के साथ हुई थी। आप चतुर्थ जाति की थी, सं० २००२ में मुनि पायसागरजी से आणद में सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण किए थे।

सं० २००७ में गुलवर्गा में आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली तथा वि० सं० २०१७ में आ० देशभूषणजी महाराज से आर्यिका दीक्षा धारण की, आप कन्नड़ी, मराठी, हिन्दी की उच्चकोटि की प्रवक्ता हैं तथा सरल एवं शान्त जीवन है आपका।
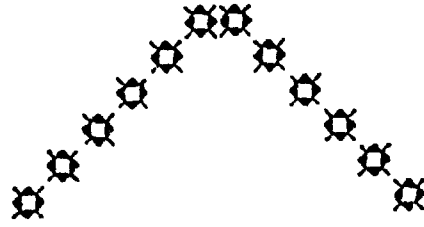
क्षुल्लिका आदिमतीजी

श्री १०५ क्षुल्लिका आदिमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम जुबाई है। फल्टन को आपका जन्म स्थान होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी दशाहुमड़ थे। आपकी शिक्षा नाममात्र को कक्षा तीसरी तक ही हुई। जब आप असमय में ही विधवा हो गई तब आपने साधु सत्संग, धर्मश्रवण, धर्म-ध्यान में मन लगाया।

कोल्हापुर नगर में सन् १९६० में श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा ले ली थी। आपने लाठी, आनन्द, फल्टन, आकुलज, भसवड़, गजपन्था आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आप अतीव सरल स्वभाव की धार्मिक प्रकृति वाली हैं। धर्मश्रवण, साधु सम्पर्क से आपने अच्छा खासा अनुभव प्राप्त कर लिया।

☼

क्षुल्लिका अजितमतीजी

श्रीमती सुन्दरबाई का जन्म आज से करीब ५० वर्ष पूर्व जबलपुर में हुआ था। आपके पिता बशोरेलालजी एवं माता बुद्धिबाई थी। आप जाति से गोलापूर्व थी। आपका विवाह राजारामजी से हुआ। आपकी लौकिक शिक्षा नहीं के बराबर थी किन्तु धार्मिक शिक्षा रत्नकरंड श्रावकाचार तक हुई। आपके चार भाई, तीन बहिनें एवं तीन पुत्र व सात पुत्रियां हैं। घर में व्यवसाय दुकानदारी व एजेन्सी है। जब आपके नगर में आदिसागरजी महाराज आये तो उनके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर आपने सं० २०२४ में चैत्रवदी पंचमी को श्रवणबेलगोला में आचार्य देशभूषणजी से दीक्षा ले ली। आप छहढ़ाला, वैराग्य-भावना का विशेष ज्ञान रखती हैं।

आपने कोथली, फुलेरा आदि स्थानों पर चातुर्मास कर बाहर की समाज को धर्म लाभ दिया। आप सोलहकारण, कर्मदहन, अष्टान्हिका, पंचकल्याण व दशलक्षण व्रतों का विधिवत पालन कर रही हैं। आप कई जगहों पर भ्रमण करके वहां के समाजों को धर्मलाभ दे रही हैं।

क्षुल्लिका कमलश्री माताजी

आपका जन्म ग्राम वसगडे जि० कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में १९१५ अक्षय तृतीया को श्रेष्ठी श्री तोताबासौदे एवं माता पद्मावती के यहाँ हुआ। रोहतक में आचार्य देशभूषणजी से १९५५ में सोमवार माघ सुदी पंचमी को दीक्षा ली। आप शान्त स्वभावी एवं गुरु भक्ति से परिपूर्ण हैं। धर्म प्रचार भी कर रही हैं। साथ ही साथ आत्म कल्याण भी कर रही हैं।

क्षुल्लिका जयश्री माताजी

आपका जन्म स्थान अक्कलकोट जि० सोलापुर (महाराष्ट्र) है। आचार्य देशभूषणजी से ई० सन् १९५९ जेष्ठ सुदी दसमी को श्रवण बेलगोला में आपने दीक्षा ली और आप अभी आचार्य संघ में रह रही हैं।

क्षुल्लिका चन्द्रसेनाजी

सं० १९५२ में उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ में चान्दीबाई ने श्री अनन्तमलजी की धर्मपत्नी श्री चिरोंजादेवी की कुक्षी से जन्म लिया था। आप अग्रवाल जाति की हैं। हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था। आ० देशभूषणजी महाराजजी से बारबंकी में छठी प्रतिमा के व्रत धारण किए। आपने अपने पति की आज्ञा से आचार्य देशभूषणजी महाराज से जयपुर में सं० २०१२ में क्षुल्लिका दीक्षा ली। आपने अनेकों स्थानो में भ्रमण किया तथा धर्मोपदेश देकर श्रावक श्राविकाओं को सद्मार्ग में लगाया। अन्त में समाधि लेकर आत्म कल्याण कर स्वर्ग सिधारीं।

क्षुल्लिका श्री कृष्णमती माताजी

श्री कृष्णाबाई का जन्म पंढरपुर महाराष्ट्र में हुवा था। आपके पिताजी का नाम श्री बापूराव कटेक था। माताजी का नाम ठक्कूबाई था। १९७० वि० सं० में आपका जन्म हुआ था। आपने मराठी में शिक्षा प्राप्त की मुनि पायसागरजी से आपने दूसरी प्रतिमा धारण की, सातवीं प्रतिमा श्रवण बेलगोला में आ० देशभूषणजी से ली। सं० २०१९ में आ० देशभूषणजी से आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली। आप आचार्य श्री की सेवा में रत रहती हुई आत्म साधना में रत रहती थीं अन्त में समाधि धारण कर स्वर्ग पधारीं।

❖

आर्यिका वीरमतीजी

आपका जन्म हिंगण गांव जि० कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में हुआ। पिता देवप्पा एवं माता गंगाबाई थीं। आपका पूर्व नाम उमादेवी था। आपका विवाह सखाराम पाटील से हुआ। मांगूर जि० वेलगांव (कर्नाटक) में रहते थे। आपने संसारिक जीवन से मुक्त होने के लिए आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से दीक्षा धारण की। आप आचार्य श्री के संघ में रह रही हैं तथा आत्म साधना कर रही हैं।

क्षुल्लिका राजमतीजी

पार्वती का जन्म बूचाखेड़ो (कांधला) उत्तर-प्रदेश में हुवा था। आपके पिताजी का नाम श्री शीलचंद था माताजी का नाम अंगूरीदेवी था।

पू० आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली।

कोल्हापुर में दीक्षा लेने के पश्चात् आपने अनेकों स्थानों में भ्रमण किया तथा समस्त भारत वर्ष में विहार कर धर्म प्रभावना की।

जयपुर के निकट चूलगिरी क्षेत्र का विकास आपके अथक प्रयत्न का फल है जो जयपुर की शोभा में अद्वितीय है तथा आज जो एक क्षेत्र के रूप में प्रगट हो रहा है। आपने जैन धर्म जागृति के कार्यों में विशेष सहयोग दिया है।

आप अभी क्षेत्र पर रहकर क्षेत्र की रक्षा तथा उसका विकास कर रही हैं। धन्य है आपके त्याग को तथा आपके जीवन को जो मान कषाय को तथा अभिमान को त्याग कर आत्म साधना में तत्पर हैं।

❖

क्षुल्लिका श्रेयांसमतीजी

गृहस्थ नाम	—	कुमारी केसरबाईजी
जन्म सम्वत्	—	१९२५ स्थान नातेपुते जि० सोलापुर
पिता का नाम	—	श्री खेमचन्दजी
माता का नाम	—	श्री जियाबाईजी
लौकिक शिक्षा	—	पाँचवीं
ब्र० व्रत धारण	—	१९५० आ० शांतिसागरजी
क्षुल्लक दीक्षा	—	श्री देशभूषणजी से १९६७

आपने अपने जीवन में अनेक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया एवं अजितमतीजी की सेवा वैयावृत्ति में तत्पर रहती हैं।

आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज

द्वारा दीक्षित शिष्य
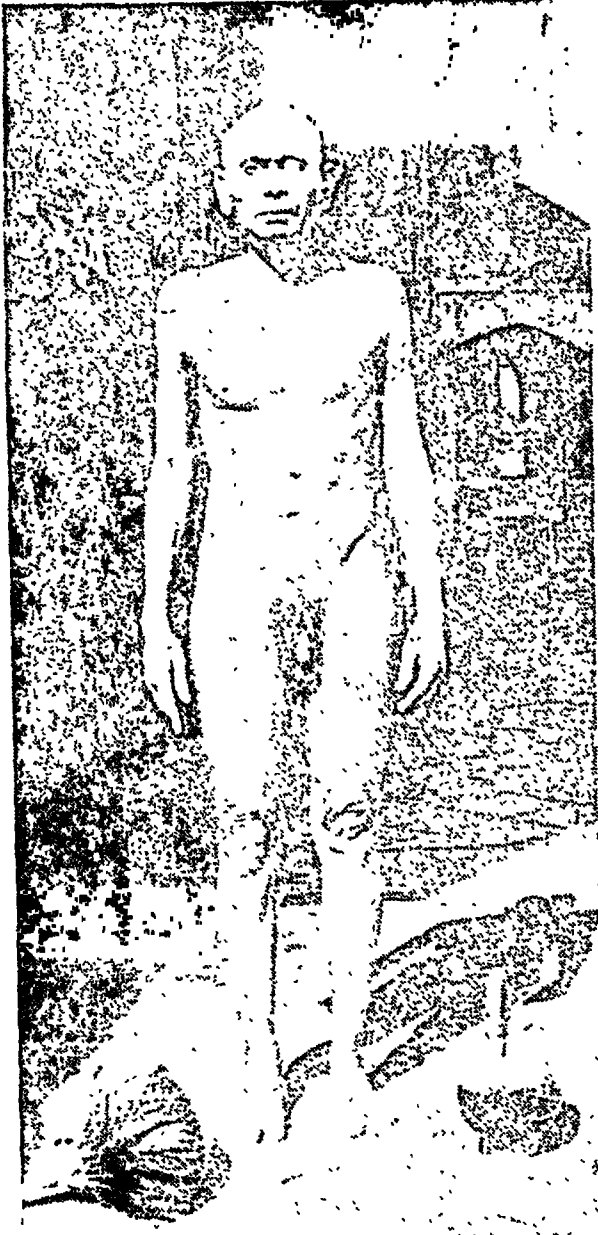
आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज

आचार्य विमलसागरजी
मुनि श्री कुन्थसागरजी
मुनि श्री नेमिसागरजी
मुनि श्री सुधर्मसागरजी
मुनि श्री वासुपूज्यसागरजी
मुनि श्री वर्धमानसागरजी
मुनि श्री आदिसागरजी
मुनि श्री संभवसागरजी
मुनि श्री नमिसागरजी
क्षुल्लक आनन्दसागरजी
क्षुल्लक आदिसागरजी
क्षुल्लक नमिसागरजी
क्षुल्लक संभवसागरजी
क्षुल्लक नेमिसागरजी
क्षुल्लक चन्द्रसागरजी
क्षुल्लक शीतलसागरजी
आर्यिका श्रेयांसमतीजी
आर्यिका वीरमतीजी
आर्यिका शीलमतीजी
आर्यिका सुपार्श्वमतीजी
क्षुल्लिका आदिमतीजी
क्षुल्लिका जिनमतीजी
क्षुल्लिका नेमीमतीजी
क्षुल्लिका चन्द्रमतीजी

आचार्य विमलसागरजी महाराज

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय ज्योतिर्विद, तपस्वी, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज जिनके श्री आगमन की सूचना मात्र से ही प्राणियों के हृदय कमल खिल उठते हों, जिनके नगर प्रवेश के समय से ही समस्त भक्त जीवों के हृदय में धर्म की अजस्र धारा बहने लगती हो, जिन्होंने कितने ही भव्य जीवों का कल्याण किया हो, जिनके समक्ष राजा-रंक, अमीर-गरीव, शत्रु-मित्र का भेद भाव न हो, जो सब पर सदा सर्वदा वात्सल्य दृष्टि रखते हों, ऐसी महान आत्मा की यशोगाथा लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

जन्म एवं शिक्षा :

आचार्य श्री का जन्म आश्विन कृष्णा ७ सं० १९७२ को उत्तरप्रदेश के एटा जिलान्तर्गत जलेसर कस्बे से लगभग डेढ़ मील दक्षिण में 'कोसमा' नामक गाँव में हुआ। आपका नाम श्री नेमीचन्द रखा गया। आपके पिता श्री लाला विहारीलालजी सुप्रतिष्ठित गृहस्थ थे तथा माता कटोरीवाई धर्म के प्रति वड़ी आस्थावान थीं। जन्म के छः मास पश्चात् ही आपकी माता का स्वर्गवास होने से आपका लालन-पालन आपकी वुआ श्रीमती दुर्गावाई के संरक्षण में हुआ।

प्रारम्भिक शिक्षा के वाद उच्च शिक्षा हेतु आपने लगभग १० वर्षों तक गोपाल सिद्धान्त विद्यालय मुरैना में अध्ययन किया और वहाँ से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। वहाँ विद्यागुरु न्यायालंकार पं० श्री मक्खनलालजी शास्त्री के सानिध्य में आपने धार्मिक संस्कारों एवं आगम में पूर्ण श्रद्धा और

दृढ़ता प्राप्त कर जैन सिद्धांतों के रहस्य को हृदयांकित किया। तदुपरान्त आपने नौगामा (कुचामन सिटी) विद्यालय में अध्यापन कार्य किया।

तपस्या के क्षेत्र में पदार्पण :

प्रारम्भ से ही आपमें वैराग्य भावना कूट-कूट कर भरी गई थी। अतः आप प्रायः शान्ति की खोज में धर्म स्थानों की यात्रा करते रहते थे। एक बार आप साइकिल से सम्मेद शिखर की यात्रा करने निकल गए जहाँ पहुंच कर आपने वन्दना की और तत्पश्चात सम्पूर्ण भारत के तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा की। आपको वैराग्य भावना से विमुख करने हेतु आपके पिता ने आपके लिए एक कपड़े की दुकान भी खुलवा दी किन्तु पिता के प्रयास भी आपको सांसारिक बन्धनों में न बांध सके। परिणामस्वरूप आपने आत्म कल्याण हेतु श्री १०८ आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी से शुद्धजल का नियम ले लिया। पुनः परमपूज्य आचार्य श्री सुधर्मसागर महाराज का उपदेश और उनकी प्रेरणा का प्रभाव आप पर इतना गहरा पड़ा कि आपमें संसार निवृत्ति तथा वैराग्यवृत्ति की भावना एकदम जाग्रत हो गई।

दीक्षा :

आषाढ़ सुदी ५ सं० २००७ आपके जीवन का वह जाज्वल्यमान दिवस है जिस दिन आपने समस्त सांसारिक जीवन त्याग कर गृहस्थ जीवन से पूर्ण मुक्ति हेतु आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज के पास बड़वानी सिद्ध क्षेत्र पर क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। आपको वृषभसागर नाम से विभूषित किया गया। सात माह की अल्प अवधि में ही क्षुल्लक वृषभसागरजी ने कठोर, तप, संयम, साधना और स्वाध्याय द्वारा आचार्य श्री को इतना अधिक प्रभावित किया कि उन्होंने स्वतः ही माघ सुदी १२ सं० २००७ को धर्मपुरी दिल्ली में आपको ऐलक दीक्षा दी तथा सुधर्मसागर नाम प्रदान किया। दो वर्षों के अन्तराल में ही आपने अपने आपको पूर्ण निर्ग्रन्थ दीक्षा के लिये गुरुचरणों में अर्पित कर दिया। परिणामस्वरूप फाल्गुन वदी १३ सं० २००९ को इसी स्वर्णगिरी की पावन तपो भूमि पर आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज द्वारा आपका निर्ग्रन्थ दीक्षा समारोह सोनागिर सिद्ध क्षेत्र पर सम्पन्न किया गया तथा १०५ ऐलक श्री सुधर्मसागरजी ने श्री १०८ विमलसागर नाम ग्रहण कर सर्वोच्च मुनि पद प्राप्त किया।

आचार्य पदवी :

मुनि श्री १०८ विमलसागरजी महाराज श्री जिनेन्द्र भगवान के वचनामृतों का पान जन-जन को कराते हुए जब टूंडला (जनपद-आगरा) में पधारे तब वहाँ की धर्म प्राण जनता एवं बाहर से

आए जैन मतावलम्बियों ने आपको यथोचित गरिमायुक्त सम्माननीय पद प्रदान करने हेतु एक विशाल समारोह का आयोजन किया। अगहन बदी दूज सं० २०१८ को आयोजित इस विशाल समारोह में धर्म रत्न सरस्वती दिवाकर पं० लालाराम शास्त्री तथा पं० माणिकचन्द्रजी शास्त्री भी उपस्थित थे। तब दीक्षा गुरु आचार्य महावीरकीर्तिजी का आदेश प्राप्त कर उपस्थित जन समूह के जनघोष के बीच मुनि श्री विमलसागरजी ने आचार्य पद धारण किया। आपको आचार्य पद पर विभूषित करते हुए आपसे यह निवेदन किया गया कि इस घोर कलियुग में धर्म रक्षा का भार अपने सुदृढ़ कन्धों पर ग्रहण करते हुए समस्त निरीह, अबोध प्राणियों के हृदय में धर्म का बिगुल बजायें और सदैव उनका मार्गदर्शन करते रहें।

उपसर्ग एवं अतिशय :

जैन साधुओं के जीवन में उपसर्ग का बहुत ही महत्व है यही वह महत्वपूर्ण सीढ़ी है जो जैन मुनियों को आत्मोन्मुख कर मोक्ष पथ की ओर अग्रसर करती है। निश्चयनय के धारक सम्यक्दृष्टि साधु जब निर्विकारभाव से उपसर्गों को सहन करते हैं तो अतिशय का प्रकट होना स्वाभाविक है। आचार्य श्री का जीवन घोर उपसर्गों और अतिशयों से युक्त है। यही कारण है कि हर साधु त्यागी व्रती एवं श्रावक हृदय आपके श्री चरणों में स्थान पाने को सदैव लालायित रहता है जिन्हें आपके चरणों में स्थान मिल जाता है उन्हें नवनिधि एवं समस्त सिद्धियां स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं।

आपके अतिशय की गाथायें आज भी बन्धाजी एवं जूड़ा पानी तीर्थ क्षेत्रों के निवासियों तथा आस-पास के लोगों के मुंह कही सुनी जाती हैं। इन दोनों तीर्थ क्षेत्रों में स्थित कुओं में पानी न होने से वहाँ के लोगों को अत्याधिक परेशानी होती थी। आपके चरण कमल इन स्थानों पर जब पड़े आपने तुरन्त आदिनाथ भगवान की प्रक्षाल करा उसके जल से कुंओं में पानी ही पानी भर दिया। अटूट जल से भरे वे कुएं आज भी आपके अतिशय का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

आपके अतिशय का एक अन्य उदाहरण उस समय दृष्टिगोचर हुआ जब कि आप जालेटन गाँव से मिर्जापुर जा रहे थे। रास्ते में आप एक जगह शौच हेतु रुके। शौच से निवृत्त होने पर आपने अपने समक्ष एक भयंकर शेर को देखा जिसे देखकर आप रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। आत्म-ध्यानी आचार्य श्री ने उपसर्ग निवारण पर्यन्त तक सकल सन्यास ले णमोकार मन्त्र का पाठ प्रारम्भ कर दिया। आपके ध्यानस्थ होते ही वनराज सिंह आपके समक्ष और नजदीक आया तथा मस्तक नवाकर छलांगें लगाता हुआ जंगल में चला गया। आपके साथ में उस समय उपस्थित श्रावक जो कि भय से किंकर्तव्य विमूढ हो गया था इस घटना को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। आपकी निर्ग्रन्थ

मुनि तपस्या से अर्जित शक्ति के प्रभाव से श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा करते समय अनेक बार चन्द्र-प्रभु टोंक, पार्श्व प्रभु टोंक एवं जलमन्दिर पर सिंहों ने आपके चरणों में नमन किया है। एक बार आप जब संघ सहित अकबर से जौनपुर जा रहे थे तब रात्रि में आपको एक रेल्वे चौकी पर शयन करना पड़ा। उस समय कहीं से एक भयानक दो हाथ लम्बा काला सर्प आकर आपके हाथ पर क्रीड़ा करने लगा। मानो कोई दुलारा पुत्र अपने पिता की गोद में अठखेलियाँ कर रहा हो। तीन घण्टे तक क्रीडा करने के पश्चात् सर्प आचार्य श्री की प्रदक्षिणा देकर अपने स्थान को चला गया। इस घटना को देखकर वहाँ उपस्थित व्यक्ति घोर आश्चर्य में डूब आचार्य श्री की जै-जै कार करने लगे।

तीव्र तपोबल :

आपकी आत्म साधना की प्रखर ज्योति एवं तपोबल के समक्ष आपके प्रति दूषित भावनायें रखने वाले व्यक्ति भी नतमस्तक हो जाते हैं। एक बार पावापुर के समीप भदरिया ग्राम में वहाँ के निवासियों के झुण्ड आपको मारने पहुंचे किन्तु आपके तपोबल के प्रभाव से वे नतमस्तक होकर चले गये। निरन्तर साधना से आपने बौद्धिक एवं मांत्रिक ज्ञान में श्रेष्ठता अर्जित कर ली है। आपका निमित्त ज्ञान भी अति निर्मल है। मनुष्य के मुख को देखकर ही उसके अन्तःकरण में घुमड़ती भावनाओं का आप सहज ही अनुमान लगा लेते हैं और तत्सम्बन्धी आपके कथन सत्य होते हैं। अपने इस गुण से आपने हजारों नर नारियों को असीम कष्टों से मुक्ति प्रदान की है। यही कारण है कि आपके चहुं ओर सदैव एक मेला सा लगा रहता है।

संवर्द्धन एवं संरक्षण क्षमता :

"शिष्यानुग्रह कुशला" के गुण से युक्त आचार्य श्री के कोमल स्वभाव एवं करुणार्द्र हृदय में शिष्यों का संवर्द्धन एवं सरंक्षण करने की अभूतपूर्व क्षमता है। आपने अनेक व्रतीगणों को ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ऐलक, आर्यिका एवं मुनि दीक्षा प्रदान की है तथा अब भी निर्ग्रन्थ साधु वृत्तियों को उत्पन्न करने में लगे हैं। इस प्रकार आप अनेकों भव्यात्माओं को दीक्षा दे देकर मोक्षमार्ग पर अग्रसर कर रहे हैं। आप अपने समस्त शिष्यों को ज्ञान ध्यान तथा तप में लीन रखते हैं।

जनकल्याण :

परोपकार आपका विशेष गुण है। आपने अब तक हजारों व्यक्तियों को शुद्धजल के नियम दिलाये हैं। अनेक मांसाहारियों को शाकाहारी बनाया है तथा कई श्रावकों को त्यागी बनाया है। आप हर स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवा एवं युवती को व्रती संयमी देखना चाहते हैं। छोटे-छोटे व्रतों द्वारा भी प्राणी मात्र के कल्याण की भावना आपके हृदय में कूट-कूटकर भरी है आपकी वाणी में

मिश्री सा माधुर्य, दृष्टि में आकर्षण शक्ति तथा व्यवहार में अनोखा जादू भरा है। आप तरण-तारण निज-परहित दक्ष, मंगल भावना के संगत अनेक गुणों से मंडित होने के कारण एक विशाल मुनि संघ के अधिपति श्री हैं और गुरु परम्परानुसार शिष्यों पर वात्सल्य दृष्टि रखते हुए उन्हें ज्ञानार्जन कराते रहते हैं। आप यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, विशारद तथा भविष्य वक्ता तपस्वी होने से असंख्य जन का कल्याण कर रहे हैं।

त्याग की मूर्ति :

६४ वर्ष की अवस्था होने पर भी आप में रंचमात्र प्रमाद नहीं है। आप रात्रि में मात्र तीन घण्टे की नींद लेते हैं तथा वह भी ध्यानस्थ मुद्रा में। अपने दैनिक षट आवश्यक कार्यों में जरा भी शिथिलता नहीं बरतते आपने चारित्र शुद्धिव्रत तथा अन्य कई व्रतों को पूर्णता दी है। आप प्रत्येक चातुर्मास अवधि में एक दिन आहार तथा एक दिन उपवास अर्थात् ४८ घण्टे बाद आहार लेते हैं। वह भी बिना किसी अन्तराय के सम्पन्न हो तब, इन उपवासों के अतिरिक्त अन्न का त्याग तो आप अनेक बार काफी लम्बी अवधि के लिए कर चुके हैं। अपनी अभूतपूर्व त्याग एवं संयम की क्षमता से आचार्य श्री एक इतने बड़े संघ को संगठन देकर देश और समाज का कल्याण कर रहे हैं।

धार्मिक संस्थाओं की स्थापना :

अनेक धार्मिक संस्थायें, चैत्यालय, मन्दिर, स्वाध्यायशाला, औषधालय एवं धर्मशालायें आपके उपदेश एवं प्रेरणा से अनेक स्थानों पर स्थापित की गई हैं। जिनके माध्यम से वर्तमान में अनेक भव्य प्राणी पुण्योपार्जन कर रहे हैं। गुनौर में जैन पाठशाला, टूंडला में औषधालय, श्री सम्मेदशिखरजी पर भव्य समवशरण और राजगृही में आचार्य महावीर कीर्ति सरस्वती भवन आज भी आपकी यशोकीर्ति गा रहे हैं। आपने कई पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें कराई हैं जिनका वर्णन लेखनी से बाहर है। आपके सोनागिरि चातुर्मास अवधि में आपकी प्रेरणा से क्षेत्र में एक विद्यालय की स्थापना की गई है तथा पर्वत पर चन्द्रप्रभ भगवान के मन्दिर के बाह्य प्रांगण में बाहुबली स्वामी की मूर्ति के दोनों ओर नंग एवं अनंगकुमार मुनियों की मूर्तियां स्थापित की जा रही हैं एवं कमेटी के पास एक विशाल सरस्वती भवन तथा सभा-भवन का निर्माण कार्य चालू है। यही कारण है कि आचार्य श्री को जैन समाज की आध्यात्मिक सम्पत्ति कहा जाता है।

आपके द्वारा हाल ही में सोनागिर में चन्द्र प्रभू चौक में एक मुनि दो आर्यिका एक क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका दीक्षा करायी गई है। आचार्य महाराज अत्यन्त शान्त परिणामी, महान तपस्वी विद्वान साधु हैं। आपके माध्यम से समाज और राष्ट्र का बहुत कल्याण हो रहा है। आपने अपने दायित्वों

का पूर्ण निर्वाह करते हुए समस्त विश्व में न केवल जैन धर्म को विश्व धर्म की मान्यता दिलाई है अपितु जन-जन में व्याप्त भ्रान्तियों को बड़ी ही सहृदयता से दूरकर अनेकानेक प्राणियों को आत्म कल्याण के सन्मार्ग में लगाया है। ऐसे विद्वान तपस्वी आचार्य रत्न श्री चिरायु हों, यही मंगल कामना है।

मुनिश्री कुन्थसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि कुन्थसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम कन्हैयालालजी था। आपका जन्म ज्येष्ठ सुदी तेरस विक्रम संवत् २००३ में बड़ा बाढ़रहा स्थान पर हुआ था। आपके पिता श्री रेवाचन्द्रजी हैं व माता श्री सोहनबाई हैं। आप नरसिंहपुरा जाति के भूषण हैं व लोलावत गोत्रज हैं। आपकी लौकिक तथा धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपने विवाह नहीं किया। आप बाल-ब्रह्मचारी ही रहे। आपने पहले दुकान पर नौकरी भी की। आपके परिवार में एक भाई व तीन बहिनें हैं।

धार्मिक प्रेम होने के कारण आपने श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजी से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण कर लिए। इसके बाद आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज से आपने अषाढ़ सुदी दूज विक्रम संवत् २०२४ में हुमच (दक्षिण) में मुनि दीक्षा ले ली। आपने हुमच, कुन्थलगिरि गंजपंथा आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने तीनों रसों का त्याग कर दिया है।

मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज

आठ मार्च सन् उन्नीस सौ तीस में राजस्थान के नरवाली (बांसवाड़ा) नामक स्थान में माता श्रीमती जक्कुबाई की पुनीत कुक्षि से आपका मंगलमयी जन्म हुआ। आपके पिताजी का नाम श्रीमान् नाथूलालजी है। आपका बचपन का नाम छगनलाल था। बचपन से ही आप अचंचल एवं सारल्यगर्भित थे।

आपने कक्षा चार तक शिक्षा पाई। छात्र जीवन में आप एकदम गम्भीर रहते थे ऐसा लगता था जैसे अनवरत किसी चिन्तन में लगे रहते हों और फिर

भोला बचपन सारल्य लिए जब यौवन उपवन में आया।
असमर्थ हुई उलझाने में तब पुष्पों की चितवन माया।।

निष्काम भावना के आगे कलियों की गन्ध विलीन हुई।
सांसारिक छलनाएं सबही जिनके समक्ष अब क्षीण हुई।।

ऐसे विभूति धारी महन्त को शत-शत सादर वन्दन है।
जिनके चरणों की रज कठोक सम्मुख नगण्य नंदन वन है।।

बाल हृदय पर जब सांसारिक छलनाऐं आती तो चिकने घड़े में पानी की बूंदों जैसी क्षणैकार्थ भी पराश्रय न पाती यह देखकर लोगों को आश्चर्य होता था कि इतनी छोटी उम्र और ऐसे गम्भीर विचार। बचपन गया, यौवन आया किन्तु उसमें बसन्ती बू नहीं आई। वासना ने आपके प्रशान्त मानस की ओर आँख उठाकर देखने तक की हिम्मत स्वप्न में भी नहीं की। आपने बालब्रह्मचारी का पुनीत और कठिन व्रत लेकर संसार की समस्त सुख सामग्री एवं भोगविलासों को नगण्य एवं सर्वथा उपेक्षित सिद्ध किया।

आप पिता श्री के साथ व्यापार किया करते थे। धार्मिक प्रवृत्ति ने आपके हृदय में बचपन से ही अपना एक कोटर बना लिया था। उम्र के साथ साथ स्वाध्याय एवं धर्म प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। साथ ही संसार के प्रति उदासीनता का भाव भी पुष्ट होता चला गया।

सांसारिक चमक दमक बचपन में ही जिनके सामने पराजित हो चुकी थी उनको गार्हस्थ्य बन्धन भला कबतक बांध सकता है। वैराग्य भावना बढ़ती गई और आपने संवत् २०२४ ६ सितम्बर सन् ६७ में हुमच पदमावत (शिवभोगा) मैसूर स्टेट में श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की और संघ में सम्मिलित हो गये।

तत्पश्चात् वही हुआ जो संघों में सदैव से होता आया है। आचार्यजी से ज्ञानार्जन कर सर्व साधारण को उनके बताए हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करना तथा उपदेश देना यही विषय अब आपके जीवन के पहलू हैं। अष्टमी और चतुर्दशी को आप व्रत रखते हैं। आपने चार रसों का त्याग किया है। आपकी कीर्ति उज्ज्वल है। मुनि धर्म का पूर्ण पालन करते हुए आपने न जाने

संसार सागर के कितने गुमराह व्यक्तियों का पथ प्रदर्शन किया। आज भी आप अपने ज्ञान के अक्षय भण्डार से लोगों को संतृप्त करते हुए उनको उचित मार्ग का निर्देशन करते हैं। आपका अलौकिक व्यक्तित्व अनुकरणीय है।

मुनिश्री सुधर्मसागरजी महाराज

आपकी जन्म भूमि धरियावाद है आपके पिताजी फतहचन्द कांजी हैं। कांजी दशाहुमरण गोत्र वुद्धेश्वर है आपकी मातेश्वरी चम्पाबाई बोदावत मूलचन्दजी की लड़की थी उनकी दो सन्तानें हुई एक लड़की रूपाबाई और एक आप (केसरीमल) थे।

श्री केसरीमलजी का जन्म विक्रम सं० १९६६ में फाल्गुन बदी १० के दिन हुआ आपने चौथी कक्षा तक पढाई की। एक ब्राह्मण पन्नालाल जो कि गूबर गौड जाति के थे। उनके पास भक्तामरजी व मोक्ष शास्त्र पढ़े आपकी शादी विक्रम सं० १९८१ फाल्गुन बदी अष्टमी के दिन श्री चन्दावत चुन्नीलालजी मोतीलालजी की सुपुत्री रूपारीबाई के साथ हुई जो कि गामडी दशा हुमण जैन जाति की थी उसकी कोख से तीन लड़के व १ लड़की उत्पन्न हुये उनके नाम हैं। भँवरलाल, बालचन्द्र और एक छोटी लड़की का नाम कान्तादेवी है आप अपनी आजीविका गल्ले व परचूनी की दुकान से चलाते थे।

गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुये भी आपका मन सदैव संसार से विरक्त रहा।

सांसारिक प्रलोभन आपकी आत्मा को जरा भी विचलित न कर सके।

सं० २०१६ की कार्तिक सुदी में १००८ श्री सिद्धचक्र विधान मुंगाणे में आपने करवाया आपने वहां पर सभा में धर्मोपदेश के बीच तीन हजार जनता की साक्षी में श्री १०५ क्षुल्लक धर्मसागरजी से पहली प्रतिमा ली। सं० २०१७ में श्री १०८ वर्द्धमानसागरजी महाराज से छठी प्रतिमा के व्रत लिये। सं० २०१८ में श्री १०८ मुनिराज आदिसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत लिये। फिर आपने श्री १०८ मुनिराज आदिसागर महाराज की समाधि में भाग लिया।

आपने श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से आसोज सुदी १० शनिवार को ११ बजकर १५ मिनिट पर क्षुल्लक दीक्षा ली। और वहाँ से रवाना होकर गिरनार

आये और वहां पर अषाढ़ सुदी में १०-६-७० शनिवार को मुनि दीक्षा हुई और फिर चातुर्मास पूर्ण होने पर वहाँ से विहार करके पावागढ़ पहुंचे वहाँ से अहमदाबाद आये रास्ते में गणेशपुर में गुरु महाराज की समाधि कराई। वहां से उदयपुर खानियां में चातुर्मास किया फिर सम्मेदशिखर में चातुर्मास किया फिर खण्डगिरी उदयगिरी आकर पौष सुदी १४ को केश लोंच किया और फिर वहां से विहार कर कटक आये वहां ३॥ महीना रहे फिर १९७५ वैसाख वदी १३ को कलकत्ता को विहार किया फिर कलकत्ता में चातुर्मास की स्थापना हुई।

श्री महाराजजी का तप बहुत श्रेष्ठ है। पग पग पर कर्म पीछा कर रहे हैं फिर भी महाराज अपने तप को दृढ़ता पूर्वक पालन करते हुए मोक्ष के मार्ग की तरफ कदम बढ़ाते जा रहे हैं महाराजजी का बहुत ही सरल स्वभाव है और हर समय धर्म में लीन रहते हैं। समाज को आप जैसे मुनिराज पर महान गर्व है।

मुनिश्री वासुपूज्यसागरजी महाराज

आपका जन्म कार्तिक वदी १० सम्वत् १९८१ में ग्राम गढ़मोरा जिला गंगापुर (राजस्थान) में सेठ श्री छगनमलजी काला के यहां पर हुआ। आपका बचपन का नाम श्री कपूरचन्द एवं माता का नाम मूलीबाई है। आपने सन् १९६४ में गृह त्याग दिया एवं क्षुल्लक दीक्षा ले ली। तदुपरान्त सन् १९७० में श्री १०८ आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज से मांगीतुंगी क्षेत्र पर मुनि दीक्षा ली। तबसे आपका नाम वासुपूज्यसागरजी हो गया। आप बहुत ही मृदुभाषी हैं। आपका अधिकतर समय धर्म ध्यान एवं अध्ययन में व्यतीत होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर चातुर्मास करते हुए आप धर्म वृद्धि कर रहे हैं।

मुनिश्री वर्धमानसागरजी महाराज

आपका जन्म धरमपुरी जिला (धार) निमाड़ म० प्र० के निवासी श्री हजारीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरीबाई की कोख से श्रावण शुक्ला त्रयोदशी सं० १९८४ को हुवा। आपका गृहस्थ अवस्था का नाम श्री मांगीलालजी था। आपके वंशज धर्म परायण वृत्ति के होने के नाते आपमें बचपन से ही धर्म के प्रति श्रद्धा एवं पूर्ण आस्था थी। आपने सं० १९९७ में ही दूसरी प्रतिमा के व्रत इंदौर में ले लिये थे। तत्पश्चात् २००८ में सप्तम प्रतिमा ली और सं० २००९ में ही चंदेरी में क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। भ्रमण करते हुये आप सं० २०११ में श्री सम्मेदशिखर पहुंचे जहां आपने फागुन शुक्ला १५ को आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज सा० से मुनि दीक्षा धारण कर ली। आपको संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, कन्नड़ आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त है। आप ज्योतिष-शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता हैं। अब तक आपके चातुर्मास इंदौर, भोपाल, कटनी, सम्मेदशिखरजी, चांपानेर, फुलेरा, जयपुर, टोडारायसिंह, प्रतापगढ़, धरियावद, श्रवणवेलगोल उदयपुर आदि स्थानों पर सानन्द सम्पन्न हुये हैं।
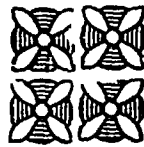
मुनिश्री आदिसागरजी महाराज

पूज्य आदिसागरजी महाराज उदारमना सरलाशय परम तपस्वी महाव्रती संत हैं। आपका जन्म दक्षिण प्रांत में कांगनौली नामक गांव में हुआ है तथा तालुका चिकौड़ी जिला वेलगांव में पड़ता है।

कांगनौली गांव है तो छोटा पर बड़ा सुन्दर है । यहाँ के निवासियों को सभी सुविधायें प्राप्त हैं । इस गांव में दिगम्बर जैन धर्म का आराधन करने वाले एक श्रावक दंपति रहते थे जिनका नाम देवगोडा नरस गोडा पाटील व इनकी पत्नी का नाम सौ० मदनावली था । ये दोनों परम धार्मिक दान पूजा में आसक्त परम संतोषी थे । इनके दो पुत्र व तीन पुत्रियां हुई । १. आक्काताई, २ बापू-साहेब, ३. कुसुमताई, ४. आना साहेब, ५. गगूताई ।

पूज्य स्व० १०८ श्री आचार्य शांतिसागरजी महाराज जिस परदाशुद्ध पाटीदा वंश में उत्पन्न हुये थे उसी चतुर्थ जैन पाटीदा वंश में आपने जन्म लिया है । आपका जन्म कागनौली गांव में दिनांक १४-१-१९१८ को पौष में हुआ है । आपकी प्राथमिक शिक्षा भी कांगनौली में ही हुई पर मराठी सप्तम कक्षा तक का शिक्षण आपने वेदागांव में प्राप्त किया था । जब आपकी बड़ी बहिन आकाताई के विवाह का दिन निश्चित हुआ और उसके लिये भोजगांव से बरात आई तो उसमें श्री ....भी आये थे उन्होंने बापू साहेब के साथ अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव रक्खा जिसे श्री देवगोड़ाजी ने तत्काल स्वीकार कर लिया बस फिर क्या था बहिन के विवाह के अवसर पर ही आपका विवाह भी श्री देवेन्द्र मानगांव, भोजकर की पुत्री सौ० कांक्षिणी मुरदेवी के साथ सन् १९३७ में १९ वर्ष की अवस्था में हो गया । उभय दम्पत्ति तब श्रावक धर्म की परिपालना करते हुये अपना समय व्यतीत करने लगे ।

कुछ समय बाद श्री बापू साहेब अर्थोपार्जन की दृष्टि से बड़ौदा पहुंच गये और वहां (सैकिन्ड बड़ौदा इन्फेन्ट्री में) मिलिट्री में भरती हो गये । मिलिट्री में आप अनुशासन प्रिय दृढ़ निश्चयी सत्य निष्ठ सैनिक सिद्ध हुये । आपकी इस सत्य निष्ठा से प्रभावित होकर अधिकारियों ने सैनिकों की भोजन व्यवस्था का भार भी आपको ही सौंप दिया ।

सन् १९४० में जब युद्ध छिड़ा तो अंग्रेज सरकार की प्रेरणा से बड़ौदा सरकार ने एक मिलिट्री भेजी, जिसमें १५०० सैनिक थे । श्री बापू साहेब को भी इस मिलिट्री में जाना पड़ा, सारी व्यवस्था का भार तो आप पर ही था । आपने बड़ी कुशलता के साथ व्यवस्थायें स्थान-स्थान पर करते रहे । इस तरह यह मिलिट्री बड़ौदा से रवाना होकर लाहौर आगरा होते हुये कलकत्ता पहुंची और वहां फैनी-चटगांव बन्दरगाह पर व्यवस्था हेतु आयी । इसी समय कांगनौली से आपके छोटे भाई श्री आना साहेब का तार मिला, पिताजी की तबियत खराब है शीघ्र आओ पर सैनिकों की व्यवस्था का भार सैनिकों का अनुशासन—आप तत्काल वापिस न लौट सके । एक माह बाद जब आप वापिस लौटे तो गांव के बाहर ही आपको पिताजी के स्वर्गवास के समाचार मालूम पड़े । आपको उस समय पिता के

असह्य वियोग का दुःख तो बहुत ही हुआ पर उपाय क्या था भवितव्यता को कौन टाल सकता है ऐसा सोचकर आपने दुःख के वेग को कम किया। घर पहुंचे माता बहिन भाई सबको बिलखते दुःख से कातर देख स्वयं भी एक बार तो विचलित हो गये पर तुरन्त प्रकृतिस्थ हो परिवार को समझाया शांत किया तथा गाँव में ही रहने लगे। गृहस्थी का सारा भार आप पर ही आगया था उसको आप वहन करने लगे। भाई बहिन सभी का विवाह आदि गृहस्थ सम्बन्धी कार्य सब आपको ही करना पड़ता था।

कुछ दिनों बाद आपकी माताजी का स्वर्गवास हुआ, इसके छः माह बाद ही आपकी पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया आपके कोई संतति भी नहीं थी। यह सब देखकर आपके हृदय में बड़ा दुःख हुआ। लोगों ने पुनः विवाह के लिये प्रेरणा भी दी पर आपने अब आजीवन पर्यंत ब्रह्मचर्य व्रत का नियम ले लिया। अब आप संसार की वास्तविकता का विचार करने लगे और आत्म सुधार करने का अपने हृदय में दृढ़ निश्चय कर लिया।

उस समय सन् १९४२ में श्रवणबेलगोला में श्री गोमटेश्वर भगवान का महामस्तकाभिषेक होने वाला था, इस महाभिषेक महोत्सव को देखने के लिये पूज्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ससंघ श्रवणबेलगोल पधारे थे। उस समय आपके भी भाव श्रवणबेलगोल जाने के हुये। तत्काल आप श्रवणबेलगोल पहुंचे गोमटेश्वर भगवान का दर्शन मिला, अभिषेक देखा तथा श्री मुनि संघ के भी दर्शन किये। वहां प्रतिदिन पूज्य आचार्य श्री महावीरकीर्ति महाराज का प्रवचन होता था आप उसे बड़े मनोयोग से प्रतिदिन सुनते। इस तरह श्रवणबेलगोल में जीवन में प्रथम बार आपको एक दिगम्बराचार्य के १० दिन तक लगातार प्रवचन सुनने का अवसर मिला इससे आपको बड़ी शांति मिली। इसके बाद आप अपने गांव लौट आये जहां किराने की दुकान कर गार्हस्थिक विधि का कार्य करने लगे। तभी से जहाँ जहाँ मुनि संघ का चातुर्मास होता वहां वहां पर आप जाते। मुनिराजों के प्रवचन सुनते ऐसा क्रम आपने बना लिया था।

सन् १९६७ में पुनः आप श्रवणबेलगोल महामस्तकाभिषेक देखने गये। इस समय यहां पर श्री पूज्य १०८ आचार्य देशभूषण महाराज का तथा श्री पूज्य आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज का संघ विराजमान था। उभय आचार्यों के वहां नित्य प्रवचन होते जिन्हें सुनकर आप आत्म विभोर हो

उठते थे । आपके हृदय में अंकुरित वैराग्य पल्लवित होने लगा । आप सोचने लगे ऐसा अवसर मुझे कब आयेगा जब मैं घर छोड़ वन को जाऊंगा—आत्म सुधार के मार्ग पर लगूंगा । जब आचार्य देश भूषण महाराज का चातुर्मास १९६७ में स्तवनिधि में हुआ तो आप वहां पहुंचे और आचार्य देश-भूषणजी महाराज से निवेदन करने लगे हे स्वामी मैं आत्म सुधार हेतु इस परम पवित्र प्रव्रज्या को धारण करना चाहता हूं—अनुग्रह करें । तभी आचार्य श्री ने कहा कुछ दिन घर में धार्मिक ग्रन्थों का अभ्यास-मनन करो । आचार्य श्री के उक्त आदेश को आप स्वीकार कर घर लौट आये और विशेष रूप से जैन धर्म की प्राथमिक पुस्तकों को पढ़ने लगे व तत्व बोधक शास्त्रों का अभ्यास करने लगे । तीनों टाइम सामायिक का भी आप अभ्यास करने लगे । चातुर्मास पूरा होने पर ये संघ में गये और आचार्य देशभूषण महाराज से संघ में रहने की प्रार्थना की पर आपको उत्तर मिला । अभी आप कुछ दिन घर में रहें, हम स्वत: आपको उचित समय पर संघ में बुला लेंगे । इस तरह संघ दर्शन, साधु सेवा का आपका क्रम चलता रहा ।

सन् १९६८ में आचार्य महावीरकीर्ति महाराज का ससंघ चातुर्मास हुम्मच पद्मावती में हुआ था । चतुर्मास के बाद संघ हुबली बेलगांव स्तवनिधि क्षेत्र निपाणी होते हुये सौंदलगा गांव पहुंचा । तब आप स्वयं गाँव के नर नारियों के साथ संघ को लेने पधारे, गाजे बाजे एवं बड़ी प्रभावना के साथ संघ का अपने गांव कांगनौली में प्रवेश कराया । प्रतिदिन आचार्य जी का प्रवचन होता था । बड़ी धर्म प्रभावना हुई । यहां संघ २० दिन ठहरा, यहां पर आपने प्रतिदिन आचार्य श्री के उपदेश को सुना और परिणामों को सुधारा । यहाँ से संघ विहार कर कुम्भोज बाहुबलि आदि स्थानों पर विहार करता हुआ कुंथलगिरि पहुंचा एवं महावीरकीर्तिजी महाराज ने इसी सिद्धक्षेत्र पर चातुर्मास किया ।

यह वही कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र है जहां पर कुलभूषण देशभूषण मुनिराज ने भयंकर उपसर्ग सहकर मुक्ति प्राप्त की थी । यह वही पावन क्षेत्र है जिस पर स्व० पू० आचार्य शांतिसागरजी महाराज ने जगत को चकित करने वाली ४० दिन की सल्लेखना धारण की थी । इसी सिद्धक्षेत्र पर पुन: आप श्री आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ में पहुंचे आचार्य श्री के दर्शन किये तथा श्री १०८ मुनि श्री सन्मतिसागरजी महाराज को अपना दृढ़ निश्चय प्रकट कर दिया कि मुझे अब निश्चित संसार का त्याग करना ही है पर फिर भी इस सुयोग में कुछ कमी थी । जब पुन: आचार्य महावीर-कीर्तिजी महाराज ने सन् १९६९ में गजपंथा में चातुर्मास किया तब उनके समक्ष पहुंचे व दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया । आचार्य श्री ने इसे स्वीकार कर लिया । तभी आपने घरवालों को इस महान निर्णय से सूचित कर दिया और दिनांक २०-१०-६९ को आपने आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज

के समक्ष सैकड़ों नर-नारियों के बीच क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली और उसके एक वर्ष बाद जब संघ का चातुर्मास मांगीतुंगी में हुआ तो आपने दिनांक १०-१०-१९७० शनिवार के दिन मुनि दीक्षा ग्रहण करली और आत्म कल्याण में प्रवृत्त हुये। आप परम शांत ज्ञान ध्यान तपोरक्त महान तपस्वी हैं। आपके चरणों में शत-शत प्रणाम।
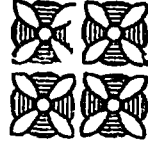
मुनिश्री सम्भवसागरजी महाराज
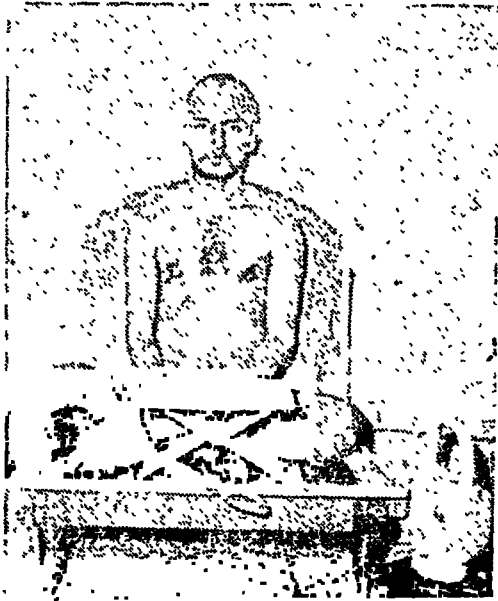
पूज्य महाराज श्री का जन्म ३ मई सन् १९४१ को शनिवार के दिन दक्षिण भारत के मैसूर प्रांत में मंगलोर जिले के वैन्दूर गांव में क्षत्रिय कुल में हुआ। आपके पिता का नाम स्व० श्री वालैय्या होवलीदार एवं माता का नाम श्रीमती पार्वती देवी है। जिनके पूर्वज अपनी क्षत्रियोचित वीरता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। होवलीदार की उपाधि उन्हें टीपू सुलतान द्वारा प्राप्त हुई थी, जो अंग्रेजों के आक्रमण के समय [पूर्वजों को] इन क्षत्रियों के पराक्रम से अत्यन्त प्रभावित हुआ था। आपके अन्य पांच भ्राता एवं तीन वहिनें हैं। सभी व्यापार एवं कृषि कार्य में संलग्न हैं।

वाल्यावस्था में ही आपने अपनी मातृभाषा कन्नड़ एवं हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि कई भाषाओं का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। धीरे धीरे आप युवावस्था में प्रवेश करने लगे, किन्तु आपका मन इस संसार के क्रियाकलापों के प्रति उदासीन रहने लगा और शीघ्र ही आपका चिन्तनशील मन इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संसार में सब जीव दुःखी रहते हैं तथा ये सभी सांसारिक सुख क्षणभंगुर हैं। गृह में रहते हुए निराकुलता की प्राप्ति संभव नहीं है। इन्हीं सब विचारों के चिंतन करने से आपका मन संसार से उचट गया। बस फिर क्या था वैराग्य की भावना लिए हुए आप २२

वर्ष की उस भरपूर युवावस्था (इस उम्र में सामान्यतया लोग विलासिता के विस्तरों पर पड़े हुए मीठे सपनों में खोये रहते हैं) में आप गृह त्याग कर मंदारगिरि पहाड़ (जिला तुमकूर) में पहुंचे। वहाँ उस समय एक क्षुल्लक पार्श्वकीर्तिजी विराजमान थे वहीं पर आप रहने लगे और उनसे तत्व चर्चा करने लगे। वेदान्त और जैन दर्शन पर वाद विवाद का परस्पर सिलसिला भी चलता रहता था। अंत में आप जैन दर्शन से इतने प्रभावित हुए कि आपने आजन्म (आजीवन) ब्रह्मचर्य रहने का व्रत ले लिया और आपका नया नामकरण "श्री चन्द्रकीर्ति" नाम से हुआ।

आपके मन में धीरे धीरे जैन धर्म के प्रति उत्कृष्ट श्रद्धा उत्पन्न हो गई। आप क्षु० पार्श्वकीर्तिजी के साथ साथ विभिन्न जैन तीर्थ क्षेत्रों के दर्शन करते हुए महामस्तकाभिषेक के पुनीत अवसर पर श्रवण बेलगोला पहुंचे। जिस समय श्री बाहुवली स्वामी (गोमटेश्वर) का महामस्तकाभिषेक हो रहा था, उस समय वहाँ लाखों भक्त एवं अनेक मुनिगण उपस्थित थे। आचार्य शिरोमणि श्री १०८ आ० श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य भी आपको वहीं मिला। ज्ञान गरिमा से दीप्त, उत्कृष्ट साधना से परिपूर्ण ऐसे आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज से आप अत्यन्त प्रभावित हुए और असीम श्रद्धा से मस्तक झुकाकर आपने इनका शिष्यत्व स्वीकार कर मुनि दीक्षा के लिए विनम्र प्रार्थना की। आचार्य श्री ने अनेक प्रश्नोत्तर के बाद आप से दीक्षा के सम्बन्ध में हुम्मच पद्मावती में होने वाले चातुर्मास के अवसर पर सपरिवार आने के लिए कहा। वैराग्य की उत्कृष्ट भावना लिए हुम्मच पद्मावती में आप सपरिवार पहुंचे। अनेकानेक प्रश्नोत्तर के बाद आचार्य श्री ने आपके पारिवारिकजनों से अनुमति लेकर दिनांक ९-७-६७ रविवार को पुष्य नक्षत्र एवं सिंह लग्न में आपको निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा दी। जिस समय आपने समस्त वस्त्रो का त्याग किया, उस समय आकाश भक्तजनों की तुमुल हर्षध्वनि से गुंजित हो उठा। आपका मुनि नाम श्री संभवसागर रक्खा गया। २२ वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्य व्रत एवं २५ वर्ष की आयु में मुनि दीक्षा लेकर आपने सम्पूर्ण जैन जगत को ही नहीं अपितु समस्त देश वासियों को चमत्कृत कर दिया। विभिन्न स्थानों कुन्थलगिरि तीर्थ, गजपंथा, मांगीतुंगी, गिरनार आदि तीर्थ क्षेत्रों पर आपने आचार्य श्री गुरु के संघ के साथ चातुर्मास किया। गिरनारजी तीर्थ क्षेत्र पर आ० श्री महावीरकीर्तिजी महाराज पर वैष्णव बाबाओं द्वारा उपसर्ग किया गया जिसे आचार्य श्री ने समतापूर्वक सहन किया तथा अहिंसा एवं क्षमा के बल पर विरोधियों को झुकना पड़ा।

मुनिश्री का जीवन शीतल और स्वच्छ जलधारा की तरह निर्मल है। भव्य जीवों को वह यह बोध दे रहा है कि संयम और साधना के द्वारा बूंद भी समुद्र बन सकती है। एक बूंद का सागर

वनना संभव हुआ, इसीलिए तो इनका नाम संभवसागर है। प्रस्तुत मुनि श्री का संक्षिप्त जीवन परिचय सबको ज्ञान, ध्यान, संयम, तप, त्याग और वैराग्य की प्रेरणा दे रहा है।

मुनिश्री नमिसागरजी महाराज

आपका जन्म मजले ग्राम कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में हुवा था। आपके पिता का नाम यवगोड़ाजी तथा माताजी का नाम श्री लक्ष्मीवाई था। आपका पूर्व नाम सुरगोड़ा यवगोड़ा पाटिल था। आपने मराठी में ७ वीं तक शिक्षा प्राप्त की थी।

२८ वर्ष की उम्र में आचार्य महावीरकीर्तिजी से क्षुल्लक दीक्षा औरंगावाद में ली तथा १०-१०-१९७० में मांगीतूंगी सिद्धक्षेत्र पर आपने आचार्य श्री से मुनि दीक्षा ली।

दीक्षा लेने के पूर्व एवं पश्चात् निरन्तर चारों अनुयोगों का स्वाध्याय करना, चिन्तन करना ही आपका लक्ष्य रहा। अब तक आपने ५१ बार समयसार का स्वाध्याय किया है। आपने भगवती आराधना नामक ग्रन्थ को हस्त लिखित किया। आपके सदुपदेश से तमदलगे नामक स्थान पर मन्दिर का निर्माण कार्य चल रहा है। सं० १९८३ में आपका चातुर्मास सामंती में हुआ।

धन्य है आपकी तपस्या, त्याग जो निरन्तर ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं।

मुनिश्री आनन्दसागरजी महाराज
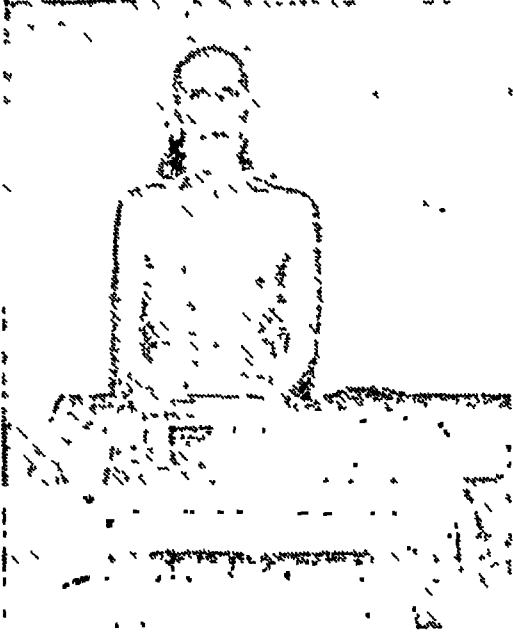
आप आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं। विशेष परिचय अप्राप्य है।

क्षुल्लकश्री आदिसागरजी महाराज

श्री बापू साहब का जन्म मोगनोली नामक स्थान पर हुआ था। आपके पिता श्री देवगौड़ाजी पाटील थे एवं माता मदनाकर थी। आप जाति से दिगम्बर जैन चतुर्थ थे। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आपके एक भाई व एक बहिन है। आप आजीविका के लिए दुकानदारी करते थे। आपने आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी से गजपंथाजी सिद्धक्षेत्र पर २० अक्टूम्बर को दीक्षा ले ली। आपने गजपंथाजी में चातुर्मास भी किया।

क्षुल्लकश्री नमिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक नमिसागरजी का पूर्व नाम सुरगोड़ाजी था। आपका जन्म दिनांक १३-२-४१ को मदले (कोल्हापुर) में हुआ। आपके पिता श्री यवगोड़ाजी थे, जो नौकरी करते थे। आपकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था। आप चतुर्थ जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ७ वीं तक हुई। धार्मिक शिक्षा बालबोध जैनधर्म चौथा भाग तक हुई। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपके परिवार में पांच भाई व दो बहिनें हैं।

साधु-समागम व उनके धर्मोपदेश के श्रवण-मनन से आपके मानस में वैराग्य की भावना बढ़ी। आपने दो फरवरी उन्नीस सौ उनहत्तर को औरंगाबाद में श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने एक से अधिक स्थानों पर चातुर्मास किये। धर्म और समाज की सेवा की।

क्षुल्लक श्री सम्भवसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक सम्भवसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम मांगीलाल जैन था। आपका जन्म पचहत्तर वर्ष पहले मण्डलेश्वर में हुआ। आपके पिता श्री वीरासा जैन थे, जो नौकरी करते थे। आपकी माताजी का नाम कस्तूरीबाई था। आप पोरवाल जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। अकेलेपन के कारण आप धर्म की दिशा में सहज ही बढ़ सके।

आपने विक्रम संवत २००८ में इन्दौर में श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको भजन स्तुतियों पदों से बड़ा प्रेम है। आपने फुलेरा, भवानीगंज, औरंगाबाद गिरनारजी, इन्दौर, गजपन्थाजी, उज्जैन आदि नगरों में चातुर्मास किये। आप रविवार को कभी भी नमक नहीं लेते हैं।

क्षुल्लकश्री नेमिसागरजी महाराज

गिणोई जिला जयपुर (राजस्थान) में श्री सुवालालजी के यहां श्री किस्तूरचन्द ने जन्म लिया था। आपकी जाति खण्डेलवाल गोत्र गंगवाल थी। शिक्षा साधारण ही थी। सं० १६१६ में आ० महावीरकीर्तिजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। आपके आ० क० चन्द्रसागरजी महाराज के प्रवचनों से प्रभावित होकर दीक्षा धारण करने के भाव हुए थे। झाबुआ व थादला में संवत् २०१८ में पेचिस, बुखार व खून आदि की भयंकर बीमारियां हुई तब आपने किसी भी प्रकार का इलाज नहीं कराया श्रावकों के अनेक आग्रह करने पर भी कोई उपचार नहीं कराया और सब रोगों को शांति पूर्वक सहन किया। धन्य है आपका जीवन जो आत्म साधना व स्वाध्याय रत रहकर आगे भी चारित्र बढ़ाने की भावना रखते हैं आगे आपने मुनि दीक्षा लेकर आत्म उत्थान किया।

क्षुल्लकश्री चन्द्रसागरजी महाराज

उपादान में शक्ति तो है किन्तु निमित्त पाकर ही जाग्रत होती है। क्षुल्लक चन्द्रसागरजी म० (दीक्षा पूर्व) के वैराग्य में प्रमुख निमित्त कारण पारिवारिक घटना चक्र और गुरुदर्शन रहा है। अग्रवाल जैन परिवार में जन्मे मंगलराम जैन मात्र अपनी जन्म-भूमि पहाड़ीग्राम (भरतपुर) की विभूति न रहकर समूचे श्रावक समुदाय की विभूति बन चुके हैं। सं० २००६ में पू० आ० श्री महावीरकीर्तिजी म० से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर संसार सुखों से जो मुख मोड़ा तो वह विराग की बढ़ती धारा सं० २००७ में मल्हारगंज इन्दौर में क्षुल्लक दीक्षा के रूप में सामने आई। तभी से आप कठिन तपश्चर्या करते हुए अपनी आत्मा को शिवपथगामी बनाने में तत्पर हैं।

क्षुल्लकश्री शीतलसागरजी महाराज

गोपीलाल और तुलसादेवी अग्रवाल दोनों को अच्छी तरह मालूम था कि उनकी संतान शादी से इंकार कर रही है। पर सरखंडिया (राज०) में हलचल तो तब मची जब लोगों ने सुना कि बद्रीलाल वैरागी हो गया। 'कारण' बद्रीलाल को कहीं से कुछ जुटाना नहीं पड़ा। उसकी किस्मत ने खुद उसे सम्मेदाचल के पादमूल में विराजमान गुरुवर आ० श्री महावीरकीर्तिजी म० के चरणों तक पहुंचा दिया। पूज्य श्री ने आश्विन शु० ८ सन् १९५५ को जब दीक्षार्थी नवयुवक को उपकृत करने की स्वीकृति प्रदान की तब सुकुमार युवक के बाहों की मसें ठीक से भीगी भी न थी। जन्म और दीक्षाकाल में फासला मामूली सा था। वि० सं० १९८९ आषाढ़ शु० ६ को इस पृथ्वी पर आंख खोली और सन् ५५ में दीक्षा। पर वैराग्य के लिये उमर कभी बन्धन कारक नहीं हुई। दीक्षार्थी की मुराद पूरी हुई। आचार्य श्री ने आपका नाम 'शीतलसागर' रखकर जिनधर्म की सेवा करने का आदेश दिया। शास्त्रों का गहन अध्ययन करके आपने सदुपदेश दृष्टान्त माला, भद्रबाहुचरित, गौतम चरित्र लिखे तथा आ० महावीरकीर्ति स्मृति ग्रंथ प्रकाशित करने की दिशा में अग्रसर हैं। पाठशालाओं की स्थापना शिक्षण शिविर यत्र तत्र लगाते रहते हैं। अवागढ़ में आ० महावीर कीर्तिस्तम्भ तथा धर्मप्रचारणी संस्था की स्थापना करके श्रावकों का मार्गदर्शन किया। फिरोजाबाद जयपुर खानियां, नागौर, डेह, सुजानगढ़, लाडनूं, हिंगोनिया, झाग, मौजमाबाद, सांगानेर, चन्दलाई, निवाई, टोंक, बनेठा, नैनवा, अवागढ़ एटा में चातुर्मास कर भव्यों को धर्मामृत पान कराया। पू० आ० श्री शिवसागरजी म० आ० श्री ज्ञानसागरजी महाराज, मुनि श्री पार्श्वसागरजी महाराज के साथ भी चातुर्मास करके आपने अपनी वैराग्य भावना को दृढ़ किया है।

आर्यिका श्रेयांसमतीजी

श्री १०५ आर्यिका श्रेयांसमतीजी का गृहस्थ अवस्था का नाम शिवदेवी था। आपका जन्म राजसुन्नार गुड़ी में हुआ। आपके पिता का नाम श्री वर्द्धमान मुदालिया एवं माता का नाम श्रीमती गुणमती था। आप मुदालिया जाति की भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आपका विवाह भी हुआ। जिससे आपको दो पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। ३८ वर्ष की अवस्था में आपके पति का देहान्त हो गया।

शास्त्र पढ़ने से आप में वैराग्य वृत्ति जागृत हुई इसलिये आपने सन् १९५८ में श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से नागौर में आर्यिका दीक्षा ले ली। आपकी वर्तमान में आयु ६४ वर्ष की है। आपने नागौर, अजमेर, पावागढ़, बड़वानी, गजपन्था, कुन्थलगिरि आदि जगहों पर चातुर्मास किये। आपने लोगों को धर्म ज्ञान की बातें सिखाई।

आर्यिका वीरमती माताजी

उत्तरप्रान्त में गाजियावाद के पास लोनी में आपने सेठ बसन्तीलालजी के यहां जन्म लिया। आपका पूर्व नाम जम्बूबाई था। आपकी इस समय उम्र ७५ वर्ष की हो रही है। आपने आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से दीक्षा ली। आप समाधि की साधना कर रही हैं।

आर्यिका शीलमती माताजी

पू० अम्मा का जन्म शिरसापुर जिला परभणी महाराष्ट्र में हुवा था। आप बाल ब्रह्मचारिणी हैं। आपका बाल्यकाल से धर्म कार्यों के प्रति रुझान रहा तथा संस्थाओं का संचालन किया। सं० २०१५ में उत्तरप्रदेश फिरोजाबाद में श्री आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। धार्मिक भावना आपके अन्दर कूट-कूट कर भरी हुई है।

आपने अनेकों मन्दिरों में जिन प्रतिमाएँ स्थापित की तथा सारी सम्पत्ति धार्मिक कार्यों में ही लगाई। अब आप ६७ वें वर्ष में प्रवेश कर रही हैं।

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

१०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी का जन्म बांसवाड़ा में हुआ। आपके पिता का नाम अजयलालजी व माता का नाम सिंगारीबाई था तथा आपका जन्म नाम रूपारीबाई था। स्कूली शिक्षा कुछ भी प्राप्त न होने से कुछ भी स्वाध्याय वगैरह घर में नहीं कर सके परन्तु अब आपने विमलसागरजी महाराज के पास कुछ अध्ययन किया तब से अपनी दैनिक क्रिया सुचारु रूप से करती हैं आपका उपदेश भी बागड़ी भाषा में अच्छा होता है कुछ शास्त्र का ज्ञान भी हुआ है। आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत प्रतापगढ़ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आ० श्री महावीरकीर्तिजी से लिये व्रत लेकर घर पर ज्यादा नहीं रहे परन्तु दोनों दम्पत्ति साथ में ही व्रती बने और दोनों ने साथ में ही रहकर चौका वगैरह का कार्य किया आपने फिर शिखरजी में विमलसागरजी महाराज से कार्तिक सुदी प्रतिपदा के दिन आ० दीक्षा ग्रहण कर ली और आपके पति ने भी गिरनारजी में फाल्गुन में अष्टाह्निका की चतुर्दशी को महावीरकीर्तिजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और शिखरजी में विमलसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की। अभी डूंगरपुर में आप की समाधि हो गई। आपके गृहस्थ

अवस्था के तीन पुत्र और पुत्री हैं। आपका जीवन बड़ा ही सुचारु रूप से चलता था परन्तु मन वैराग्य की ओर बढ़ने लगा और अपने जीवन को संसार विच्छेद व स्त्री लिंग छेदन के उपाय में लगाया। अतः अब आप अपने चारित्र को दृढ़ता से पालन करते हुये जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपने दीक्षा लेकर शिखरजी खंडगिरि उदयगिरि आदि की यात्रा भी करी आप अपने जीवन में अति धर्म कार्य को ही करते रहे और अपने पति को भी आप प्रेरणा देती रहीं कि संसार असार है। आपकी प्रेरणा सफल हुई जो आप तथा आपके पतिदेव दोनों ने दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण का मार्ग अपनाया इसी मार्ग का अच्छी तरह पालन करते रहें यही हमारी हार्दिक भावना है।

क्षुल्लिका आदिमतीजी

श्री १०५ क्षुल्लिका आदिमती का गृहस्थावस्था का नाम शशिकुमारी था। आपका जन्म राजमन्नारगुड़ी (मद्रास) में हुआ। आपके पिता श्री का नाम वर्धमान है। माता पूर्णमतीजी हैं। आपकी लौकिक शिक्षा नाममात्र की कक्षा दूसरी तक हुई पर स्वभाव में चन्द्रमा सी शीतलता होने से आप दोनों कुलों में सम्मान्य हुईं। आपके पति अपाड़मुदलिया वैदारवीया निवासी थे। जब वे ही नहीं रहे तब आपको घर भार लगने लगा।

आपने भाईयों से अनुमति ली और नागौर में श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से सन् १९५८ में दीक्षा ले ली। आपने नागौर, अजमेर, कल्लोल, पावागढ़, मांगीतुंगी, गजपन्था, कुन्थलगिरि आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। धर्म प्राण जनता को अच्छी बातें सिखायी।

क्षुल्लिका जिनमतीजी

आपके पिता श्री चन्द्रदुलजी एवं माता श्री दुरीबाई की पुत्री हैं। आपका गृहस्थावस्था का नाम मकुबाई था। जन्म सं० १९७३ स्थान पाड़वा सागवाड़ा (राजस्थान) जाति नरसिंहपुरा है। पहली प्रतिमा आचार्य १०८ महावीरकीर्तिजी, सातवीं प्रतिमा मुनि वर्द्धमान सागरजी से ली थी। क्षुल्लिका दीक्षा २०२४ फागुन सुदी १२, स्थान पारसोला में ली थी। विवाह के छः महीने बाद वैधव्य हो गया। आपके दो भाई हैं। आप भी विदुषी तपस्विनी क्षुल्लिका हैं। आप स्वभाव से शान्त प्रकृति की हैं।

❖

क्षुल्लिका नेमिमतीजी

आपका जन्म फलटन (महाराष्ट्र) में वीसा हूमड़ गोत्रीय श्री वंडोवा की धर्मपत्नी श्रीमती सोनावाई की कोख से हुआ। वचपन में आपका नाम सोनावाई था। आपका विवाह सूरत निवासी जरीवाला श्री गुलावचन्दजी साकर चंदनास वालों के साथ सम्पन्न हुआ। आपकी शिक्षा मराठी भाषा में हुई। वैवाहिक जीवन में आदि पुराण का स्वाध्याय करते हुये आपको वैराग्य भाव उत्पन्न हो गये। परिणाम स्वरूप प्रतापगढ़ में आपने स्वर्गीय आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज सा० से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण करली। पश्चात् सं० २०१३ में नागौर में आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा धारण की। तत्पश्चात् उदयपुर, तलोद, पावागढ़, ऊन, धरियावद आदि स्थानों पर चातुर्मास करते हुये आपने खूव धर्म प्रभावना की।

क्षुल्लिका चन्द्रमतीजी

अलवर राजस्थान में श्री केशरवाई का जन्म हुवा। आपके पिता श्री सरदारसिंहजी थे तथा माताजी का नाम भूरीवाई था। वचपन से धर्म में प्रवृत्ति थी। सदा पूजा पाठ सामायिक आदि क्रिया करते थे। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के प्रभाव से आपने अपने जीवन को पवित्र वनाया तथा आचार्य श्री से व्रत धारण किए। आप गृहस्थ में रहकर श्राविकाओं को धर्मोपदेश दिया करती थीं। वैराग्य भाव तीव्र हुए तथा सोनागिरजी की वंदना को गये वहाँ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली तथा आपने अपने जीवन में स्त्रियों को शिक्षा देकर उन्हें दीक्षित किया। आप वाल विधवा हैं आपका विवाह ८ वर्ष की उम्र में हो गया था। हाथ की मेंहदी भी नहीं उतर पाई थी कि वैधव्यता का पहाड़ सिर पर आ पड़ा उसी समय से आपने अपना जीवन संयम में व्यतीत किया।

आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित साधुवृन्द

आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज

आचार्य श्री सन्मतिसागरजी

मुनिश्री वीरसागरजी

मुनिश्री अनन्तसागरजी

मुनिश्री सुव्रतसागरजी

मुनिश्री अरहसागरजी

मुनिश्री सम्भवसागरजी

मुनि बाहुबलीसागरजी
मुनि भरतसागरजी
मुनि पार्श्वसागरजी
मुनि उदयसागरजी
मुनि मतिसागरजी
मुनि पुष्पदन्तजी
मुनिश्री भूतबलीजी
मुनिश्री सुधर्मसागरजी
मुनिश्री आनन्दसागरजी
मुनिश्री पार्श्वकीर्तिजी
मुनिश्री श्रवणसागरजी
मुनिश्री वर्धमानसागरजी
मुनिश्री समाधिसागरजी
मुनिश्री पार्श्वसागरजी
ऐलक चन्द्रसागरजी
ऐलक कीर्तिसागरजी
ऐलक विजयसागरजी
ऐलक वृषभसागरजी
क्षुल्लक अनेकांतसागरजी
क्षुल्लक मतिसागरजी
क्षुल्लक चन्द्रसागरजी
क्षुल्लक समतासागरजी
क्षुल्लक रतनसागरजी
क्षुल्लक नंगसागरजी
क्षुल्लक उदयसागरजी
क्षुल्लक ज्ञानसागरजी
क्षुल्लक धर्मसागरजी
क्षुल्लक सिद्धान्तसागरजी
(जिनेन्द्रवर्णी)
क्षुल्लक प्रबोधसागरजी

क्षुल्लक विजयसागरजी
क्षुल्लक वृषभसागरजी
क्षुल्लक सुमतिसागरजी
क्षुल्लक शांतिसागरजी
क्षुल्लक नेमिसागरजी
क्षुल्लक आदिसागरजी
क्षुल्लक समाधिसागरजी
आर्यिका विजयमतीजी
आर्यिका गोम्मटमतीजी
आर्यिका आदिमतीजी
आर्यिका जिनमतीजी
आर्यिका नन्दामतीजी
आर्यिका नंगमतीजी
आर्यिका स्याद्वादमतीजी
आर्यिका पार्श्वमतिजी
आर्यिका ब्रह्ममतीजी
आर्यिका निर्मलमतीजी
आर्यिका सूर्यमतीजी
आर्यिका शांतिमतीजी
आर्यिका सिद्धमतीजी
आर्यिका सरस्वतीमतीजी
क्षुल्लिका शांतिमतीजी
क्षुल्लिका संयममतीजी
क्षुल्लिका चेलनामतीजी
क्षुल्लिका पद्मश्रीजी
क्षुल्लिका विशुद्धमतीजी
क्षुल्लिका कीर्तिमतीजी
क्षुल्लिका श्रीमतीजी
क्षुल्लिका वीरमतीजी
क्षुल्लिका विमलमतीजी

आचार्यश्री सन्मतिसागरजी महाराज

जीर्ण-शीर्ण मटमैला कागज मुट्ठी में भींचे जयमाला पंडितजी की ड्योढी से बाहर निकली तो ज्योतिष से उसका सारा विश्वास जाता रहा। दो डब्बल पोथी-पत्तर पर दक्षिणा के रखने पड़े इसका मलाल दिल में उसे कतई नहीं था। पर पुरखों को भी जो नसीब नहीं हुआ, कम से कम तीन पीढ़ियों की बात तो उसे याद है, वही बात पंडितजी उसके लाल को बतायें, गरहन की गिनती में जरूर कहीं गल्ती है........ बुदबुदाती सी बारम्बार हौले से अपना सिर मटकाती जाती। कानों में रह-रहकर पंडितजी के शब्द गूंज उठते, "अरी भागवान! जा जा, शादी की बात पूछती है," अरे तेरा लाला तो महाराजा बनेगा, महाराजा।" प्यारेलाल ने सुना तो वह भी अचरज में आ गये। भला फफोतू (एटा) जैसा गांव और पंडितजी की बात। वे दम्पति यह न समझ सके कि माघ शु० ६ सं० १९९५ में जिस संतान ने उनके आंगन को पवित्र किया है, वह सुरराजों को भी अलभ्य ऐसी जैनेश्वरी दीक्षा से विराग की धारा में संसार को डुबोता हुआ मुक्ति श्री का अधिपति बनने चल पड़ेगा। उन्हें इसका भी ध्यान नहीं रहा कि उन्होंने ही तो पंचपरमेष्ठी वाचक 'ओम' के साथ उसका नाम 'प्रकाश' रखा था। पंडितजी की ग्रह गणना इसी की टीका थी।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् ओमप्रकाश ने छंद, व्याकरण, ज्योतिष, आगम-शास्त्र, साहित्य का गहरा अध्ययन किया। फलतः विवेक चक्षु खुल गये। सं० २०१८ में पूज्यपाद आ० श्री महावीरकीर्तिजी म० से मेरठ की पुण्यभूमि में "ब्रह्म" बनने की चाह से ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और एक मास बाद क्षुल्लक दीक्षा लेकर धर्म नौका पर सवार हो गये। निरन्तर गुरु सेवा और शास्त्र स्वाध्याय करते हुए आपने शाश्वत तीर्थ राज सम्मेदशिखर के पादमूल में आ० श्री विमलसागरजी म० से शेष परिग्रह हरण की प्रार्थना की। शिष्य की योग्यता और भावों की विशुद्धि देखकर आचार्य श्री ने सं० २०१९ कार्तिक शु० १२ को निर्ग्रन्थ पद देकर "सन्मति सागर" नाम दिया तथा कर्मबेड़ियों को चटकाने का आदेश दिया। आपने गुरु आज्ञा स्वीकार कर घोर तपश्चरण

करके जिनधर्म की सतत् प्रभावना की । कालान्तर में आप आ० श्री महावीरकीर्तिजी म० के संघ में प्रविष्ट हो गये । आचार्य श्री ने मेहसाना में माघ कृ० पंचमी २०२८ को आचार्य पद पर आसीन किया ।

प्रभावना :

आपने निरन्तर महाव्रत की निरतिचार चर्या का पालन करते हुए सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके भव्यों को संबोधा । बाकल [जबलपुर] में घोर कायोत्सर्ग तप करके अजैन जनता को भी इतना प्रभावित किया कि हजारों स्त्री-पुरुषों ने जैन धर्म की महत्ता को स्वीकार कर अणुव्रत ग्रहण कर देव दर्शन की प्रतिज्ञा ली । श्राविका श्रीमती प्यारीबाई जैन के गृह में निरन्तराय आहार होते ही दो भव्यों को प्रतिबोध प्राप्त हो गया और उन्होंने उसी दिन क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली । आचार्य ने ठीक ही कहा है—कि द्रव्य में योग्यता होने पर भी निमित्त की जरूरत होती है ।

निमित्त मान्तरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
बहिर्निश्चय कालस्तु निश्चितस्तत्व दर्शिभिः ।।

विधान और प्रतिष्ठा कराने के लिये आप सतत प्रयत्नशील रहते हैं ।

चातुर्मास :

बाराबंकी, बड़वानी, मांगीतुंगी, श्रवणबेलगोल, हूमच, कुंथलगिरि, गजपंथा, दुर्ग (म० प्र०) आदि में चातुर्मास करके रत्नत्रय की आराधना की । आपकी विद्वत्ता और तपश्चर्या से प्रभावित होकर समाज ने सम्मेदगिरि में चारित्रनायक, इटावा में अध्यात्म योगी सम्राट, जबलपुर में चारित्र चक्रवर्ती की उपाधियों से आपके गुणों की स्तुति की ।

तपश्चर्या :

आगम सम्मत "तप" तपते हुए इस काल में महाव्रतियों की चर्या को उजागर करते रहते हैं । खारा, मीठा, स्निग्ध, दही, समस्त मसाले, अनाज, तिलहन आदि का आजन्म त्याग है । इटावा में कड़ाके की धूप में एक पहर तक खड़े रहे, जिसे देखकर जनता आश्चर्यचकित हो गई ।

संघ विस्तार :

आपके चरण युगलों में तेरह भव्यात्माओं ने आश्रय लेकर अपने कर्मास्रवों के आवेग को रोका है—

मुनिश्री शीतलसागरजी, मुनिश्री पार्श्वसागरजी, मुनिश्री ऋषभसागरजी, मुनिश्री महेन्द्र-सागरजी, मुनिश्री आनंदसागरजी, मुनिश्री पद्मसागरजी, मुनिश्री हेमसागरजी, क्षु० श्री रविसागरजी, क्षु० श्री मानसागरजी, क्षु० श्री पूर्णसागरजी, आर्यिका नेमामतीजी, वीरमतीजी, क्षु० निर्मलमतीजी।

आप श्री ने सम्यक्त्व की भावना से परिपुष्ट संघ के साथ श्रावकों को धर्मामृत पान कराया। निर्मल रत्नत्रय का मार्ग भव्यों को दिखाते हुए धर्म की ज्योति जगाने का आप जैसा साहस विरले ही साधकों में पाया जाता है।

सुलभाधर्म वक्तारो यथा पुस्तक वाचकः।
ये कुर्वन्ति स्वयं धर्म विरलास्ते महीतले ॥

मुनिश्री वीरसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि वीरसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम मोहनलालजी था। आपका जन्म कार्तिक सुदी दशमी, विक्रम संवत् १९५१ को आज से ८० वर्ष पूर्व कटेरा झांसी उत्तरप्रदेश में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मिश्रीमलजी था, जो घी का व्यापार किया करते थे। आपकी माता श्रीमती रूपाबाईजी थी आप गोलालारी जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आप बाल ब्रह्मचारी रहे। आपके पांच भाई और तीन बहिनें थी।

सत्संगति एवं उपदेशश्रवण से आपमें वैराग्य भावना जाग्रत हुई एवं आपने विक्रम संवत् २०२१ में बड़वानी में मुनि दीक्षा ले ली। आपने बड़वानी, कोल्हापुर, सोलापुर, ईडर, सुजानगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने नमक, घी, तेल, दही का त्याग कर रखा है।

मुनिश्री अनन्तसागरजी महाराज

आप पिता श्री हीरालालजी एवं माता श्री मेनकाबाई के पुत्र हैं। गृहस्थावस्था का नाम नेमचन्द्रजी था। जन्म सं० १९६० में पुनहरा (ऐटा) में हुआ। जाति पद्मावती पुरवाल थी। आपने शादी नहीं की। बाल ब्रह्मचारी रहे। क्षुल्लक दीक्षा, सं० २०२१ कोल्हापुर में विजयसागर के नाम से, ऐलक दीक्षा कार्तिक सुदी ५, सं० २०२६ दिल्ली में एवं मुनि दीक्षा फाल्गुन सं० २०२७ को सम्मेदशिखर पर श्री अनंतसागरजी के नाम से पूज्य आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से ली। ये ध्यान, अध्ययन, जप-तप में हमेशा लीन रहते हैं।

मुनिश्री सुव्रतसागरजी महाराज

आप श्री सूरजपालजी एवं माता श्री सूर्यदेवी के पुत्र हैं। जन्म स्थान भिंड (ग्वालियर), जन्म सं० १९७३ व जाति गोलसिंघारे है। आपका गृहस्थावस्था का नाम श्री पन्नालालजी है। मुरैना विद्यालय से न्यायतीर्थ की परीक्षा पास की। इन्होंने दूसरी प्रतिमा सं० २०१०, चौथी प्रतिमा सं० २०१८, सातवीं प्रतिमा सं० २०२० में ली। क्षुल्लक दीक्षा सं० २०२४ आसोज सुदी १० को ईडर में पूज्य श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी से ली और नाम श्री प्रबोधसागरजी रखा गया। आप बराबर तप में रत रहते हैं तथा व्याख्यान देने में बड़े पटु हैं। राजगृही में ही अनन्त चतुर्दशी तारीख ४-९-७१ को मुनि दीक्षा ली।

❖

मुनिश्री अरहसागरजी महाराज

आप पिता श्री रज्जूलालजी एवं माता श्री मांड्या-देवी के पुत्र रत्न हैं। आपका जन्म सं० १९७२ में परवार जाति में टीकमगढ़ में हुआ था। आपके दो भाई हैं। आपका गृहस्थावस्था का नाम लखमीचन्द था। आपने दूसरी प्रतिमा आ० विमलसागरजी से तथा सातवीं प्रतिमा आ० श्री महावीरकीर्तिजी से चम्पापुर में ली। क्षुल्लक दीक्षा सं० २०१५ में श्री सम्मेदशिखरजी में तथा मुनि दीक्षा सं० २०१८ में अगहन बदी ११ को बड़ौत में आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी से ली। आप बाल ब्रह्मचारी हैं तथा अहर्निश जप, तप, ध्यान में लीन रहते हैं।

मुनिश्री बाहुबलिसागरजी महाराज

आपका जन्म थिड़ावा जि० झालरापाटन निवासी श्री भवंरीलालजी एवं माता श्री ताराबाई के घर सं० १९९० में हुआ था। आप जैसवाल जाति के रत्न हैं तथा आपका गृहस्थावस्था का नाम गिरवरसिंह था। आपने सातवीं प्रतिमा सं० २०१९ में कम्पिलाजी क्षेत्र पर तथा क्षुल्लक दीक्षा सं० २०२१ में मुक्तागिरीजी क्षेत्र पर ली। श्री सम्मेदशिखरजी में सं० २०२९ कार्तिक सुदी १ सोमवार ३-११-७२ वीर नि० सं० २४९९ को आचार्य श्री विमलसागरजी से आपने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की तथा मुनि श्री बाहुबलि सागरजी नामकरण हुआ। आप संघ के शान्त, तपस्वी साधु हैं एवं बाल ब्रह्मचारी हैं।

मुनिश्री सम्भवसागरजी महाराज

आपका जन्म रेमजा (आगरा) निवासी श्री पन्नालालजी एवं माता श्री दुर्गाबाईजी जाति पद्मावती पोरवाल के घर में श्रावण शुक्ला ३ रविवार सं० १९४९ में हुआ। आपने ब्र० शांतिकुमार के नाम से मिर्जापुर में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। कामा भरतपुरमें माघशुक्ला १३ सं० २०१५को क्षु० दीक्षा ग्रहण की तथा श्री आदिसागरजी के नाम से विख्यात हुए। श्री सम्मेदशिखरजी में कार्तिक शुक्ला १२ सं० २०१९ को आचार्य श्री विमलसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की और श्री सम्भवसागरजी का नाम धारण किया। आप आचार्य श्री के गृहस्थावस्था के बुआ के लड़के हैं तथा बाल ब्रह्मचारी हैं, आप सघ के वयोवृद्ध शान्त परिणामी तपस्वी साधु हैं।

मुनिश्री भरतसागरजी महाराज

आप पिता श्री किशनलालजी एवं माता श्री गुलाबबाईजी के पुत्र हैं। आपका जन्म सं० २००६ चैत्र शुक्ला ९ गुरूवार को पु० नक्षत्र में हुआ। आपका जन्म स्थान जोहरिया (बांसवाड़ा) है। आप दशा नरसिंहपुरा जाति के हैं। दूसरी प्रतिमा चैत्र शुक्ला २ सं० २०२५ में भवानीमन्डी में ली तथा क्षुल्लक दीक्षा सं० २०२५ जेठ बदी ४ को अजमेर में ली। श्री सम्मेदशिखरजी में सं० २०२९ कार्तिक शुक्ला १ सोमवार दिनांक ३-११-७२ वीर सं० २४९९ में आचार्य श्री विमलसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप गृहस्थावस्था में तीन भाई और एक बहन हैं। लौकिक अध्ययन मैट्रिक तक किया है। आप बाल ब्रह्मचारी तथा संघ के सबसे कम उम्र के साधु हैं। आप बराबर अध्ययन, ध्यान तथा मौन में लीन रहते हैं।

मुनिश्री पार्श्वसागरजी महाराज
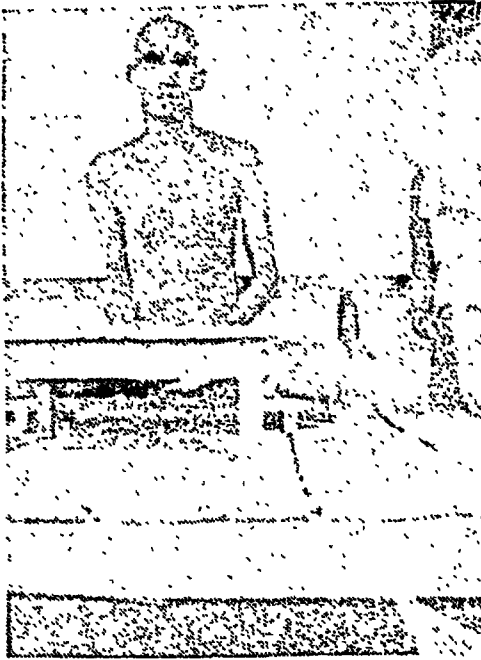
आपका जन्म ग्राम समोना जिला आगरा में सम्वत् १९८५ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री दातारामजी एवं माताजी का नाम चन्दनबाला था। आप ५ भाई व ३ बहिनें हैं। आपने पांचवीं कक्षा तक श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन विद्यालय राजाखेड़ा में विद्या अध्ययन किया। उसके बाद रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। आप गृहस्थ अवस्था में प्रतिदिन पूजन करते थे। आपके माता पिता का स्वर्गवास आपकी छोटी आयु के समय ही हो गया था। इस कारण संसार की असारता को देखकर आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ। आपने १७ साल पहले मथुरा में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा धारण की। उसके थोड़े दिन बाद सोनागिरजी में ७ वीं प्रतिमा भी श्री विमलसागरजी महाराज से ली। सम्वत् २०२१ में बड़वानी में आचार्य श्री विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। सम्वत् २०२२ में मांगीतुंगीजी में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ली। और श्री पार्श्वसागरजी महाराज नाम पाया। मुनि दीक्षा के बाद नांदगांव में आप पर बिजली का प्रहार हुआ। जिससे आपके दिमाग व आंख में कमजोरी आ गई। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। धार्मिक भजन व कविता खुद बनाकर सुनाते हैं।

मुनिश्री उदयसागरजी महाराज

आपका जन्म जिला उदयपुर (राजस्थान) के एक छोटे से ग्राम बड़ा वाड़ेड़ा में सम्वत् १९७८ में नरसिंह पुरा जाति के श्री खेमराजजी के यहां हुआ। आपकी माताजी का नाम भूरीबाई था। आपका गृहस्थावस्था का नाम मगनलाल है। आपका पूरा परिवार धार्मिक प्रवृत्ति का था। आपका विवाह सं० २००० में ग्राम कुरावड के नरसिंह पुरा जाति के श्री मारूलालजी की सुपुत्री कमलाबाई के साथ हुआ। आपके ८ पुत्र-पुत्रियां उत्पन्न हुए परन्तु भाग्योदय से उनमें से केवल एक पुत्र ही जिन्दा रहा जिसका नाम महावीर है आपका गृहस्थावस्था का अधिकांश समय जैन मुनियों के बीच एवं तीर्थ वन्दना में ही व्यतीत हुआ। आपकी रुचि जैन धर्म के प्रति शुरु से ही अधिक रही है। आपने ब्रह्मचर्य व्रत सं० २०२९ में आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज से सिद्ध क्षेत्र पावागढ़ में लिया। ७ वीं प्रतिमा आपने आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी से ली। आपने मुनि दीक्षा आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी से ग्वालियर में जेष्ठ सुदी ८ सं० २०३५ में ली तभी से आप मुनि उदय सागरजी के नाम से जाने जाते हैं। आप अपना अधिक समय धर्म ध्यान एवं अध्ययन में व्यतीत करते हैं।

मुनिश्री मतिसागरजी महाराज

आपका जन्म सं० १९७६ में पौषवदी १४ शनिवार को पिता श्री इन्दरलालजी एवं माता श्री भूरीबाई की उज्ज्वल कोख से ग्राम सागौनी कला जिला दमोह (म० प्र०) पोस्ट तेजगढ में हुआ। गृहस्थावस्था का नाम श्री छोटेलालजी था। आप परवार जाति में गोहिल्ल गौत्र नगाडिम भूरी हैं। आपकी सं० १९९६ में शादी हुई और ६ संतानें हुई। तत्पश्चात् आपने गृहस्थाश्रम से उदासीन हो वैराग्य की ओर अग्रसर होकर ७ वीं प्रतिमा मुनि श्री पुष्पदन्तसागरजी से ग्रहण की। क्षु० दीक्षा सम्मेदशिखरजी में फाल्गुन शु० १५ सं० २०३३ को एवं मुनि दीक्षा अयोध्या में आचार्य विमलसागरजी महाराज से ग्रहण की। नाम करण श्री मतिसागरजी हुआ आप सरल एवं शान्त स्वभावी हैं।

✲

मुनिश्री पुष्पदंतजी महाराज

महाराष्ट्र राज्य के भंडारा जिले के गोन्दिया नगर में आपका जन्म श्री कोमलचन्दजी के घर में १ जनवरी १६५२ को हुआ। इनका गृहस्थ अवस्था का नाम सुशीलकुमार था। इनकी सम्पूर्ण शिक्षा छतरपुर (म० प्र०) में हुई। इन्होंने रींवा विश्वविद्यालय से बी० एस० सी० किया। आप पढ़ने में बहुत तेज थे एवं कॉलेज में राजनैतिक क्षेत्र में भी अग्रणी रोल अदा करते थे। इनकी इच्छा आगे एम० कॉम० व एल० एल० बी० करने की थी। आप विद्यार्थी जीवन में घोर अनास्थावादी रहे। धर्म व धार्मिक कार्यों में अरुचि आपके माता-पिता को काफी कष्ट देती थी। किन्तु एक पारिवारिक घटना ने आपके जीवन का नक्शा ही बदल दिया। संयोग से इसी समय आप युवाचार्य श्री विद्यासागरजी के सम्पर्क में आये। आचार्य श्री के जादुई व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आपने सन् १९७८ में आचार्यश्री से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

अब आप आचार्य श्री के चरणों में बैठकर जिनवाणी का अवगाहन करने लगे। आचार्य श्री ने इनकी ज्ञान गरिमा, तप, निष्ठा एवं कठोर साधना को देखकर इन्हें २ नवम्बर १६७८ को नैनागिरि तीर्थ क्षेत्र में क्षुल्लक दीक्षा दी एवं शील सागर नाम रखा। १४ नवम्बर १६८० को आचार्य श्री से ऐलक दीक्षा ग्रहण की।

मन में मुनि दीक्षा की तीव्रतम इच्छा संजोये अपनी छटपटाती आत्मा के साथ आचार्य श्री की आज्ञा से २१ जनवरी १६८० को ललितपुर की तरफ विहार किया।

बालवेट अतिशय क्षेत्र ललितपुर में आचार्य श्री विमलसागरजी ने इनकी साधना, चारित्र एवं अगाध ज्ञान को देखते हुए इन्हें ३१ जनवरी १६८० को माघ शुक्ला पूर्णमासी के दिन गुरुवार को मुनि दीक्षा दी।

आचार्य श्री ने इनके उत्कृष्ट ज्ञान, उत्तम तार्किक बुद्धि, मुखरित वाणी, युवा हृदय, कठोर साधना एवं अनूठी श्रद्धा को देखते हुए इन्हें स्वपर कल्याण हेतु विहार की आज्ञा दी।

✲

मुनिश्री भूतबलीजी महाराज

श्री भूतबलीजी महाराज का जन्म कर्नाटक राज्य के बेलगाम जिले के सहूदी ग्राम में ४ अप्रेल १९४४ में हुआ। उनका नाम भीमसेन जुंजाड़कर रखा गया। वे चार बहनों के बीच अपने पिता के इकलौते लाड़ले पुत्र थे। साधारण शिक्षा प्राप्त करके खेती-बाड़ी करने में लग गए। प्रारम्भ में आपको देव-दर्शन करने जाने से भी चिड़ थी किन्तु एक बार इनके कुछ दोस्त इन्हें धोखे से १०८ श्री महाबल महाराज के पास दर्शन हेतु ले गए। वहाँ पर इन्हें परम शांति प्राप्त हुई। अब आप नियम से महाराज श्री की वैयावृत्ति करने जाने लगे। एक दिन महाराज श्री ने भीमसेन को समझाया कि "प्रत्येक माता-पिता अपने पुत्रों को स्वार्थ से प्यार करते हैं। यदि विश्वास न हो तो आज ही घर जाकर परीक्षा कर सकते हो। तुम घर जाकर अपने माता-पिता का काम नहीं करना और न ही खेत पर काम करने जाना, उसके बदले घर में ही धर्म-ध्यान करना।" भीमसेन ने महाराज श्री की आज्ञा के अनुरूप आचरण किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि इनकी घर में बहुत पिटाई की गई। बस यहीं से भीमसेन के जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन आ गया। एक तरफ इनके माता-पिता घर में बहु लाने का स्वप्न देख रहे थे और भीमसेन ने अपने मन में कुछ और ही सोच रखा था। उन्होंने विवाह को टालने के उद्देश्य से महाराज श्री के पास दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। वे वैराग्य की ओर कदम बढ़ाने लगे।

सन् १९७३ में वे, चारित्र के अनूठे संयोजक, माँ शारदा के अनुपम पुत्र, युवाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की दर्शनाभिलाषा से अजमेर पहुंचे। आचार्य श्री के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होकर इन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया। समय व्यतीत होता गया एवं वे आचार्य श्री के सानिध्य में शनैः शनैः अपनी वैराग्य भावना को पुष्ठ करते रहे।

सन् १९७६ में पुनीत अष्टाह्निका पर्व पर आचार्य श्री ने इन्हें क्षुल्लक दीक्षा एवं उसी वर्ष ८ माह पश्चात् इनके कठोर तप, निष्ठा एवं वैराग्य साधना को देखकर ऐलक दीक्षा दी। ४ वर्षों

तक अपने को इस अवस्था में पूर्ण परिपक्व कर जनवरी १९८० को विहार कर संघ से निकल गए ।

विहार करते हुए "बालावेहट" अतिशय क्षेत्र ललितपुर पहुँचे जहाँ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज का संघ विराजमान था । वे दर्शन की अभिलाषा से आचार्य श्री के पास पहुँचे । आचार्य श्री ने इन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा कि वे बेकार ही ऐलक अवस्था का विकल्प लिये क्यों जा रहे हैं ? इनके दिल में तो तीव्र वैराग्य की भावना थी एवं वे भी इसी क्षण का इन्तजार कर रहे थे ।

३१ जनवरी ८० को माघ शुक्ल पूर्णमासी के दिन गुरुवार को आचार्य श्री ने इनके कठोर चारित्र व साधना को देखते हुए मुनि दीक्षा दी ।

मुनि दीक्षा के उपरांत गुरू की आज्ञा से धर्म प्रचार हेतु नव दीक्षित साथी मुनि श्री पुष्पदन्तजी के साथ धर्म प्रभावना पैदा करते हुए मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा शहर में पधारे एवं जहाँ इनका मुनि अवस्था में प्रथम वर्षा योग साधना बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से हुई । वे अपने सौम्य स्वभाव, गम्भीरता एवं कड़ी तपस्या से जन-जन का हृदय जीत धर्म-प्रभावना पैदा कर रहे हैं ।

मुनिश्री सुधर्मसागरजी महाराज

मुनि श्री सुधर्मसागरजी का जन्म तमिलनाडू प्रान्तर्गत तिरूपणपुर ग्राम में सन् १९३० ई० में हुवा था । आपके पिता का नाम श्री वज्रबाहु तथा माता का नाम रुक्मिणीदेवी था । माता-पिता अत्यन्त सात्विक प्रवृत्ति के थे । बाल्यकाल में आपका नाम पार्श्वनाथ रखा गया । जिन धर्म पर विशेष श्रद्धा होने के कारण आपके पिता ने मुनि दीक्षा धारण की, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से आपके जीवन पर पड़ा और आपने धर्म साधन तथा संयम को ही अपने जीवन का आधार बना लिया । सन् १९६६ में सोलापुर में आपने आ० विमलसागरजी से निर्ग्रन्थ जैनेन्द्री दीक्षा धारण की । आप एकान्तप्रिय और अधिकतर मौन में समय व्यतीत करते थे ।

अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए आप पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर पोदनपुर वम्वई आए। शरीर में निर्बलता दिखी तो आपके सल्लेखना धारण करने के भाव हुए। तथा गजपन्था सिद्ध क्षेत्र पर सात माह तक लगातार क्षेत्र की वंदना की, श्रावण शुक्ला १५ दिनांक १३ अगस्त १९७३ को रक्षा बन्धन पर्व के पावन अवसर पर दूध पानी का संकल्प लेकर आपने सल्लेखना व्रत धारण किया। भाद्रप्रद प्रतिपदा को दूध का भी परित्याग कर दिया। दिनांक ९ सितम्बर १९७३ को अन्तिम बार पानी ग्रहण कर आपने यम सल्लेखना धारण कर ली। समाधि अवस्था में शान्तिपूर्वक विमोह वृत्ति से २४ सितम्बर ७३ को आपने इस नश्वर शरीर का त्याग किया।

निःसन्देह महाराज श्री रत्नत्रय के तेज से सुशोभित एक महान आर्दश सत्पुरुष, निस्पृह तपस्वी एवं निर्मोही साधु पुरुष थे। ऐसे ही महान पुन्यशाली आदर्श वीतराग साधु पुरुषों से भारत वसुन्धरा की गरिमा बढ़ती है।

मुनिश्री आनन्दसागरजी महाराज

आपका जन्म वि० सं० १९६२ पोष वदी तीज को नौगावाँ जि० वांसवाड़ा राजस्थान में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री खेमराजजी हुम्मड़ तथा माता का नाम कस्तूरीवाई था। आपका पूर्व नाम श्री माणिकलालजी जैन था। लौकिक शिक्षा ५ वीं तक ही रही। आपके वचपन के संस्कार उत्तम थे जिससे आप प्रतिदिन देवपूजा आहारदान आदि किया करते थे।

साधुओं के प्रवचनों से प्रभावित होकर आपने वि० सं० २०२८ आषाढ़ वदी दूज को आचार्य महावीरकीर्तिजी से क्षुल्लक दीक्षा ली तथा वि० सं० २०२९ में तीर्थराज सम्मेदशिखर मधुवन में आचार्य विमलसागरजी से मुनिदीक्षा ली। आपके द्वारा समाज में काफी धर्म प्रभावना होती रही।

मुनिश्री पार्श्वकीर्तिजी महाराज

आपका जन्म जिला बांसवाड़ा तहसील गरी के लोहारिया गांव जाति नरसिंहपुरा में मातेश्वरी कुरीदेवी की कूख से संवत् १९७६ में हुआ। आपका नाम जवेरचन्दजी व पिताजी का नाम दाड़मचन्दजी था। आपकी माताजी भद्र परिणामी व दयालु थी। व्रत उपवास करती थी आपकी माताजी में एक यह विशेषता थी कि प्रत्येक सन्तान की उत्पत्ति के समय उपवास रखती थी। आपके पिताजी गांव के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपने १५ साल की अवस्था में व्यापार करना शुरू कर दिया था। आपकी धर्म पत्नी का नाम श्रीमती अमृतबाई है। आपकी इच्छा शुरू से ही दीक्षा लेने की थी। आपने ३८ साल की अवस्था में मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज बम्बई वालों से ब्रह्मचर्य व्रत लिया। संवत् २०३१ ता० २३-२-७५ को श्री सम्मेदशिखरजी में आचार्य श्री विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। उसके बाद घाटोल में श्री १०८ धर्मसागरजी के शिष्य दयासागरजी से ऐलक दीक्षा ली। आपकी यह इच्छा थी कि मैं मुनि दीक्षा आचार्य श्री विमलसागरजी के द्वारा सोनागिरजी में लूं। इस भाव के कारण आप ८ माह में पन्द्रह सौ मील चलकर आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज के चरणों में सोनागिरी आये। यहां आकर आपने आचार्य श्री से संवत् २०३६ श्रावण सुदी ९ को चन्द्र-प्रभु प्रांगण में मुनि दीक्षा ली। तब से आपको मुनि पार्श्वकीर्तिजी के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

मुनिश्री श्रवणसागरजी महाराज

आपका जन्म सन् १९४८ में नरसिंहपुरा जाति में प्रतापगढ़ में हुवा था। आपका विवाह भी हुआ था। आपके दो पुत्र १ पुत्री भी थी। पत्नी, पुत्र, पुत्री सभी का स्वर्गवास हो गया। संसार की ऐसी स्थिति को जानकर आपके मन में वैराग्य आया फलस्वरूप आचार्य विमलसागरजी से मुनि दीक्षा लेकर आत्म साधना रत हैं।

मुनिश्री वर्धमानसागरजी महाराज

आपका जन्म ई० सन् १९१४ में खडी ग्राम जिला अहमदनगर महाराष्ट्र में हुवा। गृहस्थावस्था का नाम चन्द्रकान्तजी था। आपने मुनि श्री ऋषभसागरजी से सातवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। मुनि दीक्षा ई० सन् १९८१ में आ० विमलसागरजी से ली। आप शान्त स्वभावी, सदैव आत्मकल्याण हेतु धर्मध्यान में लगे रहते हैं।

मुनिश्री समाधिसागरजी महाराज

श्री परमपूज्य १०८ दिगम्बर मुनिराज श्री समाधिसागरजी महाराज का जन्म वि० सं० १९५२ वैशाख सुदी ३ दाहोद (गुजरात) में दशा हुमड़ जातीय श्री जयचन्द्र गांधी के घर हुआ था। आपकी माताजी का नाम जीवीबाई था, आपका बचपन का नाम श्री सूरजमल था। माता श्री का स्वर्गवास तब हुआ जब आपकी उम्र सिर्फ एक मास की थी। आपने दाहोद के विद्यालयों में ही गुजारती तथा हिन्दी का अभ्यास इन्दौर, ईसरी आश्रम व बड़वानो में किया।

आपका विवाह दाहोद निवासी सर्राफ सुन्दरजी की सुपुत्री मोतीबाई के साथ हुआ। आपके तीन पुत्र तथा चार पुत्रियां हैं आपकी धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा प्रारंभ से ही थी। इसी का परिणाम है कि आपने अपने गृहस्थ जीवन में ही दाहोद में दो मंदिरजी का निर्माण कराकर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराई तथा छात्रावास की स्थापना की और निवास में महावीर चैत्यालय बनवाया था।

आपने पच्चीस वर्ष तक पुराने मंदिरजी तथा पाठशाला का वहीवट निःस्वार्थ सेवाभाव से चलाया आप छः वर्ष तक दाहोद नगरपालिका तथा तीन वर्ष तक स्कूल बोर्ड के और नागरिक बैंक के सदस्य रहे। आपका कपड़े का व्यापार था। आपने अपने गृहस्थ जीवन में विभिन्न कार्यों के लिये लगभग दस हजार का दान किया। आपने तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी की आठ बार तथा अन्य सभी तीर्थों की यात्राएं की हैं।

धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत श्री सूरजमल गांधी ने श्री १०५ परमपूज्य गुरूवर्य श्री वज्र-कीर्तिजी महाराज से पावागढ़ (गुजरात) में सपत्नी आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत सं० २०११ में लिया था।

संसार की असारता जानकर तथा आत्म कल्याण के निमित्त घर की माया ममता छोड़कर श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी महाराज से सं० २०२४ आसोज सुदी १० के दिन कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। आपने अपने आत्म कल्याण के लिये सं० २०३६ मंगसर सुदी २ को परमपूज्य श्री १०८ विनयसागरजी से लोहारिया में मुनिदीक्षा ग्रहण की।

अब तक आप क्रमशः कोल्हापुर, फलटन, हुबली, इन्दौर, घाटोल (बांसवाड़ा) लोहारिया, रामगढ़, सागवाड़ा गलीयाकोट, सोजीत्रा, मांडवी (सूरत) अथुंणा धरियावद, पारसोला, खांदु में चातुर्मास कर चुके हैं तथा जहाँ-जहाँ आपका विहार एवं वर्षायोग हुआ। वहां-वहां आपने जैन धर्म के शिक्षण हेतु विद्यालयों की स्थापना कराई और धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर जनता को लाभ देते रहे। वि० सं० २०३८ मंगसिर बदी ५ को सागवाड़ा में आपका स्वर्गवास हुआ।
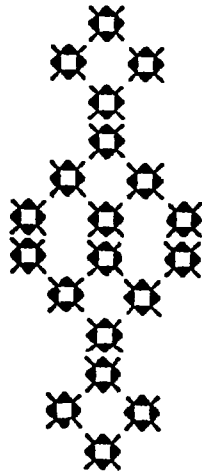
मुनिश्री पार्श्वसागरजी महाराज

परम पूज्य श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज का जन्म कार्तिक सुदी ७. संवत् १९७२ को आगरा जिले के कोटला ग्राम में हुआ था। आपका दीक्षा पूर्व का नाम राजेन्द्रकुमार था। आपके पिताश्री का शुभ नाम श्री रामस्वरूपलाल एवं मातुश्री का जानकीबाई था। वर्तमान में आपकी आयु के ६८ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। आपकी जाति पद्मावत पुरूवाल थी। माता-पिता के आप अकेले पुत्र थे। आपके कोई अन्य भाई-बहिन नहीं हैं। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत मिडिल तक हिन्दी-उर्दू का ज्ञानार्जन किया। धर्म-शिक्षा के अन्तर्गत मुरैना विद्यालय से विशारद की पदवी धारण की।

आप बाल ब्रह्मचारी हैं। पन्ना म० प्र० में पन्ना ग्राम में ही कार्तिक सुदी १२ तारीख १२ नवम्बर सन् १९५९ को सातवीं प्रतिमा धारण की। १२ मार्च १९६० को सोनागिरी सिद्ध-क्षेत्र में क्षुल्लक दीक्षा धारण की एवं श्रावण सुदी ८, सन् १९६१ को मेरठ उत्तरप्रदेश में मुनि दीक्षा धारण की।

समस्त संयम एवं व्रतों में केवल एक आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज आपके धर्मगुरू हैं। आपके परम तपस्वी होने का पता इसी बात से चल जाता है कि आपने अब तक लगभग ३००० उपवास कर लिये हैं।

ऐलक श्री चन्द्रसागरजी महाराज

आपका जन्म कैलवारा (ललितपुर) निवासी पिता श्री दरयावसिंह एवं माता श्री सरस्वती-बाई के घर सं० १९६२ में हुआ । गृहस्थावस्था का नाम गोरेलाल था । आपने २ शादियाँ की। आपको ३ लड़कियाँ तथा २ लड़के हुए। आपने सातवीं प्रतिमा आचार्य श्री विमलसागरजी से कोल्हापुर में ली क्षुल्लक दीक्षा आचार्य श्री विमलसागरजी से बारावंकी में ली तथा ऐलक दीक्षा आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी से श्री सम्मेदशिखरजी में ली एवं श्री चन्द्रसागर नामकरण हुआ। आप संघ के तपस्वी एवं शान्त परिणामी साधु हैं ।

ऐलक श्रीकीर्तिसागरजी महाराज

श्री मोतीलालजी का जन्म कार्तिक शुक्ला १४ वि० सं० १९६४ को लखुरानी (फतिहावाद) जि० आगरा में हुवा था। आपके पिता का नाम चुन्नीलालजी वरैया तथा माताजी का नाम पूरनदे था। आपकी शिक्षा सामान्य ही थी। आप गृहस्थ अवस्था को सं० २०१३ में छोड़कर क्षुल्लक बन गये। इटावा (U. P.) में मुनि विमलसागरजी से ऐलक दीक्षा २०२० में धारण की ।

आपने अनगार, सागार, व्यवहार, प्रवचनसार, आदि अप्रकाशित ग्रन्थों का संकलन किया आपने अपना ज्यादा समय ज्ञानार्जन में व्यतीत किया तथा आजन्म बाल ब्रह्मचारी रहे ।

ऐलकश्री विजयसागरजी महाराज

मोहनलालजी का जन्म कटेरा झांसी में सं० १९५१ में गोलालारे जाति में श्री तीजूलालजी के यहां हुआ था। सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने व्यापारिक कार्य संभाला। ६८ वर्ष तक गृहस्थ में रहने के वाद आपका मन वैराग्य की ओर गया तथा सं० २०२० में बाराबंकी U. P. में ऐलक दीक्षा धारण की। आपने संघ में रहकर आत्म साधना की।

आपके गुरु आचार्य विमलसागरजी रहे ।

ऐलकश्री वृषभसागरजी महाराज

आपका जन्म ग्राम गढ़ी (मोरेना) सं० १९६२ में हुआ था। नाम श्री शिखरचन्दजी था। पिता श्री पातीरामजी, खरौवा जाति एवं पाण्डे गौत्र थी।

पिता के साथ सिरसागंज (मैनापुरी) में लालन पालन एवं वहीं १० वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन किया। १८ वर्ष की आयु में श्री जानकीप्रसादजी की सुपुत्री श्रीमती रतनावाई के साथ वैवाहिक संस्कार हुआ।

२५ वर्ष की आयु में माता-पिता का देहावसान हो गया। अर्थ उपार्जन हेतु खडगपुर में कपड़े की दुकान पर मुनीमी करने लगे। बाद में दुकान मालिक के पंजाब चले जाने से स्वयं के कपड़े का व्यापार करने लगे। यहीं दो पुत्र और एक पुत्री का योग मिला।

गार्हस्थिक प्रपंच में निमग्न आपको विचार आया कि पुत्र के आत्म निर्भर होने पर मैं स्वयं का आत्मकल्याण करूंगा। सुयोग से कुछ वर्ष बाद वहां पूज्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज का उदयगिरि, खण्डगिरि यात्रा करते समय आगमन हुआ। आपने श्री महाराजजी से द्वितीय प्रतिमा धारण कर तीन वर्ष के अन्दर क्षुल्लक दीक्षा धारण करने का संकल्प किया। ३ वर्ष बाद महाराजजी के स्मरण (पत्र द्वारा) दिलाने पर आप फल्टण पहुँचे और वि० सं० २४८५ में आपने सात प्रतिमायें धारण कर गृहत्याग की दीक्षा ली। आपका नाम संस्करण "शिवसागर" किया गया। श्री सम्मेदशिखर की यात्रा के पश्चात् फाल्गुन मास में आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण की और नवीन नाम "ज्ञानसागर" से संस्कारित हुए। कुछ समय तक श्रीमहाराज के संघ के साथ विहार किया। फिर अस्वस्थ हो जाने के कारण भागलपुर से संघ छूट गया और आप वहां से खड्गपुर आये जहां पहला चातुर्मास व्यतीत किया।

तब से आपने कुरावली (मैनापुरी) झांसी, चन्देरी, ललितपुर, सैदपुर, महरौनी, मड़ावर, जतारा (टीकमगढ़) आदि बुन्देलखण्ड प्रान्त की मुख्य मुख्य धार्मिक जगहों पर आपने चातुर्मास सम्पन्न किये।

परिणामों की गति बड़ी विचित्र है। यदि जीव के परिणाम सुलट जाये तो यह थोड़े से प्राप्त मनुष्य जीवन में अपना कल्याण कर सकता है। महाराजजी का जब अशुभ कर्म था तब गिरी हालत में गृहस्थी का मोह नहीं छोड़ सके और जब शुभ कर्म आया तो इष्ट सामग्रियाँ प्राप्त होने पर भी घर छोड़ दीक्षा ग्रहण की। [जीव की गति ही ऐसी है यदि यह गिरने का नाम-काम करने लगे

तो नारकी हो जाता है और यदि नहीं उठने के संकल्प से मर जाये तो सिद्धालय में सिद्ध बन सकता है ।]

आप भेदज्ञान के पारखी उत्तम संयम को धारण करते हुए अपने जीवन को चारित्र की कसौटी पर कसते हुए धर्माराधन पूर्वक ऐलक जीवन बिता रहे हैं ।

क्षुल्लकश्री अनेकान्तसागरजी महाराज

आपका जन्म वुर्ली (जि० सांगली) ई० सं० १९५५ में जीवंधर के घर हुवा था । आपका जन्म नाम दिलीप था । आपने २७ मई १९८२ में सतारा में सात प्रतिमा के व्रत धारण किए तथा १० दिसम्बर ८२ में आचार्य विमलसागरजी से पोदनपुर वम्बई में क्षुल्लक दीक्षा ली । आप अध्ययन प्रिय ध्यान में मग्न रहते हैं । आपने B. Sc. की पूर्व में परीक्षाएँ दी हैं ।

क्षुल्लक श्री मतिसागरजी

ग्राम-सगोनी कलाँ पो० तेजगढ़ जनपद-दमोह (म० प्र०) निवासी श्री सिंघई इन्दरलालजी अग्रवाल जैन एवं माता श्रीमती भूरीवाई के आप सवसे छोटे पुत्र हैं । गृहस्थावस्था का नाम श्री छोटेलाल जैन था । आपने दूसरी प्रतिमा के व्रत वैशाख वदी २ सं० २०२६ एवं सातवीं प्रतिमा के व्रत मि० वैशाख वदी ७ सं० २०२९ को श्री १०८ मुनि पुष्पदन्तसागरजी से लखनऊ में ग्रहण किये । तथा क्षुल्लक दीक्षा आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज से श्री सम्मेदशिखरजी में मि० फाल्गुन शु० १५ सं० २०३३ दिन शनिवार तारीख ५-३-७७ को ली । आपके सांसारिक जीवन में २ भाई, ३ वहन, २ पुत्रों में एक विवाहित तथा दो विवाहित पुत्रियाँ एवं पत्नी का भरा पूरा परिवार है । आपकी लौकिक शिक्षा प्राइमरी तक है ।

क्षुल्लक श्री चन्द्रसागरजी

भरतपुर स्टेट (राजस्थान) के पहाड़ी ग्राम व तहसील में जन्में श्री ताराचंदजी अपने पिता श्री मंगलरामजी एवं मातुश्री रोमाली देवी के सवसे वड़े पुत्र हैं । यद्यपि आप २ भाई एवं ४ वहनों से युक्त परिवार में सवसे बड़े हैं फिर भी दो-दो शादियों के बाद भी आपका अपना परिवार में कोई

नहीं है। आपने लौकिक शिक्षा प्राइमरी तक ही प्राप्त की है। आपने श्री वड़वानीजी में सं० २००७ के जेठ माह में आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत लिये और पुनः सं० २००८ के श्रावण मास में क्षुल्लक दीक्षा भी आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से ही धारण की है। विगत वर्ष से आप अपने दीक्षा गुरू आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज के संघ में सम्मिलित हो धर्मध्यान कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री समतासागरजी

जन्म — २-११-१९१९ धारीसणा गाँव में

पूर्व नाम — शाह अमृतलाल केशवलाल मु० उजेडिया प्रांतीज।

शिक्षा — प्रथम वर्ष आर्ट्स। चार अनुयोगों का सामान्य अभ्यास—

वृत्ति — रेल्वे स्टेशन मास्टर (वेस्टर्न रेल्वे में सर्विस)

सेवानिवृत्ति — २४-६-७५ स्वेच्छा से

सप्तम प्रतिमा ग्रहण—१३-७-७५ श्री १०८ ज्ञानभूषण मुनिराज से)

क्षुल्लक दीक्षा — पोदनपुर, बोरीवली में श्री १०८ आचार्य दीक्षा गुरु श्री विमलसागरजी से तारीख ६-२-७१ के दिन।

चातुर्मास — वम्बई, अहमदावाद, घाटोल, उदयपुर और हिम्मतनगर (गुजरात)।

सर्विसकाल में — प्रमाणिक जीवन, साधुसंगम, वैयावृत्य, पठन-पाठन

प्रभावना के कार्यों में दिलचस्पी निरहंकारी, सादाई और परोपकार भावनाओं में रत थे।

क्षुल्लक श्री रतनसागरजी महाराज

कषायों का रंग समय पाकर छूट जाता है पर चम्बल के पानी की यह खूबी है कि पियो तो मन पक्का हो जाता है। दृढ़ता की सुगन्ध से सनी मिट्टी में मचलता बचपन जब कुछ करने की ठान लेता है तो साध पूरी करने के लिए अंतिम सांस तक मचलता ही रहता है। इस राह में उसे हर रुकावट मात्र खिलौना प्रतीत होने लगती है। सोनी (भिण्ड) ग्राम के निवासी इस तथ्य से भली भांति परिचित हैं। दुर्दान्त दस्युओं के शोर को त्रिराग के घोष से क्षीण कर देने वाले श्रावकों के थोड़े से घर इस गांव में भी हैं। श्री श्यामलाल राजमती गोलालारे दम्पत्ति के घर में भाद्र कृ० ८ सं० १९८५ को एक ऐसे नररत्न का जन्म हुआ जिसका नाम रामचरण रखा गया। रामचरण को बीहड़ की गूंज नित्यप्रति देखने-सुनने को मिलती रहती थी जिससे उसका कोमल हृदय संसार से विरक्त हो उठा। साधुओं की संगति और तीर्थाटन उसकी प्रमुख रुचि बन चली। आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी म० का सान्निध्य पाकर तो गृह त्याग के भाव प्रबल हो उठे। सुजानगढ़ में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से कार्तिक कृष्ण अमावस्या सं० १९२५ (सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये तथा कार्तिक पूर्णमासी) को विशाल जनसमुदाय के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री ने आपका नाम "रतनसागर" रखा। गुरु के साथ रहकर वैयावृत्ति करते हुए तथा शास्त्राभ्यास करते हुए रत्नत्रय की आराधना में निमग्न हैं। आपने अब तक निम्नलिखित स्थानों में चातुर्मास करके धर्म उद्योत किया—दिल्ली, सम्मेदशिखर, जयपुर, खानियां, इटावा, आवागढ़, निवाई, सुजानगढ़, आनन्दपुरकालू, अजमेर, ब्यावर आदि।

सम्प्रति अनेक स्थानों में पूजा प्रतिष्ठा विधि-विधान कराते हुए धर्म प्रभावना कर रहे हैं।
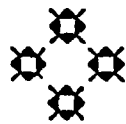
क्षुल्लक श्री नंगसागरजी

आपके पिता का नाम श्री भूपाल उपाध्यायजी एवं माता का नाम श्री चम्पाबाई है। आपका जन्म जैन वाड़ी महाराष्ट्र प्रान्त में हुआ। आपके बचपन का नाम चन्द्रकांत उपाध्याय है। आपकी तीन बहिनें हैं। आप अपने पिता के इकलोते पुत्र हैं। आपने ब्रह्मचर्य व्रत श्री १०५ भट्टारक श्री लक्ष्मीसेनजी से लिया। सात प्रतिमा के व्रत श्री १०८ बालाचार्य मुनि बाहुबलीजी से लिये। आपका लौकिक अध्ययन कक्षा ९ तक का है। आपने क्षुल्लक दीक्षा पौष सुदी १ गुरुवार दिनांक २०-१२-१९८० को सोनागिरी सिद्धक्षेत्र पर सन्मार्ग दिवाकर श्री १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी से ली।

क्षु० श्री उदयसागरजी

आपका पूर्व नाम श्री चन्दनमलजी पांड्या था आप कुचामन (राज.) के हैं, आपका जन्म पूज्य छगनलालजी के यहां संवत १९५८ ई० १९०१ में कुचामन सिटी में हुआ।। ६ भाई थे जिनमें तीसरे भाई श्री चन्दनमलजी थे आप ३० ग्रामों के जागीरदार राजपूतों के बारे में लेनदेन करते थे तथा करीव १ लाख बीघा जमीन पर वतोरे स्वामी थे। तथा वड़े-वड़े व्यापार भी किया करते थे आपके ३ पुत्र, ३ पुत्रियां हैं जिनको पढ़ा लिखाकर व्यापार में लगाकर विवाह शादी कर दी। पुत्र पौत्रियां संपत्ति भाईयों व उनकी संतानें आदि १०५ परिवार जनों का मोह त्याग कर आपने १०८ श्री चंद्रसागरजी व वीरसागरजी से २० वरसों से प्रतिमा धारण कर अंत में श्री १०८ श्री आचार्य विमल-सागरजी से सुजानगढ़ में पत्नी सहित सं० २०२५ में क्षुल्लक, क्षुल्लिका दिक्षा ली।

☸

क्षु० श्री ज्ञानसागरजी

दीक्षा के पश्चात्—क्षुल्लक ज्ञानसागरजी

दीक्षा से पहले —सूरजमल

१. श्रीजी की दीक्षा का कारण—सत्संग

२. कहां और कब—संवत् २०२१ कोल्हापुर में श्री आचार्य श्री विमलसागरजी के द्वारा आसोज सुदी १०

३. योग्यता—गुजराती व हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान है। कई शास्त्रों का अध्ययन किया है तथा प्रचार किया है।

४. रुचि—१. शास्त्र स्वाध्याय

२. धर्म ध्यान

३. लेखों कविताओं का संग्रह कर पुस्तकों का प्रकाशन कराना।

४. पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराना।

५. मंदिरों का निर्माण करवाना।

६ जगह-जगह जैन पाठशालाएं चालू करवाना।

७. चैत्यालयों का निर्माण कराना।

विशेष :—चार रसों का त्याग।

चतुर्मास के स्थान :—कोल्हापुर, फलटन, हुपरी, इन्दौर, घाटोल (बांसवाड़ा), लुहारिया (बांसवाड़ा), रामगढ़ (डूंगरपुर), सागवाड़ा (डूंगरपुर), गलियाकोट (डूंगरपुर), सोजित्रा (गुजरात), मांडवी (सूरत), गलियाकोट (डूंगरपुर)।

वि० वि० :—आपने जहां जहां विहार किया, वहां जैन पाठशालाएं आरंभ कराई तथा लेख-कविता, पूजा का संग्रह कर पुस्तकों का प्रकाशन कराया।

१. जिनेन्द्र भक्ति, २. श्री श्रुत स्कंध विधान श्री सम्मेदशिखर पूजा सहित ३ श्री श्रुत स्कंध विधान सामायिक पाठ सहित।

महाराज श्री ने दाहोद में दो मन्दिरों का निर्माण कराकर पंच कल्याणक उत्सव कराया तथा एक चैत्यालय का निर्माण स्वयं के घर पर कराया। भिन्न-भिन्न स्थानों पर २ चैत्यालयों का निर्माण भी कराया है। तथा जहां आप पधारे हैं और जहां जैन पाठशालाए नहीं थी, जैन पाठशालाएँ प्रारम्भ कराई हैं।

✲

क्षु० धर्मसागरजी महाराज

वि० सं० १९६४ में आपका जन्म सौरम जि० मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) में श्री न्यादरमलजी की धर्मपत्नी श्री भागीरथीदेवी की कुक्षी से हुआ था। आपका पूर्व नाम उग्रसेनजी था। आप अग्रवाल जाति में उत्पन्न हुए थे। आपकी लौकिक शिक्षा मिडिल तथा उर्दू चार कक्षा तक हुई। आचार्य विमलसागरजी से दूसरी प्रतिमा बडौत में ली। सं० २०१९ में तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में आपने क्षुल्लक दीक्षा ली। बचपन से साधु बनने की भावना थी वह मधुवन सम्मेदशिखर पर जाकर पूर्ण हुई। गृहस्थ अवस्था में सैनिक रहे, सिंहापुर युद्ध के मैदान में आपने भाग लिया था आपको सरकार की ओर से बड़ा ही सम्मान मिला। मुजफ्फर नगर जिले में आपका अपूर्व प्रभाव था। अन्त में जो भावना थी वह पूर्ण कर समाधि को प्राप्त हुए। धन्य है आपकी वीरता।
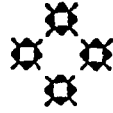
क्षुल्लकश्री जिनेन्द्रवर्णीजी (सिद्धान्तसागरजी)

श्री जिनेन्द्रवर्णीजी का जन्म सन् १९२१ में पानीपत के सुविख्यात विद्वान श्री जयभगवानजी जैन एडवोकेट के यहां हुआ। आपकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। परन्तु उन दिनों पानीपत में उच्च शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। १९३७ में मैट्रिक करने के पश्चात वे अध्ययन के लिए देहली चले गए, परन्तु वहां की जलवायु अनुकूल न पड़ने से क्षय रोग से गस्त हो गये। दोनों फेफड़े खराब हो गये और उन्हें १९३९ में चिकित्सार्थ मिरज भेज दिया गया। यद्यपि बचने की कोई आशा न थी परन्तु अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति से आपने उस रोग को परास्त कर दिया। केवल २० महीने में ४ आप्रेशन कराकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किया। डाक्टरों के आग्रह करने पर भी मांस व अण्डे का प्रयोग करना स्वीकार न किया, यहां तक कि इसी आशंका से सैनेटोरियम की औषधि का सेवन भी नहीं किया।

यद्यपि विद्याध्ययन की बहुत रुचि थी, परन्तु स्वास्थ्य के भय से प्रेम वश पिताजी ने उन्हें पानीपत से बाहर भेजना स्वीकार न किया। इतने पर भी उनका संकल्प न रुका और घर पर ही इलैक्ट्रिक व रेडियो इन्जीनियरिंग का पूरा कोर्स पढ़ डाला। इसी विषय का व्यापार प्रारम्भ किया और कलकत्ता एम० ई० एस० में बड़े जटिल जटिल कार्यों के ठेके लेकर वहां के इन्जीनियरों को चकित कर दिया।

सन् १९५० में धार्मिक रुचि सहसा जागृत हुई। पं० रूपचन्दजी गार्गीय से इस प्रसंग में सहयोग व उत्साह प्राप्त करके उनके जीवन में धर्म तथा ज्ञान का संचार होने लगा। पहले से ही एकान्त प्रिय थे। अब विचार मग्न रहने लगे। व्यापार करते हुये भी अधिक समय शास्त्राध्ययन में जाने लगा। घर में किसी को पता न चला कि इनको क्या संकल्प जागृत हुआ है। सन् १९५२ में एक दिन अकसमात् बिना कहे साधुओं के समागम के लिये प्रस्थान कर दिया। चार महीने के पश्चात् लौटे तो बिल्कुल बदल चुके थे। मन्दिर में ही रहने लगे। यद्यपि ज्ञान व वैराग्य दिनों दिन बढ़ रहा था परन्तु छोटे भाईयों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को, उनकी कर्तव्य निष्ठ बुद्धि भूल न सकी। फलस्वरूप व्यापार में डगमगाते उनके पांव वहां स्थिर करने के लिये पुनः १९५४ में उन्हें कलकत्ता जाना पड़ा। निःस्वार्थ भाव से व्यापार में सहयोग देते थे, परन्तु पैसे से कोई सरोकार न था।

सन् १९५७ में भगवान के समक्ष ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिये। १९५८ में सर्व प्रथम पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी की संगति के लिये ३ महीने ईशरी रहे। तत्पश्चात् कुछ भ्रमण किया और सन् १९६१ में ईशरी में ही आचार्य विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली।

एकान्त प्रिय होने के कारण तथा एक मात्र आत्म साधना के प्रति लक्ष्य व रति होने के कारण प्रारम्भ से ही अपनी योग्यताओं का प्रदर्शन करना वे विघ्न समझते रहे। गुप्त व गूढ़ साधना ही कल्याण मार्ग है, ऐसा उनका विश्वास है, फिर भी पुण्य की गन्ध छिपी न रह सकी। भ्रमर की भांति प्रेमी जन उनके निकट मंडराने लगे। बहुत बचने का प्रयत्न करते हुए भी किन्हीं के अतीव प्रेम पूर्ण आग्रह को वे ठुकरा न सके। फलस्वरूप मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, ईशरी, इन्दौर नसीराबाद, अजमेर, बनारस, रोहतक तथा एक दो और स्थानों में कुछ कुछ समय उन्हें रहना पड़ा, जिससे वहां की तथा आसपास की जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा।

यद्यपि लोगों का आग्रह बढ़ता रहा, परन्तु उन्होंने बल पूर्वक अपनी इस भ्रमण वृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाकर अपनी एकान्त साधना की रक्षा करना ही कर्तव्य समझा और वे प्रायः पानीपत या रोहतक इन दो ही स्थानों में रहते हुये, अधिकतर ध्यान निमग्न रहने लगे।

उनका विशाल अध्ययन तथा समन्वयात्मक स्वतन्त्र व व्यापकदृष्टि शब्दों द्वारा वर्णन नहीं की जा सकती। जैन वाङ्मय का तो सांगोपांग गहन अध्ययन उन्होंने किया ही है; परन्तु इसके अतिरिक्त न्याय, वैशेषिक, सांख्य योग वेदान्त शैव व शाक्त आदि दर्शनों में भी उनकी अच्छी गति है। शब्द पढ़कर उन्हें याद कर लेना अथवा शाब्दिक व साम्प्रदायिक बन्धन में जकड़े रहना उन्हें पसन्द नहीं है। स्वतन्त्र वातावरण में खड़े होकर केवल तत्व दर्शन करने पर ही उन्हें विश्वास है। यही कारण है कि उनकी कथन व लेखन शैली बिल्कुल स्वतन्त्र है, जिसमें उपरोक्त सभी दर्शनों के सिद्धान्तों व शब्दों का समावेश रहता है। आधुनिक युग के वैज्ञानिक दृष्टान्त देकर तथा सामान्यः भाषा का प्रयोग करके वर्तमान युग के पढ़े लिखे व्यक्तियों के लिये अत्यन्त विमूढ़ तात्विक रहस्य को भी सरल बना देना उनकी विशेषता है। उसमें साम्प्रदायिकता का लेश भी नहीं होता। यही कारण है कि जैन व अजैन साधारण व्यक्ति से लेकर बड़े बड़े डाक्टर्स तक उसे रुचि पूर्वक सुनते व पढ़ते हैं।

उपरोक्त सभी स्थानों में दिये गये उनके विद्वत्ता पूर्ण रहस्यात्मक प्रवचन दो ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। "शान्ति पथ प्रदर्शन" और नय दर्पण। इनमें से पहला आध्यात्मिक है और दूसरा स्याद्वाद न्याय विषयक। इनकी एक महान कृति "जैन सिद्धान्त शिक्षण" भी है जो अभी अप्रकाशित है, यह ग्रन्थ वीतराग वाणी को समझने के लिये गागर में सागर के समान है। आशा की जाती है कि जैन सिद्धान्त शिक्षण भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इनके अतिरिक्त कुन्दकुन्द दर्शन, कर्म सिद्धान्त, पदार्थ विज्ञान, श्रद्धा बिन्दु, अध्यात्म लेख माला आदि अन्य भी अनेकों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। जिनमें इन सबसे ऊपर जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष तो उनके जीवन का एक चमत्कार ही है। ४००० बड़े पृष्ठों में निबद्ध समस्त जैन वाङ्मय का यह महाकोष उनके विशाल अध्ययन, कर्मनिष्ठा, संकल्प शक्ति व अथक परिश्रम का जीता जागता प्रमाण है। जैन वाङ्मय का कोई विषय ऐसा नहीं जिसका पूरा परिचय वर्णानुक्रम से इसमें न दिया गया हो, यह आदर्श कृति भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुकी है। इसके साथ साथ ही एक और चमत्कार किया है जो जैन संस्कृति भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में बिखरी हुई थी उसको बाबा विनोबा भावेजी के संकेत मात्र से, अथक परिश्रम करके चारों सम्प्रदायों की एक पुस्तक जैन धर्मसार तैयार की और सर्व सेवा-संघ प्रकाशन से छपकर देश के विद्वत विद्वानों के हाथ में पहुँचा दी गई इस पुस्तक का नाम समणसुत्त है। असाता कर्म के उदय से आपने क्षुल्लक पद छोड़ दिया तथा सामान्य श्रावक के रूप में रहने लगे।

पुनः आपके मन में वैराग्य आया तथा आचार्य विद्यासागरजी से क्षुल्लक दीक्षा २१ अप्रेल १९८३ को ईसरी में ली। आपका नाम क्षु० सिद्धान्तसागर रखा गया। २४ मई १९८३ को ईसरी में आपका समाधिमरण हुवा।

✲

क्षुल्लक प्रबोधसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक प्रबोधसागरजी के गृहस्थावस्था का नाम पंडित पन्नालालजी था। आपका जन्म कार्तिक शुक्ला छठ विक्रम संवत् १९७३ को जारी (भिण्ड ग्वालियर) म० प्र० में हुआ था। आपके पिता श्री सुरजमलजी व माता श्रीमति सुरजदेवी थी। आप गोलसिंघारे जाति के भूषण हैं व सिंघई गोत्रज हैं। धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। विवाह भी हुआ। परिवार में दो भाई दो बहिन, दो पुत्र व दो पुत्रियां हैं।

स्वयं का अनुभव व आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज की सत्संगति के कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। विक्रम संवत २०२४ में ईडर (गुजरात) में आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको पाठ कंठस्थ याद हैं। आपने सुजानगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

क्षुल्लक विजयसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक विजयसागरजी का बचपन का नाम नेमीचन्द्रजी था। आपका जन्म आज से ७० वर्ष पूर्व पुन्हेरा (एटा) में हुआ। आपके पिता का नाम हीरालालजी था जो एक सफल व्यापारी थे। आपकी माता मणिकबाई थी। आप पदमावती पुरवाल जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ५ वीं तक हुई। आप बालब्रह्मचारी रहे। आपके चार भाई और चार बहिनें हैं।

संतों की संगति से आपमें वैराग्य भावना बढ़ी व आपने वि० सं० २०२० में क्षुल्लक विजयसागरजी से दूसरी प्रतिमा धारण करली। बाद में विक्रम संवत २०२१ में कोल्हापुर स्थान पर आचार्य श्री विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने सोलापुर, ईडर, सुजानगढ़ इत्यादि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने घी, तेल, दही, नमक आदि का त्याग किया है।

✲

क्षुल्लक वृषभसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक वृषभसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम ब्र० रतनलालजी था। आपका जन्म मंगसिर सुदी तीज संवत १९५२ को दूदू (जयपुर) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सुरजमलजी है। आपकी माता का नाम जड़ाववाईजी है। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण हैं। आप लुहाड़िया गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आप बाल-ब्रह्मचारी रहे।

आचार्य विमलसागरजी की संगति से आपमें वैराग्य भावना बढ़ी। आपने फाल्गुन वदी चौथ वि० सं० २०२५ में पदमपुरा पंचकल्याणक में आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने रेनवाल-मांजी, जयपुर में चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने दो रसों का त्याग किया है।

क्षुल्लक सुमतिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजी का पहले का नाम गिरवरसिंह है। आपका जन्म आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व पिड़ावा (झालरापाटन) राजस्थान में हुआ। आपके पिता श्री भंवरलालजी हैं जो कृषि और दुकानदारी में निपुण हैं। आपकी माता तारावाई हैं। आप जैसवाल जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपके तीन भाई व तीन वहिनें हैं। आपने धार्मिक उपदेशों का श्रवण किया, सत्संगति में जीवन व्यतीत किया, अतएव शीघ्र ही वैराग्य के संस्कार पनपे। आपने कम्पिला क्षेत्र में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी से सातवीं प्रतिमा ले ली। आपने मुक्तागिरि तीर्थक्षेत्र पर विक्रम संवत् २०२१ में श्री १०८ आचार्य विमल-सागरजी से क्षुल्लक दीक्षा लेली। आपने कोल्हापुर, सोलापुर, ईडर, जूनागढ़ आदि जगहों पर चातुर्मास किये। आपने नमक, तेल, दही आदि रसों का त्याग किया है। आप बड़े ही मिलनसार व मृदुभाषी हैं।

क्षुल्लक शान्तिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक शान्तिसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम छोटेलालजी था। आपका जन्म आज से लगभग पच्चीस वर्ष पहले लुहारिया (बांसवाड़ा, गढ़ी तहसील) में हुआ। आपके पिता श्री किशनलालजी हैं, जो किराने के व्यापारी हैं। आपकी माता गुलावबाई है। आप नरसिंहपुरा जाति के भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा हाई स्कूल तक हुई। आप आरम्भ से ही विषय वासनाओं से विरक्त रहे। धार्मिक वातावरण में पले। अतएव बाल ब्रह्मचारी रहे। आपके परिवार में तीन भाई और एक बहिन हैं।

आपने श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी की विमलवाणी से प्रभावित होकर विक्रम संवत २०२५ अजमेर में क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने भक्तामर छहढ़ाला आदि का अध्ययन किया। आपने सुजानगढ़ में चातुर्मास किया।

क्षुल्लक नेमिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक नेमिसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम आलमचन्द्रजी था। आपका जन्म आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व बहटा (शिवपुरी) म० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री अमरचन्द्रजी थे, जिनकी परचूनी की दुकान थी। आपकी माता क्षेमश्री थी। आप अग्रवाल जाति के भूषण हैं। आप मित्तल गोत्रज हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ५ वीं तक हुई। विवाह भी हुआ। एक पुत्र व दो पुत्रियां हुईं।

सत्संगति और धर्मोपदेश श्रवण से आपको संसार से विरक्ति होने लगी। आपने विक्रम संवत २०१६ में अकाझिरी में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको बारह भावना एवं अनेक सुभाषित श्लोक पढ़ने का बड़ा शौक है। आपने दस स्थानों पर चातुर्मास किये। आप हमेशा पर्व के दिनों में अष्टमी–चतुर्दशी को उपवास करते हैं। आप अपनी भांति अन्य लोगों को भी संयम और विवेक के मार्ग पर लाने में समर्थ हों यही कामना है।

✡

क्षुल्लक आदिसागरजी महाराज

श्री शीलचन्द्रजी जैन का जन्म सं० १९६९ में कार्तिक बदी बारस को फिरोजपुर छावनी में हुआ। आपके पिता श्री बाबू हीरालालजी अग्रवाल एवं माता मनभरीदेवी थी। आप जाति से अग्रवाल थे। आपका गोत्र मित्तल था। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा सामान्य ही रही। आपकी शादी भी हुई। आपके एक भाई व दो बहिनें हैं। आजीविका के लिए पिता एवं भाई सर्विस कर रहे हैं। आपके पूर्व जन्म के संस्कार होने से आपके भाव वैराग्य की ओर बढ़े। उसी समय छोटे भाई की मृत्यु हो जाने के कारण आपमें काफी उदासीनता आ गई। आपने शरीर को नश्वर जानकर सं० २०१८ में आसोज सुदी चौदस को मुनि श्री १०८ विमलसागरजी से लखनऊ में दीक्षा ले ली।

आप प्रतिक्रमण एवं तत्वार्थसूत्र के ज्ञाता हैं। आपने लखनऊ, सीकर, हिंगूणियां, फुलेरा, रेवाड़ी आदि गांवों में चातुर्मास किये एवं मुनि श्री ज्ञानसागरजी के साथ मदनगंज-किशनगढ़, अजमेर, हरियाणा आदि स्थानों पर चातुर्मास किये।

आपने रसों का त्याग किया एवं कर्मदहन के लिए जिनगुणसम्पत्ति एवं सोलहकारण का व्रत लिया। आपने तीर्थयात्रायें भी कीं।

क्षुल्लक श्री समाधिसागरजी महाराज

आप आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं, आपका विशेष परिचय अप्राप्य है।

आर्यिका विजयमती माताजी

श्री १०५ आर्यिका विजयमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम शान्तिदेवी था। आपका जन्म वैशाख सुदी १२ विक्रम संवत १९८५ में कामा (भरतपुर) में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री संतोषीलालजी व माताजी का नाम चिरोंजीवाई था। आप खण्डेलवाल जाति की भूषण हैं। आपकी धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह श्री भगवानदासजी वी० ए० लश्कर वालों के साथ हुआ। परन्तु दुर्भाग्य से आपको वैधव्य प्राप्त हुआ। परिवार में आपके पांच भाई व तीन वहिनें हैं।

संसार की नश्वरता को जानकर आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जागृत हुई एवं आपने आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज की प्रेरणा से आगरा सन् १९५७ में आर्यिका दीक्षा ली। आपने कई स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

आर्यिका गोम्मटमती माताजी

आपका जन्म स्थान पारसोला (प्रतापगढ़) तथा जन्म नाम सीधराबाई था। विवाह दीपचन्दजी से हुवा। एक पुत्र भी हुवा था। आपने दूसरी प्रतिमा आचार्य शान्तिसागरजी से धारण की थी। आचार्य महावीरकीर्तिजी से क्षुल्लिका के व्रत धारण किए तथा आचार्य विमलसागरजी से फरवरी सन् ८१ में आर्यिका के व्रतों को अंगीकार किया। आपका नाम गोम्मटमतीजी रखा है।

आर्यिका आदिमती माताजी

आपका जन्म कामा (भरतपुर) निवासी अग्रवाल जाति के श्री सुन्दरलालजी एवं माता श्री मोनीबाई के घर में हुआ। आपका गृहस्थावस्था का नाम मैनाबाई था। आपका विवाह कोसी निवासी श्री कपूरचन्दजी से हुआ। १ वर्ष बाद ही वैधव्य ने आ घेरा। जगत को असार जान सं० २०१७ में कम्पिलाजी में क्षुल्लिका दीक्षा ली। तदुपरान्त सं० २०२१ में मुक्तागिरी पर आचार्य श्री विमलसागरजी से आर्यिका व्रत लिये। आप संघ की परम तपस्वी आर्यिका हैं।

आर्यिका जिनमती माताजी

आपका जन्म पाडवा (सागवाडा) निवासी नरसिंहपुरा जाति के श्री चन्द्रदुलाजी के घर सं० १९७३ में हुआ। आपकी माताजी का नाम दुरोंबाई एवं आपका नाम मंकुबाई था। आपके दो भाई, दो बहिनें हैं। आपका विवाह पारसोला में हुआ। ६ माह बाद ही वैधव्य का भार आ गया अतः वैराग्य धारण कर आ० महावीरकीर्तिजी म० से पहली प्रतिमा, वर्धमानसागरजी से ७ वीं प्रतिमा एवं क्षुल्लिका दीक्षा सं० २०२४ में एवं आर्यिका पद सम्मेदशिखरजी में आ० विमलसागरजी से वीर सं० २४९९ में कार्तिक सुदी २ को लिया। आप संघ में तपस्विनी आर्यिका हैं।

आर्यिका नन्दामतीजी

आपका जन्म अहारन (आगरा) निवासी पद्मावती पोरवाल जाति की श्रीमती कपूरीदेवी एवं पिता श्री मुन्नीलालजी के घर भादों सु० ११ सन् १९२९ में हुआ। गृहस्थावस्था में आपका नाम जयमाला देवी था। आपका विवाह आगरा निवासी श्री सुगंधीलाल खाडा से हुआ। कर्मोदय से २।। वर्ष बाद ही वैधव्य आ गया। आप घर में अध्यापिका का कार्य करती थी। आचार्य श्री की प्रेरणा से आपने आगरा में ज्येष्ठ सु० ६ सन् १९६९ में दूसरी प्रतिमा तथा सन् १९६९ भाद्र सु० ११ को फिरोजाबाद के मेले पर क्षुल्लिका दीक्षा एवं श्री सम्मेदशिखरजी में कार्तिक सु० २ मंगलवार वीर नि० सं० २४९९ में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आप संघ की विदुषी एवं शान्त परिणामी आर्यिका हैं।

आर्यिका नंगमती माताजी
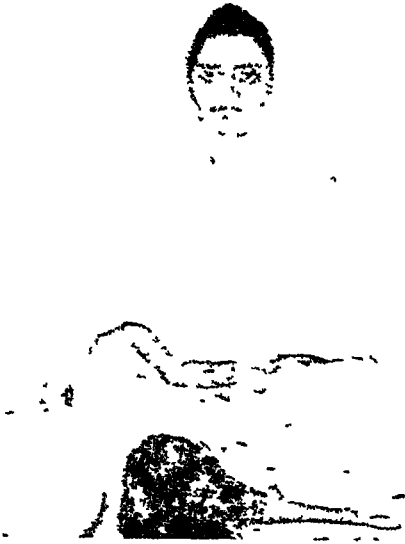
आपका जन्म सन् १९५१ में इन्दौर में हुआ । आपके पिताजी का नाम श्री माणिकचन्दजी कासलीवाल एवं माताजी का नाम माणिकबाई है । आपका पूर्व नाम सुदर्माबाई था । आपका पूरा परिवार धार्मिकता से ओतप्रोत रहा है । आपने १८ वर्ष की आयु में ही श्री १०८ ज्ञानभूषणजी महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था । ७ वीं प्रतिमा श्री १०८ आ० श्री विमलसागरजी से श्री शिखरजी में ली । आपने जीवकांड कर्मकान्ड आदि परीक्षा उत्तीर्ण की है । आपने आर्यिका दीक्षा सोनागिरिजी में सावन सुदी १५ तारीख ८-८-१९७९ को श्री चन्द्रप्रभु प्रांगण में श्री १०८ आ० श्री विमलसागरजी महाराज से ली । आप बहुत सरल स्वभावी मृदुभाषी एवं गुरुभक्त हैं ।

आर्यिका स्याद्वादमती माताजी
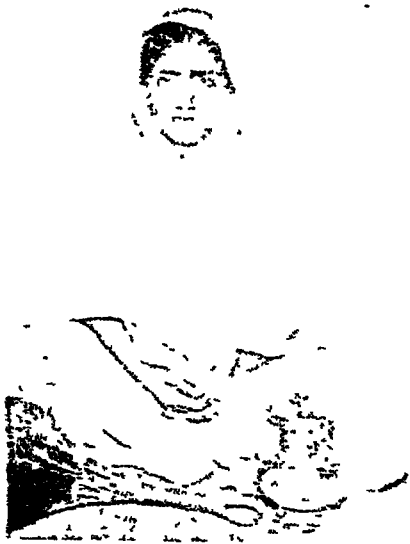
आपका जन्म १४ मई सन् १९५३ को इन्दौर (म० प्र०) में हुआ । आपके पिताजी का नाम श्री धन्नालालजी पाटनी एवं माताजी का नाम श्रीमती कमलादेवी है । आपके १ भाई एवं ७ बहिनें हैं । आपका पूर्व नाम एरावती पाटनी था । आपने बी. ए. फाइनल की परीक्षा उत्तीर्ण की है । १६ वर्ष की उम्र में मुनि श्री ज्ञानभूषणजी महाराज के उपदेश से धर्म की ओर मोड़ लेकर ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया तथा साथ ही धार्मिक ग्रंथों का अवलोकन करते हुए ज्ञानार्जन किया । आपने अपने जीवन काल में अध्ययन मनन चिन्तन के साथ ही श्रेष्ठ साध्वी जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया आप में बचपन से ही वैराग्य की भावना थी । इस कारण से आपने राग-द्वेषादिक से युक्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि देकर आत्म साक्षात्कार करने के लिये श्रावण सुदी १२ तारीख ५-८-७९ रविवार को श्री सोनागिरीजी सिद्धक्षेत्र पर आचार्य श्री विमलसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की उस समय आपका नाम अनंगमती रखा गया । गोमटेश्वर महामस्तकाभिषेक में आपने आर्यिका दीक्षा लेकर स्याद्वादमती नाम सार्थक किया ।

आर्यिका पार्श्वमती माताजी

आपका जन्म पाणूर जिला उदयपुर निवासी नरसिंहपुरा जाति के श्री हुकमचन्दजी एवं माता श्री केसरबाई के घर में हुआ। गृहस्थावस्था का नाम सागरबाई था। आपके ४ बहिनें तथा एक भाई है। आपके पतिदेव श्रीपाल जैन कूड़ के निवासी थे। आपने धार्मिक भावों से प्रेरित होकर सं० २०२४ फाल्गुन सुदी १२ को पारसोला में क्षुल्लिका दीक्षा तथा वीर सं० २४९६ में कार्तिक सुदी २ को श्री सम्मेदशिखर पर आर्यिका दीक्षा आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी से ग्रहण की। आप बहुत ही स्वाध्याय प्रिय जप, तप में लीन रहने वाली शान्त प्रवृत्ति की साध्वी हैं।

आर्यिका ब्रह्ममती माताजी

आपका जन्म राजस्थान मेवाड़ के छाँड़ी ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री खूमजी दशा हूमड़ एवं माता का नाम श्रीमती चम्पादेवीजी था। आपकी संयम व्रतादि में स्वभाव से ही प्रीति थी। सन् १९७० में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी महाराज से आपने राजगृही में रक्षा-बन्धन के पुनीत पर्व के दिन पूर्णिमा, श्रमण नक्षत्र में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। आप ५ वर्ष तक तो आचार्य श्री के संघ में ही रहीं फिर आचार्य श्री के संघ से आप ईशरी आश्रम में आ गईं। आपने १ चातुर्मास ईशरी में किया फिर आप श्री १०५ आर्यिका रत्न विजयमती माताजी के पास श्री सम्मेदशिखरजी में आ गईं अभी भी आप परम पूज्या श्री १०५ आर्यिका विजयमतीजी के साथ हैं।

आर्यिका निर्मलमती माताजी

गेंदा वाई का जन्म सं० १९६८ में पवई जि० पन्ना (मं० प्र०) में हुवा था। आपके पिताजी का नाम श्री त्रिसारेलालजी तथा माताजी का नाम श्री ललिताबाई था। आपकी शिक्षा सामान्य ही थी। सं० २०१० में गुनोर में आचार्य श्री विमलसागरजी से दूसरी प्रतिमा धारण की। सं० २०११ में सातवीं प्रतिमा खण्डगिरी में ली तथा २०१९ में आचार्य विमलसागरजी से क्षुल्लिका के व्रत धारण किए। आप आचार्य संघ में रहकर आत्म साधना करती थीं। आपका दीक्षा के पश्चात् आचार्य श्री ने निर्मलमती नाम रखा था।

आर्यिका सूर्यमती माताजी

श्री पू० माताजी का जन्म बुढ़ार (बिलासपुर) में संवत् १९६५ में श्रावण बदी १५ को हुवा था। आपके पिताजी का नाम श्री विशाललालजी तथा माता.जी का नाम श्री ललिताबाईजी था। आपका पूर्व नाम ब्र० गेन्दाबाई था। आपने आषाढ़ बदी ३ सं० २०१७ में खण्ड-गिरी-उदयगिरी में आचार्य श्री विमलसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा ली। माघ सुदी १४ संवत् २०२१ को आचार्य श्री से मुक्तागिरी में आर्यिका दीक्षा धारण की। आप वयोवृद्ध होते हुए भी त्याग मार्ग में संलग्न हैं।

आ० शान्तिमती माताजी

आपका जन्म कोल्हापुर जिले में सांगली (महाराष्ट्र) में हुवा था आप बाल्यकाल से ही धर्म प्रवृत्ति की थीं। आपने आचार्य विमलसागरजी से तीर्थराज सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र में ७-११-१९७२ में आर्यिका दीक्षा धारण की। आपने दीक्षा लेने के बाद सिद्धान्त ग्रन्थों की ओर लक्ष्य किया एवं स्वाध्याय करने के भाव हुए। आप इस समय जैनागम के उच्चकोटि के ग्रन्थों का स्वाध्याय कर रही हैं। धन्य है आपकी तपस्या, धन्य है आपका त्याग।

आर्यिका सिद्धमती माताजी

श्री १०५ आर्यिका सिद्धमतीजी का पहले का नाम सोनाबाई था। आपका जन्म भादों वदी ७ सं० १९९० में मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में हुआ था। आपके पिता श्री मन्नु-लालजी और माता भंवरीबाई थी। आपके परिवार में दो बहिनें भी हैं। आप परवारजाति की भूषण हैं। आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा आरा महिलाश्रम में हुई थी। आपका विवाह श्री गोकुलचन्द्रजी के साथ हुआ था। परन्तु छह महीने बाद ही आपको पति वियोग को सहन करना पड़ा।

शोक को भुलाने के लिए और अपनी आत्मा का उद्धार करने के लिए, आपने धर्म-चर्चा, जिनेन्द्र-पूजन आदि में मन लगाया। परिणामों में आशातीत विशुद्धता आई तो आपने बड़वा में फागुन सुदी १० सं० २०१३ को क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। दीक्षित नाम चन्द्रमती रखा गया और मांगीतुंगी क्षेत्र पर पौष बदी २ सं० २०१४ को आर्यिका दीक्षा ग्रहण करली। आपके दीक्षा गुरू श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी थे। आपके चातुर्मास इन्दौर, ईसरी, कोल्हापुर, सुजानगढ़ आदि स्थानों पर हुए। जनता आपसे बड़ी प्रभावित हुई, आपने जनता को काफी धर्मलाभ दिया। आपने घी, तेल, दही आदि रसों का त्याग कर दिया।

✲

आर्यिका सरस्वतीमतीजी

आप आचार्य विमलसागरजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं। आपका विशेष परिचय अप्राप्य है।
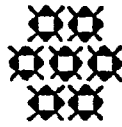
क्षुल्लिका शान्तिमती माताजी

श्री १०५ क्षुल्लिका शान्तिमतीजी का पहले का नाम सुमनबाई था। आपका जन्म आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व कोल्हापुर नामक नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम बापू है, आपकी माता का नाम सोनाबाई है। आप जाति से पंचम हैं। आपके परिवार में एक भाई है। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा पांचवीं तक हुई। आपका विवाह हुआ और विवाह के एक वर्ष बाद ही दुर्भाग्य ने आपको आ घेरा। पति-वियोग जैसी विषम विपत्ति को आपने धैर्यपूर्वक सहा।

आपके नगर में जब मुनि-संघ आया तब उनके उपदेशों से आपके परिणामों में विशुद्धता आई। अतएव आपने दीक्षा लेने की बात विचारी और फिर डिप्टीगंज दिल्ली में दीक्षा ली। आपकी दीक्षा तिथी वीर निर्वाण सं० २४९५ है। आपके दीक्षा गुरु श्री आचार्य १०८ विमलसागरजी हैं। आपने भक्तामर, छहढाला आदि का विशेषतया अध्ययन किया। आपका प्रथम चातुर्मास दिल्ली में ही हुआ था। आपने तेल और नमक का त्याग कर दिया है।

✡

क्षुल्लिका संयममती माताजी

आपका जन्म ग्राम निवारी (भिण्ड म० प्र०) में संवत १९८६ माघ सुदी १४ को हुवा था। आपने पू० आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से सुजानगढ़ राजस्थान में सम्वत २०२५ कार्तिक सुदी १५ को क्षुल्लिका दीक्षा धारण की। अद्यप्रभृति आत्म कल्याण कर रही हैं।

क्षुल्लिका चेलनामती माताजी

पू० माताजी का जन्म गढ़ी (हसनपुर) जि० मुजफ्फर नगर में श्री प्रकाशचन्द्रजी के यहां सन् १९२८ में हुवा था। आपकी शिक्षा सामान्य ही रही। आपने पू० आचार्य विमलसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में ली। आपका स्वभाव सरल है तथा आपकी बचपन से ही धार्मिकता की ओर रुचि रही यही कारण है जो आप दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के पथ में अग्रसर हैं।
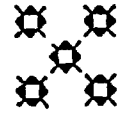
क्षुल्लिका पद्मश्रीजी

आपके पिता का नाम श्री पूनमचन्दजी एवं माता का श्रीमती रूपीबाई था। आपका जन्म स्थान पारसोला (प्रतापगढ़) है। गृहस्थावस्था का नाम सीधार बाई था। आपके पति का नाम दीपचन्दजी था। आपके १ पुत्र भी हुआ था। आपने दूसरी प्रतिमा मुनि श्री शान्तिसागरजी से सातवीं प्रतिमा आचार्य महावीरकीर्तिजी से ग्रहण की। क्षुल्लिका दीक्षा आचार्य श्री विमलसागरजी से संवत् २०२४ फाल्गुन सुदी १५ को पारसोला में हुई। आपका सारा समय, वैयावृत्ति, जप, तप, स्वाध्याय में ही जाता है।

❖

क्षुल्लिका विशुद्धमती माताजी

कमलाबाई का जन्म राजस्थान में हुवा था। आपके पिता का नाम गुलाबचन्द्रजी था। आपकी शिक्षा चौथी कक्षा तक ही हुई थी। आपको हिन्दी एवं मराठी का ज्ञान था। आत्म हित हेतु आपने आचार्य विमलसागरजी से दूसरी प्रतिमा के व्रत सं० २०१५ में धारण किए। सं० २०१६ बड़ौदा में आचार्य विमलसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा ली। आपका जीवन धर्म में ही व्यतीत हो रहा है।

❖

क्षुल्लिका कीर्तिमती माताजी

आपका जन्म कुसुम्बा जिला धूलिया (महाराष्ट्र) में हुआ। पिता का नाम श्री हीरालाल ब्रजलाल शहा तथा माता का नाम झमकोर बाई है। १५ वर्ष की आयु में ग्राम सिरसाले जिला जलगांव के श्री गोकुलदास दोधुसा शहा के सुपुत्र श्री खरदुमन दास शहा के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। आपके दो बच्चे हैं। बचपन से ही वैराग्यमयी परिणाम होने से २४ वर्ष की आयु में आपने आ० देशभूषणजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। दो वर्ष तक संघ में भी रहीं। आचार्य श्री देशभूषणजी ने आपको आर्यिका ज्ञानमती माताजी के पास पढ़ने की प्रेरणा दी थी। लेकिन फलटण अधिवेशन में आपकी भेंट क्षु० चारित्रसागरजी से हुई इनके साथ आपने शिखरजी आकर आ० श्री विमलसागरजी से फाल्गुन शु० ५ स० २०३३ को क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली। आप शान्त स्वभावी सतत अध्ययन शीला हैं।

क्षुल्लिका श्रीमति माताजी

आप पिता श्री नेमीचन्दजी माता श्री सोनाबाई की पुत्री हैं। आपका जन्म सकड़ी (कोल्हापुर) में हुआ। गृहस्थावस्था का नाम मालती बाई था। आपका विवाह छीरी शिरहदी (बेलगांव) निवासी श्री पारिसा आदिनाथ उपाध्याय से हुआ। दुर्भाग्य से १० वर्ष बाद ही आपको वैधव्य का दुःख उठाना पड़ा। आपको एक पुत्री हुई थी उसका भी स्वर्गवास हो गया। आपने आचार्य श्री विमलसागरजी के संघ में ३-४ वर्ष रहकर धर्मध्यान किया। बाद में चैत्र सुदी ४ शनिवार १८-३-७२ को राजगृहीजी क्षेत्र पर क्षुल्लिका दीक्षा ली। आप काफी शान्त, भद्र परिणामी अध्ययनशीला एवं जिज्ञासु क्षुल्लिका हैं।

क्षुल्लिका वीरमती माताजी

वैसाख कृष्णा अमावस्या सं० १९७२ को परवार जाति में चरगवां जि० जबलपुर में श्री फूलचन्दजी के गृह जन्म लिया। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा चार तक ही हुई थी। आचार्य श्री के प्रवचनों से प्रभावित होकर आपने कंपिलाजी क्षेत्र पर सं० २०१९ में क्षुल्लिका दीक्षा धारण की और आत्म कल्याण के मार्ग में निरत रहीं।

क्षुल्लिका विमलमती माताजी
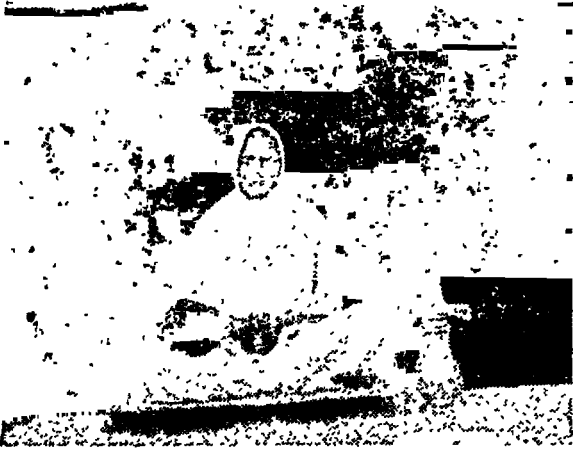
आप आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज द्वारा दीक्षित हैं। आपका विशेष परिचय अप्राप्य है।

मुनिश्री अनंतकीर्तिजी महाराज द्वारा

दीक्षित साधुवृन्द
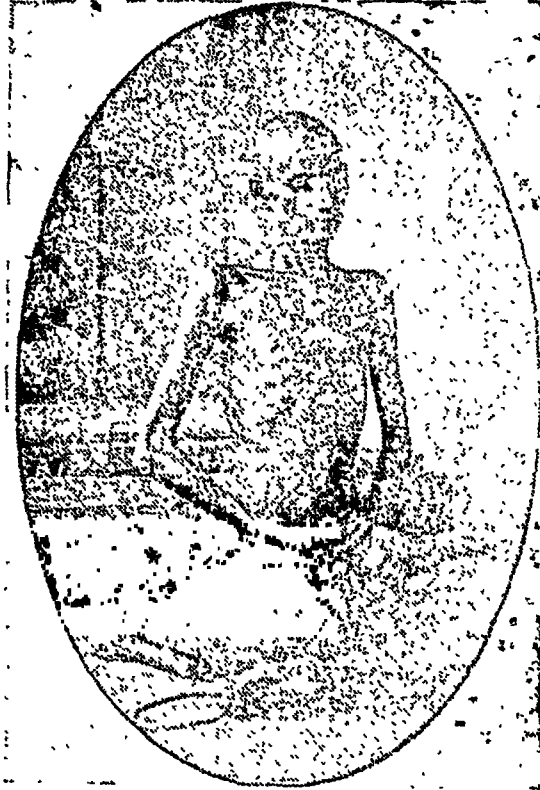
श्री अनन्तकीर्तिजी महाराज

मुनिश्री जयकीर्तिजी

क्षुल्लक श्री महावीरकीर्तिजी

मुनि श्री जयकीर्तिजी महाराज

क्षु० विमलसागरजी लेंगड़े ने पवनकुमार के सुकोमल मन में संस्कारों की नींव इतनी गहरी जमा दी थी कि उसके जागृत विवेक ने उसे पूज्य आ० श्री अनंतकीर्तिजी म० के चरणों में लाकर विठा दिया और जब वह वहां से उठा तो उनके पथ का अनुगामी बन कर ही उठा। इस चिरकुमार के मन में वैराग्य के भाव अक्कलकोट में हुए। स्व० आ० श्री पायसागरजी म० के चातुर्मास काल में संघ सेवा करते ही उदित हो गये थे पर शायद दीक्षा का समय नहीं आ पाया था सो रुका ही रहा। समय पाकर ही तरुवर पकते हैं भले ही कितना जल सींचो। १४ दिसम्बर सन् ६१ का शुभ दिन कोल्हापुर में कुछ विशेष चहल-पहल भरा दिखा। चर्चा एक ही थी कि अक्कलकोट का कोई नवयुवक आ० श्री अनंतकीर्तिजी म० से अपना अनुगामी बना लेने के लिये मचल रहा है और यह चर्चा थी भी प्रशंसा-लायक। भवभोगों से भीत पवनकुमार पर कृपादृष्टि डालते हुए आचार्य श्री ने उसे मुनि दीक्षा प्रदान कर दी। श्रावकों ने इस निर्णय की पू० जयकीर्तिजी म० की जय हो के जयघोषों से अनुमोदन कर पुण्यबंध किया। श्रावक पार्श्वनाथ उर्फ बाबूराम जैन ने अपनी धर्मपत्नी-पद्मावती के साथ पच्चीस वर्षीय युवा पुत्र के इस साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा करके उसे गृह त्याग की अनुमति प्रदान कर श्रावक वर्ग पर भी महान् उपकार किया। अन्यथा ६ मई १९३५ को जन्मी इस विभूति की कृपा से यह अनाथ जगत वंचित ही रह जाता।

दीक्षा ग्रहण करने के बाद आपने आगम का निरन्तर मनन करते हुए हिन्दी कन्नड़ और मराठी भाषा में ८ ग्रन्थों का निर्माण किया है। पद विहार करते हुए गुरु के आदेश से धर्म प्रभावना में तत्पर हैं।

क्षुल्लक श्री महावीरकीर्तिजी महाराज

सावलवाडी (सांगली) ग्राम के (पंचम जैन) पारीसा शान्तप्पा उपाध्ये की सुयोग्य संतान पंडित शांतिनाथ आज क्षु० महावीरकीर्तिजी म० के रूप में हम श्रावकों पर अनुग्रह बुद्धि से धर्मामृत की वर्षा कर रहे हैं। १५ जुलाई १९०५ को माता रुक्मणी देवी ने धर्म प्रभावक इस ज्योतिपुंज को जन्म देकर मराठों की गौरव गाथा में एक नयी कड़ी को और जोड़ दिया कुल परम्परा से चली आ रही त्याग और तपस्या की धारा शांतप्पा को स्वयमेव विरासत में मिल गई। सिर्फ संयोग का इंतजार था सो वह धन्य घड़ी भी १० अगस्त ६२ को हुपरी (कोल्हापुर) में आ० श्री अनन्तकीर्तिजी म० के दर्शन करते ही आ गई। पितृ-वियोग की असामयिक घटना से चित्त वैसे भी संसार से विरक्त हो छटपटा रहा था। आचार्य श्री से उद्‌बोधन प्राप्त कर तुरन्त क्षुल्लक दीक्षा लेकर इस नश्वर संसार के समस्त रिश्तों का मोहजाल भंग कर दिया। विराग की छोटी सी चिनगारी ज्वाला बनकर कर्म शत्रुओं को भस्म करने लगी। निरन्तर स्वाध्याय में तल्लीन रहते हुए आपने अब तक निम्नलिखित स्थानों में चातुर्मास करके श्रावकों को चारित्र मार्ग में स्थिर किया। (सन् १९६२–७४ तक)—हुपरी, आलते, शांतिग्राम, हालोड़ी, शाहपुरी, नांदणी, वस्तवाड, रूई, कुलघटगी, कोंगनोली, शिमोगा, करनूर, करुंदवाड, जुगुवचंदूर, चिकोडी आदि।

जैन साहित्य निर्माण, पंचकल्याणक पूजा-प्रतिष्ठा आदि कार्यों द्वारा जिनशासन की प्रभावना कर रहे हैं।

आचार्य श्री जयकीर्तिजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य
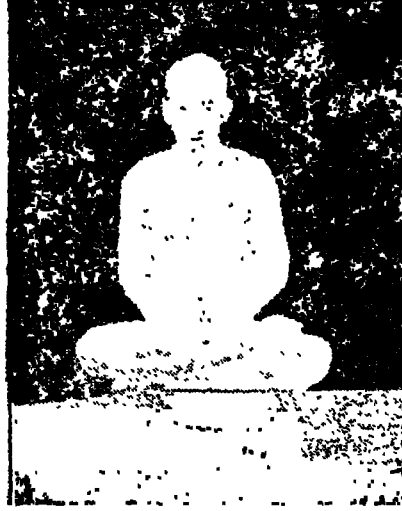
आ० श्री जयकीर्तिजी महाराज

आचार्य श्री देशभूषणजी

मुनि श्री देवेन्द्रकीर्तिजी

मुनि श्री कुलभूषणजी

आर्यिका धर्ममतीजी

आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज
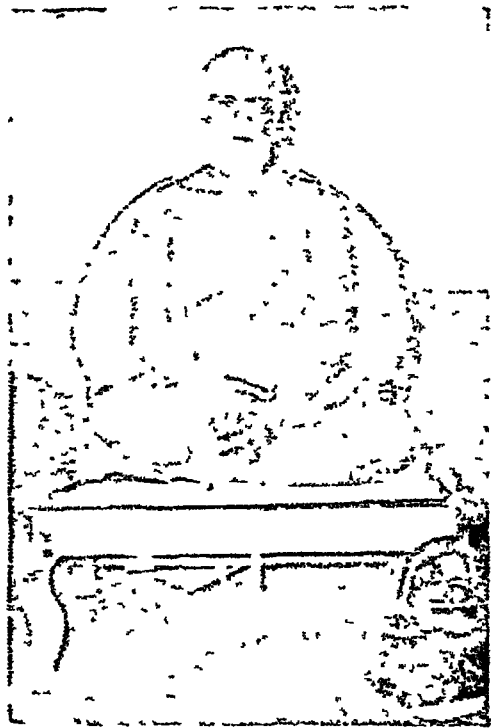
आचार्य देशभूषणजी महाराज एक शान्त वीतरागी साधु हैं। निरन्तर ध्यान स्वाध्याय में रत रहते हैं। संस्कृत, अंग्रेजी, भाषा के अलावा कन्नड़ी और मराठी भाषा के भी महान् विद्वान हैं। भरतेश वैभव, रत्नाकरशतक, परमात्म प्रकाश, धर्मामृत, निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति, निरंजन स्तुति आदि कन्नड़ी भाषा के महान् ग्रन्थों का हिन्दी गुजराती-मराठी भाषा में अनुवाद किया है। गुरू शिष्य संवाद, चिन्मय चिन्तामणी आदि स्वतंत्र रचनायें तथा अहिंसा का दिव्य सन्देश आदि अनेक ग्रन्थ लिखकर भव्य जीवों का कल्याण किया है। कुछ वर्ष से चातुर्मास के समय जो आप प्रवचन करते हैं उनके पुस्तकाकार बन जाने से वे भी मननीय शास्त्र सम बन गए हैं। आपका शान्त स्वभाव, अमृतमय धर्मोपदेश बड़ा ही सुन्दर होता है।

आपने बेलगांव जिले के कोथलपुर गांव में जन्म लिया है। आपके पिता का नाम श्री सत्य-गोड़ा और माताजी का नाम श्रीमती अक्कावती था। वे दोनों ही धर्मपरायण थे। आपका जन्म संवत् १९६५ में हुआ था और जन्म का नाम बालगोड़ा था। आपकी माता आपको तीन मास की अवस्था में ही छोड़कर स्वर्गस्थ हो गई और पिता के भी ७ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गस्थ हो जाने से आपकी नानी ने आपका पालन पोषण किया और संपत्ति की भी संभाल की।

१६ वर्ष की अवस्था तक आपने कन्नड़ी और मराठी भाषा में अच्छी शिक्षा प्राप्त की परन्तु धर्म में रुचि न थी। आप सदैव कुसंगति में रहने लगे। देव शास्त्र गुरु जैन मन्दिर सभी से पराङ्मुख थे। एक समय ऐसा आया कि वहां श्री १०८ आचार्य जयकीर्तिजी पहुंच गये। थोड़े दिन तो आप उनके पास ही न गये। जाते भी कैसे? रुचि तो उधर थी ही नहीं परन्तु एक दिन उनके उपदेश सुनने का प्रसंग आ ही गया। बस उसी उपदेश ने आपके हृदय में धर्म का बीज डालने का काम किया फिर तो रोज जाने लगे। उधर आपके विवाह करने की नाना ने चर्चा की। उनके प्रबल अनुरोध और चारों तरफ से दबाव पड़ने पर भी विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार न कर ठुकरा दिया और उक्त

महा मुनि के साथ हो गये। मुनि महाराज ने इनको धर्म के पठन स्वाध्याय के लिए कहा और थोड़े दिनों में अनेक ग्रन्थों का पठन तथा स्वाध्याय कर लिया। आचार्य महाराज के साथ ही थोड़े दिन वाल ब्रह्मचारी रहकर रामटेक तीर्थ क्षेत्र पर ऐलक दीक्षा ले ली और सम्मेदशिखरजी साथ चले गये। तत्पश्चात् २० वर्ष की अवस्था में श्री कुन्थलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर आचार्यश्री से मुनि दीक्षा भी ले ली और मुनि अवस्था में खूब विद्याभ्यास किया। अयोध्या जैसी सुन्दर नगरी में जैन जनता का अभाव होने से वह तीर्थस्थान सूना सा लगता है अतः आचार्य महाराज ने वहां एक गुरुकुल स्थापित कर जैन समाज का बड़ा काम किया है। यह गुरुकुल उन्नति करता जा रहा है। इस तीर्थ को उन्नत बनाने के लिए आचार्यश्री ने ३१ फुट ऊँची श्री आदिनाथ भगवान् की विशाल प्रतिमा सुन्दर बगीचे में स्थापित कराई है। जिससे यह क्षेत्र उत्तर प्रान्त का एक दर्शनीय स्थान बन गया।

प्रत्येक चातुर्मास में आपके धार्मिक, सामाजिक और नैतिक भाषणों से जनता पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है कारण कि आपके भाषण जन साधारण की भाषा में सुन्दर और चित्ताकर्षक, तत्काल हृदय को उल्लासित करने वाले, व्याख्येय विषय को स्फुट करने में सफल, साधक उदाहरणों से ओत-प्रोत रहते हैं। आपकी अमृतमयी वाणी से जो विषय बोला जाता है वह श्रोताओं के कर्ण विवर द्वारा सीधा हृदय में प्रवेश कर मनःसंताप को शान्त करने में समर्थ होता है। आपके भाषण इतने गम्भीर होते हैं जिन्हें सुनकर जनता मन्त्र मुग्ध हो जाती है। आप लगातार घन्टों बोलते रहते हैं। फिर भी आपको जरा भी थकावट नहीं आती है। यह आपकी सतत् तप साधना का ही माहात्म्य है। आचार्यश्री की विद्वत्ता, गम्भीरता, ओजस्विता, तपस्तेजस्विता, निरीहिता, निःस्पृहता, दयालुता, कष्ट सहिष्णुता, अनुपम क्षमता आदि अनेक गुणगरिमा, जनता के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

आपने बंगाल, विहार, उड़ीसा, निजाम, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडू आदि सभी प्रान्तों में धर्म प्रभावना की। अपने युग के आप आलौकिक सन्त हुए हैं। आपने कोथली में भव्य जिनालय का भी निर्माण कराया है।

मुनिश्री देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज
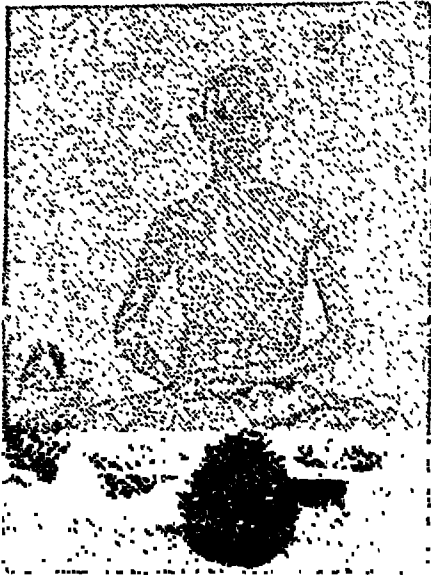
आपका जन्म दक्षिण प्रान्त के धामना ग्राम में हुवा था आपके पिता का नाम श्री वासप्पा तथा माता का नाम मुगलादेवी था। आपका परिवार धार्मिक वृत्ति का था। आपने मुनि जयकीर्तिजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। आपका पूर्व नाम देवेन्द्रकुमार था। पू० मुनि श्री ने आपका मुनि अवस्था का नाम भी देवेन्द्रकीर्ति ही रखा था। आपका तप व त्याग सराहनीय था।

मुनिश्री कुलभूषणजी महाराज
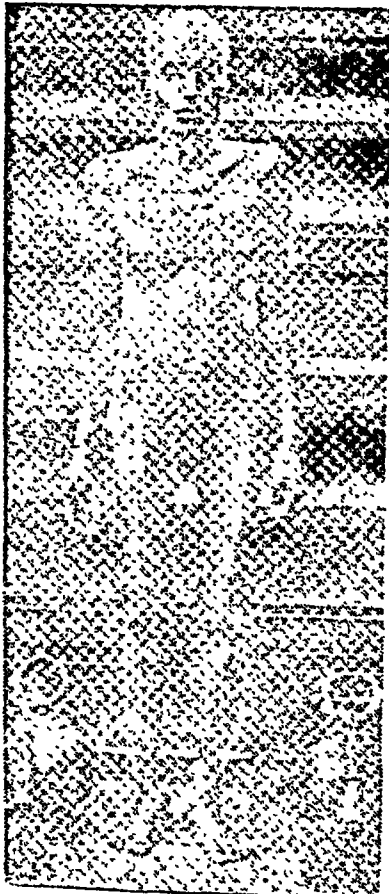
आपका जन्म सोमवंशीय हरवरहही तह० बैलहोंगल जि० बेलगांव कर्नाटक राज्य में हुवा था। यत्ताप्पा पिता का नाम था माता का नाम गंगदेवी था। सं० १९७० में आपका जन्म हुवा था। आपका नाम जिन्नाप्पा रखा था। बाल्यकाल में आपके ग्राम में आचार्य पायसागरजी महाराज एवं जयकीर्ति मुनिराज का दो माह प्रवास रहा तबसे आप साधुओं के सम्पर्क में आये तथा पू० मुनि श्री के प्रवचन सुनकर आपके मन में वैराग्य के अंकुर निकल पड़े तथा परिवार वालों ने रोका पर आप रुके नहीं। आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। वि० सं० १९९३ माघ शु० ९ शुक्रवार को ब्र० जिन्नाप्पा ने मुनि जयकीर्तिजी से क्षु० दीक्षा ली। वि० सं० १९९४ में जयकीर्तिजी महाराज से ऐलक दीक्षा ली। आप अपने व्रतों का निरतिचार पूर्वक पालन करते थे। स्तवन निधी क्षेत्र पर आपने मुनि दीक्षा ली। आपने १५ मन्दिरों का निर्माण कार्य कराया तथा जैन धर्म की प्रभावना करने में संलग्न हैं। आपने अनेकों ग्रन्थों का सम्पादन कार्य किया है समयसार, प्रवचनसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों पर आपका प्रभुत्व है।

आर्यिका धर्ममती माताजी

मारवाड़ प्रान्त के अन्तर्गत कुचामन शहर के पास लूणवाँ नामक एक ग्राम है। ग्राम में वैश्य शिरोमणी खण्डेलवाल जात्युत्पन्न चंपालालजी जैन श्रावकोत्तम रहा करते थे। धर्मपरायणा धर्मपत्नी के यहां सन् १८६८ में श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन कन्यारत्न ने जन्म लिया था। आप ५ भाई-बहिन थे। ९ वर्ष की उम्र में शादी हो गई। पर दुर्भाग्यवश लखमीचन्दजी का असामयिक स्वर्गवास हो गया। संसार का नियम जानकर आपके मन में वैराग्य भाव जागृत हुवा तथा आपका मन धार्मिक कार्यों में लगना शुरु हुआ, साथ ही नाना प्रकार के व्रत उपवास करना। आप बीस वर्ष तक दशलक्षण पर्व में दश उपवास अष्टाह्निका में ८ उपवास एवं सोलह कारण के १ माह का उपवास करती थी। पूज्य माताजी ने सन् १९३५ में ३३ दिन का उपवास किया। सन् १९३६ दुर्ग में जयकीर्तिजी महाराज का वर्षायोग हुवा तब आपने सातवीं प्रतिमा धारण की। सन् १९३६ में आपने जयकीर्तिजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ली तथा आपका नाम धर्ममती रखा। पू० माताजी ने अपने जीवन काल में ३ हजार उपवास किये। अन्त में जयपुर के समीप खानियां में आचार्य देश भूषणजी महाराज के सान्निध्य में समाधि धारण कर शरीर त्याग किया। धन्य है आपकी तपस्या तथा त्याग।

आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज

द्वारा दीक्षित शिष्य

आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज

मुनि श्री सिद्धसागरजी
मुनि श्री जयकीर्तिजी
मुनि श्री ज्ञानसागरजी
आर्यिका पार्श्वमति माताजी
क्षुल्लक नेमसागरजी
क्षुल्लिका कीर्तिमतीजी

आर्यिका पार्श्वमती माताजी

श्री पार्श्वमतीजी का जन्म राजस्थान प्रान्त के प्रसिद्ध नगर अजमेर में सं० १९५६ मंगसिर बदी १२ को हुवा था। आपका जन्म नाम वारसीबाई था पिता का नाम श्री सौभाग्यमलजी सोनी था। माता का नाम सुरजीबाई तथा आपके पति का नाम श्री जसकरणजी गंगवाल कड़ेल निवासी थे। आपके पति का शादी के कुछ दिनों बाद ही स्वर्गवास हो गया था। पुण्य योग से आप आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी के सम्पर्क में आये तथा पू० महाराजजी से क्रमशः क्षुल्लिका एवं आर्यिका दीक्षा धारण की आपने सारे भारतवर्ष में विहार कर धर्म प्रभावना की है। आज भी आचार्य धर्मसागरजी महाराज के संघ में रहकर धर्म साधना में रत हैं। इस समय कठोर व्रतों को पाल रही हैं। मात्र हड्डियों का ढांचा ही है पर तप त्याग अपूर्व है।

❖

मुनि श्री सिद्धिसागरजी महाराज
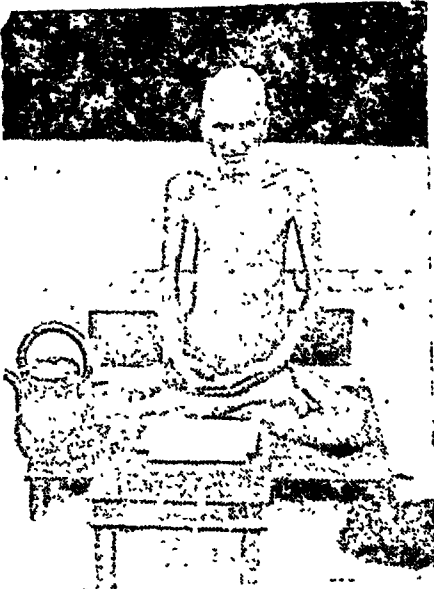
आपने परम पू० आचार्य कल्प चन्द्रसागरजी महाराज से दीक्षा ली तथा महान कष्टों को सहते हुए समाधिमरण प्राप्त कर आत्म कल्याण किया।

मुनि श्री जयकीर्तिजी महाराज

आपने पू० आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ली है आप उग्र तपस्वी साधु थे।

मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज

आपने पूज्य श्री चन्द्रसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ली तथा समाधि प्राप्त की।

क्षुल्लक श्री नेमसागरजी

आपका जन्म पचार सीकर राजस्थान में हुवा था। आपने आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज से दीक्षा ली थी। आप बाल्टी बाबा के नाम से जाने जाते थे। आपके पुत्र श्री पूनमचन्दजी गंगवाल हैं जो धार्मिक कार्यों में भाग लेते हैं। आपने अपना समाधि मरण कर आत्म साधना की।

क्षुल्लिका कीर्तिमती माताजी

तरण तारण पूज्यपाद परम तपोधन आ० क० चन्द्रसागरजी महाराज से आपकी दीक्षा वीर नि० सं० २४६४ में जयपुर नगर में दि० जैन पाटोदी के मन्दिर के विशाल सभागार में हुई थी। आपका पूर्व नाम ब्र० गुलाबबाई था आप जयपुर की ही थीं तथा पाटोदी गोत्र खण्डेलवाल जाति में जन्म लिया था। आपने अपने जीवन काल में १-१ माह के उपवास भी किये हैं। दीक्षा लेने से पूर्व सारी सम्पत्ति धार्मिक कार्यों में लगा दी थी।

❖

मुनिश्री नेमसागरजी (दिल्ली)

द्वारा दीक्षित साधुवृन्द
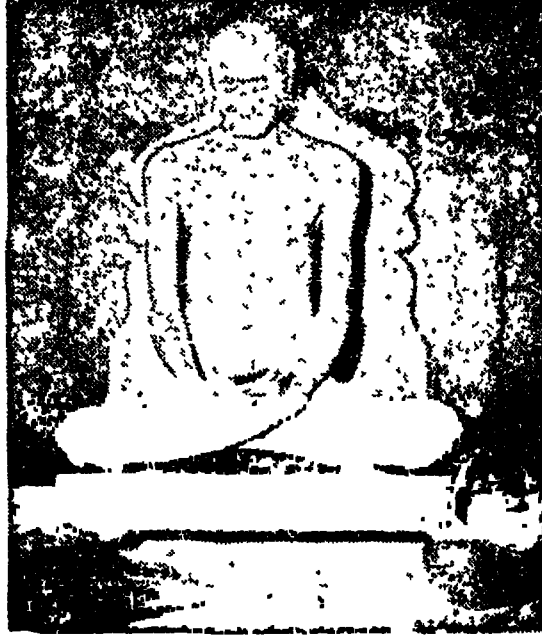
मुनि श्री नेमसागरजी

क्षुल्लक श्री वर्द्धमानसागरजी

क्षुल्लक वर्द्धमानसागरजी
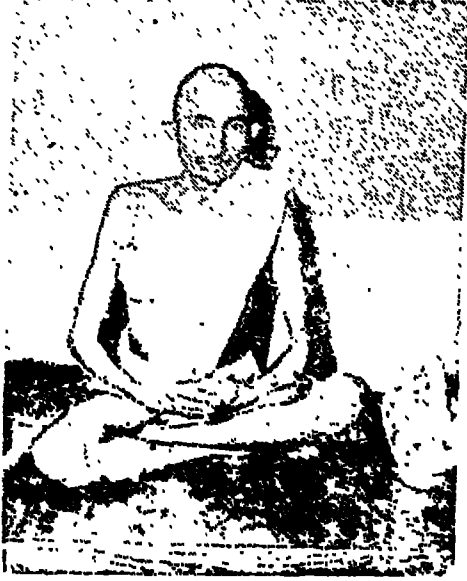
बुन्देलखण्ड के ठकुरासों की राजसी ठाट की कहानियां इतिहास के पन्नों में सिमट कर अब स्मृति के दायरे टटोल रही हैं। लगता है औकात की बात पूछना मानो आज भी उसकी शान के खिलाफ हो। हो भी क्यों न, शान ही तो उनकी आन है। हर चौखट से उठती हुई जोश की एक लहर हर पल देखी जा सकती है। पहले यह जोश वैभव के लिये होता था और आज यह वैभव त्याग के लिये है। कथ्य वही है पर तथ्य बदल चुका है। सिमरिया (ललितपुर) के श्री खुशालचंद मोदी अपनी पत्नी सहोद्राबाई के साथ इसी बुन्देलखण्ड की भूमि में साधारण व्यवसाय करते हुए श्रावक के व्रत पाल रहे थे। सं० १९८६ भाद्र शु० ३ को इनके घर एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ जिसका नाम बच्चूलाल रखा गया। साधारण परिवार में जन्मे हुए बच्चूलाल में बचपन से ही धर्म प्रचार-प्रसार के प्रति अत्यन्त जोश था और उसका यह जोश सं० २०३२ पौष शु० १४ को आहार सिद्धक्षेत्र पर पू० मुनि श्री नेमसागरजी म० का सान्निध्य पाकर चरम सीमा पर जा पहुँचा। गुरु दर्शन मात्र से जिसके अंतरंग चक्षु खुल जांय भला उसकी पात्रता में भी किसी को संदेह हो सकता है ! मुनि श्री ने भव्यात्मा को संबोधित करते हुए क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर दी तथा आपका नाम वर्द्धमानसागर लोक में प्रसिद्ध किया। गुरु आदेशानुसार आप भी रत्नत्रय चारित्र को निरन्तर वृद्धिगत करते हुए जिनमार्ग की प्रभावना में लीन हैं। बरौदिया कलां में चातुर्मास करके वहां पाठशाला की स्थापना कराके बालकों को धर्म शिक्षा के प्रति उन्मुख किया जो कि कल के श्रावकों के लिये भित्ति का कार्य कर रही है।
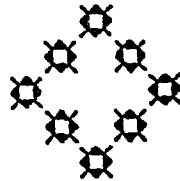
आचार्य श्री पायसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य
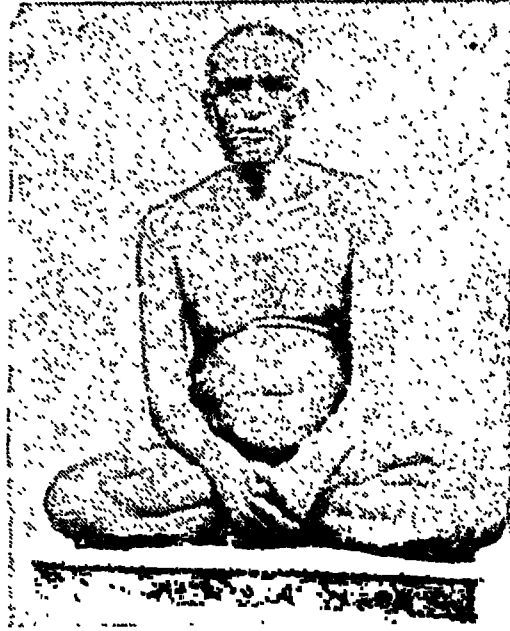
आ० श्री पायसागरजी महाराज

मुनि श्री नेमिसागरजी

आचार्य अनन्तकीर्तिजी

आर्यिका चारित्रमतीजी

क्षुल्लक जयकीर्तिजी

क्षुल्लिका चन्दनमतीजी

क्षुल्लिका राजमतीजी

मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज

बालक के शिक्षण में जननी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह तथ्य मुनि श्री के चरित्र से पूर्णतया ज्ञात होता है, मुनि श्री की वंदनीय जननी ने अपने संस्कारों से मुनि श्री को भी वंदनीय बना दिया।

मुनि श्री का जन्म महाराष्ट्र प्रदेश में सांगली जिले के आरंग गांव के यादवराऊ के प्रतिष्ठित कुल में हुआ। आपकी माताजी का नाम रतनदेवी सार्थक है। वे स्त्रीरत्न हैं और उनका अपना सिद्धान्त है कि अपने को दैव-भाग्य से सब कुछ मिलता है फिर चिन्ता क्यों की जावे। मुनि श्री के पिता का नाम नरसुदास था। वे व्यावहारिक व धार्मिक व्यक्ति थे। मुनि श्री के चार बड़े भाई थे। यशोधर ने आचार्य १०८ पायसागरजी से मुनि दीक्षा ली थी। दो भाई गृहस्थ जीवन बिता रहे हैं और मुनि श्री सब भाईयों में छोटे थे। इनका नाम इन्द्रजीत था। ये बचपन से ही धार्मिक कार्यों में रुचि लेते थे। आपके मन में धार्मिक संस्कार सुदृढ़ थे। आपकी दो शादियां हुई और कुल छह पुत्र पुत्री हुए। पर फिर भी आपका शास्त्र स्वाध्याय विषयक प्रेम बढ़ता ही गया। आपने मुनि श्री शान्तिसागरजी के वचनामृत को सुनने के लिए सैंकड़ों रुपये किराये में दिए। आपसे मुनिदीक्षा लेने की प्रबल इच्छा थी, पर शान्तिसागरजी की सल्लेखना पूर्ण हो जाने से आपने आचार्य पायसागरजी से सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा लेकर घर रहे।

सिरगुणी नामक ग्राम में पंचकल्याणक महोत्सव था। वहां पर आप मुनि श्री १०८ वर्धमान सागरजी से दीक्षा लेने के विचार में थे। परन्तु घरवालों ने बाधा डाल दी फिर भी आप घर वापिस नहीं आये बल्कि कुशनाई गांव में रहे। और जब सकनवाड़ी में पंचकल्याणक हुआ तब क्षुल्लक दीक्षा ली इसके बाद आचार्य पायसागरजी से आपने गिरिनारजी में मुनि दीक्षा ले ली तथा उनके संघ में रहे।

आपने गाजियाबाद, हस्तिनापुर, खतौली, जयपुर नगर, सरधना, बिजनौर, नजीबाबाद, नगीना, नहटौर, एटा आदि स्थानों की जनता को धर्म लाभ दिया।

☼

आचार्य श्री अनंतकीर्तिजी (महाराज)

महाराष्ट्र प्रान्त के शोलापुर के समीप कड़वी नामक स्थान में जन्म लिया । आपका परिवार धर्म श्रद्धा से बड़ा ही प्रभावित था । बचपन के संस्कारों ने आपको मुनि दीक्षा धारण करा दी ।

आपके दीक्षा गुरु श्री आचार्य पायसागरजी महाराज थे । दीक्षा स्थल अक्कोल था । आप वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं अनुभवी तपस्वी थे । आपके सम्बन्ध में ऐसा ज्ञात हुवा कि मुरेना (ग्वालियर) में आपका पैर जल गया था । उस समय असह्य पीड़ा होने पर स्वभाव से आपने सहन की । आप घन्टों लगातार कठोर तप किया करते थे । आपके प्रवचनों में भारी भीड़ होती थी तथा जनता पर काफी प्रभाव पड़ा ।

अन्त में समाधिमरण करके नश्वर शरीर को त्याग दिया । पर आपने अन्तिम समय तक व्रतों का पूर्ण रूप से पालन किया । धन्य है ऐसे परीषहजयी मुनिराज ।

आर्यिका चारित्रमतीजी

श्री चलनादेवी का जन्म वि० सं० १९६५ में बेलगांव में हुवा था । आपके पिता जागीरदार थे । पिताजी का नाम श्री संगप्पाजी तथा माताजी का नाम बाकदेवी था । शिक्षा सामान्य ही रही, आपके ३ पुत्र पुत्रियाँ थीं । पति एवं तीनों बच्चों के स्वर्गवास होने से आपके मन में वैराग्य आया तथा आचार्य श्री पायसागरजी के प्रवचनों ने आपके अन्दर ऐसी अमिट छाप छोड़ी कि आपने परिवार को छोड़कर व्रती जीवन जीना शुरु किया । वि० सं० २०१७ में आर्यिका दीक्षा ली । आपने आत्म साधना करते हुए परिणामों को विशुद्ध कर चारित्र रथ पर आरूढ़ होकर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया ।

❖

क्षुल्लक जयकीर्तिजी महाराज

ब्र० पवनकुमारजी का जन्म अक्कलकोट में श्री बाबूरामजी की धर्मपत्नी श्री पद्मावति की पवित्र कुक्षि से सन् १९३४ में हुआ था।

आपने क्षुल्लक दीक्षा मंगसिर सुदी सप्तमी को ली एवं कुछ समय के बाद आपने आचार्य श्री से पुनः मुनि दीक्षा ली।

आपने आयुर्वेद पर ५ पुस्तकें लिखी हैं। अमोलक माणिक्यमात्रा, योग प्रदीप, आहारदान आदि पुस्तकों का लेखन कार्य किया है। आप निरन्तर लेखन आदि कार्य में लगे रहते हैं। ❖

क्षुल्लिका श्री चन्दनमती माताजी

कापशी (कोल्हापुर) दक्षिण में श्रेष्ठी श्री तातरपाजी की धर्मपत्नी श्री गोदावरी देवी की कूख से मनोरमादेवी ने जन्म लिया था। आपकी शिक्षा कन्नड़ भाषा में हुयी। १६ वर्ष की उम्र में सोलापुर में आपकी शादी हुई। विवाह के कुछ महिने बाद ही पति का वियोग हो गया। आपने अपने जीवन को मोड़कर धर्म में चित्त लगाया तथा श्री पायसागरजी महाराज से जन्म स्थल पर ही क्षुल्लिका दीक्षा ली। आपने अपना विहार अक्कूतकाटे, डूण्डी, मंगलूर, निपानी, मालेगांव, दिल्ली आदि स्थानों पर गुरुवर्य के साथ किया तथा अन्त में धर्म ध्यान करते हुए शरीर को छोड़ा। आप कन्नड़ भाषा की अधिकारी साध्वी थीं। घन्टों मातृ भाषा में धारा प्रवाह प्रवचन देती रहती थीं। ❖

क्षुल्लिका राजमती माताजी

आपने पू० पायसागरजी से क्षु० दीक्षा ली। आप मुनि जम्बूसागरजी महाराज की पूर्व अवस्था की धर्मपत्नी हैं। आप धर्म साधना में लीन रहती थीं। पू० मुनि श्री के सम्पर्क से आपने दीक्षा ले ली। आप निरन्तर पूजा पाठ विधि विधान आदि बराबर कराती रहती हैं। आपका जन्म दक्षिण भारत में हुवा था। आप अभी भी धर्म प्रभावना कर रही हैं।

मुनिश्री वर्धमानसागरजी (दक्षिण)

द्वारा दीक्षित शिष्य

श्री वर्धमानसागरजी

मुनि श्री नेमिसागरजी

मुनि श्री समन्तभद्रजी

मुनि श्री आदिसागरजी

❖

मुनिश्री नेमिसागरजी महाराज

पूज्य मुनिश्री नेमिसागरजी ने गृहस्थ अवस्था में सन् १९२४ में ५० साल पहिले आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी के पास आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। क्षुल्लक दीक्षा श्री १०८ वर्धमान सागरजी के पास ली थी। सन् १९५८ में श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज के जेष्ठ भ्राता श्री १०८ मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराज के पास निर्ग्रन्थ दीक्षा ली। आप मराठी, कन्नड़ हिन्दी, भाषा जानते हैं, पढ़ते हैं। पिताजी का नाम सावतापा है और गृहस्थावस्था का महाराज का नाम नेमाराणा है। सम्मेदशिखरजी की यात्रा सम्पन्न कर चुके हैं। मंद कषायी मितभाषी हैं परिणाम शान्त हैं। मुनि आचार पालन में दक्ष हैं। संघ में महाराज श्री ही गुरु हैं। सब तीर्थ स्थलों की वंदना गृहस्थावस्था में की, तीस चौबीसी, भक्तामर, कर्म दहन आदि व्रत किये। बचपन से ही अत्यन्त शान्त भद्र परिणामी हैं। ❖

मुनिश्री समन्तभद्रजी
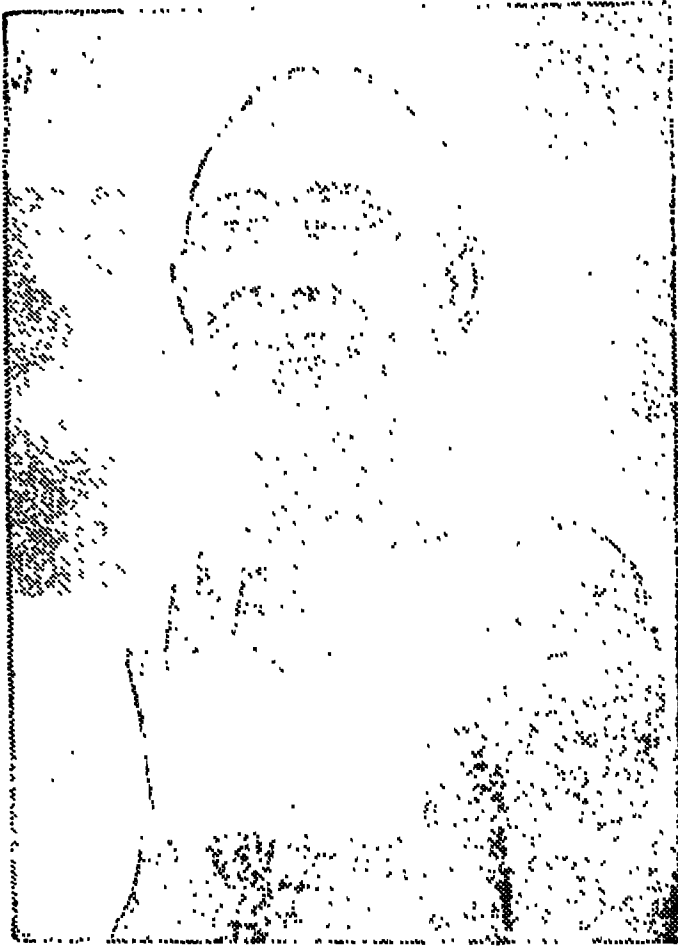
श्री १०८ मुनि समन्तभद्रजी महाराज का गृहस्थ अवस्था का नाम देवचन्द्रजी है । आपका जन्म २७-१२-१८९१ में करमोले (सोलापुर) में हुआ । आपके पिता श्री कस्तूरचन्द्रजी थे व माता कंकुबाई थी । आपने सोलापुर में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की । बम्बई में निवास करके आप स्नातक (बी० ए०) हुए । आप उच्चकोटि की धार्मिक शिक्षा की प्राप्ति के लिए जयपुर गए । आप विषय वासनाओं से दूर रहे व बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने आत्मकल्याण हेतु १९५२ में श्री १०८ मुनि वर्धमानसागरजी से मुनिदीक्षा ली ।

आपने कारंजा, सोलापुर, एलोरा, खुरई आदि बारह स्थानों पर गुरुकुलों की स्थापना की (जो आज भी समाज में विधिवत् अपना कार्य कर रहे हैं) क्योंकि आपकी यह मान्यता है कि गुरुकुल शिक्षा की पद्धति ही असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर, ले जाने में समर्थ है । आपने सन् १९१८ में कारंजा में महावीर ब्रह्मचर्याश्रम नाम से गुरुकुल की स्थापना की । सन् १९३४ में कुम्भोज में पांच छात्रों से गुरुकुल की स्थापना की थी आज उसमें ५०० छात्र अध्ययन रत हैं ।

मुनि श्री समन्तभद्रजी स्वयं एक सजीव संस्था हैं । वे शारीरिक और मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टियों से स्वस्थ रहकर सहस्र वसन्त देखें । उनके निर्देशन में एक नहीं अनेक गुरुकुल खुलें जिससे देश और समाज, शरीर से आत्मा की ओर, भौतिकता से मानवता की ओर बढ़ने में समर्थ हो सके ।

श्री १०८ आदिसागरजी महाराज

कार्तिक सुदी पंचमी वी० नि० सं० २४१८ सं० १९९२ में शेडबाल में श्री देवगौड़ाजी पाटील की धर्मपत्नी श्री सरस्वती बाई की कोख से जन्म लिया था। आपकी लौकिक शिक्षा B. A. फाइनल कन्नड़ में थी। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज से वीर सं० २४७१ में ब्रह्मचर्य व्रत फलटण में लिया। संघ में रहकर पठन पाठन करते रहते थे। वीर नि० सं० २४८० में १५-३-५४ को शेडबाल में ही मुनि वर्धमानसागरजी से मुनि दीक्षा ली तथा साधु पद की साधना करने लगे।

आप चारों अनुयोगों के अच्छे प्रवक्ता थे। अनेकों ग्रन्थों का सम्पादन कार्य किया। साहित्य के क्षेत्र में आपका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आपके द्वारा लिखे ग्रन्थ त्रिकालवर्ती महापुरुष, आहारदान विधि, सूतक विधि, यह कौन है, श्रावक नित्य क्रिया कलाप, चौतीस स्थान दर्शन, नित्य प्रतिक्रमण विधि आदि ने समाज को महत्वपूर्ण दिशा बोध दिया था।

आपकी सामाजिक सेवा भी महत्वपूर्ण रही। आपके माध्यम से दक्षिण भारत में जैन धर्म की काफी प्रभावना हुई तथा सर्वत्र विहार कर भ० महावीर के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचाया। धन्य है ऐसे ज्ञानी मुनि वृन्द जो आत्म कल्याण के साथ-साथ पर कल्याण करते हुए निरन्तर सही मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

मुनिश्री नेमिसागरजी (दक्षिण)

द्वारा दीक्षित शिष्य
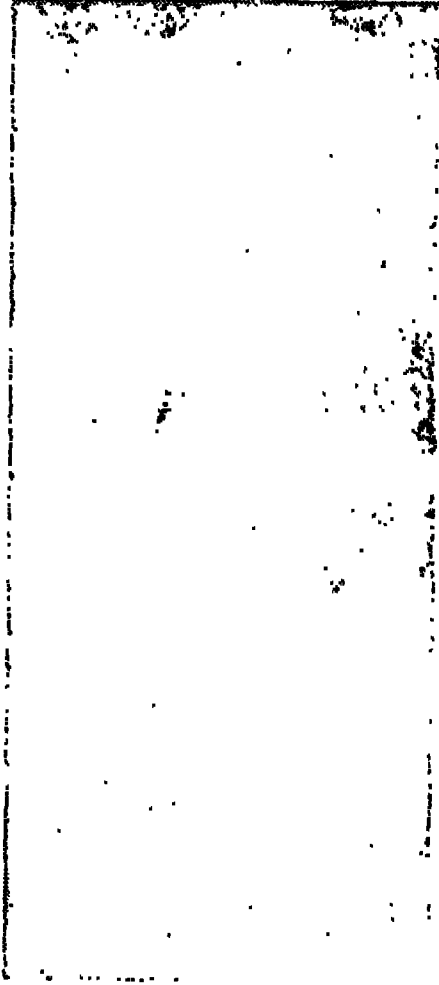
श्री नेमिसागरजी

मुनि श्री जम्बूसागरजी
मुनि श्री आदिसागरजी
मुनि श्री सन्मतिसागरजी
क्षुल्लक पद्मसागरजी
क्षुल्लक वर्धमानसागरजी
क्षुल्लक शांतिसागरजी
क्षुल्लक गुणभद्रजी

श्री जम्बूसागरजी

आपका जन्म शान्तिग्राम मैसूर प्रान्त में ई० सन् १९०४ में हुवा। आपका पूर्व नाम बम्मरणा था। २० वर्ष की उम्र में आपकी शादी हो गई तथा आप गृहस्थ धर्म का पालन करने लगे। १४-५-३७ में आपने ५ वीं प्रतिमा धारण करली तथा आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत युवा अवस्था में लेकर काम देव पर विजय प्राप्त किया। पूज्य आचार्य जयकीर्तिजी महाराज से आप एव आपकी पत्नी ने तीर्थराज शिखरजी में क्षुल्लक दीक्षा ली। आपका नाम जम्बूसागरजी तथा धर्मपत्नी का नाम राजमतीजी रखा। जो आज भी बड़ी धर्म प्रभावना कर रही हैं। पू० नेमिसागरजी महाराज से २९-८-३९ में मुनि दीक्षा ली। आपने २७ चातुर्मास भारत के सभी प्रान्तों में विहार कर अभूतपूर्व प्रभावना की। अनेकों ग्रन्थों की रचना की तथा अनेकों ग्रन्थों की टीका की। जगह जगह प्रतिष्ठा आदि भी आपके आदेश से हुई। आपने यज्ञोपवीत संस्कार नामक पुस्तक का भी लेखन कार्य किया है। आचार-विचार पर आपका महत्व ज्यादा था तथा प्रवचनों के माध्यम से जैन धर्म की प्रभावना की।

मुनिश्री आदिसागरजी

वेलगांव जिले के अक्किवाट ग्राम में आपका जन्म हुआ। पिताजी का नाम दंडाप्पा था। महाराजजी का गृहस्थाश्रम का नाम शिवा था। शादी हुई थी। दो सन्तानें भी हुई। श्री १०८ वीरसागरजी महाराज के पास १३ साल तक क्षुल्लक अवस्था में रहे। सांगली में ४-१२-६२ को श्री १०८ नेमिसागरजी के पास निर्ग्रन्थ दीक्षा ली। आपने समस्त तीर्थ स्थलों की यात्रा की है। मराठी कन्नड़ और हिन्दी भाषा का आपको ज्ञान है। क्षुल्लक शांत अवस्था में एक साथ नव उपवास कर अचाम्ल व्रत निरंतराय किया है। परिणाम बिल्कुल शांत हैं। शान्त स्वभावी और मितभाषी हैं। मुनि आचार निरन्तराय पालन करने में दक्ष हैं। संघ के वयोवृद्ध अत्यन्त भद्र सरल स्वभावी मुनिराज हैं।

❖
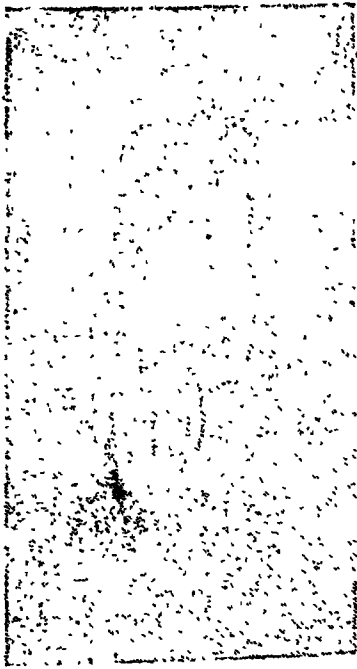
सन्मतिसागरजी महाराज

पूज्य श्री का जन्म गलतगा में शक० सं० १८०४ में हुवा था। आपकी मूल भाषा कर्नाटक तमिल थी। गृहस्थ अवस्था का नाम पार्श्वनाथ था। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के प्रवचन सुनकर वैराग्य हुवा तथा उसी समय आपने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। कौन्नूर में मुनि वर्धमान-सागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। विहार करते हुए आप सांगली पधारे यहां पर मुनि नेमिसागरजी से आश्विन शुक्ला पंचमी वीर सं० २४८८ में ४-१०-६२ को मुनि दीक्षा ली। आपने चारों अनुयोगों का अध्ययन किया। आपकी वाणी में काफी प्रभाव था प्रवचनों में हजारों बन्धु आकर अमृत पान करते थे। सरलता एवं सौम्यता के धनी पू० मुनिराज थे। ❖

क्षुल्लक श्री पद्मसागरजी महाराज

त्याग और तपस्या के कारण पू० क्षु० १०५ श्री पद्मसागरजी म० का नाम आज के साधु संघ में प्रमुख स्थान रखता है। दीक्षा पूर्व आपका नाम पन्नालाल जैन वरैया था। आश्विन शु० ५ सं० १९५१ को ग्राम गढीरामवल कुर्राचित्तरपुर (आगरा) में आपका जन्म श्री चुन्नीलाल जैन के घर हुआ। आपकी माता का नाम दुर्गावती था। चालीस वर्ष की उम्र तक आप पैतृक व्यवसाय (गल्ला-कपड़ा साहूकारी) करते रहे। तत्पश्चात् संसार स्वरूप का चिंतवन करते हुए एक दिन पू० जम्बूस्वामीजी म० से धर्म-श्रवण करके सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आचार्य सूर्यसागरजी महाराज से उज्जैन में दशवीं प्रतिमा ग्रहण कर गृह त्याग दिया। सं० २०२२ देवगढ़ में पू० नेमसागरजी म० के चरण सान्निध्य का सुयोग मिलते ही आपने 'क्षुल्लक' दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षोपरान्त आपका नाम पद्मसागर रखा गया। आप निरन्तर स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं तथा अपने सदुपदेश से निरीह संसारी प्राणियों को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करते रहते हैं। आपने अब तक कई स्थानों पर वर्षायोग करके समाज को लाभान्वित किया है, शास्त्रोक्त विधि से रत्नत्रय की आराधना करते हुए आप स्व-पर कल्याण में निरत हैं।

❖

श्री वर्द्धमानसागरजी महाराज

बुन्देलखण्ड के ठकुरासों की राजसी ठाट की कहानियां इतिहास के पन्नों में सिमट कर अब स्मृति के दायरे टटोल रही हैं। लगता है औकात की बात पूछना मानों आज भी उसकी शान के खिलाफ हो। हो भी क्यों न, शान ही तो उनकी आन है। हर चौखट से उठती हुई जोश की एक लहर हर पल देखी जा सकती है। पहले यह जोश वैभव के लिये होता था और आज यह वैभव त्याग के लिये है। कथ्य वही है पर तथ्य वदल चुका है। सिमरिया (ललितपुर) के श्री खुशालचन्द मोदी अपनी पत्नी सहोद्रावाई के साथ इसी बुन्देलखण्ड की भूमि में साधारण व्यवसाय करते हुए श्रावक के व्रत पाल रहे थे। सं० १९८६ भाद्र शु० ३ को इनके घर एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ जिसका नाम बच्चूलाल रखा गया। साधारण परिवार में जन्मे हुए बच्चूलाल में बचपन से ही धर्म प्रचार–प्रसार के प्रति अत्यन्त जोश था और उसका यह जोश सं० २०३२ पौष शु० १४ को आहार सिद्ध क्षेत्र पर पू० मुनि श्री नेमसागरजी म० का सान्निध्य पाकर चरम सीमा पर जा पहुंचा। गुरुदर्शन मात्र से जिसके अंतरंग चक्षु खुल जांय भला उसकी पात्रता में भी किसी को संदेह हो सकता है। आचार्य श्री ने भव्यात्मा को संबोधित करते हुए क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर दी तथा आपका नाम वर्द्धमान सागर लोक में प्रसिद्ध किया। गुरु आदेशानुसार आप भी रत्नत्रय चारित्र को निरन्तर वृद्धिगत करते हुए जिनमार्ग की प्रभावना में लीन हैं। वरौदियाकलां में चातुर्मास करके वहां पाठशाला की स्थापना कराके बालकों को धर्म शिक्षा के प्रति उन्मुख किया जो कल के लिये भित्ति का कार्य कर रही है।

क्षुल्लक श्री शान्तिसागरजी

श्री १०८ क्षुल्लक शान्तिसागरजी का पहले का नाम भरम नरसिप्पा चौगले था। आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व आपका जन्म गलतगा (बेलगांव) में हुआ। आपके पिता श्री नरसिप्पा चौगले थे, जो कृषि फार्म पर कार्य करते थे। आपकी माता श्रीमती गंगाबाई थी। आप चतर्थ जाति के भूषण हैं, आपका गोत्र खेत्री है। आपने धार्मिक अध्ययन स्वयं ही किया। आपके परिवार में एक भाई और तीन बहन हैं। आपका विवाह हुआ। आपके तीन पुत्र और दो पुत्रियां हुईं।

गृहस्थ अवस्था में ही आप शास्त्र श्रवण करते थे। दशलक्षण धर्म का मनन करते थे। सोलह कारण भावनाओं पर चिन्तन करते थे। इसलिये आपमें वैराग्य के संस्कार बढ़े। आपने दिनांक २५-२-१९६६ को बारेगांव (बेलगांव) में श्री १०८ आचार्य नेमिसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा लेली। आपको दशभक्ति पाठ कण्ठस्थ हैं। आपने हुपरी, डगार, शेडवाल, टिकंतनगर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये आपने जीवन पर्यन्त के लिये मिष्ठान्न और हरे शाक का त्याग कर दिया है। आप संयम और विवेक की दिशा में और भी आगे बढ़ें और देश तथा समाज को बढ़ावें।

क्षुल्लक श्री गुणभद्रजी

आपका गृहस्थ अवस्था का नाम सुखलाल था। आपके पिताश्री प्यारेलालजी थे और माता का नाम भगवन्तीबाई था। आपका जन्म खिस्टोन जिला टीकमगढ़ में हुआ था। आपके घर पर साहुकारी व खेतीबाड़ी का धन्धा होता था। जब आप १३ वर्ष के थे तब आपकी मां का स्वर्गवास हो गया था। आप पिता की देखरेख में बढ़ने व पढ़ने लगे। खिस्टोन में ही आपने कक्षा ४ तक प्राथमिक शिक्षा पाई। इसके बाद पांच वर्ष तक कुण्डपुर में रहकर धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। आपने ब्र० गजाधरप्रसादजी, ब्र० अमरचन्द्र, ब्र० गोकुलप्रसाद को गुरु रूप में स्मरण किया। आपने ईसरी में पं० शोभनलालजी से द्रव्यसंग्रह पढ़ी। द्रोणगिरि में क्षुल्लक १०५ श्री चिदानन्दजी महाराज से तत्वार्थ सूत्र पढ़ा।

जब आप २२ वर्ष के थे तब आपका गौरारानी से विवाह हुआ। आपके दो पुत्र और तीन पुत्रियां हुईं। आपको नाटकों से बड़ा लगाव था, पृथ्वीपुर, बछोड़ा नाटक मंडलियों में रहे। कविता करने का भी चाव था प्रतिक्रमण कविता मेरठ से प्रकाशित भजनमाला में संग्रहीत है। सत्संगति धर्मश्रवण से विरक्ति बढ़ी तो आपने क्षुल्लक आदिसागरजी से दूसरी प्रतिमा ली और गणेशप्रसादजी वर्णी से चौथी प्रतिमा ली। ब्रह्मचारी गोकुलप्रसाद को दिये गये वचन के अनुसार आपने ५० वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली। आपके गुरु अनन्तकीर्तिजी महाराज थे। ८० वर्ष की अवस्था में पवाजी के वार्षिक मेले में आपने मुनिश्री नेमीसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली।

मुनिश्री महाबलजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य
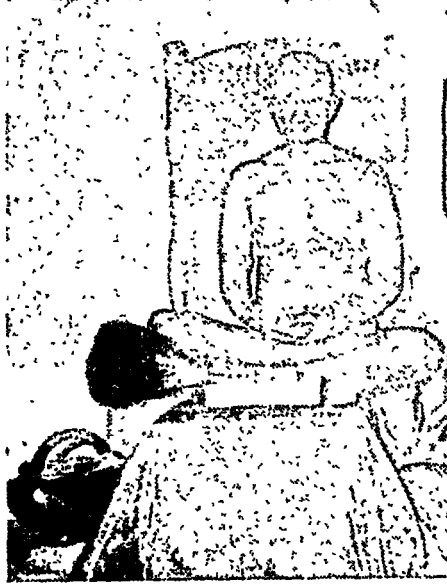
श्री महाबलजी महाराज

ऐलक जयभद्रजी

क्षुल्लक गुणभद्रजी

क्षुल्लक मणिभद्रसागरजी

क्षुल्लक विजयभद्रजी

ऐलक श्री जयभद्रजी महाराज
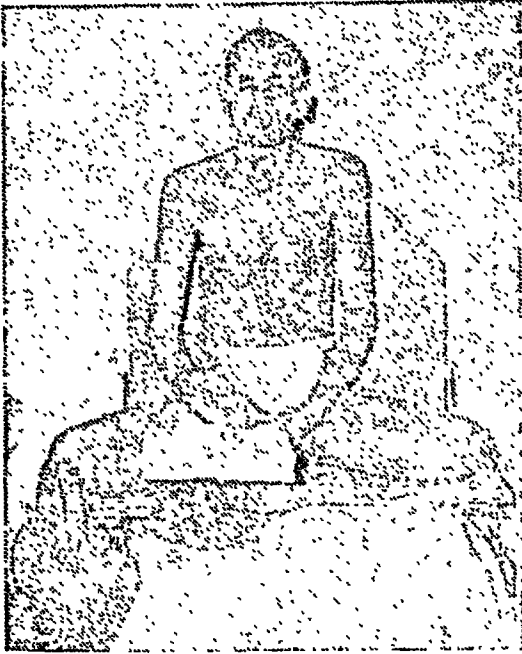
मराठा और राजपूतों का इतिहास गौरव गाथाओं का इतिहास है। युद्धवीरता की तरह धर्म-वीरता की कथाएँ यहां की मिट्टी में रली-मिली हैं जिसे हर आगन्तुक को यहां के निवासी अनथक रूप से सुनाना नहीं भूलते। ऐसी ही एक गाथा औरंगाबाद जिले के गांव पुरी के साथ भी जुड़ गई। श्री धर्मचंद तेजाबाई बाकलीवाल दम्पत्ति के घर फाल्गुन कृ० १२ सन् १९३८ को एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम रामचंद रखा गया। बचपन से ही यह बहुत धार्मिक तथा भव भोगों से भीत रहता था जिससे आपके माता-पिता सदैव आशंकित रहते थे कि कहीं उनका यह पुत्र वैराग्य मार्ग पर न चल पड़े और उनकी यह आशंका एक दिन सच निकली। काललब्धि हो अथवा क्षेत्र का प्रभाव, गुरुदेव आ० श्री समन्तभद्रजी म० के चरणों का आश्रय पाकर गांव पुरी का साधारण सा रामचन्द ऐलक जयभद्र बनकर मोह बन्धन को काटने शिवपथ पर चल पड़ा। चैत्र शु० २ सन् १९५९ को ब्रह्मचर्य व्रत, श्रावण शु० ७ सन् १९६७ को सप्तम प्रतिमा बाहुबली क्षेत्र पर ग्रहण की। भाद्र कृष्णा ९ सन् १९७४ में श्री निर्मलसागरजी म० से क्षुल्लक दीक्षा औरंगाबाद के विशाल श्रावक समूह के मध्य ग्रहण की। मुनिश्री ने आपका नाम क्षु० वर्धमान सागर रखा। चार वर्ष तक धर्मसाधना करते हुए सन् १९७८ वैशाख पूर्णमासी को १०८ पू० महाबलजी महाराज से खंवटकोप में ऐलक दीक्षा ग्रहण की और आप जयभद्रसागर म० के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुए। आचार्य श्री समन्तभद्रजी म०, पू० १०८ मुनि आर्यनंदीजी म०, पू० १०८ महाबलजी म० की प्रेरणा से स्थान २ पर भ्रमण कर धर्म प्रचार कर श्रावकों को सद्मार्ग दिखा रहे हैं।

क्षुल्लक श्री गुणभद्रजी महाराज

सातवीं पास जिन्नाप्पा उमलवाड ग्राम (कोल्हापुर) की सीमा छोड़कर विराग की लोरियां गाने लगा तो दम्पति कल्लाप्पा अक्कुबाई के दिल सहम से गये। गांव-गवई के वातावरण में भला विराग का क्या काम ! माता-पिता का दुलारना-पुचकारना आखिर काम न आया और जिन्नाप्पा ने जो राह पकड़ी सो थमे ही नहीं। २ दिसम्बर ६८ का दिन शायद जिन्नाप्पा के लिये ही था। बाहुबली विद्यापीठ में जग उद्धारक १०८ मुनि श्री महाबलजी म० का शुभागमन हुआ। अन्धे को दो आंखें मिली। मुनिश्री ने जिन्नाप्पा को अपनी शरण में ले लिया और उसे क्षुल्लक दीक्षा देकर क्षु० गुणभद्र म० के नाम से पुकारा। विनीत शिष्य गुरु चरणों में शास्त्राभ्यास करता हुआ अपने सदुपदेश से दीन संसारियों की भटकती नौका को पार लगा रहा है।

क्षु० श्री मणिभद्रसागरजी

आपने सन् २२-५-१९२९ में हारुगेरी (बेलगांव) कर्नाटक में श्री लक्कप्पाजी के गृह में जन्म लिया था। आप ४ भाई ४ बहिन हैं। प्रारंभिक रुचि कृषि करना ही था। आपके ६ पुत्र पुत्रियां हैं। श्री मुनि महाबलजी महाराज के दर्शन एवं प्रवचन से प्रभावित होकर पंचकल्याणक पूजा के समय मुनि श्री महाबलजी महाराज से हलिन्गली (कर्नाटक) में क्षुल्लक दीक्षा ली। अब तक आपने १२ चातुर्मास किए हैं।

निरन्तर आप पठन पाठन में लिप्त रहते हैं।

क्षुल्लक विजयभद्रजी महाराज

जन्मस्थान — कोकुटपुर त० अथणी (कर्नाटक)
जन्म सन् — ८–४–१९३८
गृहस्थ अवस्था का नाम—वीरगोडाजी पाटील
शिक्षा — तीसरी
विवाह — सन् १९६७ में सन् १९७४ तक गृहस्थ में रहे तथा आचार्य सबलसागरजी महाराज से जैन धर्म स्वीकार किया ।

१४–२–१९८१ को श्री महाबलजी महाराज से कुम्भोज बाहुबली नामक स्थान पर दीक्षा धारण की आप सरल स्वभावी, परम तपस्वी साधु हैं ।

❖

मुनिश्री वज्रकीर्तिजी महाराज
द्वारा
दीक्षित शिष्य

मुनि श्री धर्मकीर्तिजी महाराज

श्री वज्रकीर्तिजी महाराज

मुनिश्री धर्मकीर्तिजी महाराज

आपका जन्म भावनगर में संवत् १९५९ में हुआ था। १७ वर्ष की अवस्था में शादी की। पावागढ़ में आचार्य कुन्थुसागरजी महाराज के पास दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किए थे। आप इन्टर पास हैं। दीक्षा पूर्व आपने सब वाहनों का त्यागकर दिया था। वीर सं० २४८२ वैशाख शुक्ला ३ रविवार के दिन शत्रुंजय तीर्थ क्षेत्र में मुनि श्री वज्रकीर्ति से मुनिदीक्षा ली।

आपकी प्रवचन शैली अति ही उत्तम रही। प्रवचनों में हजारों की उपस्थिति रहती थी। आपके द्वारा गुजरात प्रान्त में महती धर्म प्रभावना हुई। आपने एक पुस्तक भी लिखी जो सरल एवं प्रश्नोत्तर रूप में है जो मानव समाज के लिए शिक्षाप्रद सिद्ध हुई।

आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज (छाणी)

द्वारा दीक्षित शिष्य
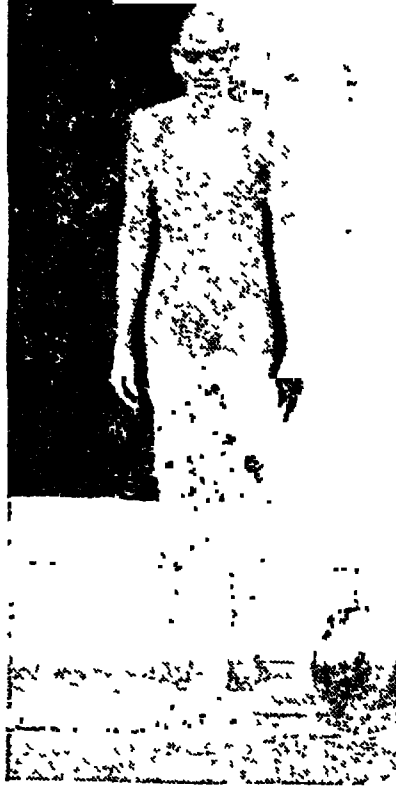
आ० श्री शांतिसागरजी महाराज

मुनि श्री ज्ञानसागरजी

मुनि श्री आदिसागरजी

मुनि श्री नेमिसागरजी

मुनि श्री वीरसागरजी

आचार्य श्री सूर्यसागरजी

मुनि श्री ज्ञानसागरजी (धार)

इस कुटिल पंचम काल में ऐसे जीव बहुत ही थोड़े हैं, जो आदर्श पथ पर गमन कर अपने अमूल्य मानव जीवन की चरम सीमा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जिन जिन आत्माओं की, अपनी निज आत्म विभूति की ओर दृष्टि गई है, वे आत्माएं इस संसार में प्रातः स्मरणीय एवं जगद्वन्दनीयता को प्राप्ति होकर, चरम सीमा को प्राप्त हुई हैं। वे आत्माएँ आज इस संसार में नहीं हैं और पंच परावर्तन रूपी रहट (यंत्र) के भी परिचक्र को उन्होंने परिपूर्ण कर दिया है तथा वे निजानंद में लीन होकर लोकाग्र भाग में निवास करती हैं।

आज ऐसी पवित्र आत्माओं के दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु उनके आदर्श और उच्च पथ पर अपितु उनके सदृश मोक्ष मार्ग पर गमन करने वाली आत्माओं का अब भी अभाव नहीं है, उन्हीं के दिव्य दिगम्बराभूषण को धारण करने वाली महात्माओं के दिव्य दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हुवा है यह हमारे सातिशय पुण्य का उदय है परन्तु ऐसी पवित्र आत्मायें इस समय २०-२५ से अधिक नहीं हैं।

उन्हीं पवित्र आत्माओं में से एक महात्मा श्री दि० गुरु ज्ञानसागरजी महाराज (धार) जो आचार्य श्री शान्तिसागरजी (छाणी) के एक आदर्श और आद्य शिष्य हैं, जिनके चरण कमलों में यह "पूजन" रूप तुच्छ भेंट सादर समर्पण करने के लिये समुन्नत हुआ हूं। जिनका महात्म्य इस भारत के मुख्य केन्द्र मालवा सी. पी. यू. पी. भद्र देश, ढूँढार देश हाडोती आदि २ में प्रकाशित हो रहा है, जिनके धवल गुण रूप पताका यश रूप में फहरा रही है।

आपमें आकर अनेक सद्गुण निवास करते हैं, परन्तु हमें यह बताना है कि आपका पाण्डित्य, तपोविशेषता, वक्तृत्व शैली, चारित्रवल और सहनशीलता उपसर्ग विजयता भी कुछ कम नहीं है। यहां पर उपर्युक्त बातों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना भी अनुचित न होगा।

पाण्डित्य--आप एक बहुत बड़े भारी उद्भट विद्वान हैं, आपका बाल्यकाल से ही स्वाध्याय आदि पठन-पाठन की ओर सदैव लक्ष्य रहता था तथा आपने अनेक आचार्य प्रणीत उच्च कोटि के ग्रन्थों का स्वाध्याय कर अपूर्व ज्ञान का सम्पादन किया है, इसलिये आपकी पाण्डित्यता से जैन तथा जैनेतर समाज भली प्रकार सब ही परिचित हैं, आपका युक्तिवाद तो इतना प्रबल है कि सामने वादी ठहरते नहीं हैं तथा आगमवाद के सागर ही हैं इसीलिये आपका नाम "ज्ञानसागरजी" ही है, "यथा नाम तथा गुण" वाली कहावत यथार्थ चरितार्थ की है।

तपो-विशेषता—तप की भी आपमें बड़ी ही विशेषता है, आपने हमारे दि० जैनाचार्य प्रणीत बड़े बड़े कठिन व्रत जैसे—आचाम्ल वर्द्धन, मुक्तावली, कनकावली, जिनेन्द्र गुणसम्पति, सर्वतोभद्र, सिंहविक्रीडतादि अनेक तप आपने किये हैं तथा करते रहते हैं, जिनके महात्म्य द्वारा आपके दिव्य देह मनोहरता को प्राप्त हुई है तथा व्रतादि उग्र तप करते समय आपका शरीर बिल्कुल शिथिलता को प्राप्त नहीं होता था।

वक्तृत्व शैली—भी आपकी कम नहीं है, आपका व्याख्यान हजारों की जनसंख्या में धारा प्रवाही होता है, जिसको श्रवण कर अच्छे २ व्याख्याता चकित होते हैं। आपमें एक अपूर्व विशेषता यह है कि आप एक निर्भीक और स्पष्ट वक्ता हैं वस्तु के स्वरूप को आप जैसे का तैसा ही प्रतिपादन करते हैं जिस कारण पर मतावलम्बी तो आपके सामने ही थोड़े ही समय में परास्त हो जाते हैं।

आपके वाक्य बड़े ही ललित, सुश्राव्य एवं मधुर निकलते हैं जिनके कारण जनता आपके वचनामृत श्रवण करने के लिये सदैव उत्सुक और लालायित रहती है, इसलिये आपके उपदेश का प्रभाव जनता पर काफी प्रकाश और प्रभाव डालता है।

चारित्र बल—इसके बताने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप एक उच्च आदर्श लिङ्ग जो मुनि मार्ग उसके शरण को प्राप्त हुये हैं, ऐसी अवस्था में चारित्र आपका कैसा है ? उसे ज्ञानी जन स्वयं समझ गये होंगे, किन्तु आपके अपूर्व चरित्र के प्रभाव द्वारा, आपकी चिरकीर्ति इस भूमंडल में विद्युतवत् चमत्कार दिखलाती हुई अलोकित कर रही है और इसी के प्रभाव से बड़े-बड़े राजा-महाराजा और बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुष आकर आपके चरणों में नत-मस्तक करते हैं और बड़े-बड़े राज्याधिकारी-गण आकर सिर झुकाते हैं यह सब चारित्र की विशेषता का महत्व है।

सहनशीलता या उपसर्ग विजयता—आप में अपूर्व है, महान कठिन से कठिन उपसर्गों की आप पर्वाह न करते हुये उन्हें बड़े ही शान्ति पूर्वक सहन करते हैं। एक समय आप बांदा से झांसी की ओर आ रहे थे बीच में अतर्रा नामक ग्राम में आपके सम्पूर्ण शरीर से भंवर मच्छी (भोरमक्खी) लिपट गई थीं, परन्तु आपने इस महान उपसर्ग की कुछ भी परवाह न की। दूसरी बार आप जब नरवर (ग्वालियर) से आमोल को जारहे थे उस समय शेर ने आकर आपका सामना किया था परन्तु वहां भी विजय प्राप्त की, इसी प्रकार झांसी के मार्ग में सामायिक करते समय गोहरा आपके वदन पर इधर-उधर फिरता रहा, परन्तु आपने कुछ भी परवाह न की और भी अनेक उपसर्ग आपने आने पर सहे हैं विस्तार भय से यहां उल्लेख नहीं किये।

आपको निद्रा भी बहुत कम आती है, हमारा पूर्व में आपसे कई वर्षों तक सहवास रहा है, हम समय—समय पर जाकर गुप्त रीत्यानुसार परीक्षा किया करते थे, परन्तु जब कभी जाते थे तभी आप जाग्रत अवस्था में मिलते थे। विशेष कर आपका लक्ष्य आत्म-ध्यान में अधिक रहता है।

गृहस्थों के चारित्र को समुज्ज्वल बनाने के लिये आप रात्रि दिवस चिन्तित रहते हैं, जहां कहीं आपका विहार होता है वहां पर श्रावकाचार का प्रचार काफी होता है और सच्चे सद्-गृहस्थ बनाते हैं। इस गृहस्थागार में गृहस्थ धर्म को सम्पादन करनेवाली श्राविकायें होती हैं बहु भाग श्रावकाचार का इन्हीं पर निर्भर रहता है। उन्हीं को आप उचित शिक्षा देकर व्रतादि ग्रहण करा श्रावकाचार धर्म स्वीकार कराकर उन्हें सच्ची श्राविकाएं बनाते हैं।

आपका लक्ष्य विशेष कर स्त्रियों को सदाचारिणी बनाने की ओर रहता है तथा उनके संयम, शील की रक्षार्थ सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। आपका विहार अभी ४-५ वर्ष से मालवा और मारवाड़ तथा हाड़ोती प्रांत में हो रहा है यहां पर व्रत विधान क्रिया बहुत ही उच्च और आदर्श है तथा प्रायः सर्व व्रतों का भार स्त्री समाज पर निर्भर है उन्हीं के लाभार्थ आपने 'व्रत कथा कोष' नामक ग्रन्थ अनेक शास्त्रों की खोज पूर्ण लिखा है, जो कि व्रत विधान करनेवालों को अवश्य एक वार देखना चाहिये। इत्यादि प्रयत्न आप गृहस्थों को आदर्श बनाने के लिये सदैव करते रहते हैं।

मुनि श्री आदिसागरजी महाराज
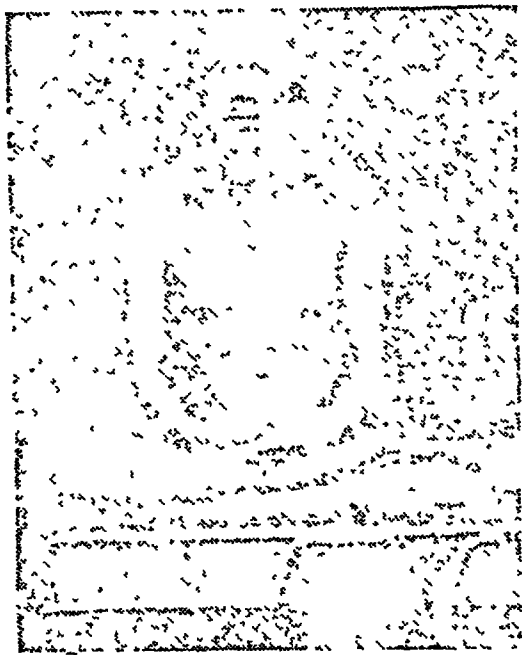
आपका जन्म बुन्देलखंड के अन्तर्गत बम्हौरी ग्राम में मिती कार्तिक सुदी २ विक्रम सं० १९४१ में हुआ था। आपके पिताजी का नाम गोपालदास था और माता का नाम लटकारी था। आप गोला पूर्व चोसरा वंश के सुयोग्य जैन हैं। आपके आजा का नाम वहोरेलाल था। उनके यहां गोपालदास, नन्हेंलाल, हलकाई, हजारीलाल और वारेलाल आदि ५ पुत्र थे। आप भी अपने ४ भाइयों में से मझले भाई हैं। भाइयों के नाम इस प्रकार हैं खूबचन्द, खुमान, मोतीलाल और छोटेलाल। आपका विवाह सं० १९५५ में १४ वर्ष की आयु में सरखड़ी में हुआ था। आप बचपन से ही सदाचारी थे। विवाह के समय से दो बार भोजन करना रात्रि को पानी तक नहीं लेना और पूजन करने का आपका नियम था। आपने अध्ययन किसी पाठशाला में नहीं किया। निज का अनुभव ही कार्यकारी हुआ है। आप घी, धातु, गल्ला और कपड़ा का व्यापार करते थे। आपके सुयोग्य दो पुत्र हैं जो कि चिंतामन और धर्मचन्द, बम्होरी में रहते हैं। आपके वंश द्वारा रेशंदीगिर के उद्धार का कार्य हुआ है। ऐसा जैन मित्र से ज्ञात हुआ है कि आपके पूर्वजों ने यहां जंगली झाड़ियां सफाई कराके नैनागिर क्षेत्र को प्रकाश में लाया था, फिर आपके द्वारा तो पूर्ण उद्धार हुआ है। पंच कल्याणक, गजरथ आदि बड़े मेले तो आपके प्रयत्न के सफल नमूने हैं। क्षेत्र की उन्नति करना आपका मामूली कार्य नहीं था बल्कि कठोर त्याग का फल था आपको बचपन में खुमान कहा करते थे और भविष्य में तो मान खोने वाले ही निकले। आपने मिती ज्येष्ठ सुदी ५ सं० १९८४ को द्रोणगिर में मुनि अनंतसागरजी और शांतिसागरजी महाराज क्षाणी से दूसरी प्रतिमा ली थी तब आपका नाम ब्र० खेमचन्द रखा। मिती आषाढ़ वदी ८ सं० १९९५ में अंजड़ वड़वानी में मुनि सुधर्मसागरजी से ७ वीं प्रतिमा ली थी। फिर सागर में माघ मास के पर्यूषण पर्व सं० २००० में दशवीं प्रतिमा धारण की थी। सं० २००१ से वर्णी गणेशप्रसादजी के संघ में रहकर जवलपुर में वीर जयन्ती पर वीर प्रभू के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा ली और आपका नाम क्षु० क्षेमसागर रखा गया। आपने क्षुल्लक दीक्षा से ही केश लोंच करना चालू कर दिया था। वर्णीजी तो आपके चरित्र की प्रशंसा किया ही करते हैं।

इसके पश्चात् आपने सं० २०१२ को श्री रेशंदीगिर गजरथ के दीक्षा कल्याणक के दिन भगवान आदिनाथ के दीक्षा समय भगवान आदिनाथ के समक्ष मुनि दीक्षा धारण की तब उसी दिन मिती माघ सुदी १५ शनिवार को आपका नाम मुनि आदि सागर रखा गया।

मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज

सरल स्वभाव, शान्तचित्त, शरीर से कृश किन्तु तपस्तेज से दीप्त, हृदय के सच्चे, लंगोट के पक्के, अपनी परिस्थिति अनुकूल चलने वाले, प्रयोजन वश बोलने वाले, प्रतिष्ठा, वैद्यक, ज्योतिष, गणित, मंत्र, तंत्रयंत्र, संगीत एवं नृत्यकलाओं में शिरोमणि, धर्मशास्त्र के पूर्णज्ञाता, मधुर किन्तु ओजस्वी वाणी में बोलनेवाले वक्ता, पण्डितों के पण्डित, सफल साधक, जीव मात्र के प्रति अहिंसा का भाव रखनेवाले, न किसी के अपने न पराये, न सपक्षी न विपक्षी, स्वाभिमान निर्भीकता से धर्म साधन करनेवाले विलासों एवं भोगों से अछूते, इन्द्रियों का दमन करने वाले, कषायों का निग्रह करने वाले, समाज के गौरव एवं देश के अनमोल रत्न तपोनिधि अध्यात्म योगी श्री १०८ मुनि नेमिसागरजी का जन्म मंगलमय एवं परम पवित्र माता श्री यशोदा देवी की पुनीत कुक्षि से पिता श्री मुन्नालालजी के पुत्र के रूप में विक्रम संवत् १९६० के फालगुन शुक्ला द्वादशी रविवार को पठा (टडा) ग्राम में हुआ।

आपने बाल्यकाल से ही बावा गोकुलप्रसादजी. पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी एवं पूज्य मोतीलालजी वर्णी के सान्निध्य में रहकर उक्त गुरुजनों की कृपा द्वारा संवत् १९७८ में पूज्य पिताजी का स्वर्गारोहण हो जाने के कारण घर पर ही रहकर अनेकों विद्याओं के अथाह वारिधि बने।

आपका बचपन का नाम हरिप्रसाद जैन था। आपने विवाह का परित्याग कर बालब्रह्मचारी व्रत धारण किया। ८ वर्ष की आयु में पाक्षिक व्रतों तथा १५ वर्ष की आयु में नैष्ठिक श्रावक के रूप में दूसरी प्रतिमा ग्रहण की। सन् ५६ में इन्दौर आए। वि० सं० १९९६ में माघ कृष्णा प्रतिपदा गुरूवार मु० पटना पो० रहली जिला सागर के जलयात्रा महोत्सव पर श्री १०८ मुनि पदमसागरजी द्वारा सप्तम प्रतिमा ग्रहण की तथा आपका नाम रखा गया श्री विद्यासागर।

फाल्गुन शुक्ला ३ सोमवार संवत् २०१६ में म० प्र० के देवास जिलान्तर्गत लुहाखा नामक ग्राम में श्री पंचकल्याणक महोत्सव पर दीक्षा कल्याणक के समय श्री १०८ मुनि आचार्य योगेन्द्रतिलक शान्तिसागरजी महाराज द्वारा आपने ११ वीं प्रतिमा धारण की और नाम पाया श्री १०५ क्षुल्लक

नेमिसागरजी। वि० सं० २०२४ के शुभ मिती मार्गशीर्ष शुक्ला १५ को आचार्य योगेन्द्रतिलक शांतिसागरजी महाराज द्वारा मुनिदीक्षा ग्रहण की।

आपने लगभग १६ वर्ष की अवस्था से लिखना आरम्भ किया। आपने अपनी मनोवृत्तियों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया। आपका गद्य एवं पद्य दोनों पर समान रूप से अधिकार रहा। आपकी कृतियां निम्नलिखित हैं :—

१	—	श्रावक धर्म दर्पण	प्रकाशित
२	—	हरि विलास	प्रकाशित
३	—	प्रतिष्ठासार–संग्रह	शास्त्राकार सजिल्द यह ग्रन्थ लगभग २००० पृष्ठों का होगा
४	—	आध्यात्म सार–संग्रह	
५	—	कविता संग्रह (स्वरचित)	अप्रकाशित

सामाजिक क्षेत्र में आपने जो कार्य किए उनका विवरण सिर्फ इतना कह देने में ही पूर्ण-रूपेण दृष्टिगोचर होने लगता है कि क्षेत्र पपौरा, अहारजी एवं अनेक संस्थाओं के आप अधिष्ठाता, व्यवस्थापक एवं संचालक हैं। इन क्षेत्रों एवं संस्थाओं में आपने जितने भी कार्य किए हैं वे अवगुण्ठन में नहीं हैं।

आपके संकल्प इतने अडिग हैं कि विरोधी तत्वों के अनेक विग्रहों, महादुर्मोच्य भयानक संकटों, शरीरिक आधि-व्याधियों तथा लोगों की दुर्जनतापूर्ण मनोवृत्तियों से भी आप टस से मस नहीं हुए। अनेकों तरह की आपदाओं ने आपको कर्तव्य पथ से डिगाना चाहा पर निर्भीक स्वात्म बल से आपको सदैव सफलता मिली।

आपने अनेकों चातुर्मास किए, किन्तु श्री परम पावन अतिशय क्षेत्र देवगढ़ के भयानक बीहड़ जंगल में आपने जो चातुर्मास किया वह साहसिकता की दृष्टि से चिरस्मरणीय रहेगा। डाकुओं और जंगली जानवरों के भय से व्याप्त भीषण जंगल में एक दिगम्बर संत का एकाकी रहना आश्चर्य की बात नहीं तो और क्या हो सकती है किन्तु आश्चर्य हम संसारी लोगों को ही होता है आप जैसे संतों के लिए तो क्या पहाड़, क्या बीहड़ जंगल सब समान हैं।

एक चोटी के विद्वान और महान् पद पर आसीन होते हुए भी आप अत्यन्त सरल विनम्र एवं शान्त स्वभाव वाले हैं। आपके जीवन में प्रदर्शन और आडम्बर तो नाममात्र को नहीं है।

❖

मुनि वीरसागरजी महाराज

मुनि वीर सागर का जन्म पंजाब प्रान्त के जिला सरोजपुर के समीप धर्मपुरा में अग्रवाल जाति में सेठ नारायणप्रसादजी के यहां हुआ था। आपका पूर्व नाम कल्याणमल था। आप आजीवन बाल ब्रह्मचारी रहे, आपने आदिसागरजी से प्रथम प्रतिमा धारण की थी। उत्तरप्रदेश में आपने क्षुल्लक दीक्षा ली। आचार्य शान्तिसागरजी से ऐलक एवं मुनि दीक्षा ली। आपने अपने जीवन के अन्त में समाधि धारण कर आत्म कल्याण किया।

आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज

रोज का ही यह क्रम है। डालमियानगर में धक्का-मुक्की को सहते हुए नागरिक भव्य संगमरमर की समाधि पर फूल चढ़ाये बिना अपना कारोबार शुरू नहीं करते। स्व० सूर्यसागरजी महाराज की यह समाधि जब से साहू श्री शांतिप्रसादजी ने बनवाई है, भक्तों की बेशुमार भीड़ खिचतीसी चली आती है। स्टेशन से निकलते ही रिक्शे वाले चीख-चीख कर भक्तों को उसके बारे में बताना नहीं भूलते। कहते हैं इससे शगुन अच्छा होता है और बोहनी भी अच्छी होती है, सो वे पहली सवारी वहीं की लेते हैं। ऐसे प्रभावशाली तपस्वी थे हमारे सूर्यसागरजी महाराज।

आचार्यश्री का जन्म पेमसर ग्राम (शिवपुरी) में कार्तिक शु० ६ वि० सं० १६४० की शुभ मिती में श्री हीरालाल जैन पोरवाल के घर में हुआ था। आपकी माता का नाम गेंदाबाई था। माता-पिता ने आपका नाम हजारीलाल रखा। झालरापाटन में आपके चाचा रहते थे। उन्होंने आपका पालन-पोषन कर "गोद" ले लिया। उस जमाने में शिक्षा का प्रचार कम था अतः आपकी शिक्षा प्रारम्भिक हिन्दी ज्ञान तक सीमित रही। गृहस्थावस्था में कुछ दिन रहने के बाद सं० १६८१ को रात्रि में एक स्वप्न के कारण संसार स्वरूप से विरक्ति हो गयी। बस, सिर्फ गुरू की तलाश थी।

वि० सं० १९८१ आसौज शु० ६ का दिन भाग्योदय का दिन था। इन्दौर में पू० आ० श्री शांतिसागरजी महाराज (छाणी) के पास आपने ऐलक दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री ने आपको दीक्षा देकर "सूर्यसागर" नाम दिया और आपने सूर्य की तरह चमक कर जग का अज्ञानान्धकार दूर किया। मंगसिर कृ० ११ को गुरू से हाटपीपल्या में उसी वर्ष मुनि पद की भी दीक्षा ग्रहण की। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर समाज ने आपको 'आचार्य पद' पर प्रतिष्ठित किया। आप निर्भीक वक्ता, जिनधर्म की आचार-परम्परा का प्रचार करने वाले अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य थे। जिनके उपकारों से समाज कृतकृत्य है। पू० मुनि श्री गणेशकीर्तिजी म० आपको अपने गुरुतुल्य मानकर निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं। जग-उद्धारक ऐसे आचार्यश्री के चरणों में शत-शत वंदन !

आचार्यश्री आदिसागरजी महाराज (दक्षिण)

द्वारा दीक्षित शिष्य
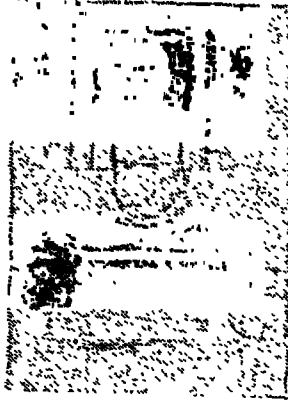
आ० श्री आदिसागरजी महाराज

✲

आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी
मुनि श्री वृषभसागरजी
मुनि श्री पिहिताश्रवजी
मुनि श्री वीरसागरजी
मुनि श्री अजितसागरजी
मुनि श्री श्रुतसागरजी
आर्यिका स्वर्णमतीजी
क्षुल्लिका चन्द्रमतीजी

आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज
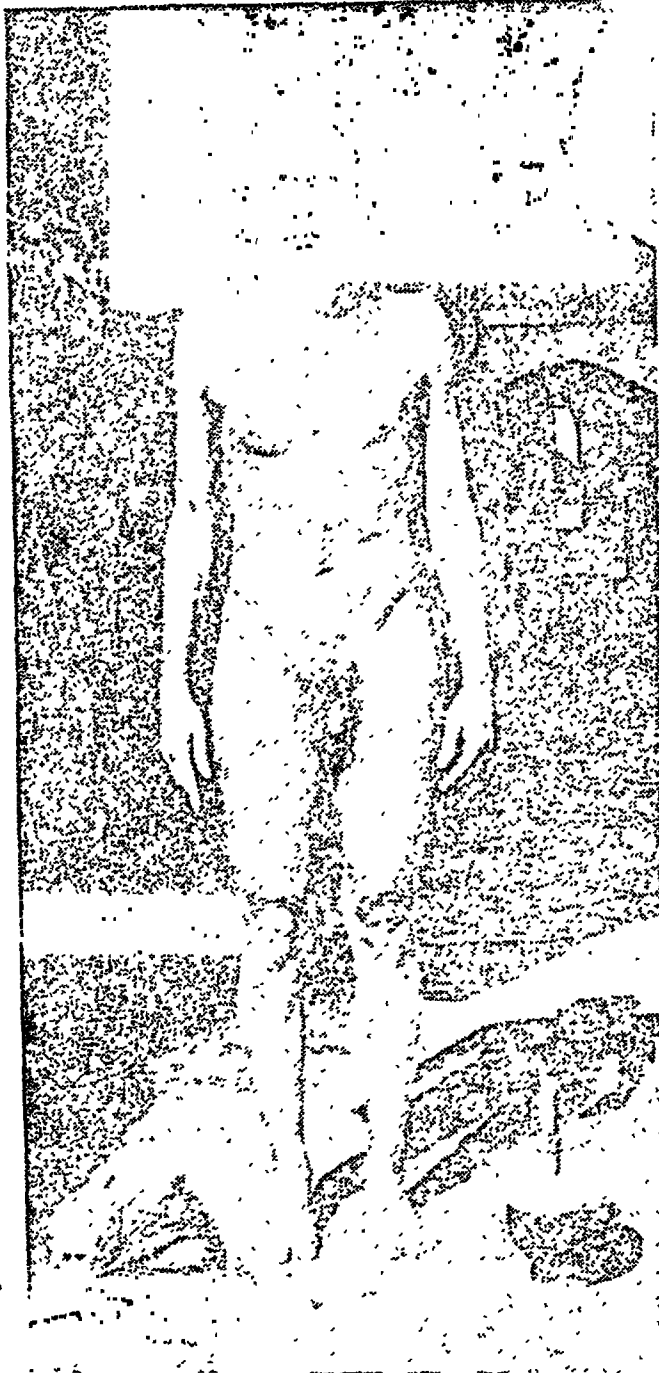
परमपूज्य प्रात:स्मरणीय तपोनिधि स्व० १०८ श्री आचार्य महावीरकीर्ति मुनि महाराज वर्तमान युग के एक आदर्श श्रेष्ठ वीतराग साधु थे।

अगाध विद्वत्ता महान कठोर तपश्चर्या आदर्श वीतरागता बहुभाषा विज्ञता अद्वितीय थी।

चन्द्रबाद फिरोजाबाद (U. P.) (चंदवार) में १४ वीं १५ वीं शताब्दी में चौहान वंशीय राजा राज्य करते थे। इन्हीं के शासन काल में जैन श्रावक राजश्रेष्ठी, प्रधानमंत्री, कोषाध्यक्ष आदि उत्तम पदों पर आसीन थे। उन्हीं के शासन काल में मोदी नामक सज्जन कोषाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित थे।

आचार्य श्री का जन्म इसी परिवार में हुआ। इस परिवार की छठी पीढ़ी में वंशीधरजी का जन्म हुआ जो नगर के सुप्रसिद्ध सेठ अमृतलालजी रानीवाले के यहां उच्च पद पर नियुक्त हुए। आपके तीन पुत्र हुए उनमें श्री रतनलालजी के पांच पुत्र हुए। श्री महेन्द्रकुमारजी (पू० आचार्य महावीरकीर्तिजी) आपके मझले पुत्र थे। माता का नाम बूंदादेवी था। वून्दादेवी परम धार्मिक प्रसन्नवदना सुशील तीर्थभक्त महिला थी।

श्री रतनलालजी संस्कृत के पाठी थे। दैनिक पाठक्रिया और मुनियों के परम भक्त थे।

भगवान् महावीर की श्रमण परम्परा को जिन आचार्यों ने बीसवीं शताब्दी में अत्याधिक आगे बढ़ाया उनमें श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य श्री गृहस्थ अवस्था में महेन्द्रकुमार के नाम से विख्यात थे।

आपका जन्म उत्तरप्रदेश के सुप्रसिद्ध औद्योगिक नगर फिरोजाबाद में हुआ। आपने वैशाख वदी ९ वि० सं० १९६७ में जन्म लेकर अपने पिता रतनलालजी और माता बूंदा देवी को अमर कर दिया। आप पद्मावती पुरवाल समाज के भूषण व महाराजा खानदान के थे। आप पांच भाईयों में एक ही निकले। कारण, चारों भाईयों ने जो कार्य नहीं किया वही कार्य आपने सहज स्वभाव से किया।

शिक्षा :

प्रारम्भिक शिक्षा फिरोजाबाद में हुई। दस वर्ष की अवस्था में आपकी माताजी का स्वर्गवास हुआ तो आपके मानस में विरक्ति का अंकुर उत्पन्न हुआ। आपने दिगम्बर जैन महाविद्यालय महासभा व्यावर में और सर सेठ हुकमचन्द महाविद्यालय इन्दौर में शास्त्री कक्षा तक ज्ञान प्राप्त किया आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण और प्रतिभा अपूर्व थी। आपने न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य का अध्ययन किया। अधिकाधिक धार्मिक शिक्षा ने आपकी उदासीनता और भी अधिकाधिक बढ़ाई, परिणामस्वरूप उभरते यौवन में ही आपने आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया।

व्रतनिष्ठा :

योंतो आप सोलह वर्ष की अवस्था से ही श्रावक धर्म का निर्दोष रूप से पालन करने लगे थे पर संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर आपने परम निर्भीक प्रखर प्रभावी वक्ता १०८ आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज से ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली। आचार्य वीरसागरजी महाराज से संवत् १९९४ में टांकाटुंका में क्षुल्लक दीक्षा ली और बत्तीस वर्ष की अवस्था में श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ली। यों आपका ज्ञान चारित्र के साथ जुड़ा।

आचार्य आदिसागरजी महाराज ने आचारांग के अनुकूल आपका आचरण देखकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। आचार्य बनकर अपने चतुर्विध संघ का सकुशलता से संचालन किया। भारत के अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर आपने दिगम्बर जैन धर्म का प्रचार किया व अनेकों को मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक आदि बनाकर आत्म-कल्याण में लगाया। आचार्यश्री महान् उपसर्ग विजयी और निर्मोही साधुरत्न थे। आपकी क्षमाशीलता, साहस क्षमता का परिचय आपके जीवन की अनेक घटनाओं से मिलता है।

उपसर्ग विजेता :

एक बार आप बड़वानी सिद्धक्षेत्र पर ध्यान-मग्न थे। किसी दुष्ट पुरुष ने मधु-मक्खियों के छत्ते पर पत्थर फेंक दिया। मधुमक्खियों ने आचार्य श्री पर आक्रमण किया। लहुलुहान होकर भी आपने ध्यान नहीं छोडा। इसी प्रकार जब आप खण्डगिरि उदयगिरि क्षेत्र की यात्रा के लिए जा रहे थे कि पुरलिया में तीन शराबी लोगों ने आचार्य श्री को अकारण ही मारने के लिए लाठियाँ उठाईं। सेठ चांदमलजी ने अपने गुरु की रक्षा करने के लिए स्वयं लाठियां खाईं पर फिर भी कुछ तो आचार्य श्री को लगीं। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आकर उन्हें खूब फटकारा। दुष्ट लोग क्षमा मांगकर भाग गये। इसी प्रकार सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र पर भी अगहन में असहनीय शीत नग्न शरीर पर झेलकर अपनी अपार विरक्ति का परिचय दिया।

आचार्यश्री के समग्र शरीर पर ब्रह्मचर्य की आभा दिखती थी। आप घन्टों एक आसन से ध्यान करते थे। आचार्य श्री की निर्वाण भूमियों के प्रति अपार निष्ठा थी।

शायद इसीलिए कि आप स्वयं निर्वाण के तीव्र अभिलाषी थे। जब गिरनार क्षेत्र के दर्शनकर आप शत्रुञ्जय अहमदाबाद होते हुए मेहसाना पहुँचे तब वहाँ ६ फरवरी, १९७२ को आपका समाधि-मरण हो गया। चूँकि आपको अपनी मृत्यु का आभाष होने लगा था, अतएव पहले ही संघ की सुव्यवस्था कर दी थी।

भट्टारकों के प्रति उद्गार :

आज जो प्राचीन शास्त्र ग्रन्थ पढ़ने, देखने, दर्शन करने को मिल रहा है वे सब भट्टारकों की देन है क्योंकि वह एक समय था जो राजा, महाराजा, श्रावक आदि जैनी थे, जो स्मृतियां छोड़ गये, हैं, सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, प्राचीन मन्दिर, मूर्तियां, अवशेष, इतिहास एवं साक्षात् दक्षिण प्रान्त में विशेष कर दर्शन करने देखने से पता चलता है। उसके बाद वह समय आया जो जैन तीर्थों पर मन्दिरों पर अन्य समाज ने अधिकार कर लिया एवं नष्ट कर दिया तथा जैन संस्कृति को नष्ट करने के लिए ग्रन्थों को छह मास पर्यन्त जलाये। परन्तु जो भी साहित्य संस्कृति देखने को मिल रही है वह सब भट्टारकों की देन है।

भट्टारक जैन के बादशाह हैं। जैनधर्म, संस्कृति, तीर्थक्षेत्रों की उन्होंने रक्षा की।

❖

श्री वृषभसागरजी महाराज

पूर्व वृत्तान्त—जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में दक्खन भाग में महाराष्ट्र प्रान्त है। उसमें करवीर जिले में पंचगंगा के किनारे मानगांव में बाबगौंडा नामक पाटिल रहते थे। उनके सावित्री नामक सुशील पत्नी थी। उनके आदगौंडा नामक सद्गुणी पुत्र था।

आदगौंडा की आयु के बारहवें वर्ष में उनके मां-बाप का स्वर्गवास हुआ। इसलिये गृहस्थी का भार उनके ऊपर स्वयं आ पड़ा। उसके बाद उनका विवाह एक सुशील कन्या के साथ हुवा और वे दिग्रस को सहपरिवार रहने के लिए गये।

आदगौंडा को पांच पुत्र हुए। किन्तु दैवलीला के कारण उनके बीच के पुत्र की गांव के अमानुष कलह में हत्या हुई। इसलिए वे गांव छोडकर सांगली को रहने के लिए गये। उन्होंने व्यापार में बहुत धन संपत्ति तथा मान कमाया। वे एक महान श्रेष्ठी कहलाने योग्य हुए। किन्तु उनके मन को शान्ति नहीं थी। आदगौंडा सुख में थे किन्तु उनके मन में हमेशा आता था कि मेरा कमाया हुआ परिग्रह मेरे साथ नहीं जायेगा क्योंकि विद्वानों ने कहा है कि (मराठी भाषामें)

"गाधा गिरधा उपा मऊषा येथे चकीं रहाणार।
सर्व संपत्ति सोडून अंति एकटेच जागार॥"

ऊपर के मराठी का मतितार्थ यह है कि, सब परिग्रह यहीं रहेगा। साथ कुछ भी नहीं जायेगा। इस तरह उनको वैराग्य हुवा। अन्त में वयोवृद्ध महान् तपस्वी, आचार्य १०८ श्री अनंतकीर्ति महाराज के पास ११ मार्च १९५१ में उन्होंने शुभ मुहूर्त में क्षुल्लक दीक्षा ली। उस समय उनके साथ वज्रकीर्ति, अर्ककीर्ति रविकीर्ति इन तीनों ने दीक्षा ली। दीक्षा समारंभ में आदगौंडा का नामाभिधान वृषभकीर्ति हुवा। इसमें वज्रकीर्ति और रविकीर्ति का निधन हुवा। पूज्य लक्ष्मीसेन भट्टारक पट्टाचार्य महास्वामी मठ कोल्हापुर रायबाग तसूर इनके पास चार वर्ष तक रायबाग में रहकर धर्म की शिक्षा ली। तदनंतर कडोली, बेलगांव, कोल्हापुर, कारनार शिरसी, लातूर, मुरुड आदि स्थानों में उनके चातुर्मास हुए।

मिती वैशाख सुदी ७ ता० १०–५–६२ गुरुवार दिन में शिरड शहापुरा में धर्म शिक्षा शिविर चल रहा था, उस समय कारंजा निवासी संचालक वर्ग, पंडित उत्कलराय विद्यार्थी तथा बहुत नगरवासी महमानों के समक्ष श्री पूज्य १०८ आदिसागर महाराज ने क्षुल्लक १०५ वृषभकीर्तिको ऐलक दीक्षा दी। उस समय उनका नामाभिधान श्री १०५ वृषभसागर रखा गया। उसके बाद कारंजा और बार्शी में चातुर्मास हुए।

बार्शी में उनका चातुर्मास बड़े सानंद से हुवा। आपकी अमृतमयी वाणी ने महान् धर्मप्रभावना की। इस पीढ़ी में ऐसा चातुर्मास पहला ही हुआ। बहुत से जैनी होते हुए उनको धर्म के असली तत्वों की जानकारी नहीं थी। आपकी प्रभावना से कभी न आने वाले लोग मंदिर में आने लगे। इसका एक मात्र कारण आपका विशुद्ध चारित्र है। वे लोग आज स्वयं इकट्ठे होकर सानंद धर्मचर्चा शास्त्र आदि अध्ययन करते हैं। ऐसी महान आत्मा ने आत्म कल्याण किया।

कुन्थल गिरी सिद्धक्षेत्र पर आपने ४१ दिन का समाधिमरण कर स्वर्ग को प्रयाण किया।

११३ वर्ष की उम्र में आपने समाधि धारण की। अक्टूबर सन् १९८३ में आपकी समाधि पूर्ण हुई।

❖

मुनि श्री पिहिताश्रवजी महाराज

आपका जन्म वारंग दक्षिण भारत में सन् १८५८ में कालप्पाजी के यहाँ हुवा था। आपकी माता का नाम सावित्री था। आपकी लौकिक शिक्षा ७ वीं तक ही हो पायी थी। पू० आदिसागरजी महाराज से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। कोपरगांव में आपने २३ वर्ष की उम्र में क्षुल्लक दीक्षा ली। १ माह के बाद आपने मुनिश्री से मुनि दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् बाहुबली, उदगांव, सांगली आदि स्थानों में विहार कर जैन धर्म की प्रभावना करते रहे। आपने गुरु के साथ म०प्र०,बिहार, राजस्थान, गुजरात, आदि में विहार कर धर्म प्रभावना की। आपने अपने जीवन में अनेकों उपवास आदि किए। तपस्वी जीवन ही मुनियों को कर्मनाश का कारण है तथा आपने अनेक प्रकार की कठोर साधना की अन्त में समाधि पूर्वक प्राणों को त्यागा।

❖

मुनि श्री वीरसागरजी महाराज

वह पावन वेला, जब श्री गुलाबचन्द खेमचन्द दोशी के पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, उस पावन वेला को क्या पता था कि मैं विश्व को आत्मोन्नति का संदेश देनेवाले पुरुष को जन्म दे रही हूं। माता सौ० 'चंचल बाई' को क्या पता था कि मेरी कूख से 'अचल' सुख के लिये मेरा पुत्र परमहंस दीक्षा लेगा।

संवत् १८६२ चैत्र वदी १३ रविवार दिनांक ५-५-४० को चरित्र नायक का जन्म हुआ। जन्म समय में अश्विनी नक्षत्र का पहला चरण था। इस हिसाब से मेष राशि, राशि स्वामी मंगल, वर्ण क्षत्रिय, देवगण, अश्व योनि, आद्य नाड़ी आती है। (नक्षत्र नाम चुन्नीलाल) (जन्म समय रात्रि १०.३० बजे)

कुल परिचय—पूज्य महाराजजी के पूर्वज ईडर (गुजरात) के रहने वाले हैं। आपके पितामह कलकत्ता में एक कुशल व्यापारी थे। दूसरे जागतिक महायुद्ध के समय वित्त हानि होने से मानसिक क्षति हो गयी। सन् १९२० में उनका देहांत हो गया। चरित्र नायक के पिताजी उस समय केवल १५ वर्ष के थे। व्यापार के लिये श्री गुलाबचन्दजी कुर्डवाडी (जि० सोलापुर, महाराष्ट्र) आये। वैसे ही व्यापार निमित्त भांबुर्डी आये। यहीं पूज्य महाराजजी का जन्म हुआ। आपके जन्म समय आपकी माताजी को इतना हर्ष हुआ कि वह हर्ष हर्षवायु बना। लौकिक शिक्षण—प्राथमिक शिक्षण ६ वीं कक्षा तक भांबुर्डी में प्राप्त करने के उपरांत फलटण में हाईस्कूल का शिक्षण पूर्ण किया। उच्च शिक्षा प्राप्ति के हेतु फर्ग्युसन कॉलेज, पूना गये और वी० जे० मेडिकल कॉलेज, पूना से सन् १९६४ में 'एम. बी. बी. एस.' की उपाधि प्राप्त करली।

व्यावसायिक यश—सन् १९६५ में जि० परभणी (मराठवाडा) आये और स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। जो भी पेशेंट आपके हॉस्पिटल में आते उन्हें इसका अनुभव होता कि डॉक्टर एक कुशल डॉक्टर होते हुए भी अतीव सरल परिणामी एवं दयालु हैं। किसी पेशेंट से कभी भी ज्यादा फीस निकालने के परिणाम नहीं हुए और न जड़ सम्पत्ति के संग्रह करने का कोई भरसक प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि अधिक संपत्ति का संचय न हुआ।

वैवाहिक जीवन—सन् १९६६ में सोलापुर के श्री छगनलालजी गांधी इनकी सुपुत्री कु० शकुन्तला से विवाह हुआ। विवाहोपरांत कु० शकुन्तलाका नाम सौ० अनद्या रक्खा गया। सौ० अनद्यासुविद्य (B. A. Hom.), संयमी और सरल स्वभावी थीं। सांसारिक जीवन निर्विघ्न और अत्यन्त सुख पूर्ण रहा। चरित्र नायक ने जिसदिन दिगंबर दीक्षा ली उसी समय सौ० अनद्याबाई ने संसार त्याग दिया। यही उनकी महानता, त्याग गुणों की झलक है।

विरक्तिः—सन् १९६८ से आप (मुनिराज) अध्यात्म की ओर अग्रसर हुए। सन् १९७१ में श्री सि. क्षे. कुन्थलगिरी पर पूज्य मुनि १०८ श्री भव्यसागर महाराज के चरणों में कुछ व्रत ग्रहण किये। श्री महावीरजी, श्री गिरनार क्षेत्र, श्री बावनगजाजी आदि तीर्थक्षेत्रों के पावन दर्शन किये। उत्तरोत्तर वैराग्य भाव की वृद्धि होती रही। अंत में जब विरक्ति चरम सीमा पर पहुंची तो आपने दिगम्बर दीक्षा लेने का निश्चय किया और परिणाम स्वरूप दिनांक १४-५-७५ अक्षय तृतीया की सुवर्ण वेला में अकलूज (जि० सोलापुर) में प० पू० १०८ श्री आदिसागरजी महाराज के करकमलों से दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की।

एक सज्जन ने दीक्षोपरांत मुझ से प्रश्न किया कि क्या महाराज की डिग्री M.B.B.S. केन्सिल हुई है। प्रश्न सीधा तो दिखता है परन्तु है कठिन। कुछ सोच विचार न करते हुए मैंने उत्तर में कहा, "हां महाराज आज भी M B.B.S. (मास्टर ऑफ ब्रह्मचर्य एण्ड बैचलर ऑफ सम्यक्त्व) है जिस जीव ने अनेक रोगियों की बीमारियाँ दूर की वही M.B.B.S. डॉक्टर का जीव आज संसारी जीवों का भवरोग दूर कर रहा है।

जहां तक मुझे ज्ञात है मैं कहूंगा आपके विरक्ति के भाव स्वयं प्रेरित थे। ऐसी कोई अनुचित भयंकर घटना नहीं जिससे आपने संसार त्याग किया। आज महाराज की दिनचर्या ऐसी स्वाभाविक है कि देखनेवालों को लगता है कि महाराज २०-२५ वर्षों पूर्व से दीक्षित हैं। परिणाम अतीव शांत है। चर्या निर्दोष है। प्रवचन कुशलता तो अति उच्च श्रेणी की है।

मुनि श्री अजितसागरजी महाराज

नसलापुर ग्राम के किसान परिवार में १८८५ में जन्म हुआ। पिता का नाम नेमाधा माता का नाम सीताबाई। इनका पुत्र तारचा लड़कपन में खेत का काम किया। युवावस्था में शान्तिसागर अनाथाश्रम शेडवाल (बेलगांव) में रहकर कुछ अध्ययन किया। फिर आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का प्रवचन सुनकर वैराग्य वृत्ति में दृढ़ हो गए। घर में मां बाप जिनधर्म पालन करने वाले थे। वैराग्य वृत्ति बढ़ती गई। फिर चिक्कोडी जिला बेलगांव में मुनि श्री आदिसागरजी महाराज के करकमलों द्वारा क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की। फिर परम पूज्य श्री १०८ वृषभसागरजी महाराज के करकमलों द्वारा महांतपुर गांव में मुनि दीक्षा ग्रहण की। अब तक ध्यान स्वाध्याय आदि करते हुए गांव गांव में उपदेश सुनाते हुए भ्रमण कर रहे हैं और भव्यजीवों को धर्मोपदेश दे रहे हैं।

मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज

आपका जन्म हासूर में श्रेष्ठी श्री ब्र० बन्नाप्पा के यहां हुआ। माता का नाम श्रीमति रुक्मिणी-देवी था। आपके पिता व्यापार किया करते थे। आपके मन में संसार के प्रति वैराग्य आया तथा मुनि आदिसागरजी महाराज से वी० सं० २४९७ माघ कृष्णा ६ को चिक्कोड़ी में मुनि दीक्षा लेकर भ० आदिनाथ के बतलाए हुए मार्ग पर चल रहे हैं। आपका पूर्व नाम ब्र० बाबूराव माणगांव था।

❖

आर्यिका स्वर्णमति माताजी

आपका पूर्व नाम सोनाबाई था। आपके पिता का नाम श्री साक्काप्पा तथा मां का नाम श्रीमति सत्यवती था। आपने शैव लिंगायत जाति वैश्य कुल में जन्म लिया था। बीजापुर जिला में सीरगुप्पी कर्नाटक के रहने वाली थी। छोटी उम्र में आपके विचार धर्म के प्रति थे। १८ वर्ष की

उम्र में आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा धारण की। २२ वर्ष की आयु में देशभूषणजी महाराज से ७ वीं प्रतिमा धारण की। श्रावण शुक्ला पंचमी हस्त नक्षत्र को मुनि आदिसागरजी ने आर्यिका पद में दीक्षित किया। आपके द्वारा दक्षिण में धर्म का काफी विकास एवं समय समय पर धर्म प्रभावना के कार्य हुए।

क्षुल्लिका चन्द्रमति माताजी

अक्षय तृतीया (दिनांक १४-५-७५) का वह दिन कोई नहीं भूल सकता जिस दिन से सौ० अनघा चंद्रकांत दोशी पूज्य क्षु० चन्द्रमति माताजी के रूप में दुनियां के सामने आई। आपका जन्म दिनांक १७-४-४४ को वैजापुर में हुआ। आपके पिताजी श्री छगनलालजी गांधी एक अच्छे व्यापारी हैं। आपके माताजी का नाम सौ० सोनुबाई है तथा आपके ३ बहिन तथा ४ भाई हैं। जन्म नाम कु० खीरनमाला तथा पाठशाला नाम कु० शकुन्तला है। लौकिक शिक्षण में आप बी० ए० ऑनर्स (Geography) पास हैं तथा H. M. D. S. यह वैद्यकीय उपाधि भी प्राप्त की।

गार्हस्थ्य जीवन—सन् १९६५ में आपका विवाह डॉ० चन्द्रकान्त गुलाबचन्द दोशी (वर्तमान में पू० १०८ वीरसागरजी महाराज) इनके साथ हुआ था। आप रूप लावण्य संपन्न हैं तथा विद्वत्ता, शालीनता भी साथ है। आपकी वृत्ति पतिसेवा परायण तथा समर्पण वृत्ति है।

आध्यात्मिक अध्ययन :—पति के साथ आपने तत्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, द्रव्य संग्रह, प्रवचनसार इन कठिन से कठिन ग्रन्थों का अध्ययन किया।

विरक्ति :—जिस वेग से आपके पति के हृदय में विरक्ति भाव जागे उसी वेग से आप भी विरक्ति में कम न थीं। अत: पति के साथ ही साथ दीक्षा लेना स्वाभाविक है।

विशेपत : आप उपदेश ऐसा देती हैं जो सामान्य जनों के गले में उतरे। आपके उपदेश से अनेक भव्य जीव स्वाध्याय रुचि संपन्न हुए। दीर्घायु तथा आत्मोन्नति की कामना के साथ आदरांजलि समर्पित है।

❖

आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

आ० श्री सन्मतिसागरजी महाराज

मुनि श्री महेन्द्रसागरजी
,, यजेन्द्रसागरजी
,, पार्श्वसागरजी
,, योगेन्द्रसागरजी
,, ऋषभसागरजी
,, गुणसागरजी
,, चारणसागरजी
,, मेघसागरजी
,, गौतमसागरजी
,, रयणसागरजी
,, तीर्थसागरजी
,, हेमसागरजी
,, रविसागरजी

ऐलक भावसागरजी
क्षुल्लक वीरसागरजी
क्षुल्लक पूर्णसागरजी
क्षुल्लक चन्द्रकीर्तिजी
क्षुल्लक वीरसागरजी
क्षुल्लक समतासागरजी
आर्यिका विजयमतीजी
आर्यिका नेमवतीजी
आर्यिका अजितमतीजी
क्षुल्लिका दर्शनमतीजी
क्षुल्लिका जिनमतीजी
क्षुल्लिका निर्मलमतीजी

मुनि श्री महेन्द्रसागरजी महाराज

आपका जन्म भगवां जिला छतरपुर में संवत् १६७१ कार्तिक सुदी पंचमी को गोलापूरव जाति में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री पंचमलालजी तथा माता का नाम भूरीवाई था। आपकी लौकिक शिक्षा सामान्य ही रही, बाल्यकाल से ही आपकी प्रवृत्ति धर्म के प्रति अति तीव्र थी, अतः आपने जैन ग्रन्थों की परीक्षाएं देकर अनेकों विषय में योग्यता प्राप्त की, आपने आचार्य श्री सन्मतिसागरजी से क्रमशः क्षुल्लक दीक्षा तथा जेठ वदी चतुर्थी को संसार को असार जानकर मुनि दीक्षा धारण की। आप जगह जगह विहार कर धर्म प्रभावना कर रहे हैं, धन्य है दिगम्बर मुद्रा को।

❖

मुनि श्री यजेन्द्रसागरजी महाराज

आपका पूर्व नाम शान्तिनाथ था। दशा हुम्मड़ जाति में जन्म लिया। जन्म स्थान पारसोला (उदयपुर) था। आपके पिताजी का नाम जबरलालजी तथा माताजी का नाम श्री भूरीवाई था। सं० २०३६ में आ० सन्मतिसागरजी महाराज से खेरवाड़ा में मुनि दीक्षा ली।

मुनि श्री पार्श्वसागरजी महाराज

मांगीलालजी जैन बड़जात्या का जन्म मींडा भैंसलाना (जयपुर) राजस्थान में श्रेष्ठी श्री गुलाबचन्द्रजी बड़जात्या की धर्मपत्नी की कुक्षि से वि० सं० १६८८ को हुआ था। आपकी लौकिक शिक्षा सामान्य ही रही। धार्मिक ज्ञान साधारण ही था। आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज की निरन्तर एक वर्ष तक संगति व सदुपदेश सुनने से आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुवा तथा पौष शुक्ल

एकादशी वि० सं० २०२६ को तीर्थक्षेत्र वाराणसी (उत्तरप्रदेश) में मुनि सन्मतिसागरजी से मुनि दीक्षा ली । आप अत्यन्त सरल स्वभावी हैं, आप अनेकों स्थलों पर विहार कर आत्म साधना के साथ धर्म प्रभावना कर रहे हैं ।

मुनि श्री योगेन्द्रसागरजी महाराज

आपका (श्री रमेशचन्द्र शर्मा का) जन्म सन् १९६१ मार्च में श्री फौदलप्रसादजी शर्मा के यहां नबालीपुर (M. P.) में हुवा था । आपने जन्म से ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर के जैन धर्म की शिक्षा ग्रहण की । आपने लौकिक शिक्षा हायर सैकेण्डरी तक की । दिगम्बर जैन साधुओं की संगति से आपके अन्दर जिनधर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हुई तथा आपमें मुनि संयमी जीवन व्यतीत करने की भावना जागृत हुई आपने २५-२-७९ ई० चन्देरी (बामोर) में आ० सनमतिसागरजी से मुनि दीक्षा धारण की । आज भी आप जैनागम के सिद्धान्त ग्रंथों का अन्वेषण कर रहे हैं तथा मुनि धर्म के मूलगुणों का पालन कर रहे हैं । आप प्रखरवक्ता तथा सरलमना मुनि हैं । धन्य है आपका जीवन ।

मुनि श्री ऋषभसागरजी महाराज

आपका जीवन बाल्य अवस्था से ही सत् संगति में बीता है । आपने १६ वर्ष की उम्र में गृह त्याग किया तथा १८ वर्ष की उम्र में मुनि सन्मतिसागर जी से दिगम्बरी दीक्षा प्राप्त की है ।

आपने लौकिक शिक्षा हायर-सैकण्डरी तक ही प्राप्त की है। आपका त्याग धन्य है जो छोटी अवस्था में अधिक अध्ययन कर प्राणी मात्र का उद्धार कर रहे हैं। आपके उपदेश में जैन, अजैन, हिन्दू, मुस्लिम आदि सभी वर्ग के लोग आकर उपदेश श्रवण करते हैं। आपके हृदय में प्राणी मात्र का उद्धार हो यही भावना रहती है।

मुनि श्री गुणसागरजी महाराज

श्री दीपचंदजी ने ओबरी जि० डूंगरपुर में सं० १६४० में दशा हुम्मड़ जाति में जन्म लिया था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने कपड़े का व्यापार किया। आपका मन सांसारिक कार्यों में नहीं लगा तथा मुनि कुन्थुसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। नागफणी पार्श्वनाथ में आचार्य सन्मति-सागरजी से मुनि दीक्षा दिनांक ८-५-८३ को ली।

मुनि श्री चारणसागरजी महाराज

श्री जगन्नाथजी का जन्म जेसवाल जाति में सं० १९७३ में अशोक नगर मध्यप्रदेश में हुवा था। आपने सामान्य शिक्षा प्राप्त की तथा व्यापारिक कार्य में लग गये। शुभ संयोग से मुनि श्री के दर्शन एवं प्रवचनों से प्रभावित होकर आचार्य श्री से खेरवाड़ा जि० उदयपुर में सं० २०३९ में जेष्ठ कृष्ण पक्ष में मुनि दीक्षा ले ली। आप सरल परिणामी तथा आर्षमार्ग के अनुसार मुनिचर्या में लीन हैं।

मुनि श्री मेघसागरजी महाराज

श्री धूलचन्दजी का जन्म छीतरी राजस्थान में सं० १९७१ में हुवा था। सामान्य शिक्षा प्राप्त की। आपने दशा हुम्मड जाति में जन्म लिया। दाहोद गुजरात में सन् १०-१०-८२ को मुनि दीक्षा आ० सन्मतिसागरजी से ली। आप संघ में रहकर मुनि व्रतों को पाल रहे हैं।

❖

मुनि श्री गौतमसागरजी महाराज

सन् १९४० में नागपुर महाराष्ट्र में जन्म लिया था। आपके पिताजी का नाम श्री छगनलालजी पहाड़िया था। आपने सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद काटोल महाराष्ट्र में व्यापार किया। आपका पूर्ण नाम नेमीचन्दजी था। सन् १९८१ नागपुर में क्षुल्लक दीक्षा ली। मुनि दीक्षा १९८२ दाहोद में ली। आपका नाम आचार्य श्री ने गौतमसागर रखा।

मुनि श्री रयणसागरजी महाराज

सं० १९९७ में सरां (खण्डवा) में जन्म लिया था। आपकी शिक्षा मैट्रिक तक इन्दौर में हुई। युवा अवस्था में आने के बाद सामान्य धन्धा करने लगे। तारीख १४-४-८२ को बावनगजा बड़वानी में आपने मुनि श्री से मुनि दीक्षा ली। आप भरा पूरा परिवार छोड़कर आत्म कल्याण के पथ में लगे हुए हैं। वर्तमान में आप आचार्य श्री के साथ ही हैं तथा आत्म साधना कर रहे हैं।

मुनि श्री तीर्थसागरजी महाराज

आपका जन्म अलवर जिला राजस्थान में सन् १९५१ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री बाबूलालजी व माताजी का नाम श्रीमती दुलारीबाई है। आपके ६ भाई एवं ३ बहिनें हैं। आपके पिताजी १५ साल से मुनि सेवा में रत हैं व धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। आपकी भावना एकदम वैराग्य की ओर जाग्रत हुई और थोड़े ही समय में आचार्य श्री विमलसागरजी के साथ रहकर आपने क्रमशः दूसरी, पांचवीं व सांतवीं प्रतिमा धारण की व धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। सावन सुदी ६ तारीख २-८-७९ को सोनागिरीजी में चन्द्रप्रभु प्रांगण में आचार्य श्री विमलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। आप बड़े शान्तचित्त व मृदुभाषी हैं। आपका अधिकतर समय धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने में व्यतीत होता है। बड़वानी में आपने मुनि दीक्षा आ० सन्मतिसागरजी से ले ली।

❖

मुनि श्री हेमसागरजी महाराज

पूर्व नाम :—श्यामलाल जैन

जाति : खण्डेलवाल (लुहाड़िया)

पिता का नाम—स्वर्गीय श्री अनूपचन्द जैन

माता का नाम—कमलेश जैन

जन्म स्थान : खेरलीगंज

जन्म तिथि : दि० १०-७-५५

क्षुल्लक दीक्षा गुरु का नाम : आचार्य श्री सन्मतिसागरजी

क्षुल्लक दीक्षा ग्राम : सिहोरा

क्षुल्लक दीक्षा नाम : क्षु० पवनसागर

क्षुल्लक दीक्षा दिनांक ३०–११–७६

मुनि दीक्षा गुरु का नाम—आचार्य श्री सन्मतिसागरजी

मुनि दीक्षा का नाम : मुनि श्री हेमसागरजी

मुनि दीक्षा दिनांक २८–२–८०

मुनि दीक्षा ग्राम बुढार (म० प्र०)

लौकिक शिक्षा B. A.

धार्मिक शिक्षा—द्रव्यसंग्रह, छहढाला, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थसूत्र, गोम्मटसार, परीक्षामुख, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, समयसार, प्रवचनसार, पन्चास्तिकाय, न्याय दीपिका, पंचाध्यायी राजवार्तिक ।

वर्तमान चातुर्मास—कारंजा (महाराष्ट्र)

मुनि श्री रविसागरजी महाराज

मुनि श्री रविसागरजी महाराज

परिचय अप्राप्य

ऐलक श्री भावसागरजी महाराज

श्री ऐलक १०५ भावसागरजी के वचपन का नाम नाथूलालजी जैन था। आपका जन्म आज से लगभग ५५ वर्ष पूर्व बारा सिवनी (म० प्र०) में हुआ था। आपके पिता श्री धर्मदासजी थे। जो सरकारी नौकरी करते थे। आपकी माता आनन्दवाई थी। आप गोलापूर्व जाति के भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण एवं हिन्दी भाषा में हुई है। आप बाल ब्रह्मचारी रहे हैं।

स्वाध्याय करने से आपके मानस में वैराग्य भाव उठे व आपने कार्तिक सुदी तेरस विक्रम संवत् २०२५ को जवलपुर में श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजी से ऐलक दीक्षा ले ली। आपने जवलपुर आरा आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

❖

क्षु० श्री वीरसागरजी महाराज

साधु कभी विस्मय नहीं करते, पर क्षीणकाय हीरालाल जैन खबरा ग्रामवासी (पन्ना) रत्नत्रय पाथेय की करबद्ध याचना करता जब सम्मुख आ ही गया तो शाश्वतं तीर्थराज सम्मेदगिरि की वंदना में निमीलित पलकें खोलते हुए आ० श्री सन्मतिसागरजी म० भी उसे क्षण भर बस निहारते ही रह गये। जिस तन को इंद्रियों के असहयोग का अंतिमेत्थम् मिल चुका हो उसकी अर्जी पर फैंसला करना आसान काम न था। संयम की दुर्गम पगडंडियों को नापते हुए कहीं दुर्बल पैर लड़खड़ा न जाँय यह दुविधा निर्णय की राह रोके अलग खड़ी थी। क्षण भर की शांति के बाद आचार्य श्री ने याचक की निश्छल आंखों में झांका तो अन्तस् की गहराई में उतरते ही चले गये और मिली कसमसाहट की झलक। पल भर में दुविधा का कुहरा छट गया। सातवीं प्रतिमा के व्रत देकर प्यारेलाल के पुत्र हीरालाल को भी व्रतियों की जमात में मिला लिया गया। जल्दी ही पौष कृ० ४ सं० २०३६ को कटनी में उसके कठिन इम्तिहान की घड़ी भी आ गई और आदेश से क्षण भर में हीरालाल ने कैशलोंच कर देह से अपनी निर्ममत्वता सिद्ध कर दी। फिर सब कुछ बदल गया। गांव का हीरालाल सबका हीरा बन गया। आचार्य श्री ने उसे क्षुल्लक वीरसागर नाम से अभिहित करते हुए जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की। गुरु की वैयावृत्ति करते हुए क्षुल्लक वीरसागर महाराज शास्त्रों के गहन अध्ययन में निमग्न हैं।

❖

क्षुल्लक श्री पूर्णसागरजी महाराज

सत्रह वर्षीय नवयुवक अरविन्द को साधु संघ का दर्शन होते ही वैराग्य हो गया तो बस्ती के लोगों ने इसे जन्मांतरों का संस्कार ही माना। सुकोमल काया साधना पथ की कठिन यात्रा से कहीं कुम्हला तो नहीं जायगी बस यही तर्कणा उनके चर्चा की रह गयी थी। पथरिया (दमोह) की बस्ती में अजैन भी जैन श्रावक के व्रत पालते हैं। वहां की गलियों में खेलने वाला अरविन्द मुख पर विराग के भाव लेकर शाम को घर लौटता तो पिता कपूरचन्द जैन ने अच्छी तरह समझ लिया कि उनका कुल दीपक गृह त्यागकर जग दीपक बनकर रहेगा। सो गृहस्थी की चर्चा से उन्होंने स्वयं ही किनारा कर लिया। माता श्यामा के

हृदय में बहू की साध थी पर वह साध साध ही रह गई। राग पर विराग को विजय हुई और १० मई ६३ को जन्मा अरविन्द २ जून ८० को बुढ़ार (म० प्र०) में आ० श्री सन्मतिसागरजी म० के चरण कमलों में जा उपस्थित हुआ। पानी की धारा भी कहीं रुकती है। गुरु ने सद्ज्ञान से जानकर सुपात्र को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान करने का निश्चय कर लिया। विशाल जनसमूह के समक्ष केशलोंच की कठिन परीक्षा शुरू हुई। गुरु की गरिमा को बढ़ाने वाला अरविन्द सफल हुआ। प्रसन्नचित्त गुरु ने 'पूर्णसागर' नाम से आपको अभिहित करते हुए शिवपथ पर अग्रसर होने का आदेश दिया। तभी से आप स्वाध्याय में लीन होकर आत्म कल्याण कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री चन्द्रकीर्तिजी

क्षुल्लक श्री चन्द्रकीर्तिजी

परिचय अप्राप्य

❖

क्षुल्लक श्री वीरसागरजी महाराज

क्षुल्लक श्री वीरसागरजी महाराज

परिचय अप्राप्य

क्षुल्लक श्री समतासागरजी महाराज

श्री अमृतलालजी का जन्म डूंगरपुर राजस्थान में ६० वर्ष पूर्व हुवा था। आपके पिताजी का नाम कस्तूरचन्दजी दशाहुम्मड़ जाति के थे। आपके ३ पुत्र, १ पुत्री है। १ पुत्री कु० वीणा जैन आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर आत्म साधना कर रही है। आपने भरे पूरे परिवार को छोड़कर पू० आ० सन्मतिसागरजी महाराज से क्षु० दीक्षा दिनांक ६-११-८३ को डूंगरपुर में ही धारण की। अपने नाम के अनुसार ही आपकी वृत्ति है। धन्य है आपका जीवन।

❖

आर्यिका विजयमति माताजी

आपका जन्म पिड़ावा (राजस्थान) जिला झालावाड़ में सन् १९२८ को हुवा था। आपके पिता का नाम राजमलजी था तथा माता का नाम कस्तूरीबाई था। आपका गृहस्थावस्था का नाम अहिल्याबाई था। गुरु के प्रवचनों से आपके अन्दर आत्म ज्ञान जागृत हुवा तथा मुनि सन्मति-सागरजी से राजस्थान कोटा कार्तिक सुदी ३ सं० १९३२ को आर्यिका दीक्षा धारण की। आप राजस्थानी भाषा की जानकार हैं निरन्तर आत्म कल्याण हेतु स्वाध्याय मनन् चिन्तन में निरत हैं।

आर्यिका नेमवती माताजी

आपका जन्म मई सन् १९३० ई० में फफोत (टून्डला) आगरा उत्तरप्रदेश में हुवा था। आपके पिता व्यापारी थे उनका नाम श्री प्यारेलालजी जैन तथा माता का नाम श्रीमती जयमाला देवी था। सामान्य लौकिक शिक्षा प्राप्त की थी। दिगम्बर जैन साधुओं के प्रवचन सुनकर वैराग्य हुवा तथा आ० श्री सन्मतिसागरजी से १५ अप्रेल १९७५ ई० कलकत्ता में दिगम्बरी दीक्षा ले ली। आप कठोर तपस्वी जीवन व्यतीत कर रही हैं, निरन्तर व्रतोपवास व धर्म साधना में तल्लीन रहती हैं। आपका पूर्व नाम विहुबाई था।

आर्यिका अजितमति माताजी

पू० माताजी का जन्म सीकर जिले में खुर नामक ग्राम में हुवा था। आपने आ० सन्मति-सागरजी महाराज से ४ वर्ष पूर्व आर्यिका दीक्षा धारण की।

क्षुल्लिका दर्शनमतिजी

आपका जन्म पमला गोनोर म० प्र० में हुवा था। आपके पिता का नाम देवचन्दजी था। आप युवा अवस्था में संन्यास धारण कर आत्म कल्याण के मार्ग में निरत हैं। दाहोद नगर गुजरात में आ० सन्मतिसागरजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली।

क्षुल्लिका जिनमतिजी

आपका जन्म जबलपुर में हुवा था। आपके पिता का नाम ज्वालाप्रसादजी एवं माताजी का नाम श्री कस्तूरीवाई था। आपका पूर्व नाम चेनावाई था। आ० सन्मतिसागरजी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली। आप धर्म ध्यान में लीन रहती हैं तथा आत्म साधना के पथ पर साधना कर रही हैं।

क्षुल्लिका निर्मलमति माताजी

आपका पूर्व नाम मुन्नीबाई था। आपके पिता प्रतिष्ठित व्यापारी श्री कपूरचन्दजी जैन थे। तथा माता का नाम चेनवाई था। आपने छोटी अवस्था में ही क्षुल्लिका दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा गुरु मुनि सन्मतिसागरजी से कटनी में संवत् २०३० में दीक्षा ली थी। दीक्षा लेने के वाद आप निरन्तर धर्म साधना में रत रही हैं।

❖

मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी महाराज (दक्षिण)

द्वारा दीक्षित शिष्य

मुनि श्री सुवाहुसागरजी

श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज

मुनिश्री सुबाहुसागरजी महाराज

आपका जन्म विक्रम सं० १९८६ में हुलगी ग्राम जिला वेलगांव व मैसूर प्रान्त में हुआ। आपका जन्म नाम तवनप्पा है। पिताजी का नाम वालप्पा और माताजी का नाम श्रीमती जानकीवाई है। आपकी वाल्यावस्था से ही धर्मध्यान की ओर विशेष रुचि रही है। आपके यहां परिवार में कृषि-कार्य होता है। सीमंधरसागरजी महाराज का ग्राम भी आपके ग्राम से वहुत निकट है, आपकी उनकी रिश्तेदारी निकट होने से उनसे धर्मोपदेश श्रवण कर आपने भी ब्रह्मचर्य व्रत लेकर गृहत्याग दिया था। वि० सं० २०१५ अगहन शुक्ला १५ को कुन्थलगिरि क्षेत्र पर मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप धर्मसाधन में रत हैं।

मुनिश्री समन्तभद्रजी महाराज

द्वारा दीक्षित शिष्य
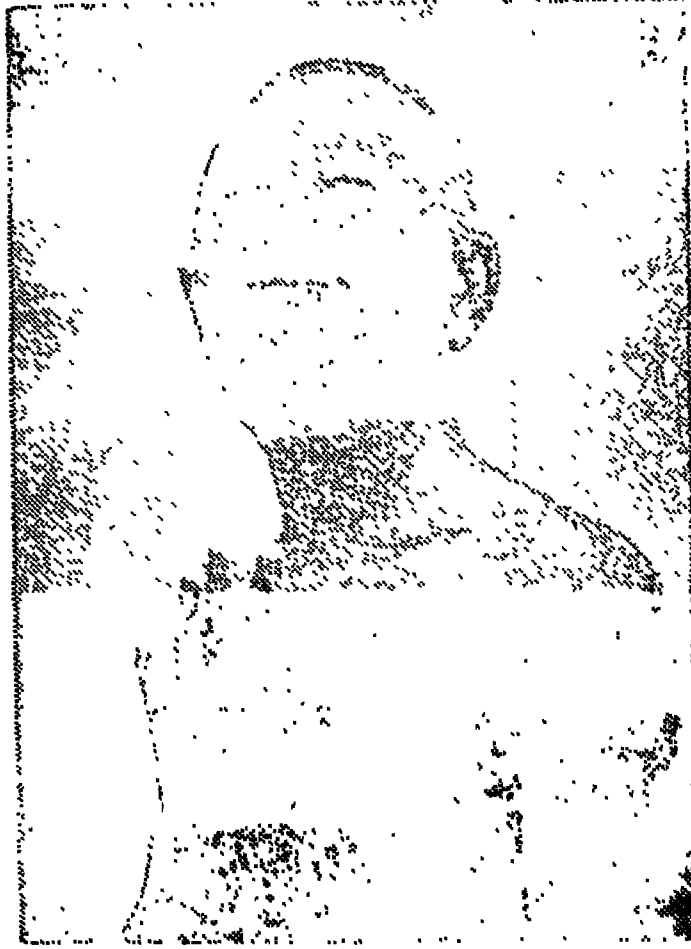
श्री समन्तभद्रजी महाराज

मुनि श्री आर्यनन्दीजी

मुनि श्री महाबलजी

आर्यिका सुप्रभामतीजी

क्षुल्लक जिनभद्रजी

मुनि श्री आर्यनंदीजी महाराज

श्री शंकररावजी का जन्म तालुका पेठन नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मण रावजी अहमिन्द्र थे एवं माता कृष्णाबाईजी थीं। आपका गोत्र अहमिन्द्र वृषभ था, आप जाति से दि० जैन सेतवाल थे। आपका विवाह श्रीमति पार्वतीदेवी से हुआ जो धार्मिक कार्यों में काफी आगे रहती थी एवं २ प्रतिमा धारण कर रखी थी। आपके एक भाई व दो बहने थीं एवं आपके एक पुत्र व दो पुत्रियां थीं जिनमें से पुत्र का स्वर्गवास हो गया। आप निजाम सरकार के कष्टम आफिस में पेशकार थे। आपकी १९५३ में पेंशन हो जाने के बाद आपका सम्पूर्ण समय धर्म-ध्यान में जाने लगा।

आप वैराग्य की ओर बढ़े एवं आपने श्री समन्तभद्रजी आचार्य से कुन्थलगिरि में १३-११-१९५९ को दीक्षा ले ली व आप धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। आप हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, संस्कृत आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। आपके वैराग्य का प्रमुख कारण पूर्वजन्म एवं बचपन के संस्कार एवं संसार की विचित्रता व स्वानुभव था।

आपने दीक्षा लेने के बाद ६० से ६१ तक बाहुबलि कुम्भोज में चातुर्मास किया। सन् ६२ से ६९ तक आप गुरूकुल एलौरा में रहे। आपने एक से अधिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन व स्वाध्याय किया। आप स्वभाव से मृदु व अल्पभाषी हैं और विद्वानों के बड़े अनुरागी हैं। आप स्वयं एक सजीव संस्था हैं जो संस्था के माध्यम से देश, धर्म व समाज की सेवा में संलग्न हैं।

मुनि श्री महाबलजी महाराज
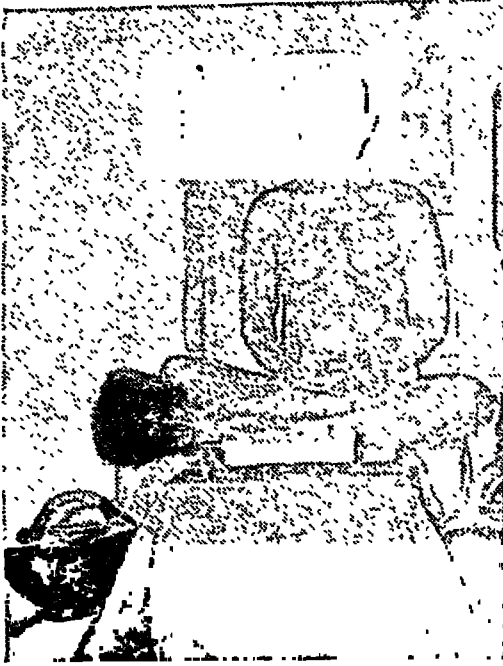
पू० मुनि श्री का जन्म कर्नाटक प्रान्त जिला बेलगांव में खवटखोप्प नामक स्थान में दिनांक २५-१-१९०९ में हुवा था। आपका पालन नानी के यहाँ हुवा था। पिता का नाम कल्लाप्पा दुर्गणावर तथा माता का नाम गंगप्वा था। आपकी लौकिक शिक्षा सातवीं तक ही हो पायी। आपका पूर्व नाम भिमाप्पा था। आपने मुनि समन्तभद्रजी महाराज से २६-१-१९६४ को कारंजा में क्षुल्लक दीक्षा ली। मुनि दीक्षा भी मुनि श्री से ली।

आपने कर्नाटक एवं महाराष्ट्र में विहार कर प्राणी मात्र के लिए आत्म-कल्याण हेतु धर्म प्रवचन दिया। वर्तमान में १०८ स्व० प० पू० आ० शान्तिसागरजी महाराज की जन्मभूमि भोजग्राम में उनके स्मारक कार्य में सहयोग दे रहे हैं। आपकी शैली प्रभावकारी है। कठोर मुनि धर्म की चर्या का आप अबाधगति से पालन कर रहे हैं। ❖

आर्यिका श्री सुप्रभामती माताजी

आपका जन्म कुरड़वाड़ी (महाराष्ट्र) में हुआ। आपके पिताश्री का नाम श्री नेमीचन्दजी है।

आपका शुभ विवाह १२ वर्ष की छोटी-सी उम्र में श्री मोतीलालजी के साथ हुआ। अभी मेंहदी की लाली हल्की भी न हो पायी थी कि उतर गई। शीघ्र ही इन्होंने अपना चित्त धर्म-ध्यान की ओर लगाया एवं न्याय प्रथमा इन्टर की शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् सोलापुर में राजूमती श्राविकाश्रम में १५ साल तक अध्यापन का कार्य किया। वि० सं० २०२४ मिती कार्तिक सुदी १२ को कुम्भोज बाहुबली में आचार्य १०८ समन्तभद्रजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की एवं इनका नाम सुप्रभामतीजी रखा गया।

आर्यिका श्री इन्दुमतीजी व सुपार्श्वमतीजी के संघ में प्रवेश कर आप स्वाध्याय में मग्न रहती हैं एवं चातुर्मास में छात्राओं को पढ़ाती हैं। ❖

क्षुल्लक श्री जिनभद्रजी महाराज

जन्मस्थान	—	मिरज (जि० सांगली)
जन्म सन्	—	१-११-१६०६ में।
जन्म नाम	—	दादा चौदरी नाद्रे सा० ।
दीक्षा स्थान	—	१९६३ में कुम्भोज बाहुबली।
दीक्षा गुरु	—	आचार्य समन्तभद्रस्वामी से दीक्षा ली। आप तपस्वी साधु हैं सदा पठन कार्य में लगे रहते हैं।

मुनिश्री मुनेन्द्रसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज

मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज

पू० महाराजजी का जन्म नुनि आई (आगरा U. P.) में श्रेष्ठी श्री पन्नालालजी के यहां सं० १९३४ में माता लक्ष्मीवाई की कुक्षि से हुआ। आप जैसवाल जाति के थे। आपका पूर्व नाम कन्हैयालाल था। आपने मुनि मुनीन्द्रसागरजी महाराज से करहल मैनपुरी में मुनि दीक्षा ली। आप पू० आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के संघ मे एक विशिष्ट साधु थे। जो शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ रहने पर भी अपने व्रत, नियम, चारित्र के पालन में दत्तचित्त रहते थे। आपका स्वभाव सौम्य शान्त और मनोज्ञ था। आपका यह सौभाग्य था कि आपको ऐसे महान ऋषिराज का सम्पर्क मिला। आपकी समाधि भी हुई।

आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज भिण्ड द्वारा

दीक्षित शिष्य

आ० श्री विमलसागरजी महाराज

आ० श्री निर्मलसागरजी

आ० श्री कुन्थसागरजी

मुनि श्री सुमतिसागरजी

मुनि श्री अजितसागरजी

ऐलक श्री ज्ञानसागरजी

ऐलक श्री सन्मतिसागरजी

क्षुल्लक श्री धर्मसागरजी

आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज

आचार्य श्री का जन्म उत्तरप्रदेश, जिला ऐटा ग्राम पहाड़ीपुर में मंगसिर बदी २ विक्रम संवत् २००३ में पद्मावती परिवार में हुआ था, आपके पिताजी का नाम सेठ श्री बोहरेलालजी एवं माताजी का नाम गोमावतीजी था, दोनों ही धर्मात्मा एवं श्रद्धालु थे। देव, शास्त्र, गुरु के प्रति उनकी अनन्य भक्ति थी तथा अपना अधिक समय धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत करते थे। उन्होंने पांच पुत्र एवं तीन कन्या को जन्म दिया। उनमें से सबसे छोटे होने के कारण आप पर माता-पिता का अधिक प्रेम रहा लेकिन वह प्यार अधिक समय तक न चल सका तथा आपकी छोटी उम्र में ही आपके माता-पिता देवलोक सिधार गये थे। आपका बचपन का नाम श्री रमेशचन्द्रजी था। आपका लालन-पालन आपके बड़े भाई श्री गौरीशंकरजी द्वारा हुआ। आपकी वैराग्य-भावना बचपन में ही बलवती हुई थी। आपके मन में घर के प्रति अति उदासीनता थी। आपके हृदय में आहारदान देने व निर्ग्रन्थमुनि बनने की भावना ने अगाध घर बना लिया था। आप जब छहढाला आदि पढ़ते तो इस संसार के चक्र परिवर्तन को देखकर आपका हृदय काँप उठता था एवम् बारह भावना पढ़ते ही आपके भावों का स्रोत बह उठता तथा वह धर्म चक्षुओं के द्वारा प्रभावित होने लगता था। आप सोचते थे कि इन दुखों से बचकर अपने को कल्याण मार्ग की ओर लगाकर सच्चें सुख की प्राप्ति करूँ। इसी के अनन्तर शुभकर्म के योग से परम-पूज्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी का शुभागमन हुआ। उस समय आपकी उम्र १२ वर्ष की थी। महाराज श्री आपके घराने में से हैं। आपने उनके समक्ष जमीकन्द का त्याग किया और थोड़े दिन उनके साथ रहे। फिर भाई के आग्रह से घर आना पड़ा। अब आपको घर कैद-सा मालूम होने लगा। आपके भाई ने शादी के बहुत यत्न किये लेकिन सब निष्फल हो गये। आप आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी के संघ में भी थोड़े दिन रहे। वहां से बड़वानी यात्रा के लिये कुछ लोगों के साथ चल दिये। बड़वानी में आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी का संघ विराजमान था। आपने वहां पर दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। उस समय आपकी उम्र १५ वर्ष की थी। फिर बाद में आप दिल्ली पहुँचे। वहाँ पर परमपूज्य श्री १०८ श्री सीमन्धरजी का संघ विराजमान था। उनके साथ आप गिरनारजी गये। वहां पर आपने सं० २०२२ मिती बैसाख बदी १४ को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण

की। उस समय आपकी उम्र १७ वर्ष थी। वहां से विहार कर संघ का चातुर्मास अहृदाबाद में हुआ। उसके बाद आपने गुरु की आज्ञानुसार सम्मेदशिखरजी के लिए विहार किया। आप पैदल यात्रा करते हुए आगरा आये वहां पर श्री परमपूज्य १०८ विमलसागरजी का संघ विराजमान था। आपने सं० २०२४ मिती आषाढ़ सुदी ५ रविवार के दिन महाव्रतों को धारणकर निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारण की तथा संघ का चातुर्मास वहीं पर हुआ। वहां से विहार करते हुए आप कुण्डलपुर आये। जहां पर आचार्य श्री से ब्र० निजात्मारामजी ने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। वहां से विहार करते हुए आप श्री सम्मेदशिखर पधारे। वहाँ पर महाराज श्री की तीर्थराज वन्दना सकुशल हुई। बाद में आपका चातुर्मास हजारीबाग में हुआ। उसके बाद आप मधुवन आये। वहाँ पर क्षुल्लकजी ने आप से महाव्रत ग्रहण किये। बाद में आप ईसरी पंचकल्याणक में पधारे तथा वहाँ पर ५ दीक्षायें आपके द्वारा हुईं। आप वहां से विहार करते हुए बाराबंकी पधारे। जहां पर आपका चातुर्मास हुआ। वहां से विहार करते हुए आप मेरठ आये। मेरठ से आप संघ सहित पांडव नगरी भगवान् शान्तिनाथ, अरहनाथ, कुन्थनाथ, मल्लिनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर जिस दिन भगवान् आदिनाथ ने श्रेयांस राजा से प्रथम आदि काल का आहार गन्ने के रस के रूप में लिया था पधारे। संघ सहित विराजकर आपके सम्पूर्ण संघ ने गन्ने का रस लेकर उस दिन की याद को ताजा करा दिया मानो वो ही दृश्य सामने हो। मुनि श्री एक माह रहकर मीरापुर, जानसठ, मुजफ्फरनगर, खतौली, सरधना, बरनावा, बिनौली, बड़ागाँव, बड़ौत आदि इलाकों में होते हुए चातुर्मास के लिए दिल्ली कैलाशनगर में विराजे। आपने अनेकों स्थानों पर चातुर्मास किए।

वर्तमान में आप गिरनार क्षेत्र पर निर्मल ध्यान केन्द्र का निर्माण कार्य आपके सदुपदेश से बन रहा है। आप व्रतों में दृढ़ एवं साहसी हैं, सरलता अधिक है, क्रोध तो देखने में भी नहीं आता तथा प्रकृति शांत एवं नम्र है ऐसे वीतरागी निर्ग्रन्थ साधुओं के प्रति अगाध श्रद्धा है।

आचार्य श्री कुन्थसागरजी महाराज

घरकों के मातृत्व सुख की तमन्ना पूरी हुई तो छविराज फूले नहीं समाये। पिता बन जाने की खुशी में सं० १९७२ माघ शु० पंचमी (बंसत पंचमी) को धौवा ग्राम (ग्वालियर) की गलियों में उन्होंने बाजे बजवा दिये। गांव की सयानी औरतों ने बधाई गाते हुए सीख दी—लाला! ललन का

नाम बदरी रखना बदरी। गांव की गलियों में खेलकर स्कूल पहुँचा तो पंडितजी ने पुकारा—बद्रीप्रसाद।

स्कूल की पढ़ाई खत्म हुई तो बद्रीप्रसाद का जी गांव छोड़ने को मचलने लगा। किताबों के दो अक्षर पढ़ते ही उसने जान लिया कि जिन्दगी घर में खपाने के लिये नहीं पंचपरावर्तन मिटाने के लिये मिली है। जीवन को राह मिली पर गति बाकी थी। फिर मिला नेत्रों को सुखकारी पूज्यपाद आ० श्री विमलसागरजी म० का दर्शन और जीवन को मिली गति। आचार्य श्री ने भव्यात्मा पर अनुग्रह करते हुए क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। कुछ समय बाद सम्मेदशिखर में समस्त परिग्रहों को समाप्त करने वाली निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा प्रदान कर दी और आपका नाम 'कुन्थसागर' रखा। आप भी चारित्र की सीढ़ियों में स्थिर पग बढ़ाते हुए अपने नर जन्म की सफलता में जुट गये क्योंकि जीवन का सार चारित्र है। कहा भी है—

थोवम्हि सिक्खदे जिणइ बहुसुदं जो चरित्त संपुण्णो।
जो पुण चरित्तहीणो किं तस्य सुदेव बहुएण ॥

गुरु सेवा करते हुए आपने सतत् स्वाध्याय से जिनागम के रहस्य को हृदयङ्गम कर लिया तथा सुज्ञानदर्पण पुस्तक लिखकर अपनी विद्वत्ता से समाज को विदित कराया। जिन शासन की प्रभावना की।

मुनि श्री सुमतिसागरजी महाराज

आपका गृहस्थ नाम श्री नत्थीलालजी था। पिता श्री छिद्दुलाल एवं माता श्री चिरोंजादेवी के आप लाड़ले पुत्र थे। ग्राम श्यामपुरा, परगना अम्वाह (मुरैना) में क्वार सुदी ६ सं० १९७५ को आपका जन्म हुआ। आप जायसवाल जैन हैं। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती रामश्री देवी है। तीन-भाई दो पुत्र और दो पुत्रियां आपकी हैं। भरे-पूरे परिवार को छोड़कर आपने दिगम्बर दीक्षा धारण की है।

आपकी बाल्य काल से ही धर्म में लगन थी। आप अपनी काश्तकारी तथा मामुली व्यापार करते थे आपका विवाह वि० सं० १९८४ में हुआ था और थोड़े दिन बाद ही आपको रामदुलारे डाकू हरण कर ले गया था। १४ दिन बाद आप उसके गिरोह से भाग आये। वि० सं० २०१० में आप

गाँव से मुरैना में आकर रहने लगे और दुकान का कार्य करते रहे। पुण्योदय से श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी महाराज संघ सहित मुरैना पधारे। इसी समय आपकी धर्मपत्नी ने आपसे कहा कि आचार्य श्री को आहार देने की मेरी इच्छा है। अगर आप आज्ञा देवें तो मैं अशुद्ध जल का त्याग ले लूं। आप भी लीजिये। तब आप (नत्थीलालजी) ने कहा आपसे बने तो आहार दो हमसे कुछ नहीं बनता तब आपकी धर्मपत्नी ने अशुद्ध जल का त्याग कर दिया और ज्ञानाबाई के साथ आहार दिया। फिर आपकी धर्मपत्नी ने कहा अब हम अपने मकान पर आहार बनावेंगे आप महाराज को ले आवेंगे। तब दूसरे दिन घर पर आहार बनाया व आप महाराज को लेकर अपने घर पर आ गये और खड़े रहे। महाराज भी खड़े रहे, महाराज की निगाह आप पर पड़ी तो आपने कहा, महाराज मुझसे त्याग नहीं बनेगा। तब महाराज लौटने लगे। तब आपने सोचा कि मेरे घर से महाराज बिना आहार लिये लौट गये तो मेरा जैन कुल में उत्पन्न होना ही बेकार है। फिर क्या था, उसी समय आपके भाव जगे और उसी समय आपने अशुद्ध जल का त्याग किया व आचार्य श्री को आहार दिया।

आहार देने के बाद भावना हुई कि अब तो त्याग करते जायेंगे। फिर पं० मक्खनलालजी की संगति में रहने लगे व शास्त्र अध्ययन करते रहे। सं० २०२१ में श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा धारण की व वि० सं० २०२३ में एक मकान खरीदा और इसी वर्ष मुरैना में गजरथ पंचकल्याणक महोत्सव हुआ। इस अवसर पर श्री १०८ विमलसागरजी महाराज पधारे। इनसे आपने सातवीं प्रतिमा ली और इसी तरह आप त्याग की ओर बढ़ते गये।

संसार को अस्थिर जानकर आपने मन में मुनिदीक्षा लेने की धारणा बना ली। सं० २०२४ में फागुन सुदी १२ को सोनागिरि गये वहां श्री १०८ मुनि निर्मलसागरजी से मुनिदीक्षा लेने का विचार किया। मगर श्री १०८ मुनि विमलसागरजी की आज्ञा न पाकर बाद में रेवाड़ी पहुँचे। वहां पर श्री १०८ मुनि विमलसागरजी महाराज से चेत सुदी १३ वि० सं० २०२५ को ऐलक दीक्षा ली और आपका श्री १०५ वीरसागर नामकरण हुआ। वहां से विहार करके श्री गुरुजी के साथ देहली पधारे। वहां पर चातुर्मास किया इसी अवसर पर सर्वप्रथम सावन सुदी ११ को केशलोंच हुआ। केशलोंच के समय आप बड़े शान्तचित्त दिखलाई दे रहे थे। थोड़ी ही देर में आपने केश लोंच कर डाला। इस समय आपकी जय जयकार से आकाश गूंज उठा। चातुर्मास के बाद संघ के साथ साथ आप गाजियाबाद पधारे। अगहन वदी १२ वि० सं० २०२५ को दूसरा केशलोंच हुआ उसी समय श्री गुरूजी से मुनिदीक्षा हेतु प्रार्थना की और उसी समय श्री १०८ मुनि विमलसागरजी

महाराज ने मुनिदीक्षा दे दी, फिर आपका दीक्षित नाम श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज रखा गया।

धन्य है आपकी धर्मपौरुषता को कि चन्द दिनों में ही आप सर्व परिग्रह त्याग कर भरा पूरा परिवार छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनिपद प्राप्त कर लिया।

मुनि १०८ श्री अजितसागरजी महाराज

सं० १९५८ में ग्राम कूप जिला भिण्ड में श्री गणेशीलालजी के घर पर श्री चुन्नीलालजी ने जन्म लिया था। आपने मिड़िल शिक्षा प्राप्त करके गृहस्थ धर्म में प्रवेश किया तथा मुनि विमलसागरजी से सं० २०१२ में अलवर में क्षुल्लक दीक्षा धारण की तथा सं० २०१७ में भिण्ड में मुनि दीक्षा धारण की। गुरु ने आपका नाम मुनि अजितसागर रखा। आपने जैनागम के ग्रन्थों का स्वाध्याय किया तथा आत्म कल्याण में लगे हुए हैं।

ऐलक श्री ज्ञानसागरजी महाराज

आपका पूर्व नाम सुगनचन्दजी था। आपका जन्म वि० स० १९५६ पोष माह में घमसा जि० ग्वालियर में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री प्यारेलालजी था। साधारण शिक्षा के बाद व्यापार में लग गये। सं० २०११ में विमलसागरजी से सातवीं प्रतिमा ली। सं० २०१३ में क्षुल्लक दीक्षा एवं सं० २०१६ में ऐलक दीक्षा ली तथा भारत में गुरुवर्य के साथ विहार किया।

ऐलक श्री सन्मतिसागरजी महाराज

कहावत है कि पूत के पांव पालने में ही दिखाई देते हैं। लोकोक्ति कैसी भी हो परन्तु गांव गढ़ी (भिण्ड) के शिखरचन्द जैन के जीवन में यह कहावत यथार्थ निकली। गढी ग्राम में जैनियों के घर सिर्फ इने-गिने ही हैं। श्री पातीराम जैन खरोबा (गोत्र पांडे) अपनी पत्नी मथुराबाई के साथ अपने सीमित साधनों से निर्वाह करते हुए धर्म साधना करते थे। पुण्ययोग से सं० १९६२ में मंगसिर कृष्णा १२ को इस दम्पत्ति को पुत्ररत्न का लाभ हुआ। जिसका नाम शिखरचन्द रखा

गया। आपके जन्म के एक वर्ष पश्चात् आपके माता-पिता सपरिवार सिरसागंज (मैनपुरी) में आकर बस गये। जहां पर आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। कालान्तर में माता-पिता के देहावसान के बाद आप सपरिवार (स्त्री-पुत्र-पुत्रियों सहित) खड्गपुर (प० बंगाल) में आकर बस गये। परिवर्तन संसार का नियम है। काललब्धि पाकर फलटण में पू० आचार्य श्री विमलसागरजी म० के दर्शन करते ही आपकी मोहनिद्रा भंग हो गई और गुरु चरणों में आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत प्रदान करने की प्रार्थना की। कार्तिक शुक्ल ११ वी० सं० २४८५ को आचार्य श्री ने व्रत प्रदान करते हुए आपका नाम मंजिल के अनुरूप 'शिवसागर' रखा। उसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला २ को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर 'ज्ञानसागर' नाम रखा। वैशाख शुक्ल १३ वी० सं० २४८७ को काम्पिल्या में आचार्य श्री ने आपको 'ऐलक' दीक्षा प्रदान करते हुए आपका नाम वृषभसागर घोषित किया। कर्मयोग से स्वास्थ्य के कारण दीक्षोच्छेद करना पड़ा और क्षुल्लक पद की दीक्षा लेनी पड़ी जहां आप पूर्व नाम ज्ञानसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए। चार वर्ष बाद पुनः ऐलक दीक्षा लेकर सन्मतिसागर नाम से रत्नत्रय की आराधना कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री धर्मसागरजी महाराज

घमंडीलालजी का जन्म सं० १९४१ में भिण्ड (म० प्र०) में हुवा था। आपकी माताजी का नाम श्री पानाबाई था। पिताजी का नाम श्री शोभालालजी था। बचपन में सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने अपना व्यापार आदि कार्य सम्भाला। क्षुल्लक स्वरूपचन्दजी से सं० १९९५ में दूसरी प्रतिमा धारण की तथा मुनि विमलसागरजी से कोटा में सं० २००४ में क्षुल्लक दीक्षा ली। आप संघ में रहकर ग्रन्थों की नकल करने तथा जिनवाणी की सेवा में अपना समय लगाते थे।
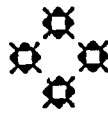
मुनि श्री कुन्थसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य
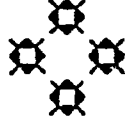
आर्यिका शांतिमतीजी

क्षुल्लिका सुशीलमतीजी

आर्यिका शान्तिमती माताजी

आपका जन्म स्थान लखुआ M. P. में है। आपके पिता का नाम नाथूरामजी तथा मां का नाम श्री फूलावाई था। हिन्दी का साधारण ज्ञान था दीक्षा से पूर्व का नाम कलावती था। आपने मुरेना में सुमतिसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा एवं पोरसा में मुनि कुन्थसागरजी से आर्यिका दीक्षा ले ली।

क्षुल्लिका श्री सुशीलमतीजी

आपका जन्म स्थान क्षत्रीग्राम है तथा माता हलकी बाई की कुक्षी से जन्म लिया था। आपके पिता का नाम सुन्दरलालजी था। आपका दीक्षा से पूर्व अवस्था का नाम रतनमाला था। स्कूल में ५ वीं कक्षा तक ही शिक्षा रही। दिल्ली में मुनि कुन्थसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा ली।

मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य
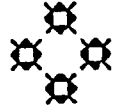
मुनि श्री श्रेयांससागरजी
,, पार्श्वसागरजी
,, श्रुतसागरजी
,, विजयसागरजी
,, आदिसागरजी
,, वीरसागरजी
,, विनयसागरजी
,, शीतलसागरजी
,, शम्भूसागरजी
,, भरतसागरजी
,, अजितसागरजी
क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी

क्षुल्लक श्री आनंदसागरजी
,, कैलाशसागरजी
,, गुणसागरजी
,, चन्द्रसागरजी
,, सन्मतिसागरजी
आर्यिका चन्द्रमतीजी
,, पार्श्वमतीजी
,, राजमतीजी
,, ज्ञानमतीजी
,, ज्ञानमतीजी
क्षुल्लिका शुद्धमतीजी
क्षुल्लिका शांतिमतीजी
,, विद्यामतीजी

मुनि श्री श्रेयांससागरजी महाराज

आपका जन्म महाराष्ट्र राज्य के अन्तर्गत मुकाम-तहसील जिला वर्धा ग्राम में तारीख ३१-१२-१९२० में हुवा। आपकी जन्म भूमि वर्धा (महाराष्ट्र) है आपका नाम रत्नाकर हिरासावजी चवड़े दिगम्बर जैन हैं आपके पिताजी का नाम श्री हिरासावजी जिनदासजी चवड़े तथा माता का नाम पार्वतीबाईजी है। आपका छापाखाने का धंधा नागपुर में था। आपकाछोटा भाई सुभाषचंद चवड़े हैदराबाद में प्रेस चलाता है। आपको एक लड़की है, उसका नाम विजयाबाई धोपाड़े है। आपकी भाषा मराठी है। अभी आपकी उमर ५६ साल की है। कारंजा में आपने २ प्रतिमा १९६२ में ली थी और छठी प्रतिमा चापानेर में १९६५ में धारण की, सप्तम प्रतिमा ब्रह्मचर्य की श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से भागलपुर में तारीख २-११-७० को ग्रहण की उसके बाद ब्रह्मचारी अवस्था में १९७२ में ईडर (गुजरात में) चातुर्मास किया। उसके बाद आप गुरु के पास आरा गये और वहां गुरु १०८ श्री सुमतिसागरजी महाराज से १० दसवीं प्रतिमा तारीख १४-१२-७२ वार गुरुवार को मिती मार्गशीर्ष ९ को धारण की, नाम रत्नसागरजी रहा, फिर आपने गुरु के आदेश से शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा दक्षिण भारत, मध्यभारत, बिहार, उत्तर भारत आदि प्रदेशों में जो भी सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र हैं, उनकी यात्रा की। आपके दादाजी स्व० जिनदासजी नारायणजी चवड़े जैन इन्होंने अपने काल में जैन शास्त्रों का मुद्रण वर्धा प्रेस में किया था।

आप गृहस्थ अवस्था में जो कि श्रावक के षट् कर्म हैं, मुनियों को आहार दान दिया करते थे, गुरु की संबोधना से और सानिध्य से उपदेश से और आगम का निमित्त पाकर दृढ़ श्रद्धा बन गई और वैराग्य धारणा से मुनि बन गये। पहिले से ही धर्म की तरफ ज्यादा लगन थी।

आपकी मुनि दीक्षा शुभ मिति वैशाख बदी २ सोमवार तारीख ८-४-७४ को देई ग्राम (राजस्थान) में श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज द्वारा हुई। दीक्षा ग्रहण का नाम श्री १०८ मुनि श्रेयांससागरजी महाराज रखा गया।

❖

मुनि श्री पार्श्वसागरजी महाराज

श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज का जन्म तहसील फिरोजाबाद में जिला आगरा उत्तर-प्रदेश में शुभ मिती कार्तिक सुदी २ को विक्रम संवत् १९७२ में हुआ था उनका जन्म अग्रवाल वंश गर्ग गोत्र में हुआ था। उनके गृहस्थ आश्रम का नाम रामगोपाल अग्रवाल जैन था। उनके पिताजी का नाम प्यारेलालजी जैन था और माताजी का नाम द्रोपदी बाई अग्रवाल जैन था। उनकी माता का स्वर्गवास दिनांक १५-१-१९४२ में हुआ और पिताजी का कार्तिक सुदी १५ दिनांक ११-११-१९६२ में हुआ पिताजी के स्वर्गवास के बाद उन्होंने मन्दिर का कार्य अपने जुम्मे रखा।

बचपन से उनकी रूचि धार्मिक कार्य में बहुत थी। उनका मुख्य कर्तव्य देवपूजा, व्रत उपवास शास्त्र स्वाध्याय और तीर्थ यात्रा करना ही थी। उन्होंने ४ कक्षा तक अभ्यास किया।

सन् १९३३ में उनकी शादी धोलपुर निवासी लाला गंगारामजी की पुत्री रामश्रीदेवी के साथ हुई। शादी के बाद बहुत लम्बे समय में एक पुत्र हुआ।

बहुत समय के बाद पत्नी और पुत्र को छोड़ वैराग्य हुआ उस समय पुत्र मुन्नालाल २१ साल का था।

मार्च १९६९ में श्री १०८ मुनि श्री सुमतिसागरजी और श्री १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी फिरोजाबाद आये तब उनको वैराग्य भाव हुआ। तब उन्होंने पूज्य श्री १०८ आचार्य सुमतिसागरजी से दिनांक ३१-३-६९ चैत्र सुदी १३ सोमवार वीर संवत् २४९५, विक्रम सं० २०२६ के दिन दिगम्बर जैन नशियांजी फिरोजाबाद में दो प्रतिमा के व्रत और आजीवन ब्रह्मचर्य लिया। उनकी धर्मपत्नी ने भी जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य लिया। मुनि श्री के साथ सम्मेदशिखर यात्रा को गये। अषाढ़ सुदी ८ सोमवार विक्रम सं० २०२६ वीर सं० २४९५ दिनांक २३-६-६९ में आचार्य श्री के पास बाराबंकी में सातवीं प्रतिमा ली। फिर घर आये। कुछ दिन बाद यात्रा को गये वहाँ गुरु सुमतिसागरजी मिल गये। वहाँ विक्रम सं० २०२८ असोज सुदी ८ सोमवार तारीख २७-९-१९७१ के दिन दि० जैन थूवनजी में ऐलक दीक्षा ली तथा श्री १०५ ऐलक शीतलसागरजी नाम धारण किया।

फिर वी० सं० २५००, विक्रम सं० २०३१ वैसाख बदी २ सोमवार देई ग्राम जिला बूंदी (राजस्थान) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में भगवान के तपकल्याणक के दिन गुरु के पास मुनि दीक्षा ली तथा नाम पार्श्वसागर रखा।

वी० संवत् २५०१ विक्रम सं० २०३२ श्रावण सुदी ७ के दिन ईडर में मुनि वर्धमानसागरजी के समाधि के उपलक्ष में जीवन पर्यन्त हेतु त्याग किया वीर सं० २५०१ विक्रम सं० २०३२ भादवा वदी २ शनिवार दिनांक २३-८-१९७५ ईडर में मुनि श्री संभवसागरजी के समाधि के उपलक्ष में १२ साल की समाधि का व्रत लिया । इसलिये उनने तारीख २३-८-१९८७ तक इस शरीर को छोड़ने का व्रत लिया है ।

मुनि श्री श्रुतसागरजी महाराज

जन्म तिथि—

जन्म ग्राम—मेद्दीपुरा (जिला आगरा)

जन्म नाम—विद्याराम

पिता का नाम—सावलदासजी

माता का नाम—नेक श्रीजी

भाई-वहन—जगराम, मूलचन्द, फूलचन्द, भगवती देवी विद्याराम (मुनि श्रुतसागरजी) रामदयाल (दयासागरजी)।

शिक्षा—४ तक

व्यापार—घी

विवाह—२४ वर्ष की आयु में श्रीपालजी की पुत्री रामदुलारी अम्बा जीता मोरेना ३२ वर्ष की आयु में रामदुलारी का स्वर्गवास दूसरा विवाह शांतिबाई जो एक वर्ष वाद स्वर्गवासी हो गयीं ।

वैराग्य—बचपन से वैराग्य दशलाक्षरी, रतनलाल व्रत १३ वर्ष तक किया तथा ४३ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य आचार्य सुमतिसागरजी से ।

क्षुल्लक—१९६९-२६ नवम्बर अगहन बदी २०२६ नाम विद्यासागर ।

मुनि—२६-२-१९७२ शनिवार फाल्गुन सुदी १२ सं० २०२९ सम्मेदशिखर श्रुतसागर नाम रखा ।

वर्षायोग—१० भागलपुर, ११ शिखरजी, १२. भागलपुर, १३. सोनागिरि, १४. जलेसवर (जिला-रोटा) मुवाला मुजफ्फरनगर ।

❖

मुनि श्री विजयसागरजी महाराज

जन्म स्थान—ईडर, गुजरात (सावरकांठा)

श्रावक अवस्था का नाम—देवचंद गांधी

पिता का नाम—श्री नाथालाल जैन

माता का नाम—लक्ष्मीबाई जैन

क्षुल्लक दीक्षा कब ली—कार्तिक सुदी ७ सं० २०३२ को श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

मुनि दीक्षा कब ली—भादो सुदी ३ सं० २०३२ में ली—मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

मुनि श्री आदिसागरजी महाराज

पद—मुनि पद

जन्म स्थान—राजा खेड़ा (राजस्थान)

श्रावक अवस्था का नाम—श्री रोशनलाल जैन

पिता का नाम—श्री मवासी लाल जैन

माता का नाम—गुलाब देवी जैन

क्षुल्लक दीक्षा कब ली—जेष्ठ सुदी ५ किनसेली में मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

ऐलक दीक्षा कब ली—सं० २०३१ अगहन सुदी २ किनसेली में श्री मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

मुनि दीक्षा कब ली—देह गांव सं० २०३० में ली ।

❖

मुनि श्री वीरसागरजी महाराज

सोनागिरि वैसे है तो जैनियों का तीर्थ, सो भीड़ भरी लारियां जब-तब आना यहां के वासिन्दों के लिये आम बात हो गई है। पर २३ अक्टूबर ७६ के दिन बे-मौसम श्रावकों का रेला उमड़ता दिखा तो गांव वालों में कुछ जानने की उत्सुकता बढ़ गई। उत्सुकता की खोज बढ़ी तो हर्ष का ठिकाना न रहा। विजपुरी (भिण्ड) के मोहरलाल का सपूत रामस्वरूप माताकुंवरजी की आंखों का तारा परिवार की ममता को छोड़कर आज धर्मसंघ में प्रवेश लेने जा रहा था। निर्णय ठीक था। अब मोह जैसी कोई बात नहीं थी।

अब तक संसार चक्र में उसने क्या नहीं देखा था। सो निर्णय अटल ही रहा। पू० आचार्य श्री सुमतिसागरजी म० ने श्रावकों के हर्षोल्लास के मध्य क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर रामस्वरूप की संसार दशा को समाप्त कर दिया। विनीत शिष्य की योग्यता अपना रंग लायी और गुरूवर ने २८ मार्च ७७ को बाह्य आभ्यंतर दोनों परिग्रह से मुक्त करते हुए थूवनजी क्षेत्र में मुनि दीक्षा प्रदान की और आपका नाम "वीरसागर" प्रचालित किया। धन्य है आपका साहस जो इस पंचमकाल में धीर पुरुषों के चित्त को भी दोलायमान करने वाली महाव्रत की कठिन चर्या को अंगीकार करने के भाव हुए।

मुनि श्री विनयसागरजी महाराज

आपका जन्म मिती आसोज वदी ६ सम्वत् १९७९ को ब्यावर जिला (अजमेर) राजस्थान में हुआ। आपका गृहस्थ का नाम श्री हुकुमचन्दजी पाण्डया है। आपके पिताजी का नाम श्री सुखदेवजी व माता का नाम किशनीबाई था। आपने १९४७ में फर्स्ट इयर पास की उसके वाद पिताजी का स्वर्गवास हो जाने के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ी। आपकी शादी श्री हीरालालजी पाटनी किशनगढ़ वालों की लड़की शांतादेवी के साथ हुई। आपकी माताजी का देहान्त आपके जन्म के ६ माह बाद ही हो गया था। आपमें धीरे-धीरे वैराग्य की भावना उत्पन्न होने लगी। आपके १ पुत्र हुआ। सम्वत् २०३१ में आचार्य श्री सुमतिसागरजी के साथ गिरनारजी को गये और रास्ते में ऐलक दीक्षा ली। सम्वत् २०३१ में आपको ऐपेनडिस की बीमारी हुई जिसको आपने धैर्य के साथ सहन किया किन्तु उसका आपरेशन होने के कारण आपको दुबारा क्षुल्लक दीक्षा लेनी पड़ी। इसके बाद गुजरात में ऐलक दीक्षा ली व ऋषभसागर नाम रखा गया। उसके वाद सम्वत् २०३३ तारीख ३०-८-७६ को श्री सोनागिरजी में मुनि दीक्षा ली व आपका नाम श्री विनय सागर रखा गया।

मुनि श्री शीतलसागरजी महाराज
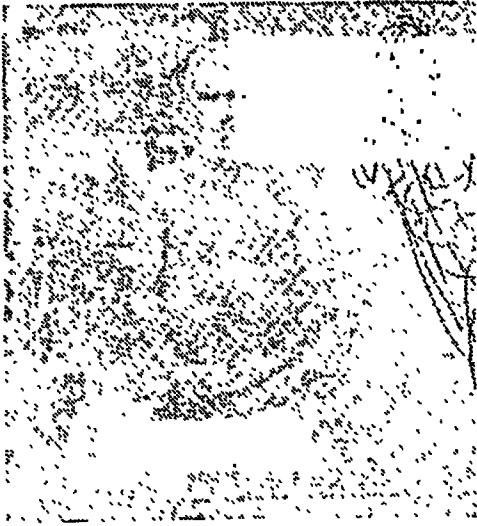
मध्यप्रदेश राज्य में भिण्ड जिले में मोहनी नाम का नगर है। जहाँ आपके पिता श्री परीछतजी तथा राजमति नाम की मां थी। आपके पिता व्यापार किया करते थे। सं० १९७९ को आपका जन्म हुवा तथा पूर्व नाम आशर्फीलाल रखा गया था। ३-४ वर्ष तक स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपके पिता को ग्राम छोड़ना पड़ा इस समय आपकी उम्र १६ वर्ष की थी। आपने व्यापार शुरू किया तथा एक कुशल व्यापारी बन गये। आपका परिवार धार्मिक कार्यों में सदैव आगे रहता था। मुनि जम्बूसागरजी के दर्शन एवं प्रवचनों को सुनकर घर त्याग करने की भावना हुई। आपने क्षुल्लक दीक्षा ले ली। किन्तु कर्म असाता से क्षुल्लक पद छोड़ दिया तथा परिवार में जा मिले। पुन: ४५ वर्ष की उम्र में सं० २०३१ को अजमेर में मुनि सुमतिसागरजी से मुनि दीक्षा धारण की। आपका नाम शीतलसागरजी रखा।

मुनि श्री शम्भूसागरजी महाराज

जन्म तिथि—भादो बदी ८

जन्म स्थान—घमसा

श्रावक अवस्था का नाम—भागचन्दजी जैन

पिता का नाम—श्री गुलजारीलाल जैन

माता का नाम—विटोलाबाई जैन

क्षुल्लक दीक्षा कब ली—शिखरजी में निर्मलसागरजी महाराज से

ऐलक दीक्षा कब ली—बाराबंकी में निर्मलसागरजी महाराज से

मुनि दीक्षा कब ली—सावन सुदी। किन से ली—श्री मुनि सुमतिसागरजी महाराज से।

❖

मुनि श्री भरतसागरजी महाराज

आपका जन्म १६ दिसम्बर १९५० को ग्राम गूडर खनियाधाना जिला शिवपुरी में श्रीमती भागवतीबाईजी के उदर से हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री गुलाबचन्दजी था। आपका बाल्यावस्था का नाम देवेन्द्रकुमार है। आपकी माताजी की रुचि धर्म मे अधिक होने के कारण उन्होंने सन् १९६२ में गृह त्याग कर आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज से दीक्षा ली जो अब आर्यिका श्री १०५ विपुलमतीजी हैं। उन्हीं माताजी के संस्कार आप पर भी पड़े। धार्मिक संस्कारों के कारण आपने संसार को नश्वर जान आचार्य श्री १०८ सुमतिसागरजी महाराज से पांचवीं प्रतिमा शिखरजी में तथा सातवीं प्रतिमा पावापुरी में धारण की। फरवरी १९७९ को श्री चंपापुरी सिद्धक्षेत्र में आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा धारण की एवं १०५ क्षुल्लक सिद्धसागर नाम पाया। आपने सुमतिसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ली।

❖

मुनि श्री अजितसागरजी महाराज

[परिचय अप्राप्य]

क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी महाराज

पद—क्षुल्लक

जन्म तिथि—पोष सुदी ५ सं० १९८०

जन्म स्थान—भिण्ड

श्रावक अवस्था का नाम—रामस्वरूप जैन

पिता का नाम—श्री महोरमल जैन

माता का नाम—कुंवर बाई जैन

क्षुल्लक दीक्षा कब ली—कार्तिक बदी अमावस्या सं० २०३३

किन से ली—श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से।

क्षुल्लक श्री आनंदसागरजी महाराज

पद—क्षुल्लक पद

जन्म तिथि—माघ सुदी १०

श्रावक अवस्था का नाम—मुन्नीलालजी जैन

पिता का नाम—छोटूलालजी जैन

माता का नाम—चिरोंजाबाई जैन

क्षुल्लक दीक्षा—अगहन वदी १० सेली नामक ग्राम में—श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से।

❖

क्षुल्लक श्री कैलाशसागरजी महाराज

त्यागी का नाम—कैलाशसागरजी महाराज

पद—क्षुल्लक

जन्म तिथि—फाल्गुन सुदी १२

जन्म स्थान—फडीयादरा (साबरकांठा) गुजरात

श्रावक अवस्था का नाम—कचरालालजी जैन

पिता का नाम—श्री हेमचन्दजी जैन

माता का नाम—दीवाली बाई

क्षुल्लक दीक्षा—फाल्गुन सुदी । किन से ली—श्री १०८ आचार्य सुमतिसागरजी महाराज से ।

क्षुल्लक श्री गुणसागरजी महाराज

आपका जन्म सेठ शान्तिलालजी की धर्मपत्नी की कोख से सन् १९५८ में मुरैना नगरी में हुआ । आपका बचपन का नाम उमेशकुमार था । आपके दो भाई एवं दो बहनें हैं ।

आपने हायर सैकेन्ड्री तक की लौकिक शिक्षा ग्रहण की । उसके बाद न्याय व्याकरण एवं सिद्धान्त में प्रवेश लिया । आपकी रुचि संस्कृत में अधिक है । व्याकरण के आप अच्छे जानकार हैं । आपने १२ वर्ष की अवस्था में मुनि श्री विवेकसागरजी के सान्निध्य में पूर्ण केश लोंच कर लिया था ।

धर्म के प्रति आपकी बाल्यकाल से ही रुचि थी । आपके बाबाजी ने भी क्षुल्लक दीक्षा ले ली जो १०५ क्षुल्लक वर्धमानसागरजी के नाम से जाने जाते हैं । आप १९७४ में गृह त्याग कर जयपुर नगर में क्षुल्लक सन्मतिसागरजी ज्ञानानन्द के पास पहुंच गये थे । आपने सन् १९७६ में आचार्य श्री १०८ सुमतिसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की एवं क्षुल्लक गुणसागर नाम पाया । तभी से आप क्षुल्लक सन्मतिसागरजी के साथ हैं । आपकी सौम्य छवि साक्षात् वीतरागता का प्रतीक है आप अच्छे वक्ता भी हैं । आप अपना अधिक समय धर्म ध्यान एवं अध्ययन में देते हैं ।

❖

क्षुल्लक श्री चन्द्रसागरजी महाराज

पद—क्षुल्लक

जन्म तिथि—श्रावण सुदी ६

जन्म स्थान—बरबाई (मुरैना) मध्यप्रदेश

श्रावक अवस्था का नाम—श्यामलालजी

पिता का नाम—श्री लालारामजी जैन

माता का नाम—सुमित्रादेवी जैन

क्षुल्लक दीक्षा—श्रवण सुदी ९ को—श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ली ।

क्षुल्लक श्री सन्मतिसागरजी महाराज

यह भारत वसुन्धरा अनेक महान ऋषि मुनि एवं तपस्वियों की जननी है । इस वसुन्धरा पर उन्हीं का जन्म लेना सार्थक है जिन्होंने भारत देश की गौरव गरिमा को बढ़ाया है । इसी श्रृंखला ग्राम वर-बाई जिला मुरैना के बाबूलालजी के घर दिनांक १० नवम्बर १९४९ को मां सरोजबाई की कोख से बालक सुरेशचन्द का जन्म हुआ । सरल हंसमुख स्वभाव, साहस प्रवल, आत्म विश्वास आपमें शुरु से ही है । सभी सुख सुविधाओं से युक्त आपका घर आपको अपने मोह में नहीं फंसा सका । आपने २२ वर्ष की अल्पायु में ब्रह्मचर्य धारण कर लिया । वैराग्य सरिता में स्नान करते हुए १ फरवरी १९७२ को आपने सम्मेदशिखरजी में मुनि सुमतिसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की आपका नाम क्षुल्लक सन्मति-सागरजी रखा ।

❖

आर्यिका श्री चंद्रमती माताजी

पद—आर्यिकाजी

जन्म तिथि—कार्तिक वदी अमावस्या सं० १८५७

जन्म स्थान—(ऋषभदेव) राजस्थान

श्राविका अवस्था का नाम—सुलोचनाबाई जैन

पिता का नाम—श्री अमरचन्दजी जैन

माता का नाम—ललिताबाई जैन

आर्यिका दीक्षा कब ली—माघ सुदी तीज सं० २०३२ को श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

आर्यिका श्री पार्श्वमति माताजी

पद—आर्यिका

जन्म तिथि—श्रावण सुदी ११

जन्म स्थान—आरा (बिहार)

श्राविका अवस्था का नाम—बृजमोहनी बाई जैन

पिता का नाम—श्री महेन्द्रकुमारजी जैन

माता का नाम—राज दुलारी जैन

आर्यिका दीक्षा—श्रावण सुदी ६ सं० २०३० को श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

❖

आर्यिका श्री राजमति माताजी

ग्राम—अम्बा (मुरेना)

उम्र—४० चालीस वर्ष

दीक्षा—मुनि श्री १०८ सुमतिसागरजी महाराज से,

[विशेष धर्म प्रभावना का वर्णन]

कोटा (राजस्थान) में जैन औषधालय व जैन पाठशाला का निर्माण

सागर में वर्णी भवन की नींव डाली गयी ।

बाकल (जवलपुर) में पाठशाला खोली गयी ।

पांडिचेरी में नयी जमीन नया मन्दिरजी बनाने के लिए खरीद ली गयी है और शीघ्र ही नींव लगाने का कार्यक्रम है ।

वर्तमान में किराये के मकान में २ मन्दिरजी हैं ।

बालब्रह्मचारिणी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

पद—आर्यिका श्री

जन्म तिथि—चैत वदी ५

जन्म स्थान—पोशीना (सावरकांठा) गुजरात

श्राविका अवस्था का नाम—कंचनबाई जैन

पिता का नाम—श्री सांकलचंदजी

माता का नाम—मणीबाई जैन

आर्यिका दीक्षा—माघ सुदी ३ सं० २०३२ कीनसेली में श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज से ।

❖

आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी (पोशीना-ईडर)

रामदेश के दशाहुमड़ सेठ साकलचंदजी की पुत्री का कंचन नाम रक्खा । मुनि सुमतिसागरजी का संघ पोशीना ग्राम में आया वहाँ आपने क्षुल्लिका के व्रत स्वीकार किये । उसके बाद आर्यिका पद को धारण कर वर्तमान में सच्ची साध्वी का जीवन विता रही हैं । आप गुजराती वहनों के लिए आदर्श रूप हैं ।

क्षुल्लिका शुद्धमति माताजी

पद—क्षुल्लिका

जन्म तिथि—आषाढ़ शुक्ला ११

जन्म स्थान—ग्वालियर

श्राविका अवस्था का नाम—ज्ञानमति

पिता का नाम—श्री उदयराज जैन

माता का नाम—प्यारीवाई जैन

क्षुल्लिका दीक्षा कब ली—श्रावण सुदी ९

किन से ली—श्री १०८ आचार्य सुमतिसागरजी महाराज से ।

क्षुल्लिका शान्तिमती माताजी

जन्म नाम—मैनाबाई ।

पिता का नाम—श्री भैयालालजी

माता का नाम—श्री रत्नीबाईजी

जन्म स्थान—पनागर (जबलपुर) म० प्र०

शिक्षा—स्वाध्यायी

दीक्षागुरू—श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी

सुश्री मैनावाई का जन्म पनागर जवलपुर म० प्र० में हुआ । डगमगाते कदम स्थिरता की ओर बढ़े । दृढ़ता प्राप्त कदमों ने काल के साथ दौड़ प्रारंभ करदी । ऋतुएं एक के बाद एक आई और चली गई । क्षण-क्षण का समय दिन और सप्ताहों में संचित होने

लगा। सप्ताहों ने महीनों और महीनों ने वर्षों का रूप ले लिया। शैशव बीतने लगा और उम्र के चरण यौवन की ओर बढ़ने लगे। चिन्तातुर पिता ने योग्य घर-वर देखकर आमगांव निवासी श्री सिंघई छदामीलालजी के साथ विवाह कर दिया। गृहस्थ जीवन सुख पूर्वक बीतने लगा। घर समृद्ध था, परिवार भरा पूरा था। संसार का जाल काल रूपी मकड़ी ने बुनना प्रारम्भ कर दिया। मातृत्व, सजग हो उठा। वर्षानुक्रम से योग्य समय में संख्या बढ़ने लगी। दो लड़के एवं चार बच्चियों की मां अपने घर आंगन में किलकारी मारते, हंसते मुस्कराते फूलों को देखकर फूली नहीं समाती थी, किन्तु काल की गति विचित्र है। विधि का विधान अमिट है। जन्म के साथ मृत्यु छिपी चली आई है। पतिदेव काल के अतिथि बन गये। खुशियां दुःख में बदल गईं। जीवन में उदासी आने लगी। समय पाकर छिंदवाड़ा में आपने आर्यिका धर्ममति माताजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। जीवन अब धर्म की शरण में पहुंच गया। संसार की वास्तविकता ने उन्हें जगा दिया और मुनि श्री सुमतिसागर (मोरेना) से क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। तीन वर्ष तक आचार्य श्री के साथ रहकर इस पद के योग्य समस्त विधि विधान का अध्ययन एवं आचरण किया। अब सुविधानुसार कभी स्वतन्त्र रूप से, कभी किसी संघ के साथ विचरण करती हुई कल्याण पथ पर बढ़ रही हैं।

क्षुल्लिका विद्यामती माताजी

[परिचय अप्राप्य]

मुनि श्री निर्मलसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

श्री निर्मलसागरजी महाराज

मुनि श्री वर्द्धमानसागरजी

,, शांतिसागरजी

,, वीरभूषणजी

,, निर्वाणसागरजी

,, विवेकसागरजी

मुनि श्री दर्शनसागरजी

,, सन्मतिसागरजी

,, वर्धमानसागरजी

ऐलक श्री सुमतिसागरजी

क्षुल्लक श्री विद्यासागरजी

मुनि श्री वर्द्धमानसागरजी महाराज

जिला बांसवाड़ा (राजस्थान) के ग्राम खांदू के श्रावकों में अग्रणी श्री सुन्दरावत जयचन्दजी के यहां भाद्रपद शुक्ला १४ (अनंत-चतुर्दशी) विक्रम संवत् १९९९ को एक बालक ने जन्म लिया। बालक का नाम रतनलाल रखा गया। आपकी माता का नाम भूरीबाई था। आपके दो बड़े भाई श्री नेमीचन्द और साकरचन्द हुए। आपका गौत्र नरसिंहपुरा है। श्री जयचन्दजी एवं भूरीबाई दोनों ही अत्यन्त धार्मिक प्रकृति के थे। बालक रतनलाल पर अपने माता पिता के संस्कारों का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा। चूंकि आप अपने भाईयों में छोटे थे इसलिए आपको सभी का असीम स्नेह मिला।

जब आप पांच वर्ष के हुए नो आपका नाम गांव की प्रारंभिक पाठशाला में लिखा दिया गया। आप कुशाग्र बुद्धि के थे, अतः सदा कक्षा में प्रथम आते। आपने संस्कृत तथा हिन्दी में विशारद तक शिक्षा प्राप्त की। आप बचपन से ही गृहस्थ बन्धन से मुक्त होना चाहते थे। जब आपकी अवस्था २० वर्ष की हुई तो माता-पिता ने आपके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। किन्तु आप पर तो रंग ही दूसरा चढ़ चुका था। अतः आपने विवाह के बन्धन को स्वीकार न कर आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया और २० वर्ष की अवस्था में ही घर छोड़ कर आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के पास जा पहुंचे। विक्रम संवत् १९८८ में जावरा (मालवा) में सेठ केशरीमल मोतीलालजी द्वारा कराई गई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर आचार्य वीरसागरजी महाराज से आठवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। तब आपका नाम ब्रह्मचारी ज्ञानसागर रखा गया।

लगातार कई वर्षों तक आप आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के संघ में रहे। आचार्य श्री के संघ में प्रथम चातुर्मास इन्दौर में किया। बाद में आप आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघ में भी काफी समय तक रहे। मिति आसाढ़ सुदी १ संवत् २०२८ को सरूरपुर (मेरठ) में मुनि दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम मुनि वर्द्धमानसागर रखा गया।

आप महान तपस्वी हैं। कांधला (मुजफ्फरनगर) चातुर्मास के समय आपने ३१ दिन का उपवास किया। इसके बाद आपने अलवर चातुर्मास में भी ३१ दिनों का उपवास किया। १०-१० दिन के उपवास तो आप अनेक बार कर चुके हैं।

आप महान तपस्वी हैं। अपना समय स्वाध्याय में लगाते हैं। आप अत्यन्त शान्त चित्त और सरल परिणामी हैं।

मुनि श्री शांतिसागरजी महाराज
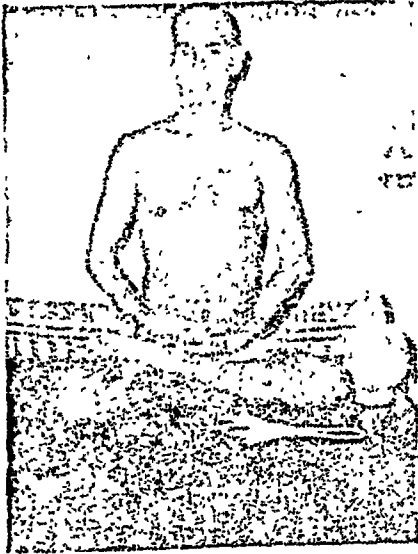
अचरज की बात थी कि सुखराम को भी सुख की तलाश थी। अलावडा (अलवर) की चौहद्दी में छोटेलाल जैन का व्यवसाय भी ठीक था और पत्नी चन्दन देवी का स्वभाव भी। सो वे भी यह न समझ सके कि उनके बेटे को कष्ट क्या है ? संसार में रचे-पचे वे दम्पत्ति जब भी पूछते सुखराम बात टाल जाता। चारों भाई-बहिनों ने भी दिल टटोला पर वे भी थाह न पा सके और विराग की तड़फन सुखराम के दिल में बढ़ती ही चली गई। १५ वर्ष की आयु में माता-पिता ने गृहस्थी के बंधन में बांध दिया जिसका निर्वाह चालीस वर्ष की आयु तक विरक्त भाव से किया। "कामं कः सेवते सुधीः।" आखिर उपशम की घड़ी आई। आ० श्री देशभूषणजी म० से जयपुर में पहली प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये तो लगा कि सच्चा सुख कुछ अधिक दूर नहीं है। बाराबंकी में पू० आ० श्री निर्मलसागरजी म० के चरण कमलों में बैठकर सप्तम प्रतिमा धारण कर ली। ज्येष्ठ शु० ७ वी० सं० २४९७ में मुजफ्फर नगर में (श्री निर्मलसागरजी ने) इस सुपात्र को निर्ग्रन्थ दीक्षा देते हुए सुख की तलाश में भटकते सुखराम को सुखी बना दिया और आपका दीक्षा नाम 'शांतिसागर' रक्खा। श्रावण शु० २ वि० सं० १९७२ को जन्म लेते ही उसे जिस मंजिल की तलाश थी वह मिल गई। गुरु आदेश से आपने आगम सम्मत घोर तपश्चरण करके कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा कर अपनी आत्मा को पवित्र बना डाला।

कुछ लोग आश्चर्य करने लगते हैं कि इस पंचम काल में जीव हीन संहनन से कर्म निर्जरा कहां तक कर पायेगा। अनत संसार में भटकते हुए जो अब तक नहीं कर पाया वह अब क्या कर पायेगा। उन्हें आचार्य का यह कथन याद रखना चाहिए—

वरिस-सहस्सेण पुरा जं कम्मं हणइ तेण काएण।
तं संपहि वरिसेह हु णिज्जरयइ हीण संहणणे ॥
भावसंग्रह—१३१।

मोक्षमार्ग में दृढ़ता से वढ़ते हुए कदमों को देखकर पू० आ० श्री जयसागरजी म० ने कार्तिक बदी १४ सं० २०३६ हस्तिनापुर की पावन भूमि में आपको आचार्य पद प्रदान किया।

स्व-पर कल्याण में निरत रहकर आपने अब तक दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हस्तिनापुर, सम्मेदशिखर आमीन नगर सराय, रामपुर मनिहारान में चातुर्मास किये जहां अनेकों भटके हुए जीवों को सद्मार्ग पर लगाकर धर्म की प्रभावना की। आपकी बहिन ने भी (आर्यिका शांतिमती) जिन-शासन की महान् सेवा की।

मुनि श्री वीरभूषणजी महाराज

मुनिराज श्री का जन्म अगहन बदी ५ (पंचमी) सम्वत् १९७० में, मोजासोड़ा जिला भिन्ड म० प्र० में श्री बिहारीलालजी के परिवार में हुआ। आपकी मातु श्री का नाम राजमति देवी था आपके परिवार में तीन भाई एवं एक बहिन है जिसमें बड़े भाई का नाम चम्पाराम है जो अभी खास परिवार ग्राम सुकाण्ड जि० भिन्ड म० प्र० में रह रहा है। महाराज ने आत्म शुद्धि हेतु सम्पूर्ण भारत की यात्रा वंदना दीक्षा से पूर्व ही पूर्ण कर ली एवं बम्बई महानगर में रहते हुए भांडुक में अपनी सम्पत्ति से एक जिन मंदिर बनवाया। इसके लिए आपके प्रेरणा स्रोत थे आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज। प्रारम्भ से ही आपके भाव मुनि दीक्षा ग्रहण करने के थे। इसका निमित्त श्रवण

बेलगोल में रास्ते में मुनि श्री मुनिसुव्रतसागर महाराज से महन्तपुर महाराष्ट्र में मिला। तभी से दक्षिण एवं श्रवणबेलगोल की यात्रा करके आप हाल में श्री सिद्धक्षेत्र गिरनार में चातुर्मास कर रहे हैं। अभी तक आपने सिद्धक्षेत्र की २५१ वंदना सम्पन्न कर ली है। हाल में आप आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज के साथ रहकर आत्म कल्याण में लगे हैं।

मुनिश्री निर्वाणसागरजी महाराज
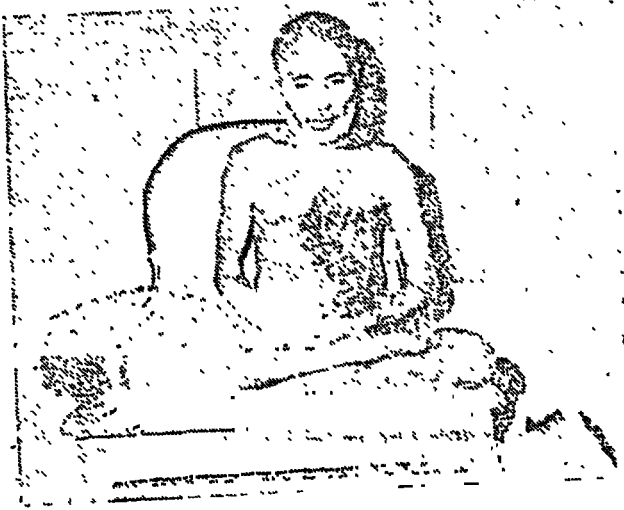
आपके पिताजी थे नगाती कुलभूषण श्री रामप्रसादजी आपकी माताजी थी भूरीवाई। दोनों उत्तम प्रकृतिवाले थे। उन दोनों के स्वभाव का गहरा असर आप पर भी पड़ा। बचपन से ही आप जैनधर्म और उसके सिद्धांतों के प्रति श्रद्धान्वित थे। गृहस्थावस्था का आपका नाम था कुन्दनलालजी।

अठारह साल की उम्र में आपका पाणिग्रहण-संस्कार हुआ चिन्जावाई से जो वमनी गांव (मध्यप्रदेश) की रहने वाली थी। दुर्भाग्य से शादी के बाद तीन वर्ष के भीतर ही चिन्जावाई के प्राणपखेरू उड़ गये। होनहार को कौन रोक सकता है।

पश्चात् आपके धर्म-रत पिताजी का भी स्वर्गवास हो गया एवं आपकी माताजी का भी।

आप सांसारिक-लौकिक बंधनों से मुक्त हो गये। घर में रहते हुए भी आप, जैसे पानी में रहते हुए भी कमल पानी से अलिप्त रहता है, वैसे विकथाओं से अलग रहकर निर्ममत्व भाव से अपना कालयापन करते थे।

त्याग के सोपान पर :—आपने ४६ वर्ष की उम्र में मुनि श्री १०८ निर्मलसागरजी से क्षुल्लक-दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा-स्थल था कुण्डलपुर जिला दमोह (मध्यप्रदेश)।

१९६९ में तीर्थाधिराज सम्मेदशिखरजी की पारसनाथ टोंक पर आप मुनि श्री १०८ निर्मल सागरजी के सान्निध्य में निर्ग्रन्थ-दीक्षा से विभूषित हुए। मुनि-दीक्षा से अलंकृत होने से आपके प्रगतिशील जीवन में जैसे चार चांद लग गये।

मुनि श्री विवेकसागरजी महाराज

उमर के साठ बसन्त निकलते ही घर के किसी कोने में बूढ़े को बिठा देने का गांव का आम रिवाज बदस्तूर अब भी निर्विघ्न चल रहा है। इस संदर्भ में हर बार तर्क के घेरे में फेंका गया सवाल कुण्ठित होकर निकला है। घर का उद्दाम युवा शासक साठिये की अन्तःशक्ति की ओर झांके बिना उसे साठियाया कहने में अपनी भलाई मानता है। लेकिन बंकटलाल की करनी से उन्हें भी आखिर दांतों तले अंगुलियां दबानी पड़ी। नांदेड जिले में सीरडवनिका गांव विरागियों का गढ़ है वहां श्रावक शंकरलाल पत्नी सोनाबाई के साथ व्यवसाय से जीवन निर्वाह करते हुए धर्माराधना में समय बिताते थे। सं० १९७२ में बंकटलाल ने इन्हीं के घर जन्म लेकर निजकुल के साथ-साथ जिनशासन गौरवान्वित किया। कारण छोटा सा था विराग का, पर था हृदय की गहराई तक धंस जाने वाला। "शैव" साधु की विरागी प्रवृत्ति ने इन्हें झकझोर डाला। सुमार्ग सद्गुरु की पहचान का विवेक उन्हें अच्छी तरह था। सन् ७१ में आ० श्री विमलसागरजी म० से सप्तम प्रतिमा के व्रत लेकर कठिन परीक्षा की तैयारी शुरू की। आसौज कृ० ६ सं० २०३३ को औरंगाबाद में पू० मुनि श्री निर्मलसागरजी म० के समक्ष देह निर्ममत्व की परीक्षा देते हुए कृपासिन्धु गुरुवर से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री ने आपके विवेक की सराहना करते हुए "विवेकसागर" नाम से पुकारा। आपको तेलगू, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, राजस्थानी भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। सम्प्रति गुरु आदेश से अपनी विवेक असि को भांजते हुए कर्मों की कड़ियां काट रहे हैं।

मुनिश्री दर्शनसागरजी महाराज
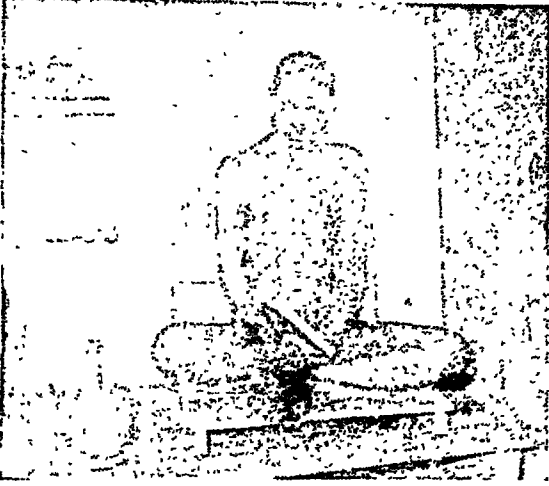
मुनि श्री का जन्म भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली में हुवा था आपके पिता का नाम श्री सूरजभानजी जैन अग्रवाल तथा मां श्री का नाम श्रीमति रतनमालाजी जैन था आपने ६ फरवरी १९७२ को मुनि श्री निर्मलसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली कुछ वर्षो के पश्चात् आपने मुनि दीक्षा ले ली।

मुनिश्री सन्मतिसागरजी महाराज (अजमेर)

मुनि श्री सन्मतिसागरजी महाराज का जन्म राजस्थान के सुप्रसिद्ध नगर अजमेर में खण्डेलवाल जैन समाज के वज गौत्रिय परिवार में सौभाग्यशाली श्रीमान् सेठ फूलचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीमती जोधीबाई की कुक्षि से भाद्रपद शु० सप्तमी वि० सं० १९६८ को हुआ। दम्पत्ति ने वड़े प्यार से संतान का नाम रखा "भंवरीलाल"। और वगैर यह देखे कि संसार भंवर में फंसी प्राणियों की नैया को भंवरलाल कैसे निकालता है, उसे डेढ़ वर्ष का ही छोड़-कर संसार से विदा हो लिये। फलतः आपके पालन-पोषण का भार चाचा श्री मानमल जैन के कंधों पर आ पड़ा। काल क्रम से आप प्रारम्भिक लौकिक और धार्मिक शिक्षा समाप्त कर निजी व्यवसाय में लग गये। व्यापार में न्याय नीति से धनोपार्जन कर वाजार में अपनी साख जमा ली। व्यवसाय करते हुए भी आपने जैन श्रावक के सभी आवश्यक कार्य पूजन प्रक्षाल सामायिक शास्त्र श्रवण आदि में कभी शिथिलता नहीं आने दी।

विराग की धारा :

बचपन से ही माता-पिता का साया उठ जाने के कारण संसार की विचित्र दशा देखने का अवसर दो वर्ष की अल्पायु से आपको मिल रहा था। और यही कारण है कि भवभोगों की क्षण-भंगुरता का उपदेश लेने आपको कहीं भटकना नहीं पड़ा। उदासीन चित्त पिंजड़े में कैद पंछी की तरह वैराग्य के लिये छटपटा रहा था।

कर्म महादुठ वैरी मेरो ता सेती दुख पावे।
तन पिंजरे में बंध कियो मोहि यासो कौन छुड़ावे ।।

सो परिवार में किसी ने इतना साहस ही नहीं जुटा पाया कि आपको विवाह के लिये सहमत कर सके। बाल ब्रह्मचारी भंवरीलाल के जीवन की यह पहली विजय थी। मन में मंद-मंद मुस्कान लिए एक दिन वह वहां जा पहुंचा जहां उसके कर्मास्रवों के छिद्रों में रोक लगाने के लिये मुक्तिमार्ग के साक्षात् निदर्शक कृपालु संत पूज्य मुनि श्री विमलसागरजी म० विराजमान थे। एक उदासीन को मुनि श्री ने क्षुल्लक दीक्षा देकर वैराग्य संवर्द्धक उपदेश से भव्यों की मन पांखुड़ी खिला दी। उस दीक्षोत्सव को देखकर आपकी रुचि वैराग्य की ओर हो गई और व्यापार से विमुख होकर संघ में ही रहने लगे। इसी दरम्यान एक विचित्र घटना घट गई जिसने आपके विरागी जीवन धारा में प्रवाह ला दिया।

हुआ यह, एक बार आप क्षुल्लक शांतिसागरजी म० के साथ अजमेर की ओर वापिस आ रहे थे। मार्ग में पीसांगन ग्राम के समीप धर्म की शीतल छाया से सर्वथा अस्पृश्य, नवकार की मधुरिम ध्वनि से अस्नातित कर्ण वाले विषयासक्त दीर्घसंसारी साधु निंदकों ने क्षुल्लक श्री शीतल-सागरजी म० को कुंदुकवत् किलोल करते हुए गहरे कूप में फेंक दिया। सच ही कहा है दुर्जन व्यर्थ में शत्रुता करते हैं।

मृगमीन सज्जनानां तृण जल-संतोष विहितवृत्तीनाम।
लुब्धक धीवर पिशुना निष्कारण वैरिणो जगति ।।

धर्म की महिमा का अचित्य प्रभाव, क्षुल्लकजी म० ने कुएं की दीवार पर लटके हलाहल विष वमन करने वाले काले भुजंग को रज्जु समझ कर पकड़ लिया और लटके रहे। श्रावकों ने उपसर्ग दूर कर जब आपको वहां से निकाला तो सर्प भी अदृश्य हो गया। इस घटना से जीवन और जगत के

प्रति हृदय के किसी कोने में अवशिष्ट आसक्ति पर भी विरक्ति का पूरा कब्जा हो गया। अजमेर आकर आपने अपना करोबार बन्द कर दिया। और फिर, घर छोड़ा तो ऐसा कि भूल कर भी मुख न किया। सम्यक्त्व का प्रभाव ही ऐसा है।

कालक्रम से आप नसीराबाद आये, जहां पर श्री १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी म० के धर्मोपदेश से कर्मबेड़ियां चटकने लगीं। मुनिराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत लेकर अपनी सम्यग्-गठरी को सम्भालने में दत्तचित्त हो गये।

मुक्ति की राह :

सम्वत् २०१९ ईसरी में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन हो रहा था। १०८ श्री निर्मल सागरजी म० एकान्तवादियों की दुर्मति सप्तभंगी तीक्ष्ण धारा से काट-काट कर निर्मल मति में परिणित कर रहे थे। इन्हीं मुनिराज के चरण सान्निध्य में आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने के बाद आप गुरुपद कमलों का अनुगमन करते हुए धर्म-ध्यान करते रहे तथा तप संयम में अपने भाव लगाते रहे।

विक्रम सं० २०२० में गुरुदेव से बाराबंकी चातुर्मास के समय ऐलक दीक्षा प्राप्त की। सं० २०२५ में विनीत शिष्य के लिये समय आया शिवपथ में छलांग लगाने का। देव भी तरसते हैं जिस संयम के लिये उसे पाने को शिष्य ने झोली फैला दी। खेखड़ा में गुरु ने मुनि दीक्षा देकर उसे कृत-कृत्य कर दिया। अंतरंग-बहिरंग परिग्रह को त्याग करने की सन्मति जिसके हो जाय भला उसकी पात्रता में संदेह की गुंजाइश ही कहां हो सकती है। सो गुरु ने इस भव्यात्मा का नाम सन्मतिसागर रखकर औरों को भी "सन्मति" देने का आदेश दिया। शिष्य ने अपने तीनों पदों की दीक्षा काल के गुरु पू० श्री निर्मलसागरजी म० के आदेश को शिरोधार्य कर जिन शासन प्रभावना के लिये अपना कदम बढ़ा दिया।

धर्मप्रचार एवं प्रभावना :

आपने देश भर में भ्रमण करके धर्मामृत की वर्षा से भव्यों के हृदय कमलों को सिंचित करते हुए प्रफुल्लित किया। समडा और बिजौरी में हजारों अजैन नर-नारियों ने आजीवन मद्य-मांस-मधु का त्याग करके जिन शासन के महत्त्व को अंगीकार किया।

परीषह जय :

श्री सम्मेदगिरि की वन्दना कर जव आप कटनी (म० प्र०) के पास पहुंचे तो एक ग्रामीण नें मधु-मक्खियों के छत्ते में पत्थर दे मारा जिससे मधु-मक्खियां आपकी देह से चिपट गई परन्तु आप अत्यन्त भावना भाते हुए जरा भी विचलित नहीं हुए। अत्यन्त वेदना को सहन करते हुए चलते रहे। कुछ समय वाद आप गिरकर अचेत हो गये। कटनी के श्रावक प्रमुख आपको नगर में ले आये जहां तीन दिन वाद मधु-मक्खियाँ अलग की जा सकीं परन्तु आपने उफ् तक न की। घोर उपसर्ग में भी आपका मन रत्नत्रय की आराधना में लगा रहा।

पूज्य मुनि श्री गुरु पद चिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रावकों की सम्यग्दर्शन भावना को दृढ़तम् वना रहे हैं। धर्मवत्सलता का बीज वटवृक्ष का रूप धारण करता रहे और पूज्य श्री अपनी कृपा से श्रावक वर्ग को संसार की असारता का भान कराते रहें, यही प्रार्थना है।

मुनिश्री वर्धमानसागरजी महाराज (दक्षिण)

पू० मुनि श्री का जन्म दक्षिण भारत मद्रास के समीप में हुवा था। आपकी भाषा तेलगू है आप मुनि श्री निर्मलसागरजी से मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के पथ पर चल रहे हैं वर्तमान में आप आचार्य धर्मसागरजी महाराज के संघ में विराज रहे हैं।

❖

ऐलक श्री सुमतिसागरजी महाराज

तारादेही (दमोह) के श्री गुलझारीलाल जैन सर्राफ एक दिन खानदानी व्यवसाय को छोड़कर शिवपथ के अनुगामी बनेंगे इसका तो रत्तीभर भी गुमान उनके पिता लक्ष्मीचन्दजी को भी न था। सं० १६८३ माघ शु० १४ को इस प्रतिष्ठित सर्राफ परिवार में इस विभूति का जन्म हुआ तो माता कौशल्या देवी की चिरसाध मानो साकार हो उठी। ग्रामीण वातावरण में भला पले-पुषे अल्पशिक्षित दम्पत्ति की मनोकामना सांसारिक विषयों के अतिरिक्त हो भी कहां सकती थी। परन्तु जल्दी ही उनका यह मोहजाल टूट गया जब उन्होंने अपनी इस प्यारी संतान को भव भोगों से विरक्त पाया। विरक्ति का कारण कुछ भी रहा हो पर यह निश्चित है कि सत्संगति और सांसारिक संबंधों के स्वार्थपना की अनुभूति आपके चित्त को विराग की ओर उन्मुख करती रही। विराग का यह स्रोत सं० २०१३ में पू० मुनि श्री विमलसागरजी महाराज के चरणों का आश्रय पाकर फूट ही पड़ा। जीवन में धर्मक्रान्ति का बीज अंकुरित हो उठा। पू० मुनि श्री ने इस निकट भव्य को तृतीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण कराकर संसार भ्रमण सीमित कर दिया। सं० २०२५ में पूज्य मुनि श्री निर्मलसागरजी महाराज ने सुपात्र की योग्यता परखकर 'ऐलक' पद की दीक्षा प्रदान की और आपका नाम सुमतिसागर घोषित किया। होनहार की बात, क्षणभर पहले का गुलझारीलाल सर्राफ गुरु कृपा से रत्नत्रय का पाथेय लेकर भवबन्धन का जाल काटने के लिए घर से निकल पड़ा। तब से न जाने कितने भटकते हुए जीवों को इस विभूति ने सद्धर्मामृत का पान कराकर सन्मार्ग में लगा दिया। निरन्तर धर्मप्रचार और धर्म साधना करते हुए आप चारों अनुयोगों के स्वाध्याय में दत्तचित्त रहते हैं।

क्षुल्लकश्री विद्यासागरजी महाराज

अनादि की भूल सुधारने का एक अवसर नरतन में ही मिल पाता है फिर और पर्यायें तो ऐसी हैं कि उनका न होना ही आतम हित में है। अलबत्ता ऐसा मानकर चलने वाले भी हममें से इक्के-दुक्के ही होते हैं। संसार भोग से कुछ ऐसा तृष्णा भाव हो जाता है कि वितृष्णा की बात असुहानी लगने लगती है। नर जीवन का इससे अधिक उपहास और क्या हो सकता है। बात हर बार वही चलती है पर 'करूंगा' के इति शब्द से आत्महित की इतिश्री न जाने कितनी बार करने की गल्ती अनायास ही होती जाती है। 'संमीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति' की भावना भाने वाले श्री

भुंवरलाल रूखवदास वोरालकर अंजनीखुर्द (वुलढाणा) अपने पिता श्री रूखवदास घोंडीबा वोरालकर माता देवकीवाई के अनेक प्रयासों के बावजूद भी जल से भिन्न कमलवत् गृहस्थी से अलिप्त से बने रहे। १८ मई १९१८ को आपके जन्म के उपरान्त परिवार में आनन्द की जो लहर दौड़ी थी वह २३ जून ७४ से क्षीण हो चली। जब आपने पू० आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज से सिंदखेडाराजा में ब्रह्मचर्य प्रतिमा की दीक्षा ले ली। यही नहीं उसी वर्ष १० अक्टूबर (७४) को औरंगाबाद के राजा बाजार मंदिर में पूज्य श्री से ही क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर सच्चिदानंद की प्राप्ति के लिये अपने पग बढ़ा दिये। हर जैन श्रावक परिवार में एक क्षीण धर्म की ज्योति सदैव टिमटिमाती रहती है। बस थोड़ा सा बाह्य संयोग भर का इंतजार रहता है। वह जिसे समय पर मिल पाया उसके सच्चिदानंदमय बन जाने में भला विलम्ब कहां। शास्त्रवाचन चिंतन-मनन से वैराग्य की दिशा में मन उन्मुख हुआ सो फिर रुका नहीं। क्षुल्लक विद्यासागर के रूप में अब आज हमारे सम्मुख धर्मामृत की वर्षाकर महान उपकार कर रहे हैं। अपने दीक्षा काल से लेकर अंव तक आपने औरंगाबाद, कुम्भोज, बाहुबली, हराल, अंवड, चिंचवाड वसागड़े और परभणी में चातुर्मास करके श्रावकों को रत्नत्रय के मार्ग में अग्रसर करने का महान कार्य किया है।

मुनिश्री जयसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

❖

मुनि श्री पुष्पदन्तसागरजी
क्षुल्लक श्री सुमतिसागरजी
क्षुल्लक श्री विजयसागरजी
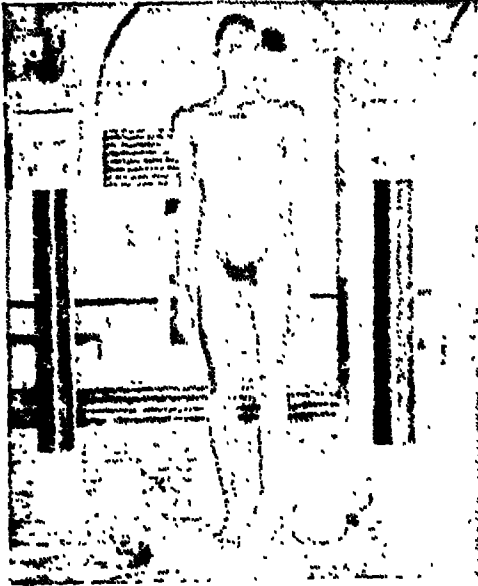
मुनि श्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज

आपने पू० मुनि जयसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ली तथा आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं।

❖

क्षुल्लक श्री सुमतिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजी का जन्म सिरोंज (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपने विक्रम संवत् १९६२ में अनुराधा नक्षत्र में मंगलवार को जन्म लिया। आपके पिता श्री मंगलजीत भल्ला थे और माता मिश्रीबाई थी। उन्होंने बड़े स्नेह से आपका नाम बदामीलाल रखा। आपके नाम का प्रभाव जीवन पर भी पड़ा। धर्म और समाज के हित में आप बाहर से बादाम के छिलके से व भीतर से अतीव गुणकारी रहे।

जब असमय में ही गृहस्थी का ग्रह आपको लगा तब आपने पर्याप्त परिश्रम करके सभी बहनों के विवाह किये। आत्मीयों की प्रेरणा से आपने अपना विवाह भी किया। दस बरस तक

दाम्पत्य जीवन का निर्वाह किया पर विवाह विराग में बाधक नहीं वना । पुत्र उत्पन्न मात्र हुआ और साथ ही अपनी मां को भी लेता गया ।

आपने घर और परिवार छोड़कर, शरीर और संसार से विरक्त होकर आजीवन ब्रह्मचारी रहने का निश्चय किया और श्री १०८ मुनि नेमिसागरजी से सातवीं प्रतिमा ले ली । पूज्य गणेश-प्रसादजी, सहजानन्दजी वर्णी के सान्निध्य ने आपको आत्मबोध की दिशा में बढ़ने के लिये प्रेरित किया । विक्रम संवत् २०२३ में श्री १०८ मुनि जयसागरजी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ले ली । आप सरलता और सादगी, सौजन्य और विद्वत्प्रेम के प्रतिनिधि हैं । पंडित द्यानतराय के शब्दों में आप आर्जव धर्म के प्रतिनिधि हैं ।

क्षुल्लकश्री विजयसागरजी महाराज

बच्चों को सखा कहने वाले, उनसे घुलमिलकर उनकी बातचीत में रस लेनेवाले और उन्हें सहज सरल स्वभाव से धर्म की शिक्षा देने वाले क्षुल्लक हैं विजयसागरजी ।

आपका जन्म संवत् १९६८ में कोठिया में हुआ । आपका बचपन अतीव सुखमय बीता । १६ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह हुआ । एक पुत्र भी है ।

दस बरस बाद जब गृहिणी का स्वर्गवास हो गया तब आपके मन में विचार आया—यों गृहस्थी में रहकर आत्महित करना सम्भव नहीं । गृहस्थी तो काजल की कोठरी है । इसमें मनुष्य कितना भी सावधान होकर क्यों न रहे । पर राग-द्वेष, क्षोभ-लोभ, काम-क्रोध की रेखायें लग ही जाती हैं । यह विचार आते ही आपने बान्धवों और वैभव को छोड़ दिया ।

संवत् २०१७ में देवली में आपने मुनि श्री जयसागरजी से ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली । छह वर्ष वाद आपने क्षुल्लक दीक्षा भी पिड़ावा में ले ली । यद्यपि आपकी लौकिक धार्मिक शिक्षा लगभग नहीं ही हुई थी तथापि गीत भजनों और स्वाध्याय तथा सत्संग के माध्यम से आपने जो आत्मानुभूति पायी उसे धर्म और समाज के हित में वितरित करते रहते हैं ।

बड़ों को उपदेश देनेवाले तो बहुत हैं पर वे मानते नहीं हैं । जो मान सकते हैं उन्हें कोई उपदेश देता नहीं है । आपकी यह बात सोलह आने सही है ।

❖

मुनि श्री पदमसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

क्षुल्लक श्री चन्द्रसागरजी

क्षुल्लक चन्द्रसागरजी महाराज

खुर्जा (U.P.) में जन्म लेकर आपने खानदान को पवित्र किया। आपके पिता का नाम श्री दीनानाथजी था, तथा माताजी का नाम श्री कृष्णा बाई था। सन् १९७४ में आपने मुनि पदमसागरजी से उपदेश सुना तथा क्षुल्लक दीक्षा लेने के भाव हुए तो मुनि श्री ने क्षुल्लक दीक्षा दे दी। आप अपने व्रतों को पालन कर रहे हैं।
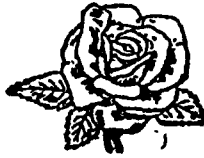
मुनि श्री श्रेयांससागरजी महाराज वर्धा

द्वारा दीक्षित शिष्य

मुनि श्रेयांससागरजी महाराज

ऐलक श्री चन्द्रसागरजी

क्षुल्लक श्री विश्वनन्दीजी

ऐलक चन्द्रसागरजी महाराज

आपका जन्म सिमरया जि० ललितपुर में हुवा था। आपका नाम बच्चूलाल था। आपके पिता मोदी खुशालचन्दजी थे। परिवार जाति में जन्म लेकर जाति को उन्नत बनाया। आप ३ भाई तथा एक बहिन हैं। साडूमल जैन विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। भ० महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव के पावन अवसर पर मासोपवासी मुनि सुपार्श्वसागरजी से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किए। सं० २०३२ में मुनि नेमसागरजी से क्षु० दीक्षा ली सं० २०३७ में फिरोजाबाद में श्रेयांससागरजी से ऐलक दीक्षा ली।

क्षुल्लक श्री विश्वनंदीजी महाराज

आपका जन्म जैनवाड़ी (जि० सोलापुर) सन् १९५७ में हुआ। आपका गृहस्थ अवस्था का नाम शान्तिनाथ कलवंडा पाटील रहा। आपने मुनि श्रेयांससागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। ❖

मुनि श्री सुव्रतसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य
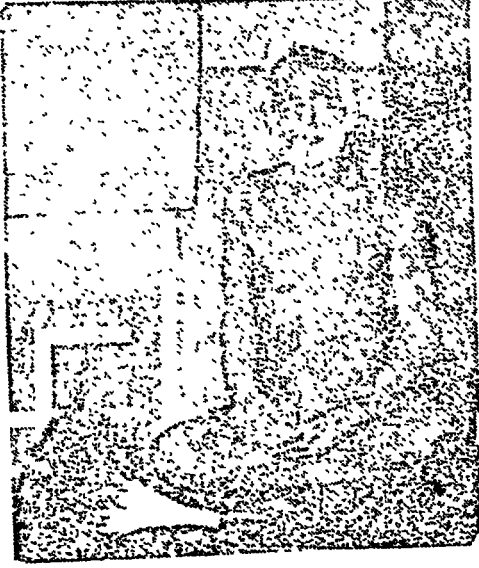
श्री सुव्रतसागरजी महाराज

मुनि श्री निर्वाणसागरजी

क्षुल्लक श्री महावीरकीर्तिजी

मुनि श्री निर्वाणसागरजी महाराज

पिता का नाम—बाबूलाल जैन

माता का नाम—सुन्दर बाई

जन्म स्थान—गांव तालबेहट, जिला—ललितपुर

जन्म नाम—महेन्द्रकुमार जैन

जन्म दिवस—दिनांक ५-८-५२ ई०

दीक्षा गुरु—मुनि श्री सुव्रतसागरजी

वैसाख सुदी छठ पुष्य नक्षत्र में प्रात।

क्षुल्लक श्री महावीरकीर्तिजी महाराज

आपके पिता का नाम श्री ईश्वरीप्रसादजी तथा मां का नाम धन्नोबाई था। आपका नाम नेमीचन्द जन्म १९२३ में कार्तिक वदी त्रयोदशी के दिन हुआ था। धोलपुर में जन्म लेकर यहीं पर सामान्य लौकिक शिक्षा प्राप्त की। २५ अप्रेल सन् १९८३ को महावीर जयन्ती के दिन सम्मेदशिखरजी में मुनि श्री सुव्रतसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा धारण की। आपका नाम क्षुल्लक महावीरकीर्तिजी रखा गया।

मुनि श्री विजयसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

श्री विजयसागरजी महाराज

मुनि श्री विमलसागरजी

क्षुल्लक श्री ज्ञानानन्दसागरजी

मुनि श्री विमलसागरजी महाराज

ग्वालियर राज्य के समीप महापनो नामक ग्राम में सेठ भीकमचन्द्रजी जैसवाल के यहां सं० १९४८ में केसरीलाल पुत्र का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती मथुरादेवी था ८ वर्ष की अवस्था में इनके पिता का स्वर्गवास हो गया, इनके छोटे तीन भाई थे। इन सबका भार इन्हीं के ऊपर था। आप बचपन से ही स्वाध्याय के प्रेमी थे। सं० १९६८ में पहली शादी हुई। पत्नी का देहान्त हो जाने के कारण दूसरा विवाह सं० १९७७ में हुआ दूसरी पत्नी का देहान्त सं० १९९२ में हो गया। आपमें वीतराग भाव जागा। सं० १९९३ में दूसरी प्रतिमा का व्रत धारण किया। परिणामों में निर्मलता आई और सं० १९९७ में श्री १०८ मुनि विजयसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। उसके

तीन महीने बाद ऐलक दीक्षा ली । सं० दो हजार में कोटा नगर में विजयसागरजी के साथ चातुर्मास किया और उसी समय दिगम्बर मुनि दीक्षा ग्रहण की । आपका नाम विमलसागरजी रक्खा गया । तपः साधना के कीर्तिमान पुरुषार्थी सन्त शिरोमणि मुनिराज हैं ।

क्षुल्लक श्री ज्ञानानन्दसागरजी महाराज

संसार में सब कुछ परिवर्तित हो जाता है परन्तु विराग का संस्कार लम्बी प्रक्रिया से भले गुजरे मिटता नहीं है पर संस्कार हो विराग का ही । अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी स्व० पू० श्री १०८ ज्ञानसागरजी महाराज की परम्परा में पू० आ० श्री विद्यासागरजी म० द्वारा भला जिस जीव को विराग से संस्कारित किया गया हो उसकी महानता के बारे में कहना ही क्या ! श्री सोहनलालजी छाबड़ा, टोडारायसिंह (राज.) उन उत्तम महापुरुषों में से एक हैं जिन्हें ऐसे तपस्वी आचार्यों की सत्संगति मिली । सं० १९९१ में श्री सुन्दरलाल जैन के घर में आपका जन्म हुआ । माता धापूबाई ने जन्म से ही धार्मिक संस्कारों में आपकी गहरी रुचि जाग्रत कर आपको उत्तम श्रावक बनाने की दिशा में पहल की । कालान्तर में १० नवम्बर १९७६ में पू० श्री विजयसागरजी म० के चरणों का आश्रय पाकर आपने कुली ग्राम में क्षुल्लक दीक्षा का महान् व्रत धारण किया । गुरु परम्परा के अनुरूप आप ज्ञान प्रसार में अहर्निश संलग्न हैं ।

मुनिश्री सम्भवसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

मुनि श्री सुवर्णभद्रसागरजी

मुनि श्री १०८ सुवर्णभद्रसागरजी महाराज

परम ज्ञानी ध्यानी तपस्वी मुनि श्री का जन्म गुलवर्गा जिले के नंदूर ग्राम में हुआ था। आपके पिता अनंतप्पा और माता रत्नावाई थी। इनका गृहस्थ अवस्था का नाम शांतिलाल है। माता पिता भाई वहिन स्त्री पुत्रादि तथा आर्थिक स्थिति उत्तम होते हुए भी आप इन सबसे सम्बन्ध त्यागकर आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हुए।

आपने पूज्य श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजी महाराज से ११ साल पहिले सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली थी। आपकी प्रबल भावना थी कि मैं मुनिव्रत को ग्रहण करके दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपादि आराधनाओं का सम्यक् प्रकार से पालन करके इस दुर्लभ नरभव को सफल करूं। तब आपने सन् ७४ में पूज्य श्री मुनि १०८ संभवसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की और आत्म साधना में लग गये। आपने जबलपुर में चातुर्मास किया। आपने अभी चारित्र शुद्धि व्रत में १२३४ उपवास करने का नियम लिया है। आप पहिले २ उपवास के वाद तीसरे दिन पारणा करते थे और अभी १ उपवास के वाद पारणा करते हैं। ३ या ४ घंटे तक लगातार प्रतिदिन एक पैर से खड़े होकर उग्र तपश्चरण व ध्यान करते हैं। आप स्वभाव से सरल मृदुभाषी और अध्ययन शील हैं। आहार में मात्र एक अन्न लेकर और सर्व प्रकार के रसों का त्यागकर नीरस आहार ग्रहण करने का आदर्श पेश कर रहे हैं।
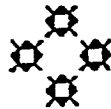
मुनिश्री कुन्थसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

मुनि श्री वीरसागरजी
क्षुल्लक श्री कनकनन्दीजी
आर्यिका चन्द्रमतीजी
क्षुल्लिका कुलभूषणमतीजी
क्षुल्लक कामविजयनन्दीजी

मुनि श्री वीरसागरजी महाराज

आपने सं० १९८५ में परसाद (उदयपुर) में जन्म लिया। आपके पिता का नाम श्री चम्पालालजी था। आपका पूर्व नाम गणेशीलालजी था। आपके २ बच्चे हैं। आप कपड़े का काम करते थे। प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे मन में वैराग्य आया तथा मुनि पार्श्वसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा धारण की सं० २०३५ में फाल्गुन सुदी पूर्णिमा के दिन आपने कुन्थसागरजी से तारंगाजी क्षेत्र पर दिगम्बर मुद्रा धारण की। आपका स्वभाव बड़ा सरल है नित्य ही ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं।

क्षुल्लक श्री कनकनन्दीजी महाराज

आपका जन्म ओडिशा प्रान्त में हुआ था। आपके पिता का नाम मोहन प्रधान एवं माता का नाम रुकमणी देवी था, आपकी जाति क्षत्रिय काश्यप वंश है। आप छात्र अवस्था से ही धर्म, रूढ़ि एवं अन्धविश्वास आदि के बारे में परीक्षा करने लगे, धर्म का स्वरूप जानने के लिये एवं विभिन्न धर्मों की परीक्षा करने के लिये आप भारत के विभिन्न धर्म संस्थापकों एवं धर्म प्रचारकों के पास गये, आपने मैट्रिक पास करके लौकिक शिक्षा का त्याग कर दिया। जैन धर्म की परीक्षा करने के लिये शिखरजी आये एवं एक दो माह परीक्षा के बाद मुनि श्री कुन्थुसागरजी एवं सिद्धान्त विशारदा श्री १०५ आ० विजयमती माताजी के पास गोम्मटसार जीवकाण्ड एवं कर्म काण्ड तक ४ वर्ष में अध्ययन करके २४ वर्ष की उम्र में पपौराजी में मुनि श्री १०८ कुन्थसागरजी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम क्षुल्लक कनकनन्दि रखा गया।

आर्यिका चन्द्रमती माताजी

जन्म स्थान—वेलापुर ग्राम (मैनपुरी)

जन्म—अगहन बदी २ विक्रम १९८२ नाम—चन्द्रकली बाई

पिता का नाम—श्री लालारामजी

माता का नाम—कस्तूरीबाईजी

वैराग्य का कारण—संसार की असारता देखकर स्वयं वैराग्य

दीक्षा गुरु—कुन्थसागरजी

दीक्षा उम्र—३० वर्ष

वर्तमान आयु—५६ वर्ष

क्षुल्लिका कुलभूषणमती माताजी

आपका जन्म ललितपुर यू० पी० में हुआ। आपके पिता का नाम पूरनचन्दजी था। आपने परवार जाति में जन्म सन् १९६० में लिया था। आपका पूर्व नाम श्री कान्तिवाई था आपकी

लौकिक शिक्षा १० वीं तक हुई । १ जुलाई १६८० में सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरी पर आर्यिका श्री विजयमती माताजी द्वारा क्षुल्लिका दीक्षा ली । आप अकलूज तथा तमिलनाडू में चातुर्मास कर धर्म-प्रभावना कर रही हैं ।

✡

क्षुल्लक कामविजयनन्दीजी महाराज

जन्म स्थान—सागर (मध्यप्रदेश)

पूर्व नाम—श्री धन्यकुमारजी

पिताजी का नाम—खाज्जूलालजी

माताजी का नाम—श्री नोनीबाईजी

शिक्षा—११ वीं तक

दीक्षा—२ दिसम्बर १६८१ को तुमुकट शहर कर्नाटक में मुनि कुन्थसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली ।

आप युवा अवस्था में ही घर परिवार को छोड़कर निवृत्ति का मार्ग अपना कर मोक्ष मार्ग की प्राप्ति का पुरुषार्थ कर रहे हैं ।

मुनि श्री सन्मतिसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

❖

मुनि श्री ज्योतिभूषणजी

मुनि श्री ज्योतिभूषणजी महाराज

आपका पूर्व नाम अप्पाण राज्य जैन था। आपके पिता श्री चक्रवर्ति नैनार जैन तथा माँ प्रभावति अम्मा थी। आपने तमिलनाडू मद्रास के समीप पुन्नूर ग्राम में ७-२-१९१६ में जन्म लिया था। धार्मिक संस्कार के कारण आपने १८-११-७४ को मुनि सीमन्धरसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा सवाई माधोपुर में एवं मुनि दीक्षा सन्मतिसागरजी से ली। आप आत्म-साधना के कठोर मार्ग में संलग्न हैं। आचार्य धर्मसागरजी महाराज के समीप रहकर आत्म कल्याण के मार्ग में लगे हुए हैं।

✡

मुनि श्री निर्वाणसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य
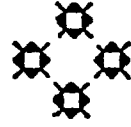
क्षुल्लिका धर्ममतीजी

क्षुल्लिका श्री धर्ममती माताजी

पू० साध्वीजी का जन्म कोथली में सेठ कालीशाह के यहाँ हुआ था। आपकी माता का नाम धुन्धुवाई था। आपने पंचम जाति गौत्र में जन्म लिया। आपकी शादी कोल्हापुर में हुई थी, किन्तु कुछ समय के बाद ही पति का वियोग हो गया। आपकी आयु ३५ वर्ष की ही है। मुनि श्री निर्वाण-सागरजी महाराज से आपने सोनागिर सिद्धक्षेत्र पर क्षुल्लिका दीक्षा धारण की। आप धर्मनिष्ठ हैं तथा आपका त्याग मय जीवन उत्कृष्ट है।
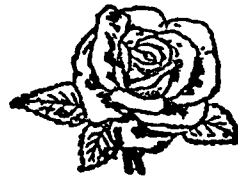
मुनि श्री विवेकसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

मुनि श्री विजयसागरजी

मुनि श्री विनयसागरजी

मुनि श्री विजयसागरजी महाराज

आपका जन्म खाचरियावास (सीकर–राजस्थान) ग्राम में श्री उदयलालजी गंगवाल की धर्मपत्नी श्रीमति धापूबाईजी की मंगल कुक्षि से भादवा सुदी १० रविवार सं० १९७२ को हुवा था। आपका जन्म नाम श्री जमनालाल रक्खा गया। लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी आपने बाल्यकाल में की। बचपन के संस्कार आगामी जीवन में भी काम आये। आपने मुनि विवेकसागरजी महाराज से रेनवाल (किशनगढ़) में माघ सुदी पंचमी संवत् २०२९ को मुनि दीक्षा धारण की। आप अहर्निश धर्म साधन कर रहे हैं। ❖

मुनि श्री विनयसागरजी महाराज

जयपुर जिले के 'दूदू' कस्बे के श्रावक शिरोमणि श्री गेन्दीलालजी बोहरा की धर्मपत्नी गैन्दीबाई की कोख से आपका जन्म हुवा। आपका बचपन का नाम रतनलालजी था। आप ३ भाई थे, आप सबसे बड़े हैं। प्रारम्भ से ही धार्मिक कार्यों में आपकी अधिक रुचि रही है। कस्बे में शिक्षण व्यवस्था की कमी होने के कारण आप अधिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये। १३ वर्ष की उम्र में आपका विवाह चिरोंजाबाई के साथ हो गया। गृहस्थ जीवन में आपने व्यापार किया। क्रमश: मुनि वर्धमानसागरजी क्षु० सिद्धसागरजी, मुनि विजयसागरजी से २–५–७ प्रतिमा धारण की। सं० २०३३ में नावाँ में मुनि विवेकसागरजी से वैसाख बदी दूज को मुनि दीक्षा धारण की। आप जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना कर रहे हैं। ❖

मुनि श्री विमलसागरजी महाराज

मुनि श्री विमलसागरजी का गृहस्थावस्था का नाम किशोरीलालजी था। आपका जन्म पोष शुक्ला दूज संवत् १६४८ में हुआ था। आपका जन्म स्थान महानो जिला गुना है। आपके पिता श्री भीष्मचन्दजी थे जो किराने के सफल व्यापारी थे। आपकी माता श्रीमती मथुरादेवी थी। आप जैसवाल जाति के हैं। आपकी धार्मिक व लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके दो विवाह हुए, आपकी दो बहिनें थी।

संसार की असारता, शरीर भोगों से उदासीनता के कारण आपमें वैराग्यभाव जाग्रत हुए इसलिए संवत् १६६६ को कापरेन ग्राम रियासत बूंदी में श्री १०८ मुनि विजयसागरजी से दीक्षा ले ली। आपने मुरैना, इन्दौर, कोटा, मन्दसौर, उज्जैन, भीलवाड़ा, गुनाहा, अशोकनगर, इटावा, आगरा, लखनऊ, लश्कर, दिल्ली आदि स्थानों पर चातुर्मास किये और वहां की धर्मप्राण जनता को धर्मज्ञान दिया। आप कर्मदहन और सोलह कारण व्रत करते हैं। कड़वी तूम्बी के आहार से आप बड़वानी में तीन वर्ष तक बीमार रहे। आपने मीठा व तेल का आजन्म त्याग किया है। आपके ऊपर भौर व मच्छ द्वारा उपसर्ग भी किया गया।

मुनि श्री मल्लिसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

क्षुल्लक श्री विजयसागरजी

क्षुल्लक श्री विजयसागरजी महाराज

क्षुल्लक विजयसागरजी का जन्म बैसाख सुदी ६ सं० १६६६ को दोसा जिला जयपुर (राजस्थान) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री भूरामलजी तथा माता का नाम गेंदाबाई था। आपका गृहस्थ अवस्था का नाम श्री सोभागमलजी था। दिगम्बर जैन खण्डेलवाल छाबड़ा गोत्रीय होने के नाते बचपन से ही धर्म के प्रति आपकी रुचि थी। स्थानीय पाठशाला में ही हिन्दी की साधारण परीक्षा उत्तीर्ण कर आप धर्म चर्चा में लीन रहते थे। गुरु वंदना करते हुये सं० २००२ में ललितपुर में आपने परम पूज्य माताजी पार्श्वमतीजी से सप्तम प्रतिमा धारण की। सं० २००३ में जयपुर में परम पू० १०८ मुनिराज श्री मल्लिसागरजी से आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। धर्म-प्रचार करते हुये आपके चातुर्मास जयपुर, अलीगढ़, झालरापाटन, कटनी, द्रुग, बूंदी, सागर, खुरई आदि विभिन्न स्थानों पर हुये। रत्नकरण्ड श्रावकाचार तथा तत्वार्थ सूत्र का आपको अच्छा ज्ञान था।

मुनिश्री जम्बूसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

मुनि श्री जयसागरजी

मुनि श्री जयसागरजी महाराज

आपका पूर्व नाम श्री दीपचन्दजी था, आपके पिता का नाम श्री केशरलालजी था, माता श्री वाग्देवी थी। आपका जन्म जयसिंहपुरा (जयपुर) राजस्थान में हुवा। आप खण्डेलवाल जाति के थे।

आचार्य जम्बूसागरजी से आपने कुन्थलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर मुनि दीक्षा ली। आपने अनेकों स्थानों पर औषधालय और पाठशालायें खुलवाईं। अनेकों स्थानों पर आपने चातुर्मास किए तथा अपने प्रवचनों से धर्म प्रचार कर रहे हैं।

मुनि श्री ज्ञानभूषणजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

आर्यिका सरस्वतीमतीजी

आर्यिका सरस्वतीमती माताजी

१०५ आ० श्री सरस्वतीमती माताजी का जन्म डबका गाँव में हुआ। आपके पिता का नाम गुपुलालजी व माता का नाम मणिबाई था। आपका जन्म नाम अँगूरीबाई रक्खा जैसे अंगूर अन्दर से नरम और ऊपर से भी नरम होता है वैसे ही माताजी का स्वभाव भी सरल प्रकृति का है। स्कूली शिक्षा नहीं मिलने पर भी आपने एक एक अक्षर स्वतः ज्ञात करके सीखा अपनी दैनिक क्रिया व स्वाध्याय अच्छी तरह करती हैं। अल्पायु में ही विवाह जतवारपुरा में हो गया। आपके पति का नाम खुशीलालजी था। शादी के सात वर्ष पश्चात् ही पति का वियोग हो गया। आपके दो पुत्र हुये उनका सर्व भार आपके ऊपर आगया। बच्चों की पढ़ाई लिखाई शादी करने के पश्चात् आपने आ० विमलसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत ले लिये। घर में रहकर व्रतों का पालन किया। चार महिने पश्चात् ही कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन लश्कर में ही सीमन्धर महाराज से सप्तम प्रतिमा ली। परन्तु आपके मन में इससे सन्तोष नहीं मिला और वैराग्य भाव की वृद्धि हुई तो सं० २०३२ में ज्ञानभूषणजी महाराज से अहमदाबाद में बैसाख शुक्ला चतुर्दशी को आर्यिका दीक्षा ली। अब आप हर वक्त धर्म ध्यान में लवलीन रहती हुई अपना समय व्यतीत करती हैं आपका ध्यान उपवास आदि में विशेष रहता है बेला-तेला हर समय करती रहती हैं। धर्म-ध्यान पूर्वक इसी प्रकार समय व्यतीत करें यही हमारी भावना है।

मुनि श्री पार्श्वसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

मुनि श्री निर्वाणसागरजी
मुनि श्री उदयसागरजी
क्षुल्लक श्री पदमसागरजी

मुनि श्री निर्वाणसागरजी महाराज
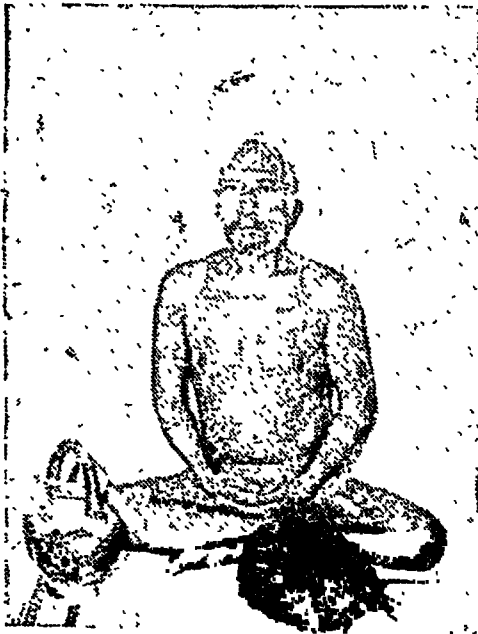
आपका जन्म भेंसलाना जिला-जयपुर संवत् १९७५ में हुवा था। आपके पिता का नाम श्री केसरीमलजी बाकलीवाल था। आपकी माताजी का नाम सुन्दरवाई था। आपका व्यापार नागपुर (महाराष्ट्र) में था। दिनांक १-७-१९७१ को क्षुल्लक दीक्षा एवं १७-२-७२ में तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी में मुनि पार्श्वसागरजी से मुनि दीक्षा ली। आप दीक्षा लेकर अनेकों स्थानों में विहार कर धर्म प्रभावना कर रहे हैं।

❖

मुनि श्री उदयसागरजी महाराज

परसाद निवासी उदयलालजी का जन्म सन् १९७७ को उदयपुर जिले में हुवा था। आपके पिता का नाम कोदरलालजी तथा मां का नाम लालीवाई था। सं० २०३३ में पार्श्वसागरजी से मुनि

दीक्षा ली। आप तपस्वी सन्त हैं १-१ माह के उपवास करते हैं आपकी शक्ति अपूर्व है निरन्तर आत्म साधना के मार्ग में संलग्न हैं। इस समय आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के संघ में रह कर धर्म साधना कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री पदमसागरजी महाराज
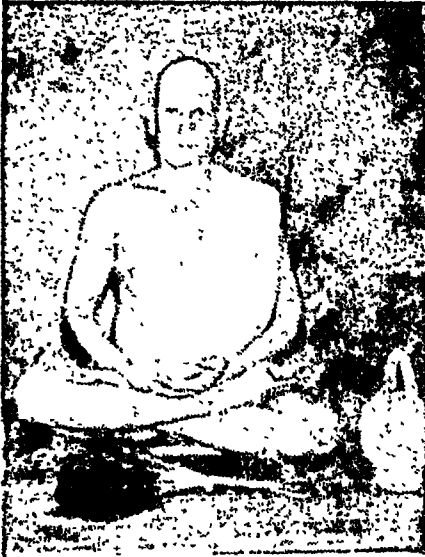
आपका जन्म मडावरा जिला ललितपुर उत्तरप्रदेश में सम्वत् १९८५ में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री भैयालालजी बजाज व माताजी का नाम श्रीमती बेटीबाई था। आपकी २ शादियां हुई। दोनों पत्नियों का स्वर्गवास हो गया। आपका मन १८ साल की उम्र से ही वैराग्य की ओर अग्रसर था, सन् १९७० में आचार्य श्री विमलसागरजी से राजग्रही में आपने २ प्रतिमा धारण की। उसके बाद सन् १९७८ में मुनि श्री पार्श्वसागरजी से टीकमगढ़ में क्षुल्लक दीक्षा ली। आप बहुत सरल चित्त व मृदुभाषी हैं। आपका अधिकतर समय धर्म ध्यान व ग्रंथों को पढ़ने में व्यतीत होता है।

✡
✡✡

मुनि श्री शांतिसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

क्षुल्लक श्री कुलभूषणजी

क्षुल्लक श्री कुलभूषणजी महाराज

जन्म नाम—श्री प्रेमचन्दजी

जन्म स्थान—करनावल जिला-मेरठ (यू० पी०)

गुरु का नाम—श्री शान्तिसागरजी महाराज

क्षुल्लक दीक्षा तिथि—१५ मार्च १९८१, रविवार फाल्गुन सुदी दशमी सं० २०३७।

पिता का नाम—स्वर्गीय डालचन्दजी जैन

माताजी का नाम—हुक्मदेवी जैन

आपका जन्म—सावण सुदी सप्तमी सम्वत् १९९६ में हुआ। दुर्भाग्यवश जब आपकी आयु ३ वर्ष की थी। तभी से इनके सिर से पितृ प्रेम का अभाव हो गया। आपकी माताजी ने आपका पालन-पोषण किया। आपके अन्दर धर्म भावना को कूट-कूट कर भर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि आप १६ वर्ष की आयु से ही धर्म में लीन रहने लगे। आपकी शादी भी हो गई थी फिर भी आप संसार से विरक्त रहते थे। आपने आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से भादवा बदी १५ जयपुर में दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए और पश्चात् सम्वत् २०२५ में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किए। तत्पश्चात् आप धर्म कार्य में अग्रसर ही होते चले आए अपने व्रतों को कठोरता से पालन करते रहे। आपके दो भाई श्री सुलेखचन्द जैन व रूपचन्द जैन एवं दो बहिने श्रीमति कमलादेवी व जयमालादेवी हैं। आपने प्रवचनों के माध्यम से जैन समाज में बहुत जागृति पैदा की। आपके व्याख्यान मुख्यतया निस्परिग्रहता और वीतरागता के विषय में होते हैं। आप कई नगरों का भ्रमण कर धर्म प्रभावना कर रहे हैं। ❖

मुनिश्री वृषभसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

ऐलक श्री वीरसागरजी

ऐलकश्री वीरसागरजी महाराज

आपका गृहस्थावस्था का नाम सिद्धगौड़ाजी पाटील था। आपका जन्म आज से ५० वर्ष पूर्व सन् १९२४ में सिरगुर (वेलगांव) मैसूर में हुआ। आपके पिता का नाम रामगौड़ाजी पाटील था। जो कृषि कार्य करते थे। आपकी माता का नाम बालाबाई था। आप चतुर्थ जाति के भूषण हैं। आपका गोत्र पाटील है। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा ५ वीं तक हुई। आपका विवाह कृष्णबाई पाटील जैन से हुआ। आपके परिवार में एक भाई एवं दो बहिने तथा एक पुत्र व दो पुत्रियां हैं।

पांच बच्चों के स्वर्गवास से एवं स्वाध्याय व मुनि उपदेश से आपके मानस में वैराग्य धारा बही। इसलिये चैत्र शुक्ला तेरस सन् १९६७ को बड़वानी में मुनिश्री १०८ वृषभसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली तथा बाद में बड़ौत में ऐलक दीक्षा भी मुनि वृषभसागरजी से ली। आपने दिल्ली, बड़ौत, चिपकोड़ा आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपने गृहस्थावस्था में दुष्काल के कारण एक साथ १७ उपवास किये। आपने नमक, शक्कर, हल्दी का त्याग कर रखा है।

मुनिश्री सीमन्धरसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

मुनि श्री सिद्धसागरजी
क्षुल्लक श्री सुमतिसागरजी
आर्यिका राजुलमतीजी

मुनि श्री सिद्धसागरजी महाराज

आपका गृहस्थ अवस्था का नाम मोतीलाल था आपका जन्म कसवां (कोटा) राजस्थान में हुआ। आपके पिता श्री छीतरमलजी अग्रवाल समाज के भूषण हैं और सिंघल गोत्रज हैं। आपकी माता गुलाबबाई है। आपके यहां श्रावण शुक्ला अष्टमी संवत् १९७९ में मोतीलाल ने जन्म लिया। आपने बचपन से ही शारीरिक और मानसिक विकास पर दृष्टि रखी। आप स्वभाव से दयालू और धार्मिक हैं। जीवविज्ञान का अध्ययन आपने महज इसलिये छोड़ दिया कि उसमें मेंढ़क की चीरफाड़ करनी पड़ती थी।

आपने मोटर मैकेनिक का व्यवसाय आरम्भ किया। युवावस्था में भी आप विषयवासनाओं से विरक्त रहे। बीस वर्ष की अवस्था में ब्र० कन्हैयालालजी एक लड़की वाले को लेकर आये तब आपने कहा मैं तो विवाह नहीं करूंगा पर आपकी पुत्री का विवाह करा दूंगा और रामचन्द्रजी के पुत्र घीसालालजी से विवाह करा दिया। आपने तीर्थों की यात्रा की, जिनेन्द्र पूजन शास्त्र स्वाध्याय आहार दान का लाभ लिया।

अशोक नगर में मुनि श्री विमलसागरजी भिंड के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर आपने ७ वीं प्रतिमा ग्रहण की। १० वर्ष ब्रह्मचारी रहे। अनन्तर सन् १९७२ में तीर्थराज सम्मेदशिखरजी पर मुनि श्री १०८ सीमन्धसागरजी के समीप चन्द्रप्रभु चैत्यालय में मुनि दीक्षा स्वीकार कर ली। आपने मुनि होकर प्रथम चातुर्मास रांची किया और द्वितीय चातुर्मास टिकैतनगर में किया। आपके चातुर्मासों में बड़ी धर्म प्रभावना हुई।

क्षुल्लक श्री सुमतिसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजी का पहले का नाम नन्हें राम था। आपका जन्म विक्रम संवत् १९६७ में भाद्रपद शुक्ला पंचमी को घोघा परगना जौरा जिला मुरैना (म० प्र०) में हुआ। आपके पिता श्री झिगुरियारामजी थे, जो दुकानदारी करते थे। आपकी माताजी का नाम चन्द्रादेवी था। जाति पल्लीवाल है। आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई आपके परिवार में चार भाई व एक बहिन थी। विवाह विक्रम सं० १९८० में भागीरथी देवी के साथ हुआ। आपको एक पुत्र और दो पुत्रियों के पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था पर तीनों सन्तानें जन्म के साथ ही मरण को प्राप्त हो गई थी। संवत् २००१ में आपकी धर्मपत्नी का भी स्वर्गवास हो गया।

सन्तान का अभाव, गृहणी का वियोग देख आपकी रुचि धार्मिक हुई। आपने शास्त्र, स्वाध्याय, जिनेन्द्रपूजन, सामायिक में मन लगाया। आपने २६-२-६५ को एटा (उ० प्र०) में श्री १०८ मुनि सीमन्धरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। बीमारी के कारण आप विशेष आगे नहीं बढ़ सके। आपने बाल ब्रह्मचारी की अवस्था में लश्कर, ग्वालियर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये व क्षुल्लक अवस्था में छतरपुर, दिल्ली, बड़ौत, आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। शास्त्र स्वाध्याय पर आप विशेष बल देते हैं। आपने यथावसर घी, नमक, तेल, आदि रसों का भी त्याग किया।

आर्यिका राजुलमती माताजी

श्री १०५ राजुलमतीजी का गृहस्थावस्था का नाम ज्ञानमती था। आपका जन्म आज से ५५ वर्ष पूर्व छोदा (ग्वालियर) में हुआ। आपके पिता श्री खूबचन्द्रजी व माता श्री आनन्दीबाई थी। आप पल्लीवाल जाति की भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह छोदा निवासी श्री सीतारामजी से हुआ था। आपके दो पुत्रियाँ हुई। दो देवर भी हैं। आपके पति की मृत्यु हो जाने से आपको यह संसार नश्वर जान पड़ा।

आपने सन् १९६५ में गिरनारजी पर सीमंधर स्वामी से क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। आपने गिरनार, अहमदाबाद, हुमच, कुन्थलगिरि गजपंथा आदि स्थानों पर चातुर्मास किये।

❖

मुनिश्री सन्मतिसागरजी महाराज (अजमेर द्वारा)

दीक्षित शिष्य

क्षुल्लक श्री वीरसागरजी

क्षुल्लिका निर्माणमतीजी

क्षुल्लक श्री वीरसागरजी महाराज

आपका जन्म ग्राम खभरा पोस्ट सलेहा जिला पन्ना में हुआ था। आपका नाम हीरालाल था आपके पिताजी का नाम प्यारेलाल सिंघई जैन गोलालारे जाति के थे और माताजी का नाम दुलारी था। आपके २ भाई थे, बड़े भाई का नाम फूलचन्द, छोटे भाई का गयाप्रसाद, आपकी २ बहिनें थीं आपका जन्म स्थान देहाती था इसलिये कम पढ़े लिखे थे और किराना गल्ले का व्यापार करते थे परन्तु वहाँ पर गुजर बसर न चलने से अपने भाई के पास पन्ना आकर रहने लगे यहां पर सत् संगति मिलने पर धर्म की तरफ कुछ श्रद्धा हुई फिर कुछ कारण वश जबलपुर आकर रहने लगे आपका जन्म सम्वत् १९७४ पौष बदी ७ रविवार को हुआ था आपके ३ लड़के व २ लड़कियां हैं आपकी धर्मपत्नी ने भी क्षुल्लिका के व्रत धारण कर लिये हैं जिनका नाम वर्तमान में श्री १०५ क्षुल्लिका निर्वाणमती है। आपने जबलपुर में श्री १०८ मुनि टोडरमलरायजी से २ प्रतिमाएं ली और उन्हीं के साथ श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा की थी। वंदना करते हुए श्री १००८ चन्द्रप्रभुजी की टोंक पर सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए यानी ब्रह्मचर्य व्रत लिया फिर वहाँ से वापिस कटनी में श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। ❖

क्षुल्लिका निर्माणमती माताजी

आपका गृहस्थ अवस्था का नाम केसरबाई था। इनके पिता का नाम काशीप्रसाद था। आपकी शादी हीरालालजी के साथ सम्पन्न हुई। आपने दूसरी प्रतिमा १०८ श्री विमलसागरजी महाराज से ली। पाँचवी प्रतिमा १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज से सम्मेदशिखरजी में ली तथा सातवीं प्रतिमा १०८ श्री महावीरकीर्ति महाराज से गिरनारजी में ली, आपने क्षुल्लिका दीक्षा सं० २०३६ फागुण सुदी २ को सम्मेदशिखरजी में मुनि श्री १०८ सन्मतिसागरजी से ली। ❖

मुनिश्री कुन्थसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

❖

मुनि श्री श्रुतसागरजी

मुनि श्री शांतिसागरजी

मुनि श्री चन्द्रसागरजी

क्षुल्लक श्री वर्धमानसागरजी

क्षुल्लक श्री आदिसागरजी

आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

आर्यिका शांतिमतीजी

मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज (मोरेना)

जन्म तिथि—भादो कृष्ण ३ सं० १७७१ वीर सं० २४४०

पिता का नाम—श्री टेकचन्द्रजी

माता का नाम—सरस्वती वाई

जन्म स्थान—ग्राम होहंना जिला ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

मुनि दीक्षा—जेष्ठ शुक्ला सं० २०३१ श्रुतपंचमी

दीक्षा नाम—श्री श्रुतसागरजी मोरेनावाले

दीक्षा गुरु—श्री १०८ मुनि कुन्थसागरजी महाराज

जाति—पल्लीवाल दिगम्बर

आप मुरेना २० वर्ष की अवस्था में आ गये थे। आप वहां दुकानदारी करते थे। धर्मध्यान, मुनियों की संगति करना तथा धार्मिक तत्व चर्चा ही आपका विशेष गुण था। इसी प्रकार धर्मध्यान करते हुये, संसार शरीर से विरक्त रहे। आप क्रमश: प्रतिमाएं धारण करते रहे। एक बार आपको

सर्प ने काट खाया किन्तु धर्म में विश्वास था। आपने किसी प्रकार का औषधि उपचार नहीं कराया और धैर्य धारण कर महावीरजी चले गये, दूसरे दिन चतुर्दशी का व्रत था इस प्रकार आप अपने आप निर्विष हो गये। तब तीसरे दिन अन्न जल ग्रहण किया। इसप्रकार गृहस्थ में रहते हुए भी जीवन के साठ वर्ष बिता दिये। एक समय शास्त्र स्वाध्याय करते हुए आप पंच परिवर्तन का स्वरूप पढ़ रहे थे। उसको पढ़कर आपकी आत्मा दुःखों से कांप गई और निर्णय लिया कि तुरन्त मुनि दीक्षा धारण कर और आत्म कल्याण के मार्ग पर चलूं। जेष्ठ शुक्ल सं० २०३१ को मुनि दीक्षा धारण कर वीतराग मुद्रा धारण कर ली और अब आत्म चिन्तन करते हुये मोक्ष मार्ग के पथ पर अग्रसर हैं।

मुनि श्री शान्तिसागरजी महाराज

आपका जन्म पोरसा (ग्वालियर) में हुआ, माता सुखदेवीजी की कूख से जन्म लिया। आपके पिता का नाम श्री समंनलालजी था। आपका पूर्व नाम श्री उग्रसेनजी था। आपको संस्कृत तथा हिन्दी का सामान्य ज्ञान था। आपने अहिक्षेत्र में क्षुल्लक एवं ऐलक दीक्षा कुन्थसागरजी महाराज से ली एवं हस्तिनापुर में मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण कर रहे हैं। जगह जगह आप पाठशालाएँ खुलवा कर ज्ञान प्रचार का कार्य कर रहे हैं।

मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज

धन्य है वे महापुरुष जिन्होंने भवभोगों से मुख मोड़कर दुर्द्धर तप को अंगीकार करके शिवमहल की ओर अपना पग बढ़ाया। बाल ब्रह्मचारी श्री गंगारामजी जैन की जीवन गाथा भी उन्हीं में से एक है। फुलावली (भिण्ड) ग्राम से विराग की बांसुरी बजाता हुआ सि० सूरजपाल का पुत्र जब कभी साधुओं की संगति में भिण्ड की ओर जाता था तो माता जवाहरबाई उसके लौटने तक शंकित ही बनी रहती कि कहीं लाडला उन्हीं की जमात में न मिल जाय। श्रुत पंचमी सं० १९५८ को जब उसने अपनी कूंख से जन्म दिया था तभी से वह एक मुनहले संसार में खोयी रहती थी और गंगाराम था सो मन ही मन उस घरोंदे को उकसता

हुआ सुनहलापन कम कर रहा था। ब्रह्मचर्य व्रत लेकर तो उसने उनकी रही—सही आशाओं पर तुषारापात ही कर दिया। जो भी सुनता, गंगाराम की ही चर्चा करता। फिर एक दिन, आसौज शु० ५ सं० २०३० का ही दिन था, मोरेना जाकर पूज्य आचार्य श्री कुन्थसागरजी महाराज के चरणों में बैठकर कर्मदल पर पहला प्रहार किया। विजयी गंगाराम का व्यक्तित्व चन्द्रमा की शीतल किरणों से सराबोर हो उठा और आचार्य श्री ने विनीत शिष्य को क्षुल्लक शांतिसागर कहकर उसे आत्म शांति की राह दिखायी। हृदय तृप्त न हुआ तो आचार्य श्री ने (मंगसिर ५ सं० २०३०) दो मास बाद "अम्बाह" में एक खण्ड वस्त्र को छोड़कर समस्त बाह्य परिग्रह से मुक्त कर दिया। गुरु आदेश से आप उत्कृष्ट श्रावकाचार का पालन करने लगे प्रतिपल इस चिंता के साथ कि मोक्षमार्ग में बाधक इस लंगोटी मात्र परिग्रह से मुझे आचार्य श्री कब छुटकारा दिलायेंगे। विशुद्ध भावों की आरोह की ध्वनि गुरुचरणों में निरन्तर दस्तक देती रही तो "पोरसा" की पुण्यभूमि में उसी वर्ष (माघ सुदी सं० २०३०) आचार्य श्री कुन्थसागरजी म० ने श्रावक वर्ग के जयघोष के बीच उसे निसंग करके श्रेयोमार्ग की अंतिम अवरोधक बाधा भी हटा दी। जगत का कोलाहल समाप्त हुआ। शांति का हृदय अनुपम शांति से भर गया। गुरु चरणों की रज मस्तक पर लगाकर नम्रीभूत हो बैठा तो मुख पर चन्द्रमा के धवल प्रकाश की तरह संतोष की किरणें विराजमान थीं। आचार्य ने असिधारा पर चलने का आदेश देते हुए "मुनि चंद्रसागर" कहकर आपको पुकारा। तभी से आप चंद्रमा की तरह निर्मल रत्नमय कीर्ति फैलाते हुए गुरु पदानुगमन कर रहे हैं।

क्षुल्लक श्री वर्धमानसागरजी महाराज

उत्तरप्रदेश में बिचपुरी (धौलपुर) आबादी की दृष्टि से एक छोटा सा कस्बा भले ही हो, धर्मगंगा प्रवाहित करने में कभी छोटा नहीं रहा। श्रावकों की इस छोटी सी बस्ती में मृदुस्वभावी श्री हरिविलासजी अपनी पत्नी रौनाबाई के साथ मनोयोग पूर्वक चतुर्विध संघ की वैयावृत्ति करने में ही अपने जीवन की कृत-कृत्यता मानते रहे हैं। इस दम्पत्ति के सं० १९९९ में निजगुणावतार रूप एक पुत्ररत्न हुआ जो आज जिन-मार्ग की प्रभावना करता हुआ पू० वर्धमानसागरजी

महाराज के नाम से हम सबका आराधनीय बन चुका है । राग और विराग ये दो प्रबल अन्त:प्रेरणा के बिना संभव नहीं हैं और जिनकी सुगति होनी होती है उन्हें बाह्य निमित्त भी शीघ्र मिल जाते हैं । १०८ मुनि श्री कीर्तिसागरजी महाराज से आपने प्रथम दो प्रतिमाएँ ग्रहण कर अपने हृदय में विराग का जो बीजारोपण किया वह सन् १९७४ में पू० आचार्य कुंथुसागरजी महाराज के चरण कमलों का आश्रय पाकर वट वृक्ष के रूप में स्फुटित हो उठा । आचार्यश्री ने आपको क्षुल्लक दीक्षा प्रदान करते हुए 'वर्धमानसागर' कहकर सम्बोधित किया । तभी से आप ज्ञान-ध्यान तप में अनुरक्त हो भव्यों को अपने सदुपदेश से संसार सागर से तार रहे हैं । इस वर्ष आपका चातुर्मास ईडर में हुआ जहां पर अनेक नवयुवकों ने अणुव्रत ग्रहण किये ।

क्षुल्लक श्री आदिसागरजी महाराज

पंचत्व पर विजय पाने की उमंग पंचाराम जैन भिण्ड के मन में कैसे आई इसे कोई नहीं जानता । पर कहते हैं कि हलवाई का कार्य पिता श्री दुर्जनलाल जैन से मिला तो रस परिपाक की क्रिया देखकर तत्काल कर्म रस परिपाक का आभास हो गया और इनका मन कांप उठा । मन ही मन संसार से छुटकारा पाने के लिये उपाय सोचने लगे परन्तु भवितव्यता के बिना कुछ भी संभव नहीं हो पाया । माता शिवसुन्दरी जिन धर्म की परमभक्त उदार मृदुभाषी महिला थीं तो भी पुत्रमोह वश दीक्षा जैसी बात उसे अप्रिय ही लगी । पुण्ययोग से एक दिन वह भी आया जब असार संसार के रिश्तों की समझ का मोह भंग हुआ । २७ जून, ७८ को भवतारणहार पू० आ० श्री कुन्थुसागरजी महाराज के चरणकमलों ने टूंडला की भूमि को पवित्र किया और सं० १९८१ कार्तिक कृष्णा सप्तमी को जन्मे पंचाराम का भी लम्बा अंतराल समाप्त हुआ । विशाल जनसमुदाय के समक्ष गुरु ने सुयोग्य शिष्य को क्षुल्लक पद की जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर मोक्ष महल की सीढ़ियों का दरवाजा खोल दिया । तभी से आप क्षुल्लक आदि सागर के रूप में इस कलिकाल में भटके हुए मोही जीवों की मोह निद्रा को भंग करते हुए निरन्जन बनने के सद् प्रयास में लगे हुए हैं ।

❖

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

आपके पिता का नाम श्री सुन्दरलालजी था। मां का नाम श्रीमति हुलकीबाई था। आपका पूर्व नाम रतनबाई था। आपकी धर्म के प्रति रुचि बालकपन से ही थी। १३ वर्ष की उम्र में शादी हो गई थी। धर्म की ओर अपने मनोभाव बढ़ाये तथा वि० सं० २०२३ में दिगम्बरी दीक्षा श्री कुन्थुसागरजी से धारण की।

सं० २०३२ दिल्ली में आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली तथा सं० २०३४ में आर्यिका दीक्षा लेकर अपना जीवन सफल कर लिया।

आर्यिका शान्तिमती माताजी

आपके पिता का नाम श्री नाथूरामजी था। जैसवाल गोत्र में जन्म लिया। आपका नाम कलावती था। १६ वर्ष की उम्र में शादी हो गई थी। आपके ५ सन्तानें थीं। बचपन से संयम के प्रति रुचि थी। पर योग नहीं मिल पाया। सं० २००४ में आपके पति का आकस्मिक निधन हो गया। आपके मन में वैराग्य आया और आपने आर्यिका दीक्षा ली और आत्म साधना कर रही हैं।

आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

आ० श्री सूर्यसागरजी महाराज

मुनि श्री गणेशकीर्तिजी
क्षुल्लक पूर्णसागरजी

मुनिश्री गणेशकीर्तिजी महाराज

पूज्य वर्णीजी का जन्म विक्रम संवत् १६३१ की आश्विन कृष्ण चतुर्थी को असाटी वैश्य के मध्यम वर्ग परिवार में हुआ था। इनके पिताजी का नाम हीरालाल एवं माताजी का नाम उजयारी बहु था। लोग इन्हें गणेश नाम से पुकारने लगे। बुन्देलखण्ड के गांव में लोग कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को व्रत रखते हैं। इसी कारण से इनका नाम गणेशप्रसाद रखा गया। परन्तु यह कौन जानता था कि यह "गणेश" सचमुच गण+ईश होगा। किन्तु इन्होंने अपने

नाम को सार्थक कर दिखाया । इनका लालन पालन विशेष सावधानी से किया गया । जब ७ वर्ष के हुए तो पिताजी ने इनका नाम गांव के स्कूल में लिखा दिया । इनका शिक्षा केन्द्र घर और स्कूल के अतिरिक्त राममन्दिर भी था । ७ वर्ष की अल्प अवस्था में आपने विवेक और बुद्धि द्वारा गुरु से विद्या को पैतृक सम्पत्ति स्वरूप प्राप्त किया ।

"होनहार विरवान के, होत चीकने पात" वाली कहावत के अनुसार आपमें शुभ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे । गुरु की सेवा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे । गुरुजी को हुक्का पीने की आदत थी, अतः हुक्का भरने में जरा भी आनाकानी नहीं करते थे । निर्भीकता आपमें कूट कूट कर भरी थी । निडर हो आपने एक दिन तम्बाकू के दुर्गुण अपने गुरुजी को वता दिये और हुक्का फोड़ डाला । गुरुजी नाराज होने की अपेक्षा प्रसन्न हुए और तम्बाकू पीना छोड़ दिया ।

वह विक्रम संवत् १९४१ था जवकि १० वर्ष की अवस्था में जैन मंदिर के चबूतरे पर शास्त्र प्रवचन से प्रभावित होकर "रात्रि भोजन त्याग" की प्रतिज्ञा ली और सनातन धर्म छोड़कर जैनधर्म स्वीकार किया ।

इच्छा तो नहीं थी किन्तु जातीय विवशता थी अतः वि० सं० १९४३ में १३ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार हो गया । सं० १९४६ में आपने हिन्दी मिडिल प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर लिया, परन्तु दो भाईयों का वियोग अध्ययन में वाधक वन वैठा । अव आपका विद्यार्थी जीवन समाप्त हो गया और गृहस्थावस्था में प्रवेश किया । वि० सं० १९४९ में १९ वर्ष की आयु में मलहार ग्राम की सत्कुलीन कन्या आपकी जीवन संगिनी बनी किन्तु स्वयं की इच्छा से नहीं ।

विवाह के पश्चात् ही पिताजी का स्वर्गवास हो गया, किन्तु पिताजी का भी अन्तिम उपदेश यही था वेटा यदि जीवन में सुख चाहते हो तो जैन धर्म को न भूलना । आत्मा दुःखी तो थी ही और गृहभार का भी प्रश्न सम्मुख था, अतः पास के गांव में मास्टरी करना शुरू कर दिया । आपका लक्ष्य तो अगाध ज्ञानरूप समुद्र में गोता लगाना था अतः आप मास्टरी छोड़ पुनः विद्यार्थी जीवन में प्रविष्ट हुए और यत्र तत्र नीर पिपासु चातक की तरह विद्या की साधना को चल पड़े ।

वह पुण्य वेला संवत् १९५० थी जबकि सिमरा ग्राम में पूज्य माता सिंघैन चिरोंजाबाईजी से भेंट हुई थी । माता चिरोंजावाईजी के दर्शन कर मन आनन्द विभोर हो उठा । माताजी के हृदय से भी पुत्रवात्सल्य उमड़ पड़ा और स्तनों से एकदम दुग्धधारा प्रवाहित हो पड़ी । वर्णीजी को चिन्तातुर

देख माताजी ने कहा बेटा चिन्ता छोड़ो और आज से तुम मेरे धर्म पुत्र हुए और जो करना चाहो करने के लिए स्वतन्त्र हो। माताजी के वचन सुनकर वर्णीजी का हृदय पुलकित हो उठा।

माता सिंघेनजी की भी इच्छा थी अतः माताजी की आज्ञा पाकर विद्यासिद्धि के लिए निश्चित होकर निकल पड़े। रास्ते में सामान चोरी चला गया, केवल पांच आने पैसे और छतरी शेष थी। चिन्ता में पड़ गये, क्या किया जाय छतरी तो आपने छः आने में बेच दी और एक-एक पैसे के चने खाकर इस सन्त ने दिन व्यतीत किये। इसी बीच एक दिन रोटी वनाने का विचार किया किन्तु बर्तन न थे। पत्थर पर आटा गूंथा और कच्ची रोटी में दाल भिगोकर और ऊपर से पलाश के पते लपेटकर मन्दी आंच में डाल दी। रोटी और दाल बनकर तैयार हुई फिर सानन्द भोजन किया।

एक बार अध्ययन काल में आप खुरई पहुंचे तब पं० पन्नालालजी न्याय दिवाकर से धर्म का मर्म पूछा। पण्डितजी चिल्लाकर बोले अरे तू क्या धर्म का मर्म जानेगा। तू तो केवल खाने को जैन हुआ है। इस प्रकार के वचन आपने धैर्यपूर्वक सुने।

एक बार आप गिरनारजी जा रहे थे, मार्ग में बुखार और तिजारी ने सताया। पैसे भी पास में नहीं। तब रास्ते में सड़क बनाने वाले मजदूरों के साथ मिट्टी खोदना प्रारम्भ किया, लेकिन एक टोकरी मिट्टी खोदी कि हाथ में छाले पड़ गये। मिट्टी खोदना छोड़कर ढोना स्वीकार किया परन्तु वह भी आपसे न हुआ अतः दिन भर की मजदूरी न तो तीन पैसे और न नो पैसे मिले किन्तु दो पैसे मिले। दो पैसे का आटा लिया, दाल को पैसे कहाँ। अतः नमक की डली से रूखी रोटी खानी पड़ी।

विद्याध्ययन हेतु वि० सं० १९५२ में बनारस पहुंचे। किसी ने पढ़ाना स्वीकार नहीं किया, नास्तिक कहकर भगा दिया। आपने निश्चय किया कि मैंने यहां एक जैन विद्यालय न खोला तो कुछ नहीं किया। आपने अपने कठिन परिश्रम से सं० १९५२ में स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना कराई।

वि० सं० १९५३ में आपकी धर्म पत्नी का स्वर्गवास हो गया किन्तु लेशमात्र भी खेद न हुआ। एक शल्य टली कह कर प्रसन्न हुए।

सामाजिक क्षेत्र में भी लोगों ने आपकी परीक्षा की, किन्तु अडिग रहे, अन्त में शत्रुओं को परास्त होना पड़ा। मूर्ति अगणित टांकियों से टांके जाने पर ही पूज्य होती है। आपत्ति और जीवन के संघर्षों से टक्कर लेने पर ही मनुष्य महात्मा बनता है। कर्तव्यशील व्यक्ति अनेक कष्टों को सहकर

अपने लक्ष्यों को पूर्ण कर ही विश्रान्ति लेते हैं । फलतः विद्योपार्जन के लिए सं० १९५२ से १९८४ तक कई स्थानों में फिरे किन्तु पुनः बनारस जाकर पं० अम्बादासजी शास्त्री को अपना गुरु बनाया और वहीं से न्यायाचार्य प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर पारितोषिक प्राप्त किया ।

विद्वत्ता के साथ-साथ संयम की साधना ने आपको पूज्य सन्त बना दिया और बड़े पंडितजी के नाम से प्रख्यात हुए । जितना प्रेम विद्या से था उससे भी कहीं अधिक जिनेन्द्र भक्ति से था । यही कारण है कि आपने विद्यार्थी जीवन में सं० १९५२ में गिरनारजी और सं० १९५९ में शिखरजी जैसे पवित्र ८ तीर्थों की वंदना पैदल की थी ।

संवत् १९६२ में श्री ग० दि० जैन संस्कृत विद्यालय की स्थापना सागर में कराई और संरक्षक पद को विभूषित किया । सं० १९७० में आप बड़े पंडितजी से सन्त वर्णीजी बने । सं० १९९३ में सागर से बंडा मोटर द्वारा जा रहे थे कि ड्राईवर से झगड़ा हो गया । तब से मोटर में बैठना दूर रहा रेल आदि में भी बैठना छोड़ दिया ।

सं० २००१ में दशम प्रतिमा धारण की और फाल्गुन कृष्णा सप्तमी सं० २००४ को क्षुल्लक हो गये अब लोग इन्हें बाबाजी के नाम से पुकारने लगे ।

सं० १९९३ में फाल्गुन मास में ७०० मील की पैदल यात्रा तय करते हुए बीच के तीर्थ स्थानों की भी वन्दना करते हुए शिखरजी पहुंचे । आपका लक्ष्य भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में जीवन बिताने का था । कुछ समय रहे भी फलस्वरूप उदासीनाश्रम की स्थापना हो गई । किन्तु २००१ में वसन्त की छटा से बुन्देलखण्ड ने आपको मोह लिया और एक बार फिर आपने बुन्देल वासियों को दर्शन दिये ।

वि० सं० २००२ में जबलपुर में आम सभा में अपनी चादर आजादी के पुजारियों की सहायतार्थ समर्पित कर दी । उस चादर के उसी क्षण तीन हजार रुपये मिले । सभा में आश्चर्य हो गया, अरे यह क्या ! इस तरह आपके जीवन की सैंकड़ों घटनाएं हैं जिनका उल्लेख शक्य नहीं है । सं० २००२ से लेकर २००९ तक आपने बुन्देलखण्ड का भ्रमण किया और सैंकड़ों विद्यालय, पाठशालायें, स्कूल और कालेज खुलवाकर अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया । यही कारण है कि आज जैन समाज में सैंकड़ों विद्वान देखे जा रहे हैं ।

सं० २००९ में आपने सागर में चातुर्मास किया । चातुर्मास के पश्चात् आपने ७०० मील की लम्बी यात्रा ७९ वर्ष की अवस्था में की और शिखरजी पहुंचे । आपकी इच्छा थी कि वृद्धावस्था

में पार्श्वप्रभु की शरण में रहे। आपकी इच्छा पूर्ण हुई। सं० २००६ से अन्तिम समय तक आप पार्श्व प्रभु के चरणों में रहे और यहीं पर अपनी देह विसर्जित की। हर समय आपके दर्शनों को हजारों की संख्या में लोग आते रहते थे और वहां सदा मेला सा लगा रहता था।

सन् १६५६ में भारत के राष्ट्रपति ने शिखरजी में आपसे भेंट की। दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। संवत् २०१२ में स्याद्वाद विद्यालय बनारस तथा सं० २०१३ में गणेश विद्यालय सागर की स्वर्णजयन्ती आपके सान्निध्य में मनायी गई। धर्म प्रेमीबन्धु वर्णीजी के दर्शन कर तथा उनके उपदेश सुन आनन्द विभोर हो गये। सन्त विनोबा ने भी आपसे कई बार भेंट की और वर्णीजी को अपना बड़ा भाई मानकर चरण स्पर्श किये। सं० २०१६ में आचार्य तुलसी गणी ने आपके दर्शन कर प्रसन्नता प्राप्त की थी।

पूज्य वर्णीजी मनसा, वाचा, कर्मणा एक थे। उन जैसा निःस्पृही और पारखी व्यक्ति देखने में नहीं आया। जो भी आपके पास आया सम्मान पाया विरोधी भी नतमस्तक हुए।

अन्तिम समय तक ८७ वर्ष की अवस्था में भी आपकी ज्ञानेन्द्रियां सतर्क थीं। दो माह की लम्बी बीमारी के कारण शरीर शिथिल पड़ गया था। दैनिकचर्या में कभी शिथिलता नहीं आने पाई थी। आहार की मात्रा आधा पाव जल तथा थोड़ा सा अनार का रस ही रह गया था। अन्तिम दो दिनों में उसका भी त्याग कर दिया। ३ सि० १६६१ को यम सल्लेखना ली और सब प्रकार के परिग्रह का परित्याग कर दिया। ५ सितम्बर को प्रातः आपके चेहरे पर नई मुस्कान थी। इसी दिन आपने त्यागियों और विद्वानों के समक्ष मुनि दीक्षा ग्रहण की और आपका नाम गणेशकीर्ति रखा गया। आपकी परिचर्यों में विद्वान, त्यागी, सेठ, साहूकार आदि सभी सदा तत्पर रहे। ५ सितम्बर को रात्रि के डेढ़ बजे पूज्य श्री सदा के लिए विलग हो गये।

यद्यपि पूज्य श्री का भौतिक शरीर चिता की ज्वलन्त ज्वालाओं में विलीन हो गया है तथापि उनकी आत्म शक्ति द्वारा निखर कर विश्व में सर्वत्र व्याप्त हो गये हैं। वे धन्य थे। उनके अभाव से ऐसा जान पड़ता है, मानों जैन समाज का सूर्य अस्त हो गया।

राजनीति न्याय और धर्म को जीवन से पृथक् नहीं मानते हैं। आपके मतानुसार धर्म का राष्ट्र और समाज से निकटस्थ सम्बन्ध है।

आप इस बीसवीं सदी के उन महान् आध्यात्मिक सन्तों में से एक हैं जिन्होंने भौतिकता की सारहीनता को स्वयं के जीवन-अध्याय से दिखाकर कहा कि "भारत की समृद्धि तो उसकी आध्यात्मिक

विभूति है।" आत्मा के कल्याण के लिए मुनिश्री पदार्थों से मोह के त्याग पर बल देते थे। आवश्यकता से अधिक संचय के कट्टर विरोधी थे और स्वयं तो इतने निष्परिग्रही थे कि संघ के व्यामोह से ही अलग थे।

जिनका जीवन जैनधर्म को अर्पित हो गया ग्राज जिनका जीवन लाखों भारतीयों के लिए श्रद्धास्पद वन गया। क्या जैन, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी के पूज्य सन्त बन गये। मानव की पीड़ा से जिनका हृदय करुणा जल से भर गया और संतप्त प्राणियों के लिए सुख और शान्ति का सिंहनाद करते जो वड़े से वड़े नगर ग्रौर छोटे से छोटे गांवों में विहार कर रहे हैं। "श्रीनगर" की पर्वतीय यात्रा कर आपने "मुनि इतिहास" में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया। आपमें धर्म सहिष्णुता जो सम्यक्दर्शन का एक ग्रंग है, इतनी उत्कट रूप से समाहित है कि "कल्याण" मासिक के विद्वान धार्मिक नेता श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने आपका सम्मान कर ग्रपने निवास स्थान पर मुनि श्री के प्रवचन करवाये थे।

भारत के उच्चकोटि के राजनैतिक, साहित्यकार ग्रौर दार्शनिक लोग तथा विदेशी विद्वान आपके व्यक्तित्व और विलक्षण प्रतिभा से ग्रत्यन्त प्रभावित हुए हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री, रूसी विद्वान चेपिशेव, वौद्ध भिक्षु सोमगिरी, बालयोग प्रेम वर्णी, निरजन नाथ आचार्य, पीठाधीश्वर स्वामी नारदानन्द, श्रीमती डा० वागल, डा० कृष्णदत्त वाजपेयी आदि सैंकड़ों लोग ग्रापके प्रभाव में आये और अत्यन्त श्रद्धा देते थे।

श्रीनगर की पर्वतीय यात्रा के दौरान आप हिमालय की कन्दराओं में रहने वाले साधुओं के सम्पर्क में ग्राये जो आपके त्यागमय जीवन से अत्यन्त प्रभावित हुए। ग्रापके तपःपूत जीवन से धर्म और ज्ञान की लक्षलक्ष किरणें प्रस्फुटित होकर इस विषम परिस्थिति और युग के संक्रमण काल में धर्म जय का नारा उद्‌घोष कर रही हैं।

क्षुल्लक श्री पूर्णसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक पूर्णसागरजी महाराज जिला सागर के अन्तर्गत रामगढ़ (दमोह) के रहने वाले हैं। जन्मतिथि आश्विन बदी १४ वि० सं० १९५५ है। पिता का नाम परमलालजी और माता का नाम जमुनाबाई है और जाति परिवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है और महाजनी हिसाब किताब का इनको अच्छा अनुभव है।

विवाह के होने के बाद ये कुछ दिन अपने घर ही कार्य करते रहे। उसके बाद दमोह के श्रीमान् सेठ गुलाबचन्दजी के यहां और सिवनी के श्रीमंत सेठ पूरणशाहजी व उनके उत्तराधिकारी श्रीमंत सेठ वृद्धिचन्दजी के यहां कार्य करने लगे। प्रारम्भ से धार्मिक रुचि होने के कारण घर में ही ये श्रावक धर्म के अनुरूप दया आदि आचार का उत्तम रूप से पालन करते थे।

पत्नी वियोग के बाद ये घर में बहुत ही कम समय तक रह सके और अंत में श्री १०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराज के शिष्य होकर गृहत्यागी का जीवन बिताने लगे। इस समय आप ग्यारहवीं प्रतिमा के व्रत पाल रहे हैं। दीक्षा तिथि आश्विन बदी १ विक्रम सं० २००२ है। अपने कर्तव्य पालन करने में ये पूर्ण निष्ठावान हैं और मध्ययुगीन पुरानी सामाजिक परम्परा के पूरे समर्थक हैं।

मुनिश्री गणेशकीर्तिजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

ऐलक श्री पन्नालालजी
क्षुल्लक श्री मनोहरलालजी वर्णी
क्षुल्लक श्री चिदानन्दजी

ऐलक श्री पन्नालालजी

जैन समाज के पांच दशक पिछले इतिहास की ओर देखें तो ज्ञान और चारित्र के मार्ग में विरले ही संत दृष्टिगोचर होते हैं जिन्होंने अज्ञानान्धकार में उन्मग्न समाज को पथ प्रदर्शन करने की कृपा की। जमाना ही ऐसा था कि रूढियों से घिरी सामाजिक मर्यादाएँ विवेक की तीक्ष्णता को जंग लगाती चली जा रही थी। ऐसे समय में ज्ञान और चारित्र की मशाल थामे हुए यदि कोई समाज की तंद्रा को भंग करने का अति साहस करता है तो निश्चय ही वह अवतरित विभूति ही है। ऐलक पन्नालालजी म० ज्ञान चारित्र के धनी तो थे ही महान् समाजोद्धारक के रूप में भी विख्यात थे। साधु की चर्या समाज पर आश्रित रहती है प्रतिदान में साधु समाज को धर्मामृत पान कराता है। अलबत्ता इसकी आलोचना यदा-कदा होती रहती है। परन्तु ऐ० पन्नालालजी उनमें से न थे। स्व कल्याण के साथ साथ परकल्याण की भावना का दरिया आपके हृदय में लहरा रहा था। फलतः आपने तद् समयानुसार विलुप्त हो रही ज्ञान परम्परा के साधनभूत जिनवाणी की रक्षा में अपना ध्येय निश्चित किया। आपके ही सद् प्रयास से (सं० १९७१) झालरापाटन, (सं० १९७९)

वम्बई (सं० १९९२) व्यावर में सरस्वती भवनों की स्थापना की गई। अनेक स्थानों पर औषधालय तथा पाठशालाएं भी स्थापित करायीं। धर्म विरुद्ध सामाजिक रूढियों के प्रति समाज को जागरूक कर सद्मार्ग दिखाया। ऐसे अनगिनत समाजोद्धार के कार्य कर सामाजिक मर्यादाओं को स्वस्थ-रूप प्रदान किया।

क्षुल्लक श्री मनोहरलालजी वर्णी "सहजानन्द"
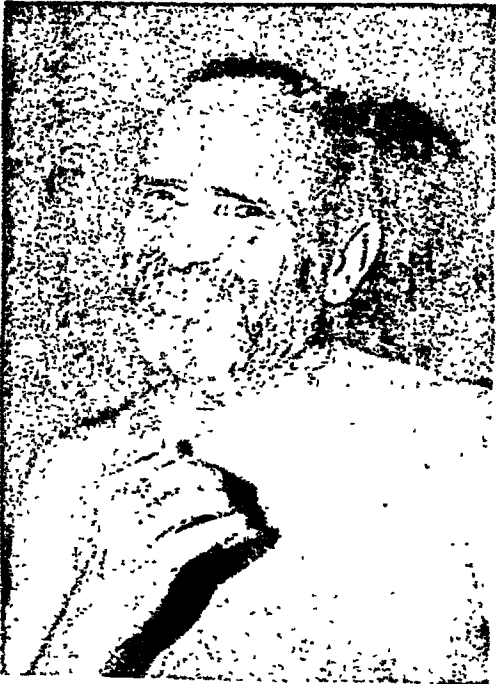
श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी का जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि० सं० १९७२ को झांसी जिले के दुमदुमा ग्राम में हुआ है। इनके पिताजी का नाम श्री गुलावराय और माता का नाम तुलसाबाई है। जन्म का नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है। प्राईमरी स्कूल की शिक्षा के वाद संस्कृत शिक्षा का विशेष अभ्यास इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय सागर में किया और वहां से न्याय-तीर्थ परीक्षा पास की है। प्रकृति से भद्र देख वहां पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था।

विवाह होने के वाद गृहस्थी में ये बहुत ही कम समय तक रह सके। पत्नी वियोग हो जाने से ये सांसारिक प्रपन्चों से विरक्त हो गये और वर्तमान में ग्यारहवीं प्रतिमा के व्रत पालते हुए जीवन संशोधन में लगे हुए हैं। इनके विद्यागुरु पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज ही हैं। वर्तमान में ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णी जी इन नामों से भी पुकारे जाते हैं।

इन्होंने सहजानन्द ग्रन्थमाला नाम की एक संस्था स्थापित की है। इसमें इनकी निर्मित पुस्तकों का प्रकाशन होता है। इन्होंने एक अध्यात्म गीत की भी रचना की है। इसका प्रारम्भ "मैं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम" पद से होता है। आजकल प्रार्थना के रूप में इसका व्यापक प्रचार व प्रसार है। अध्यात्म शास्त्र समयसार के ये अच्छे ज्ञाता व वक्ता हैं।

'वर्णी' एक चिरपरिचित सा नाम, कानों में मीठा रस घोलता हुआ आंखों के समक्ष आज भी गुरु शिष्य की ऐसी साकार प्रतिमा स्थापित कर देता है कि परोक्ष में श्रद्धावनत माथा बारम्बार उनकी जय बोल उठता है। रुचियां सदृश हों तो संगति का मेल फल और भी मीठा हो जाता है अपने लिए भी और समाज के लिए भी। गांव का रहने वाला मनोहर गुरु गणेश वर्णी के चरणों का आश्रय पाकर समाज के लिए सहज आनन्द का स्रोत बन उठा। वि० सं० २००२ में वाराणसी में पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशवर्णीजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये तो गुरु ने आपका नाम 'सहजानंद' रखा जिसे आपने अपने वक्तृत्व-कर्तृत्व से सार्थक कर दिखाया। विराग की धारा ने गति पकड़ी तो सं० २००५ में सुरम्य क्षेत्र हस्तिनापुर में पूज्य वर्णीजी से ही क्षुल्लक पद की दीक्षा अंगीकार कर ली। गुरु शिष्य की इस जोड़ी ने सात दशक तक श्रावक वर्ग पर जितना उपकार किया वह शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

क्षुल्लक मनोहरजी सहजानंद के ज्ञान का क्षयोपशम उत्कृष्ट था। अपने जीवनकाल में ५०० से अधिक ग्रन्थों का निर्माण कर जिनशासन के रहस्य को जन-जन तक पहुंचाने का महान कार्य किया। सहारनपुर, हस्तिनापुर मेरठ में शिक्षा संस्थाएं स्थापित करायीं तथा आत्मविज्ञान परीक्षा बोर्ड की स्थापना की। वर्णी प्रवचन पत्रिका में जैनसिद्धान्त पर सुबोध शैली में हजारों लेख लिखकर समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। आज भी वर्णी पत्रिका का प्रकाशन व सम्पादन पं० सुमेरचन्द्रजी द्वारा बराबर हो रहा है। आपका अधिकांश समय मेरठ मुजफ्फरनगर में व्यतीत हुआ। दो वर्ष पूर्व ही समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास मेरठ में हो गया।

❖

क्षुल्लक श्री चिदानन्दजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज का गृहस्थावस्था का नाम दामोदरदासजी था। आपका जन्म अगहन सुदी पंचमी विक्रम संवत् १९९७ में दरगुवां ज़िला छतरपुर मध्यप्रदेश में हुआ था। आपके पिता का नाम जवाहरलालजी व माता का नाम भुजबलीबाई था। आपके पिता घी के एक सफल व्यापारी थे जाति गोलापूरब गोत्र शाह है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपने विवाह नहीं किया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे।

ब्रह्मचारी श्री मोतीलालजी के उपदेश से आपमें वैराग्य प्रवृत्ति की जागृति हुई। आपने विक्रम संवत् २०७४ में क्षुल्लक श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने कई स्थानों पर पाठशालाएं खुलवाईं। खंडेरी, दिल्ली आदि स्थानों पर चातुर्मास कर उपदेश द्वारा धर्म प्रभावना की।

आपको मोक्षशास्त्र, छहढाला, सहस्रनाम स्तोत्र का विशेष ज्ञान था। संस्कृत के आपको हजारों श्लोक याद थे।

आपने देश और समाज की जो सेवा की उसे देश और समाज कदापि नहीं भूलेगा। आपके सम्मान में चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जो आपके यशोकृतित्व का प्रतीक है।

आर्यिका स्वर्णमती माताजी द्वारा

दीक्षित शिष्य

आर्यिका वीरमतीजी

आर्यिका वीरमती माताजी

आपका पूर्व नाम पदमावती था। पिता का नाम श्री दादा पटडणकुरे एवं माताजी का नाम उसनाबाई था। आपके माता-पिता नसलापुर ग्राम में रहते थे।

संसार को असार जानकर २ मई १९७६ छपरा में स्वर्णमती माताजी से आर्यिका दीक्षा ली। आप मुनि सिद्धसैनजी महाराज के साथ तीर्थराज की वंदना को गईं। आपकी धर्म पर अटूट श्रद्धा है।

❖

मुनिश्री सिद्धसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

आर्यिका ज्ञानमतीजी

आर्यिका ज्ञानमतीजी माताजी

बाराबंकी जिले में गणेशपुर (बरसाघाट) में सं० २००३ में श्रेष्ठी श्री अजितप्रसादजी के यहाँ जन्म लिया। आपकी मातुश्री का नाम विट्ठोबाई था। युवा अवस्था में टिकैतनगर में आपकी शादी हुई थी। आपके पति श्री सन्तूलालजी बड़े ही धर्मात्मा बन्धु थे। आपकी तीन पुत्रियां थीं। पति का अल्प समय में ही आपको वियोग सहना पड़ा तथा ३० वर्ष की उम्र में आपको वैधव्य प्राप्त हो गया। आपको मुनि सिद्धसागरजी का सान्निध्य मिला तथा आपने परिवार को छोड़कर आर्यिका दीक्षा ली। अभी आप आचार्य धर्मसागरजी महाराज के पास हैं तथा धर्मवृद्धि कर रही हैं।

मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी महाराज (दक्षिण) द्वारा दीक्षित शिष्य

☼

मुनि श्री सुबलसागरजी

क्षुल्लिका शांतिमतीजी

मुनिश्री सुबलसागरजी महाराज

श्री १०८ मुनि सुबलसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम परगोड़ाजी पाटील है। आपका जन्म नन्दगांव (वेलगांव) में हुआ था। आपके पिता श्री शिवगोड़ाजी पाटील हैं, जो खेती करते हैं। आपकी माता का नाम गान्धारीदेवी है। आप जाति से चतुर्थ बीसपन्थी हैं। आपकी लौकिक शिक्षा लगभग विल्कुल नहीं हुई। धार्मिक शिक्षा आपने स्वाध्याय के बल पर स्वयं ही प्राप्त की। आपके परिवार में चार भाई एक बहिन हैं। आपका विवाह हुआ। आपको एक पुत्र व चार पुत्रियों के पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्त में सबको छोड़कर मुनिदीक्षा ग्रहण की।

क्षुल्लिका शान्तिमती माताजी

आपका जन्म फाल्गुन सुदी सन् १९३० में मोहनगढ़ (टीकमगढ़) में हुवा था। आपके पिता का नाम धर्मदास मोदी तथा माता का नाम भूरीवाई था। आठवीं कक्षा तक आपने लौकिक शिक्षा प्राप्त की। आपकी शादी हुई, ४ बच्चे थे भरा पूरा परिवार त्याग कर आपने अपने मन में वैराग्य के अंकुर बढ़ाये तथा मुनि सुपार्श्वसागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा ली तथा आत्म साधना कर रही हैं।

आचार्य श्री सुबलसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

श्री सुबलसागरजी महाराज

मुनि श्री विजयसेनजी

मुनि श्री धरसेनजी

क्षुल्लक श्री भव्यसेनजी

आर्यिका सुमतिमतीजी

आर्यिका बाहुबलीमतीजी

आर्यिका सुव्रतामतीजी

आर्यिका कुन्थुमतीजी

आर्यिका जिनमतीजी

मुनि श्री विजयसेनसागरजी महाराज

गृहस्थ नाम—श्री पायगौड़ाजी
जन्म स्थान—गुण्डवाड
पिता का नाम—श्री रामगौड़ाजी
माता का नाम—श्री सत्यवतीदेवीजी
आयु—६२ वर्ष
व्यवसाय—खेती
लौकिक शिक्षण—तीसरी कक्षा
क्षुल्लक दीक्षागुरु—प० पू० श्री १०८ वीरसेनसागरजी
मुनि दीक्षागुरु—प० पू० श्री १०८ आ० सुबलसागरजी
दीक्षा नाम—श्री १०८ विजयसेनसागरजी। आप सरल स्वभावी हैं तथा संघ में रहकर ज्ञान अध्ययन में लीन रहते हैं।

मुनि श्री धरसेनसागरजी महाराज

गृहस्थ नाम—श्री बसगौड़ाजी
पिता का नाम—श्री शिवगौड़ाजी
माता का नाम—श्री गान्धारीदेवीजी
व्यवसाय—खेती
क्षुल्लक दीक्षा—उदयपुर
मुनि दीक्षा—सदलगा (बेलगाँव कर्नाटक)
दीक्षा गुरु—श्री १०८ आ० सुबलसागरजी महाराज
दीक्षा नाम—श्री १०८ धरसेनसागरजी
आयु—६३ वर्ष

आप आ० सुबलसागरजी के गृहस्थावस्था के तीसरे नं० के भाई हैं, आप ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहते हुए संघ में विराजमान हैं।

❖

क्षुल्लक श्री भव्यसेनजी महाराज

गृहस्थ अवस्था का नाम—श्री भूपालजी
जन्म स्थान—सदलगा (जि० बेलगांव) कर्नाटक
पिता का नाम—श्री रामचन्दजी
माता का नाम—श्री रत्नाबाईजी
आयु—५५ वर्ष
शिक्षा—तीसरी तक
दीक्षा गुरु—पू० आ० सुबलसागरजी महाराज
दीक्षा नाम—क्षुल्लक भव्यसेनजी

दीक्षा तिथि—८-११-८१ रविवार कार्तिक शुक्ला एकादशी। आप सरल स्वभावी हैं निरन्तर साधु सेवा में लीन रहते हैं।

आर्यिका सुमतिमतीजी

जन्म स्थान—सदलगा (कर्नाटक, वेलगांव)
जन्म सन्—१९५८
पिता का नाम—श्री थारीसाजी
माता का नाम—श्री चम्पावाईजी
पूर्व नाम—सुशीला जैन
लौकिक शिक्षा—दसवीं
दीक्षा स्थान—सम्मेदशिखर
दीक्षा गुरु—आ० सुवलसागरजी महाराज

आपने १६ वर्ष की उम्र में आ० सुबलसागरजी से ब्र० व्रत ग्रहण किया तथा पू० आचार्य श्री से ही दीक्षा लेकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं।

❖

आर्यिका बाहुबली माताजी

जन्म स्थान—रामनेवाड़ी

जन्म सन्—१९६०

पिता का नाम—श्री अन्नासाहबजी

माता का नाम—श्री सोनाबाईजी

दीक्षा गुरु—आ० सुबलसागरजी

दीक्षा स्थान—गणेश वाड़ी

आपकी बड़ी बहिन भरतमती माताजी हैं। आपने कई ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है।

आर्यिका सुव्रता माताजी

गृहस्थ अवस्था का नाम—कमलश्री

जन्म स्थान—सदलगा (जि० बेलगांव) कर्नाटक

पिताजी का नाम—अण्णासाबजी

माताजी का नाम—सौ० सुकुमाजी

लौकिक शिक्षा—१० वीं

आयु—२७ वर्ष

दीक्षागुरु—आ० सुबलसागरजी महाराज

दीक्षा स्थल—२९-३-१९७८ तीर्थराज सम्मेदशिखरजी। दीक्षा लेने के बाद गुरुवर्य के साथ विहार कर रही हैं तथा आत्म कल्याण कर रही हैं।

❖

क्षुल्लिका कुन्थुमती माताजी

गृहस्थ अवस्था का नाम—अनन्तमती
जन्म स्थान—सदलगा (जि० बेलगांव) कर्नाटक
पिता का नाम—श्री भरमूलालजी
माता का नाम—श्री सोनाबाईजी
लौकिक शिक्षा—दसवीं
आयु—२५ वर्ष
क्षु० दीक्षा गुरु—प० पू० श्री १०८ आ० सुबलसागरजी
दीक्षा नाम—श्री १०५ कुन्थुमतीजी
दीक्षा तिथि—१२-१२-८०

आप हंसमुख शान्त स्वभावी हैं तथा अनशनादि तपश्चर्या अधिक करती हैं। आप त्याग मार्ग को अपना कर आत्म उत्थान के मार्ग में संलग्न हैं।

क्षुल्लिका जिनमती माताजी

पूर्व अवस्था का नाम—कु० शान्ता जैन
जन्म स्थान—सदलगा (जि० बेलगांव)
पिता का नाम—श्री तात्यासाबजी
माता का नाम—श्री पद्मावतीजी
लौकिक शिक्षा—दसवीं
आयु—२५ वर्ष
क्षु० दीक्षा गुरु—श्री १०८ सुबलसागरजी महाराज
दीक्षा नाम—क्षु० जिनमतीजी
दीक्षा स्थान—फलटण

आप सरल स्वभावी हैं संघ में ज्ञान अध्ययन में तत्पर रहती हैं छोटी उम्र में गृह त्याग कर आत्म कल्याण कर रही हैं। धन्य है आपका जीवन।

मुनिश्री पार्श्वसागरजी महाराज द्वारा

दीक्षित शिष्य

मुनि श्री उदयसागरजी
मुनि श्री बाहुवलीसागरजी
मुनि श्री अमृतसागरजी
मुनि श्री वासुपूज्यसागरजी

मुनि श्री उदयसागरजी महाराज

मुनि श्री १०८ उदयसागरजी महाराज का जन्म सन् १९६३ में उदयपुर जिले के धरियावद ग्राम में हुआ था। आपका जन्म नाम श्री झमकलालजी सरिया था तथा जाति हुमड़ है। पिताश्री का नाम श्रीरतनचन्द्रजी एवं मातुश्री का सरदारीबाई था। आपके पाँच भाई हैं। धर्म शिक्षा सामान्य है, एवं लौकिक जीवन व्यावसायिक रहा है।

क्षुल्लक दीक्षा श्रावण बदी २ को धरियावद में ग्रहण की तथा आ० पार्श्वसागरजी से परसाद में माह सुदी ६ को मुनि दीक्षा धारण की और आपका नामकरण उदयसागरजी हुआ। आपकी समाधि चावण्ड (उदयपुर) में चैत बदी ५ को सायंकाल ६.५५ बजे हुई।

मुनि श्री बाहुबलीसागरजी महाराज

आपका जन्म संवत् १९७१ पोष सुदी १२ के दिन बुधवार को हुआ। दीक्षा पूर्व का नाम श्री दूलीचन्दजी था तथा जाति चित्तौड़ा थी। आपके पिता का नाम नेमचन्दजी एवं मातुश्री का नाम गुलाबवाई था। धर्म शिक्षा सामान्य थी। दूसरी प्रतिमा आदिसागरजी (कुरावड़ वाले) से धारण की। सातवीं प्रतिमा आ० श्री धर्मसागरजी महाराज से दिल्ली में धारण की। आपने क्षु० दीक्षा देपुरा में सन् १९७७ में बैसाख सुदी २ को धारण की तथा आनन्दसागरजी नामकरण हुआ तथा मुनि दीक्षा सिद्धवर-कूट में धारण की, दीक्षा नाम बाहुवलीसागरजी रखखा गया। यहीं आपकी समाधि हुई।

❖

मुनि श्री अमृतसागरजी महाराज

आपका जन्म सावन वदी १ संवत् १९६९ को हुआ तथा जन्म नाम हीरालालजी था। जाति चित्तौड़ा थी। आपके पिताश्री का नाम नेमचन्दजी एवं मातुश्री का नाम गुलाबबाई है। तीन पुत्र व चार पुत्रियां हैं। धर्म शिक्षा आपकी सामान्य ही रही है। दूसरी एवं पाँचवीं प्रतिमा आदिसागरजी (कुरावड़ वाले) से ग्रहण की। संवत् २०२७ में फाल्गुन सुदी ११ को शिखरजी में मुनि श्री १०८ विमलसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा धारण की। ऐलक दीक्षा देपुरा में बैसाख सुदी २ सन् १९७७ को आ० श्री १०८ पार्श्वसागरजी महाराज से एवं मुनि दीक्षा अकलूज महाराष्ट्र में श्रावण सुदी ७ सन् १९८२ को धारण की। आप अभी गुरु के सान्निध्य में ही हैं।

मुनि श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज

जन्म स्थान—महोवा (पन्ना M. P.)

जन्म सम्वत्--२०११ को गोलालारे जाति में

पिताजी का नाम—श्री कल्लूलालजी सिंघई

माताजी—श्री रामबाईजी

आपका पूर्व नाम—श्री दयाचन्दजी

शिक्षा—११ वीं

दीक्षा स्थल—सागवाड़ा (राजस्थान)

दीक्षा गुरु—मुनि पार्श्वसागरजी से १९७७ में आपने छोटी उम्र में चारों अनुयोगों का गहन अध्ययन किया है। समयसार, प्रवचनसार, गोम्मटसार, नियमसार आदि ग्रन्थों की गाथाएँ कण्ठस्थ कर ली हैं। वर्तमान में आप धवलराज ग्रन्थ का स्वाध्याय कर रहे हैं। वर्तमान आयु २९ वर्ष की है। आप निरन्तर ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं।

❖

मुनि श्री नमिसागरजी महाराज द्वारा
दीक्षित शिष्य

क्षुल्लक श्री निर्वाणसागरजी

क्षुल्लक श्री निर्वाणसागरजी महाराज

आपका जन्म बेलगाँव, ताल्लुका अथनी (कर्णाटक) में हुआ था। आपका नाम निगप्पा था। आपके पिताजी का नाम सिघप्पा और माता का नाम श्रीमती सत्यव्वा था। आपका विवाह हो गया था पर सब छोड़कर आपने अचानक श्री १०८ नमिसागरजी महाराजसे सन् १९८२ में जैंसगपुर-उद्गाँव के बीच में स्थित कुञ्जवन में क्षुल्लक दीक्षा ले ली और अभी आप ओटी-कडलूर में श्री १०५ आर्यिका सि० वि० विजयमती माताजी के संघ में हैं।

आप शान्त और गम्भीर स्वभाव वाले हैं।

आर्यिका विशुद्धमती माताजी

(आ० श्री शिवसागरजी की शिष्या)

द्वारा दीक्षित शिष्य

आर्यिका विशुद्धमती माताजी
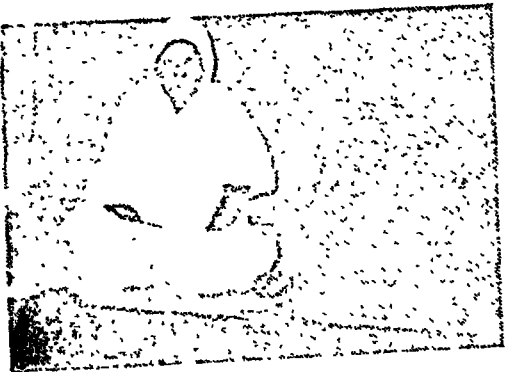
क्षुल्लिका विनयमती माताजी

ब्र० सूरजबाई का जन्म हिरनोदा (फुलेरा) राजस्थान में हुआ। आपने सं० २०३६ में जोबनेर में पू० आर्यिका विशुद्धमती माताजी से क्षुल्लिका दीक्षा ली। आपके पिता का नाम श्री जीवनलालजी था तथा मां का नाम सौ० कपूरीबाई था। आप सरल एवं तपस्वी साध्वी हैं।

आर्यिका अनन्तमतीमाताजी द्वारा
दीक्षित शिष्य

क्षुल्लिका कुन्थमतीजी

क्षुल्लिका कुन्थमती माताजी

आपका जन्म मालेगांव नासिक में हुआ था। आपके पिता श्री वैजुलालजी पाटोदी हैं व माता श्री आशादेवी है। आप खण्डेलवाल जाति के भूपण हैं व पहाड़िया गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ परन्तु आपको २० वर्ष की अवस्था में वैधव्य प्राप्त हो गया।

उपदेश श्रवण के कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जागृत हुई। आपने श्री १०५ आर्यिका अनन्तमतीजी से कन्नड़ (औरंगाबाद) में सन् १९६८ में दीक्षा ले ली। आपने गजपंथा, कन्नड़ आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

स्वयं दीक्षित

मुनि श्री वीरसागरजी महाराज

मुनि श्री सिद्धसागरजी महाराज

मुनि श्री वर्द्धमानसागरजी महाराज

मुनि श्री कुन्थुसागरजी महाराज (गुजरात)

मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज

क्षुल्लक श्री जम्बुसागरजी

मुनिश्री वीरसागरजी महाराज

जन्म स्थान—गंज वासौदा

जन्म तिथि—सम्वत् १६७६ वैसाख मास

दीक्षा तिथि—माघ कृष्ण १ सं० २०१६

आपका जन्म ग्राम वासौदा में सम्वत् १६७६ में वैसाख मास के प्रथम पक्ष रविवार में हुआ था आपके पिता का नाम श्री सोमतरायजी एवं मातुश्री का नाम श्रीमती हरखोवाई था। आपका गृहस्थ अवस्था का नाम श्री गुलावचन्दजी भण्डारी था आपकी वासौदा में किराने की दुकान थी आप शतरंज के विशेष खिलाड़ी थे। आपके दीक्षा लेने के २ मुख्य कारण हैं—एक तो श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवान की फोटू में एक नया चमत्कार हुआ देखकर तथा दूसरे आपने नगर से वाहर कुछ हरिजनों को एक मरे हुये बैल की खाल निकालते हुये देखा, देखकर आत्मा संसार से भयभीत सी हो गयी आपने सोचा इस बैल की चमड़ी तो कम से कम मनुष्य के काम में आ ही जाती है लेकिन बगैर आत्म कल्याण किये मनुष्य की चमड़ी तो किसी भी काम की नहीं

आपकी जीवन दिशा बदल गई आप उसी दिन शाम की गाड़ी से कानपुर होते हुये श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा को चल पड़े। बुधवार की रात को सम्मेदशिखरजी के पर्वत पर भगवान के चरणों की वन्दना करते हुये जब आप श्री १००८ देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ स्वामी की टोंक पर पहुंचे वहाँ वीतरागता उमड़ पड़ी। भगवान श्री के चरणों में माथा टेक कर उन्हीं को अपना सर्वोपरि गुरु मानकर पंचों के समक्ष दिगम्बर मुद्रा धारण की उस दिन माघ कृष्णा १ गुरुवार सम्वत् २०१६ था समस्त पंचों ने आपको श्री १०८ वीरसागरजी नाम से सुशोभित किया।

मुनि श्री सिद्धसागरजी महाराज

आपका जन्म नाम श्री सिद्धाप्पा था। पिता का नाम मल्लप्पा था। माता का नाम चित्रव्वा था। जन्म ई० सन् १६२८ वैसाख शुक्ला २ को हुवा था। वैराग्य का कारण पूर्व संस्कार तथा शास्त्र श्रवण है।

कोल्हापुर जिले में नांदणी में भट्टारक जिनसैनजी थे 'मुगल साम्राज्य भारत भर में फैला हुवा था दिगम्बर मुनि प्रायः नहीं थे, दिगम्बर परम्परा विलुप्त सी दिखती थी किन्तु सत्य धर्म का लोप कोई भी राज्य सत्ता नहीं कर सकती है श्री सिद्धप्पाजी वहाँ से नांदणी मठ में आए अपने वैराग्य भाव श्री भट्टारकजी से कहे तथा वैशाख शुक्ला तीज सन् १८६५ में श्री जिनसैन भट्टारकजी से क्षुल्लक दीक्षा नांदणी कोल्हापुर में ग्रहण की। आपका नाम क्षुल्लक सिद्धसागरजी रक्खा। वहाँ से विहार कर तीर्थराज शिखरजी के दर्शनों को आये तथा पर्वतराज पर श्री चन्द्रप्रभुजी की टौंक पर आपने मुनि दीक्षा ली सन् १८६६ में ललित कूट पर स्वयं वस्त्रों का त्याग कर दिगम्बर मुनि बन गये। वहाँ से आपने भारत के सभी स्थानों पर विहार किया। सन् १६०६ में ध्यानमग्न अवस्था में शरीर का मोह छोड़कर पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए इह लोक की यात्रा समाप्त की। धन्य है वे मुनिराज।

❖

मुनि श्री वर्धमानसागरजी महाराज

ब्र० चुन्नीलालजी देशाई ने अंतिम समय में समाधि के समय मुनिपद को धारण करके ईडर में इस नश्वर शरीर का त्याग किया। पिता का नाम कालीदास-माता उगमबाई राजकोट के रहने वाले थे। श्वेताम्बर स्थानकवासी धर्म को छोड़कर दिगम्बर हुये थे। स्वाध्याय प्रेमी होने के कारण आपने अनेकों ग्रन्थों का सम्पादन किया था और स्वतन्त्र ग्रन्थों की भी रचना की है। एक समय आप सोनगढ़ के ट्रस्ट के ट्रस्टी भी थे, परन्तु सैद्धांतिक मतभेद होने के कारण आपने सोनगढ़ के एकांतता का बहुत विरोध किया। आपकी प्रवचन शैली बहुत ही आकर्षक और व्यवस्थित थी।

मुनि कुन्थुसागरजी (गुजरात)

वीर संवत् १९६४ फाल्गुन सुदी १२ के दिन कडियादरा ग्राम में हेमचन्द सेठ की पत्नी दीवालीवाई की कूख से आपका जन्म हुआ, थोड़ी सी अंग्रेजी भी पढ़े, गुजराती ७ वीं कक्षा तक पढ़ी। आपने कडियादरा और विजयनगर में पाठशाला का निर्माण कराया। गाँव की हाई स्कूल और अस्पतालों में तन, मन, धन से सेवा की। बहुत से त्यागियों के संम्पर्क में रहे। तीर्थ क्षेत्रों की ६ बार यात्रा की। व्रत-नियमानुसार चलते थे वृद्धावस्था में उद्यापन भी कराये हैं। अपने ग्राम में ही २०३२ को संपत्ति, परिवार को छोड़कर क्षुल्लक दीक्षा ली तथा ऋषभदेवजी में ऐलक दीक्षा ली। तारंगा में कार्तिक सुदी १५ के दिन मुनि दीक्षा ली।

मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज

यह बुन्देल भूमि सदैव से ही वीर प्रसूति होने के कारण वन्दनीय रही है। इसने ऐसे ऐसे महान् योग्य नररत्न उत्पन्न किये हैं जिनसे न केवल बुन्देलभूमि अपितु पूरा देश अपने आपको गौरवान्वित समझने लगता है।

इसी बुन्देल भूमि के मध्यप्रदेशान्तर्गत जिला टीकमगढ़ से पूर्व दिशा में ६ मील की दूरी पर स्थित एक छोटे से ग्राम पठा में स्थित श्री सिं० रामचन्द्रात्मज मुन्नालाल जैन वैद्य के घर यशोदादेवी की कूख से विक्रम संवत् १९६० फाल्गुन शुक्ला १२ रविवार पुष्य नक्षत्र शुभ तिथि में आपका जन्म हुआ। जो आगे चलकर दिगम्बर मुनि के रूप में प्रगट हुये।

"ललना के पांव पलना में दिखते हैं" इस कथन के अनुसार ही यह जन्म से ही प्रखर बुद्धि के थे। माता पिता ने बालक का नाम हरिप्रसाद रखा और हरि नाम से सम्बोधन करने लगे। ३-४ वर्ष की अवस्था में ही आप तोतली भाषा में महामंत्र, तीर्थंकरों के नाम स्वर व्यंजन आदि का उच्चारण करने लगे थे। अनन्तर बालक हरि ने अपने बाल्यकाल से पूज्य-बाबा गोकुलप्रसादजी कुण्डलपुर श्री पूज्य १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी की महति कृपा के द्वारा श्री पूज्य पं० मोतीलालजी वर्णी के सान्निध्य में श्री वीर दिगम्बर जैन विद्यालय अतिशय क्षेत्र पपौराजी में प्रथम छात्र रहकर विशारद कक्षा तक अध्ययन किया।

बाल्यकाल में ही आपके पिताजी स्वर्गस्थ हो गये जिससे घर का सम्पूर्ण कार्यभार आपके ऊपर आ गया फिर भी आप अध्ययन कार्य में रत रहे तथा घर पर रहकर ही आपने वैद्य शास्त्री, गणित, ज्योतिष, कविता, सामुद्रिक, धार्मिक शिक्षा-यत्र, मंत्र, तंत्र, प्रतिष्ठा, संगीत आदि में दक्षता प्राप्त की। वैद्यक कार्य तो आपने अपने पूज्य पिताजी से धरोहर के रूप में पाया था।

बालक हरि पं० हरिप्रसाद के रूप में समाज के आगे आये तथा पूज्य प्रतिष्ठाचार्य गुरुवर्य पं० मोतीलालजी वर्णी के साथ आपने प्रतिष्ठा कार्य कराना प्रारम्भ किया। इसी क्रम में आपने रेशंदीगिरि, खटौरा, ऊँचा, केवलारी, छिंदवाड़ा, चांदखेड़ी, अंदेश्वर क्षेत्र इत्यादि स्थानों पर गजरथ महोत्सव पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराई। समाज ने आपको पपौराजी के मेले के शुभावसर पर पू० गणेशप्रसादजी वर्णी एवं पं० मोतीलालजी वर्णी के सान्निध्य में प्रतिष्ठाचार्य पद से विभूषित किया।

बाल ब्रह्मचारी के रूप में रहकर आपने मात्र १५ वर्ष की अवस्था में नैष्ठिक प्रथम-द्वितीय श्रावक प्रतिमा ग्रहण कर विवाह का त्याग कर दिया तथा धार्मिक, सामाजिक, लौकिक, व्यावहारिक आदि कार्य करते हुये जैन समाज से सम्मानित होने पर भी उदासीनता पूर्वक अपना जीवन-यापन करने लगे।

आपने वि० सं० १९९६ माघ कृष्णा १ गुरुवार शुभ मिति में पटना (सागर) के जलयात्रा महोत्सव पर १०८ मुनि श्री पद्मसागरजी महाराज के द्वारा सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये। महाराज श्री ने आपके गुणों को देखकर आपका विद्यासागर नामकरण किया। वि० सं० २०१६ फाल्गुन शुक्ला १ से पंचकल्याणक महोत्सव लोहरदा (देवास) में सम्पन्न होना निश्चित किया गया इसी समय गुरुजी को साथ ले वहाँ पहुंचे और वहाँ फाल्गुन शुक्ला ३ सोमवार के दिन श्री भगवान नेमिनाथ स्वामी के दीक्षा महोत्सव के साथ ही श्री १०८ आचार्य योगीन्द्रतिलक मुनि शांतिसागरजी महाराज तथा पं० नाथूलालजी शास्त्री संहिता सूरि प्रतिष्ठाचार्य के सान्निध्य में गुरुजी द्वारा दीक्षा

संस्कार क्षुल्लक ग्यारहवीं प्रतिमा याचना पूर्वक ग्रहण की। इसी समय समस्त समाज की स्वीकृति पूर्वक नामकरण श्री १०५ क्षुल्लक नेमिसागर पद प्राप्त किया।

क्षुल्लक नेमिसागर की अन्तःप्रेरणा आगे बढ़ रही थी तथा वह चाहते थे कि मैं अपने आपको कब मुनि रूप में देखूं। इसी उद्देश्य से गुरुवर्य पूज्य १०८ आचार्य योगीन्द्रतिलक मुनि शान्तिसागरजी को पत्र लिखा। विनय की गई कि पत्र द्वारा ही स्वीकृति दी जाये। सेवा में उपस्थित होने में समय लगेगा। अतः गुरुदेव ने पत्र द्वारा स्वीकृति प्रदान कर दी। फलतः श्री १००८ दि० जैन सिद्ध क्षेत्र अहारजी (टीकमगढ़) के वार्षिक मेला महोत्सव के समय श्री वीर नि० सं० २४९४ वि० सं० २०२४ शुभमिती मार्गशीर्ष शुक्ला १३-१४-१५ गुरु, शुक्र, शनि दिनांक १४-१५-१६ सितम्बर १९६७ को श्री मदनकुमार कामदेव एवं विश्ववंद्य केवली के चरण युगल पादुका के समक्ष श्री गुरुजी का फोटो विराजमान कर श्री ब्र० पं० रेशमबाईजी पिड़ावा (राज०) तथा श्री गेंदालालजी सोनी खण्डेलवाल जैन, असावदा (वड़नगर) द्वारा उक्त युगल टोंक चरण निर्माण स्थल पर सम्पन्न प्रतिष्ठा ध्वजारोहण के आदि समारोह समय क्षेत्रीय कमेटी की सम्मति पूर्वक एवं बाहर से प्राप्त विद्वानों की लिखित स्वीकृति तथा समस्त प्रान्तीय समाज की स्वीकृति पूर्वक दिनांक १८-१२-१९६७ को ऐलक दीक्षा ग्रहण की एवं दि० १५-१२-१९६७ को पूजा विधि कर पात्रादि विधि तथा दिनांक १६ को निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि दीक्षा सहर्ष स्वीकार की। इस प्रकार आप श्री पूज्य १०८ आचार्य योगीन्द्र तिलक शान्तिसागरजी के पट्ट शिष्य हैं। ऐसे तपोनिधि लोकोपकारी परम पवित्र आत्मा महान् साधक आध्यात्मिक संत समयसारादि महाग्रन्थों के अनुभवी विद्वान् पूज्य श्री नेमिसागरजी के पवित्र चरणों में शत-शत वन्दन है।

आपने सतत् अध्ययन कर जो ज्ञानार्जन किया उसे आप निरन्तर लिपि वद्ध करते रहे जिसके आधार स्वरूप आपकी लेखनी द्वारा लिखित प्रतिष्ठा एवं वैद्यक सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ हस्त-लिखित उपलब्ध हैं जिनका प्रकाशित होना अति महत्वपूर्ण एवं जनोपयोगी है। आपके द्वारा लिखित पांडुलिपियाँ शुद्ध एवं अति स्वच्छ हैं। अक्षर तो इतने सुन्दर हैं कि मानों छापे के ही हों। महाराजजी की ८५ वर्ष की वृद्ध अवस्था होने पर भी वे अपने लेखन कार्य में सदा संलग्न रहते हैं।

❖

क्षुल्लक जम्बूसागरजी महाराज

श्री १०५ क्षुल्लक जम्बूसागरजी का पहले का नाम श्री हजारीलालजी था। आपके पिता का नाम श्री हुब्बलालजी था। आपकी माता श्रीमती चिरौंजाबाईजी थी। आप गोलसिंधारे जाति के भूषण थे। आपका जन्म स्थान भिण्ड (मध्यप्रदेश) था। आप वचपन से ही धर्म-प्रेमी थे।

आपने ज्येष्ठ शुक्ला छठ विक्रम संवत् २०२६ को चौरासी (मथुरा) में क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आप कई जगहों पर भ्रमण करके जनता को धर्म लाभ दे रहे हैं।

आचार्य योगीन्द्रतिलक शान्तिसागरजी महाराज

आचार्य श्री शान्तिसागरजी का जन्म वीर निर्वाण संवत् २४०९ (सन् १८८४ ई०) में बम्बई ग्राम में सतारा जिला के इसलामपुर तालुका में दूधगाँव नामक प्रान्त में हुआ। दक्षिणी भारत की चतुर्थ पंचम नामक उच्च एवं श्रेष्ठ जातियों में आप अतिश्रेष्ठ चतुर्थ जाति के रत्न हैं। आपकी माता का नाम श्रीमती हीराबाई था; आपके पिता श्री रामगोंडा पाटील दूधगाँव के प्रधान पद पर सम्मानित थे। नवीं वर्ष की अवस्था में शिक्षा ग्रहण हेतु आप स्कूल में प्रविष्ठ किए गये। पाँच वर्ष तक आपका शिक्षा अध्ययन निर्बाध गति से चलता रहा किन्तु दुर्भाग्य वश आपकी माता श्री का देहान्त हो जाने के कारण आपको वाध्य होकर अपनी शिक्षा त्यागनी पड़ी। जब आप चौदह वर्ष के थे, आपको गृहस्थी के झंझटों में चला आना पड़ा। पन्द्रहवें वर्ष में आपका विवाह श्रीमती रुक्मणी-वाई के साथ हुआ। इस प्रकार आप पूर्ण रूपेण गृहस्थ के रूप में अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ करने चले किन्तु विधि की विडम्बना कुछ और ही थी। विधाता ने आपको किसी और ही कार्य हेतु इस धरा पर अवतरित किया था। दुःख दैन्य एवं नाना प्रकार के संकटों से भटकती हुई मानवता का कल्याण आपके द्वारा होना ही था। विवाह के दो वर्ष भी व्यतीत न हो पाये कि कुटिल काल के कठोर करों ने आपकी धर्म पत्नी को इस संसार से सदैव के लिए छीन लिया। आपके पिताजी, कुटुम्वी जनों तथा इष्ट मित्रों ने बहुप्रलोभन देकर आपको पुर्नविवाह हेतु उकसाना चाहा परन्तु मानवता का पुजारी अपने हृदय में जो सेवा भाव के वीज बो चुका था, अनुकूल परिस्थिति पाकर अब उसमें अंकुर निकल चले थे। सन्मार्ग के अनुसरण में आपने पुनः विवाह को अपने मार्ग का कंटक ही समझा और इस प्रकार विश्वकल्याण की भावना से ओत-प्रोत इन्होंने अपने जीवन को इस पुण्य लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पूर्णतः स्वतः वना लिया।

धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा एवं भक्ति लिये इस मुनि ने सर्व प्रथम श्री बाहुबलिजी के दर्शन किये वहीं परम सौभाग्य से आपको आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज के दर्शन हुए जिनके उपदेश ने आपकी कोमल भावनाओं पर अमिट प्रभाव छोड़ा। आपने गुरुजी के सन्मुख यह प्रतिज्ञा की कि आप आजीवन जिन धर्म के प्रारम्भिक व्रतों एवं नियमों का पालन पूर्ण निष्ठा के साथ करते रहेंगे। तत्पश्चात् आपने शेड़वाल की जैन पाठशाला में तीन वर्ष तक शास्त्र अध्ययन कर ज्ञानोपार्जन किया। इस प्रकार ज्ञान गरिमा से परिपूर्ण मुनिजी द्वितीय बार श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के दर्शन लाभ हेतु गये और अपने गुरु के उपदेशानुसार सातवीं प्रतिमा धारण की। तत्पश्चात् आप गुरु के संघ में सम्मिलित किये गये। संघ में नित्य प्रति आप जिनवाणी का स्वाध्याय करते—आचार्य के उपदेशामृत का पान करते तथा अनेक विद्वानों के व्याख्यानों एवं धार्मिक ज्ञान से परिपूर्ण आदेश को सुनते। विक्रम संवत् १९८४ में संघ ने श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा करके चतुर्मास कटनी में सम्पन्न किया जिसमें आप भी थे। बाद में संघ के साथ विहार करते करते चातुर्मास ललितपुर में हुआ वहाँ पर भी आप थे। वहाँ से ही आप एकलविहारी हो गये और संघ को छोड़कर श्रवण बेलगोला की यात्रा को निकले। अनेक-स्थानों पर धर्मोपदेश देते हुए आप अपने अभीष्ट स्थान पहुँचे, जहाँ आपको श्री १०८ आचार्य वृषभसैन (आदिसागर) के दर्शन हुए। उनका वैराग्यपूर्ण उपदेश सुनकर आपने ग्यारहवीं प्रतिमा की पहली अवस्था क्षुल्लकव्रत धारण किया। चार मास के उपरांत आपने दूसरी अवस्था ऐलक व्रत और भेष धारण किया तथा अगले चार मास बीत जाने पर आप अष्ट कर्मों को क्षय करने वाले मुनि पद पर सुशोभित एवं सम्मानित हुए। दीक्षा का उत्सव जैन समाज द्वारा संवत् १९८५ में श्रवण बेलगोला में बड़े ही समारोह से हुआ जहाँ आपने आचार्य श्री १०८ वृषभसैनजी से दश भक्ति आदि मुनि क्रिया सीखी। तदुपरान्त आपने विहार किया तब से आपने कई स्थानों पर चतुर्मास सम्पन्न किये। इसी काल में आपने श्री शिखरजी की पुनः यात्रा भी की।

मुनिश्री मल्लिसागरजी महाराज
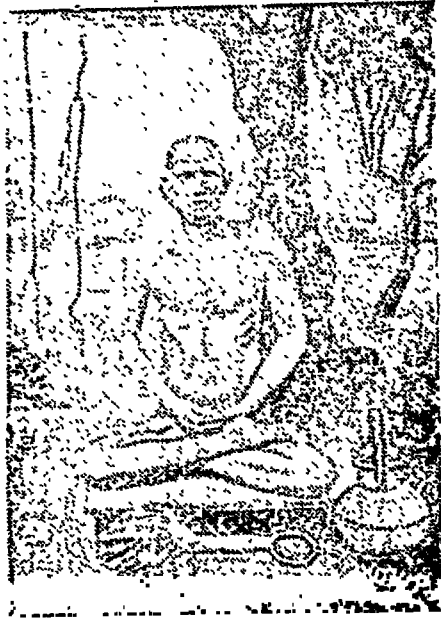
आप नांदगांव (नासिक) के रहने वाले हैं, आपके पिता का नाम दौलतरामजी सेठी और माता का नाम सुन्दरबाई था। आप खण्डेलवाल हैं। गृहस्थावस्था में आपका नाम मोतीलाल था, पाँच वर्ष की अवस्था में आपके माता पिता ने विद्याभ्यास के लिये पाठशाला में भेजा, आपने अल्पकाल ही में विद्याभ्यास कर लिया। २५ वर्ष की अवस्था में (नांदगांव में) श्री १०५ ऐलक पन्नालालजी ने चातुर्मास किया। उस वक्त आपने कार्तिक सुदी ११ सं० १९७६ के दिन दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आपने शादी भी नहीं की, क्योंकि आप अल्पवय से ही वैराग्य रूप थे और आप ऐलक पन्नालालजी के साथ ही रहने लगे तथा आपने गृह का भार त्याग दिया। उनके साथ में रहकर विद्याध्ययन भी किया। सम्वत् १९६० में प्रथम चातुर्मास फीरोजपुर छावनी (पंजाब) दूसरा चातुर्मास सं० १९८१ में देववन्द। तीसरा चातुर्मास रामपुर, चौथा चातुर्मास वर्धा में किया पश्चात् गुरू की आज्ञा से अलग होकर बारां (सिवनी में किया) वहां से ग्रामों में भ्रमण करते हुए गिरनारजी मऊ (गुजरात) ईडरराज्य में अगहन सुदी ७ सम्वत् १९८४ के दिन श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी छाणी महाराज के पाद मूल में आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। वहां से तीर्थराज शिखरजी की यात्रा के लिये विहार किया, वहां पर दक्षिण संघ भी उपस्थित था, उनके भी दर्शन किये। सम्वत् १९८५ का चातुर्मास आपने श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण वालों के संघ कटनी (मुडवारा) में किया सम्वत् १९८६ का चातुर्मास कानपुर, पावापुर लस्कर आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए पूर्ण किया। सम्वत् १९८७ का चातुर्मास श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी छाणी के पादमूल में इन्दौर में किया तथा भाद्रपद शुक्ला ७ शनिवार को पांच हजार जनता के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा के व्रत ग्रहण किये। वहां से विहार कर सिद्धवर कूट आये। वहां श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी छाणी के चरण कमल में दिगम्बरी दीक्षा की याचना की। मिति मंगसर बदी १४ सम्वत् १९८७ बुधवार (वीर सम्वत् २४५७) के दिन दिगम्बरी दीक्षा धारण की।

उस समय केश लौंच करते हुए आप जरा भी विचलित न हुए। दीक्षा संस्कार की सब विधि मन्त्र सहित श्री १०८ आचार्यवर्य शान्तिसागरजी छाणी के कर-कमलों द्वारा हुई। आपका समाधिमरण मांगीतुंगी में आ० महावीरकीर्तिजी के सान्निध्य में हुवा।

❖

मुनि श्री आनन्दसागरजी

मुनि श्री आनंदसागरजी महाराज पू० श्री १०८ सूर्यसागरजी के शिष्य थे। आपका स्वर्गवास दिल्ली में ही हुआ था। अब भी बाल आश्रम दरियागंज के सामने मुनि श्री के नाम से छात्रावास चल रहा है। आपने कई पुस्तकें आत्म-प्रमोद, इष्टोपदेश, छहढाला, समयसार पद संग्रह, अनुपम पत्र आदि पुस्तकें लिखी हैं।

❖

मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज

[आपका जीवन परिचय प्राप्त नहीं हो सका]
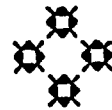
मुनि श्री सुधर्मसागरजी महाराज

आपका समाधिमरण गजपन्था में आचार्य श्री विमलसागरजी के सान्निध्य में हुआ था।

[विशेष परिचय अप्राप्य]

मुनि अभिनन्दनसागरजी महाराज

आपने ३० वर्ष की उम्र में मुनि दीक्षा ली। आपने कई ग्रंन्थों की हिन्दी टीका की। इन्दौर में आपने समाधि युक्त मरण किया तथा आत्म कल्याण किया।

मुनि श्री सिद्धसागरजी महाराज

आपका जन्म राजस्थान में पचेवर में हुवा था। आपका गौत्र गंगवाल था। आचार्य कल्प श्री चन्द्रसागरजी के सान्निध्य में रहकर आत्म साधना करते थे तथा अन्त समय में मुनि दीक्षा लेकर समाधि मरण किया। आप श्री पूनमचन्दजी झरिया गंगवाल के दादाजी थे। ❖

ऐलक श्री धर्मसागरजी महाराज

आपका जन्म कुरावड़ राजस्थान में हुवा था तथा आपने आ० कुन्थसागरजी से दीक्षा ली थी। आपने मेवाड़ प्रान्त को अपनी वाणी से धर्मामृत का पान कराया तथा इसी प्रान्त में समाधि ग्रहण की।

मुनि श्री पिहिताश्रवजी महाराज

आपका जन्म दक्षिण भारत में हुवा था। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने कुन्थलगिरि में जब समाधि ग्रहण की थी, उस समय आपने मुनि दीक्षा ली थी तथा समाधि में पूर्ण जीवन समर्पित किया तथा कुछ समय बाद आपने भी समाधि युक्त मरण किया। ❖

मुनि श्री विजयसागरजी महाराज

आपने पू० मुनि श्री सुबलसागरजी से मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

मुनि श्री पारससागरजी महाराज

आपने पू० आचार्य शान्तिसागरजी की वैयावृत्ति की तथा आचार्य श्री की समाधि से पूर्व समाधिमरण आचार्य श्री के सानिध्य में किया । आपने मुनि आदिसागरजी से दीक्षा ली थी ।

❖

आर्यिका सुमतिमती माताजी

आपका जन्म खटाऊ जिला सतारा बम्बई प्रान्त में हुआ । आपकी इस समय आयु ६५ वर्ष की है । सातवीं प्रतिमा तीस वर्ष की आयु में चारित्र चक्रवर्ती शांतिसागरजी महाराज से ली और क्षुल्लिका के व्रत आचार्य पायसागरजी महाराज से और गत वर्ष अर्जिका की दीक्षा आचार्य देश-भूषणजी महाराज से ली आप दीर्घ तपस्वी, कष्ट सहिष्णु और बड़ी धर्मनिष्ठ हैं ।
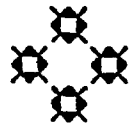
क्षुल्लिका राजमती माताजी

आपका जन्म दक्षिण भारत में हुआ । आपने पच्चीस वर्ष की आयु में दीक्षा ली । हिन्दी संस्कृत की अच्छी विदुषी और कुशल वक्ता हैं । आपके पति ने भी मुनि दीक्षा अंगीकार करली है ।
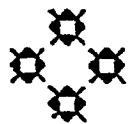
क्षुल्लिका विशालमती माताजी

आपका जन्म ग्राम चोंकाक जिला कोल्हापुर दक्षिण प्रांत में हुआ। चार वर्ष की छोटी आयु में आपका विवाह हुआ तो आप मंडप से बाहर निकल गईं और फेरे नहीं हुए। एक वर्ष के पश्चात् उस लड़के का स्वर्गवास हो गया। माँ ने कहा पुत्री विधवा हो गई। चौदह वर्ष की आयु में परम पूज्य आचार्य शाँतिसागरजी महाराज से ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली। ट्रेनिंग पास कर अध्यापिका का कार्य करने लगीं। आपकी समाज सेवा में बड़ी रुचि रही 'महिला वैभव' नाम की मासिक पत्रिका की सम्पादिका रहीं और एक 'कन्याकुमार पाठशाला' की स्थापना की। बोरगांव में आचार्य पाय-सागरजी से क्षुल्लिका दीक्षा धारण की। आप बड़ी कष्ट सहिष्णु सहनशील और कुशल वक्ता हैं।
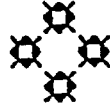
क्षुल्लिका गुणमती माताजी

आपका जन्म अग्रवाल वंश में गुहाने के प्रसिद्ध रईस ला० हुकमचन्दजी के यहाँ हुआ। आप के पिताजी ने ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली। उनकी धार्मिकता के कारण आज आपका समस्त परिवार धार्मिक, शिक्षित और श्रद्धालु है। सदैव धर्म के कार्यों में प्रयत्नशील रहती हैं। बचपन में बड़े लाड चाव से पालन पोषण होने के कारण आप का नाम 'चावली' रक्खा गया। दुर्भाग्य से थोड़ी आयु में विधवा हो गईं। थोड़े ही समय में धार्मिक विषयों में उत्तम योग्यता प्राप्त करली। आपने गुहाने में ज्ञान वनिताश्रम खोला जिससे नारी जाति का बड़ा उपकार हुआ। बहुत वर्षों से आप दिल्ली रहने लगीं। आपके चारित्र और ज्ञान प्रचार की तीव्र रुचि के कारण दिल्ली महिला समाज पर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। जैन महिलाश्रम दिल्ली की आप अधिष्ठातृ थीं।

पाँच वर्ष हुए परम पूज्य आचार्य वीरसागरजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा धारण की आपने दरियागंज में ज्ञान महिला विद्यालय स्थापित किया। जिससे समाज का बड़ा उपकार हुआ। आप अस्वस्थ होते हुए भी चारित्र का पालन दृढ़ता से करती हैं।
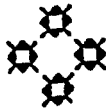
क्षुल्लिका चन्द्रसैनाजी

आपका जन्म अग्रवाल जैन वंश में लखनऊ में हुआ । आपकी आयु इस समय ६० वर्ष की है । गतवर्ष जयपुर में आपने आचार्य देशभूषणजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा धारण की आप वयोवृद्ध, सहनशील धर्मनिष्ठ महिला हैं ।
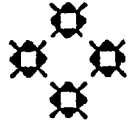
क्षुल्लिका वृषभसैनाजी

आपका जन्म जयपुर में खण्डेलवाल जैन वंश में हुआ । गतवर्ष जयपुर में आपने आचार्य देशभूषणजी महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा धारण की । आप चरित्रपरायणा और धर्मनिष्ठ महिला हैं ।

क्षुल्लक सुमतिसागरजी महाराज

आपका जन्म कानपुर में अग्रवाल वैष्णव परिवार में हुआ । आचार्य देशभूषणजी महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर आपने जैन धर्म की क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की है । आप बड़े निर्भीक, श्रद्धालु दृढ़ श्रद्धानी, जिनेद्रभक्त और स्वाध्याय प्रेमी हैं ।

आर्यिका गुणमति माताजी

जन्म स्थान—महेगांव संवत् १९७०

पिता का नाम—श्यामलालजी

माता का नाम—मथुरादेवी

पूर्व अवस्था का नाम—आनन्दीबाई

दीक्षा गुरु—मुनि कीर्तिसागरजी

समाधिमरण—शिखरजी सावन सुदी पूर्णिमा ।

आर्यिका शान्तिमती माताजी

पूर्वनाम—कलावती

जन्म स्थान—लखनऊ सन् १६०२

पिता का नाम—नाथूरामजी

जाति—जैसवाल

दीक्षागुरु—आचार्य कुन्थसागरजी

दीक्षा स्थल—पपौरा सन् १६७२ में।

❖

आर्यिका कृष्णामती माताजी

श्री पण्डिता कृष्णावाईजी का जन्म फाल्गुन वदी १३ वि० सं० १६५७ को पिता रामेश्वर-लालजी गर्ग के घर माता सीतादेवी के कूख से फतेहपुर में हुआ था। जाति अग्रवाल है। साधारण शिक्षा के वाद इनका विवाह हो गया था। वैधव्य प्राप्त हो जाने के कारण आपने अपने जीवन लक्ष्य को वदल दिया और ज्ञानवर्द्धन के साथ धर्म और समाज सेवा का व्रत जीवन में उतारा। आपके महान् एवं सरल हृदय में वालकों की समुन्नति एवं विधवाओं असहायों के संरक्षण की अनवरत भावना रही। परिणामतः आपने अपने सद्द्रव्य का उपयोग महिलाश्रम की स्थापना संचालन में में किया जिससे हजारों महिलाओं का कल्याण हुआ।

लाखों का दान और जिनमन्दिरों के निर्माण में भी आपका योगदान युगों युगों तक चिर-स्मरणीय रहेगा। आपने अन्त में आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण किया।

❖

क्षुल्लिका जयप्रभामती माताजी

पूर्व नाम—ब्र० आदेशकुमारी जैन

जन्म स्थान—आरा (बिहार) सन् १९५२

पिता श्री—चन्द्ररेखाकुमारजी

माता श्री—सत्यवती जैन

शिक्षा—बी. ए., बी. एड., टीचर एवं शास्त्री

शिक्षा स्थल—ब्र० चन्दाबाई आश्रम बिहार

ब्रह्मचर्य दीक्षा—तीर्थराज सम्मेदशिखरजी पार्श्वनाथ टोंक सन् १९७३ में।

धार्मिक संस्कार—बचपन से ही थे

दीक्षा गुरु—आर्यिका विजयमती माताजी

दीक्षा स्थान—पुन्नूरमलई (मद्रास) तमिलनाडू दिनांक ४-१०-८४ को

आप बाल ब्रह्मचारिणी थी। दीक्षा लेकर इस बाल अवस्था में आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। धन्य है आपका जीवन जो उत्कृष्ट मार्ग पर चलकर आत्मावलोकन कर रही हैं।

क्षुल्लिका विजयप्रभामती माताजी

पूर्वनाम—कु० सन्ध्या जैन

जाति—परिवार जाति

जन्म स्थान—जबलपुर ११-१-१९६०

पिता श्री—मदनलालजी नायक

माताजी—ललिताबाई

शिक्षा—बी. ए.

दीक्षा गुरु—आर्यिका विजयमती माताजी

आपके ६ बहिनें तथा २ भाई हैं। ३ वर्ष से माताजी के साथ रहकर धार्मिक शिक्षा प्राप्त की तथा माताजी से ही क्षुल्लिका दीक्षा लेकर आत्म साधना में लीन हैं। अभी भी आप धर्म ग्रन्थों की पढ़ाई कर रही हैं।

❖

१९-२० वीं सदी के दिगम्बर जैनाचार्य चारित्र चक्रवर्ती तपोनिधि
[illegible]धिसम्राट, परम तपस्वी १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ससंघ

१०८ आचार्य श्री पायसागरजी महाराज ससंघ

१०८ पू० श्री वर्धमानसागरजी महाराज (दक्षिण) ससंघ
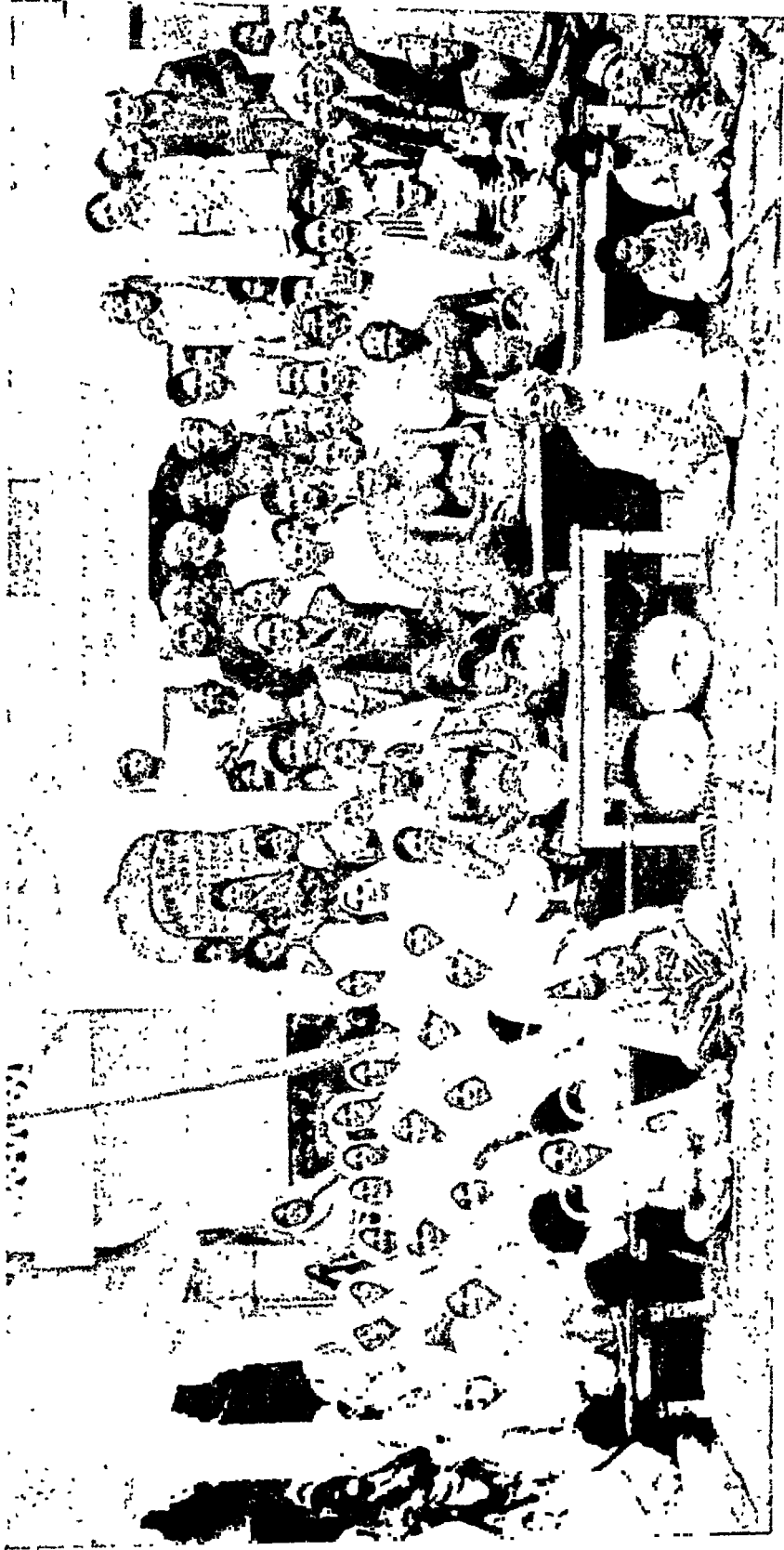
पू० १०८ आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज ससंघ

पू० १०८ आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज ससंघ
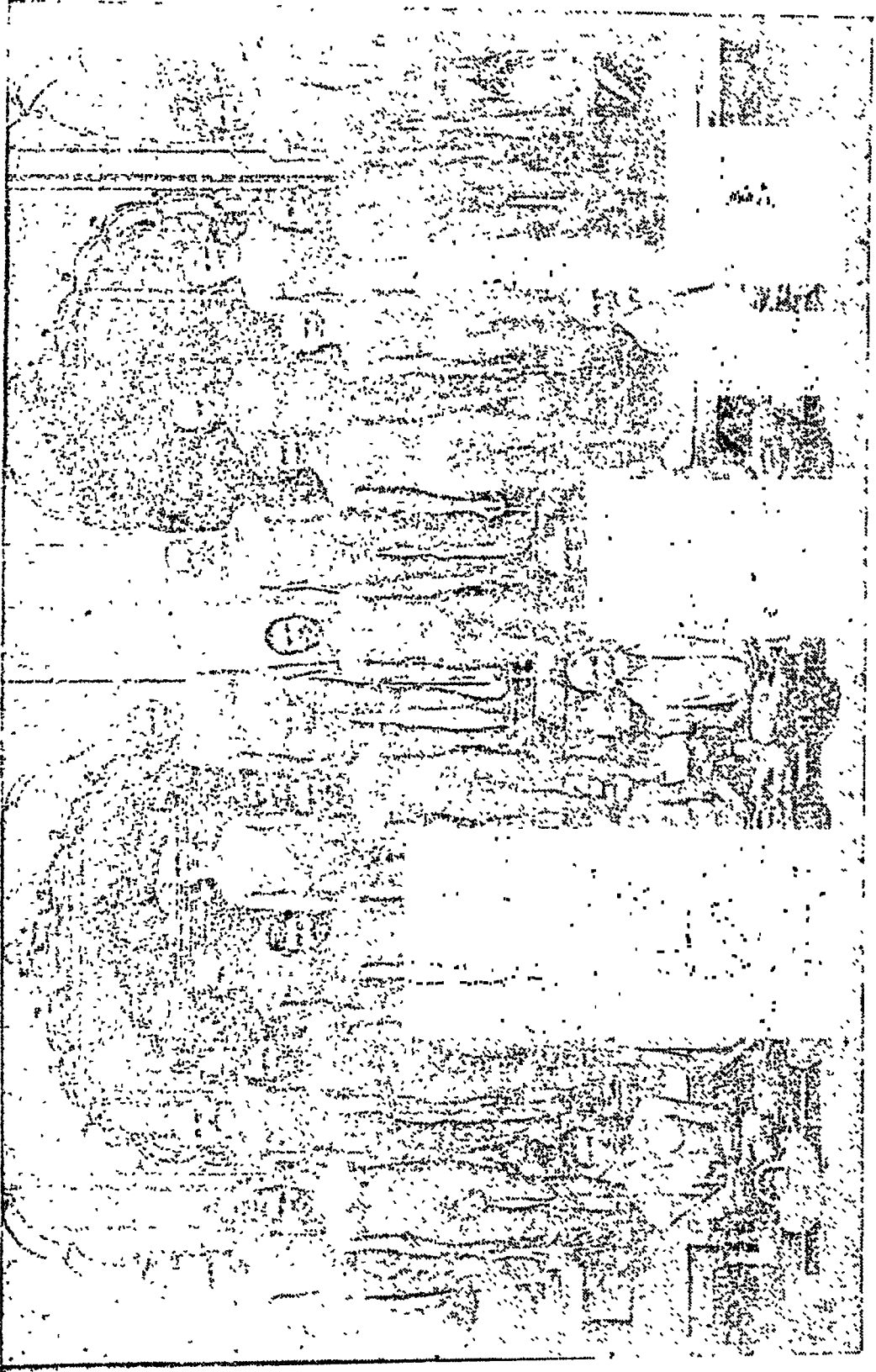
पू० १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज ससंघ
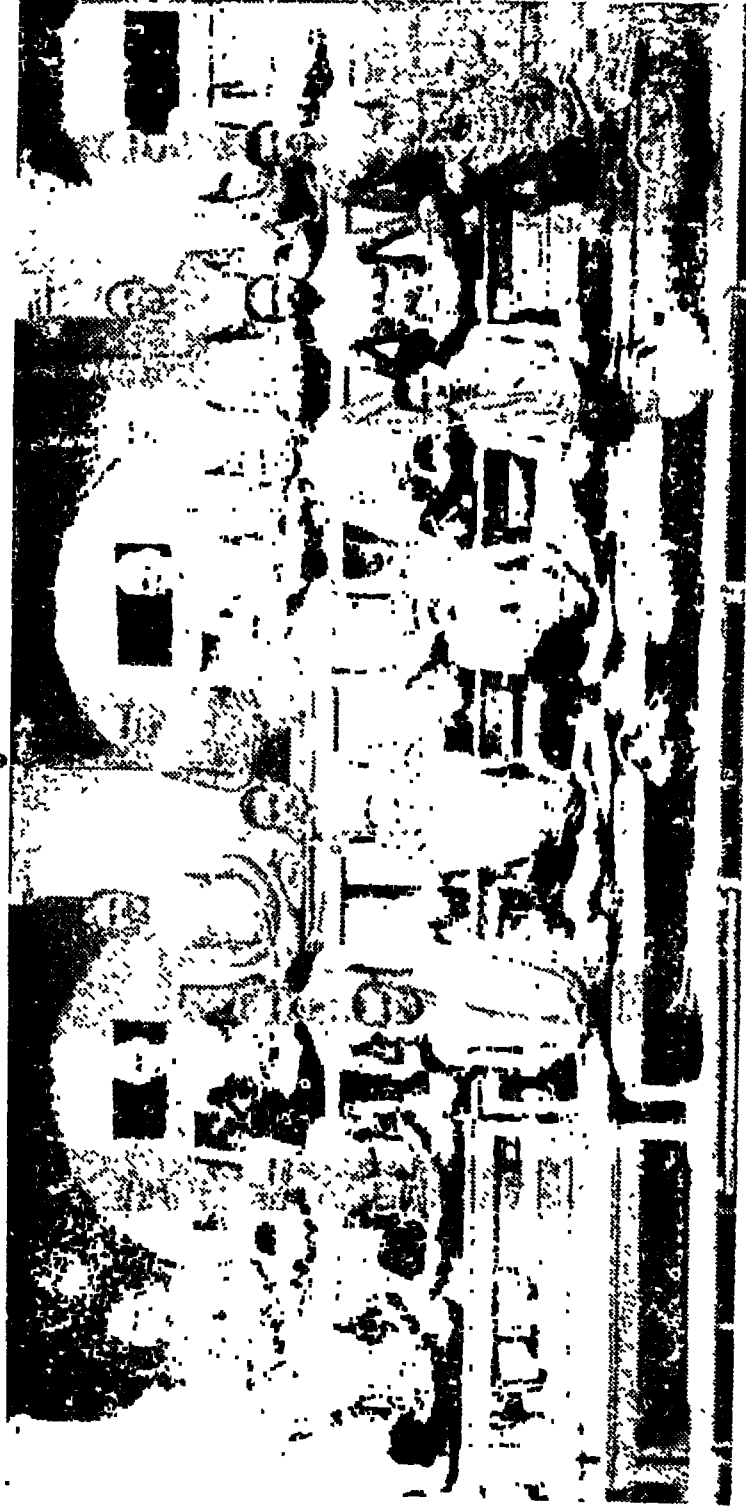
पू० १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज, आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज एवं
मुनिश्री अजितसागरजी महाराज एवं समस्त साधुवृन्द
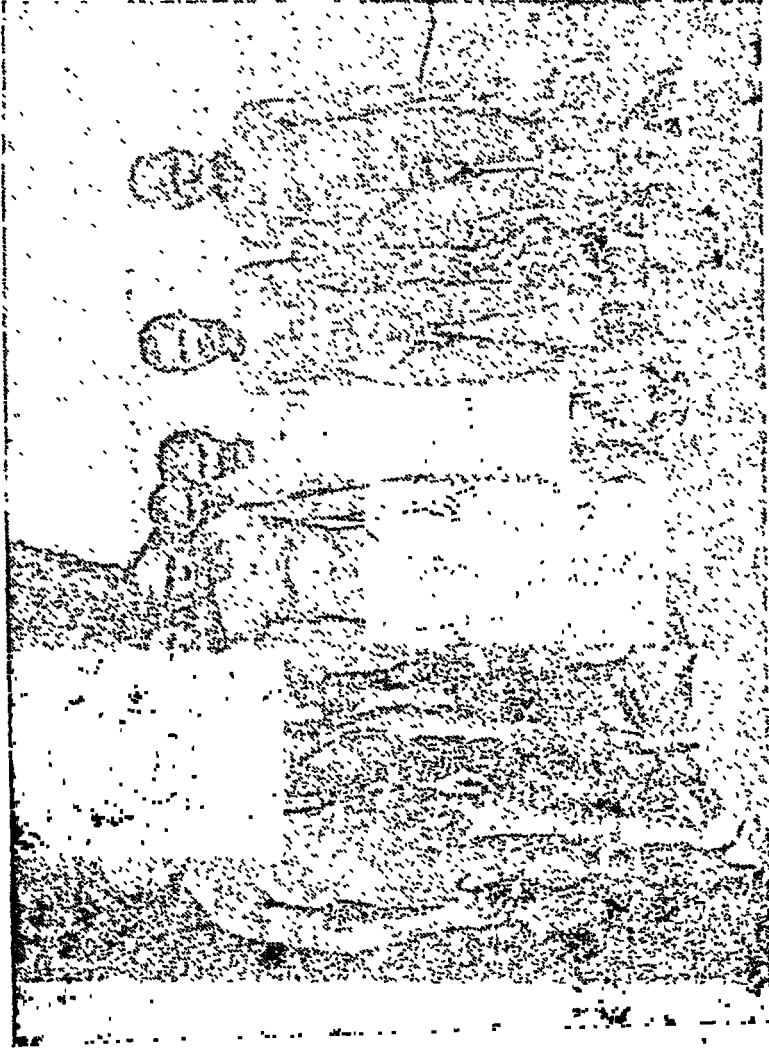
पू० १०८ आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ससंघ

पू० १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज ससंघ

अन्य कई पू० मुनिराज, आर्यिका एवं क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं आदि के जीवन परिचय प्राप्त नहीं हो सके उनके परिचय नहीं दिये गये हैं जिनके केवल फोटो प्राप्त हो गये हैं उनके नाम सहित फोटो यहाँ दिये जारहे हैं :—

मुनिश्री कुन्थुसागरजी

मुनिश्री सीमन्धरसागरजी

मुनिश्री समाधिसागरजी, सूरत

[अज्ञात]

[अज्ञात]

मुनिश्री चन्द्रकीर्तिजो
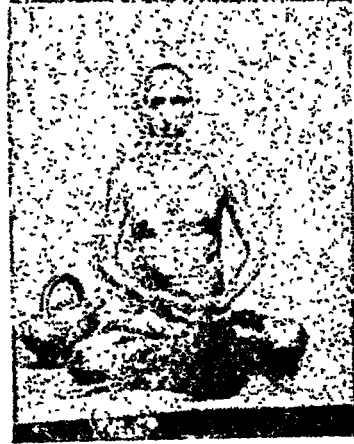
मुनिश्री जयसागरजी
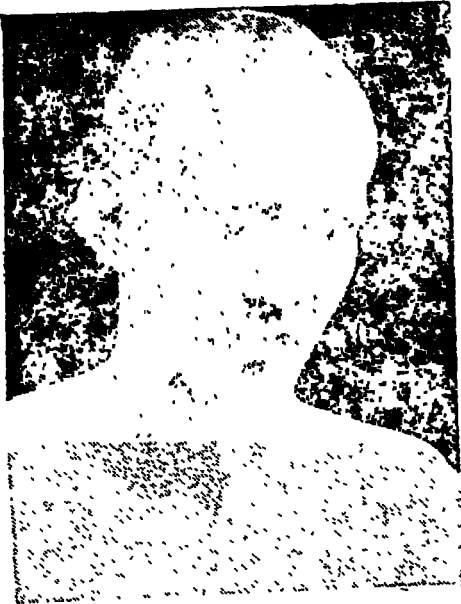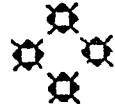
[अज्ञात]

[अज्ञात]

[अज्ञात]
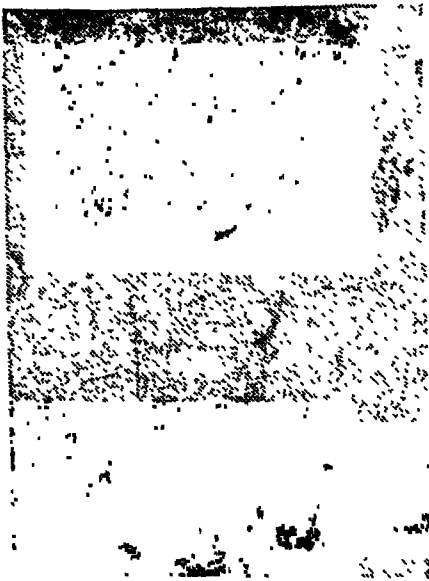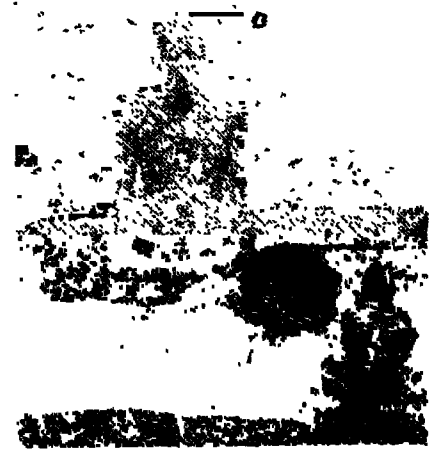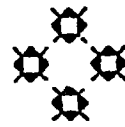
[अज्ञात]

मुनिश्री मल्लिसागरजी

[अज्ञात]

[अज्ञात]
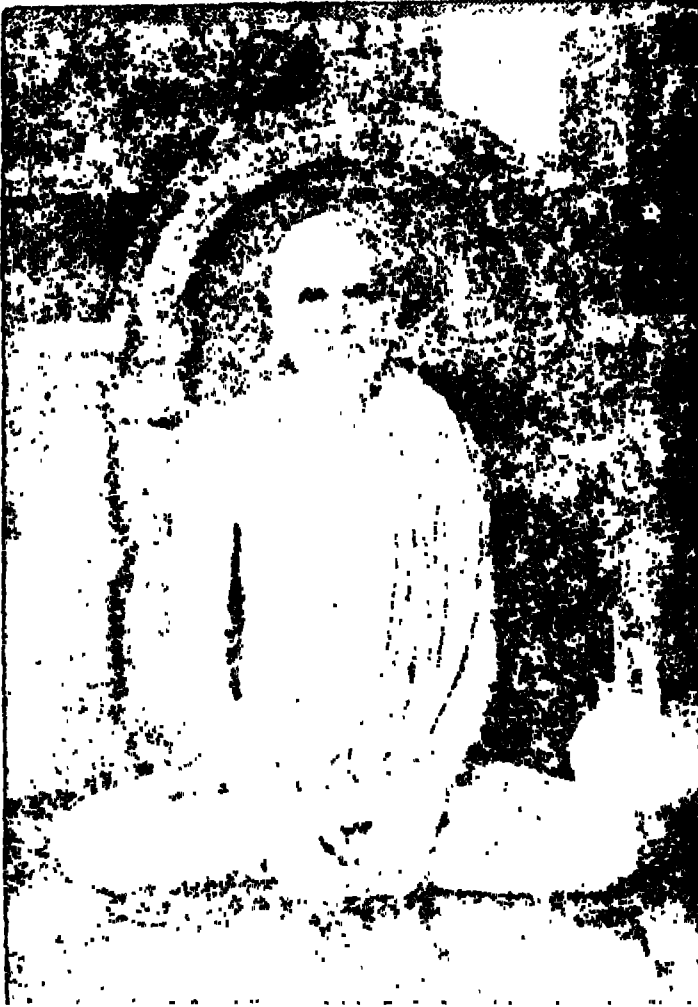
[अज्ञात]

[अज्ञात]

क्षुल्लक सुमतिसागरजी

क्षुल्लक विद्यासागरजी

[अज्ञात]

क्षुल्लक पार्श्वकीर्तिजी

क्षुल्लक वीरसागरजी
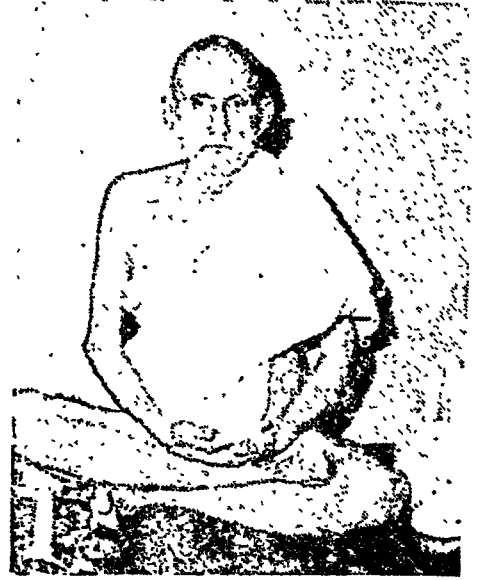
क्षुल्लक वर्धमानसागरजी
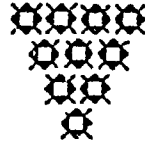
क्षुल्लक दयासागरजी

क्षुल्लक वीरसागरजी

[अज्ञात]

क्षुल्लक नेमिसागरजी

क्षुल्लक श्री धर्मसागरजी

क्षुल्लिका शीतलमतीजी

क्षुल्लिका सुमतिमतीजी

क्षुल्लिका गुणमतीजी
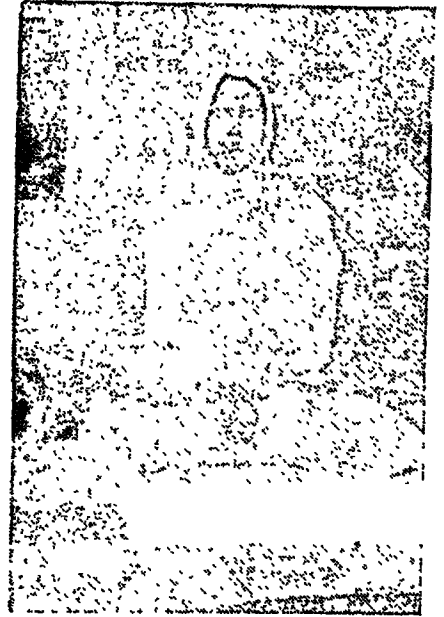
क्षुल्लिका पार्श्वमतीजी

[अज्ञात]
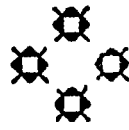
[अज्ञात]

क्षुल्लिका ज्ञानमतीजी

भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी
मूलविद्री

भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी
श्रवणवेलगोला

भट्टारक श्री लक्ष्मीसेनजी
कोल्हापुर
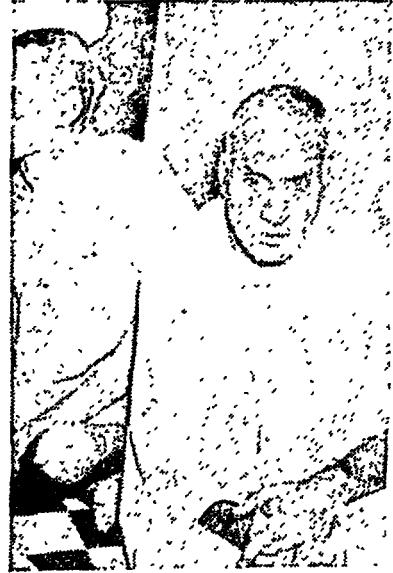
भट्टारक श्री लक्ष्मीसेनजी
नांदणी

ब्र० कपिलजी कोटड़िया

ब्र० शीतलप्रसादजी
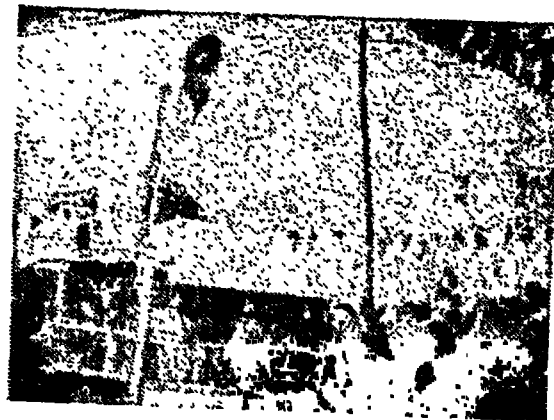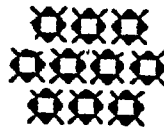
ब्र० पंकज जैन B. Sc.
भावनगर

ब्र० कमलाबाई श्रीमहावीरजी

चारित्र, ममता तथा लोक कल्याण की भावनाओं को एक साथ अपने आपमें आत्मसात् किये हुए ब्रह्मचारिणी श्री कमलाबाई जैन उन गिनीचुनी, विभूतियों में से हैं जिन्होंने एक परम्परावादी परिवार में जन्म लिया। बाल्यावस्था में ही विवाह होजाने के शीघ्र बाद वैधव्य की पीड़ा को भोगा। अपने दुख को भूल उन्होंने श्री महावीरजी के मुमुक्षु महिलाश्रम में अध्ययन करने के बाद स्वयं आदर्श महिला विद्यालय की स्थापना कर एक महान अनुकरणीय कार्य किया है। राजस्थान के कुचामन सिटी कस्बे में श्री रामपालजी पाटोदी के यहां श्रावण शुक्ला ६ वि० सं० १६८० को जन्मी श्री कमलाबाई स्वयं करुणा की मूर्ति हैं। यद्यपि उन्होंने स्वयं किसी बालक को जन्म नहीं दिया, किन्तु आज सैंकड़ों बालिकाओं को उनके मातृत्व की छाया में पोषण-संरक्षण मिल रहा है। आपकी सेवाओं के लिये कई बार आपका सम्मान-अभिनन्दन कर समाज तथा जन-प्रतिनिधियों ने आभार भी व्यक्त किया है किन्तु यह सब तो मात्र सामान्य श्रद्धा-प्रदर्शन ही है, आपकी सेवाओं का मूल्यांकन तो आने वाली पीढ़ियां ही कर सकेंगी। आप शतायु हों और देश तथा समाज की संरचना में आपका मार्गदर्शन अनवरत मिलता रहे यही वीर प्रभु से कामना है।

❖

ब्र० इच्छाबेन (भावनगर)

आपका जन्म भावनगर (गुजरात में) सन् १६०२ में हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री छगनलालजी एवं माता का नाम जड़ावबाई था। आप ३ बहिनें थीं। आपकी शादी भावनगर में ही श्री कान्तिलालजी के साथ हुई, २ पुत्र तथा २ पुत्रियां हुईं। आपका समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास वोरीवली (वम्बई) में तारीख २६-१२-६६ को हुवा था। आप श्री १०८ धर्मकीर्तिजी मुनिराज की गृहस्थावस्था की धर्मपत्नी थी। धर्म ध्यान व व्रत उपवासादि में अपना समय व्यतीत करती थीं। वड़े पुत्र धनसुखलालजी धामी के पास रहती थीं। अन्त में आपने सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर ६५ वर्ष की आयु में समाधिमरण किया। क्षुल्लक शीतलसागरजी ने आपको अन्त समय तक सम्बोधित किया। आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज से व्रत अंगीकार किये थे। आप चारित्र शुद्धि नामक व्रतों के उपवस कर रहीं थीं।

❖

ब्र० श्री कौशलजी

मई सन् १९४१ में सुसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित घराने में माता शकुन्तलावती की कोख से ननिहाल में उक्त बालिका का जन्म हुआ। माता स्वास्तिका मेटल वर्क्स जगाधरी वालों की बहन है। पिता पानीपत में कपड़े का बड़ा व्यापार करते हैं तथा बड़ा जमींदारा है। पहले कई सन्तानों के निधन होने के कारण मां-बाप को सदा आशंका बनी रहती कि कहीं उनकी लाडली बच्ची को कुछ हो न जाये। जन्म से मां के धार्मिक संस्कारों की छाया में पनपी यह बालिका सदैव सफ़ाई प्रिय, तड़क-भड़कीले वस्त्रों से उपेक्षित तथा सात्विक वृत्ति परायण थी। पूर्व संस्कारवश कभी इसने अपने होश में रात्रि में अथवा बिना देव दर्शन किये भोजन ग्रहण नहीं किया। किसी की तनिक सी पीड़ा देख करुणा से भर विह्वल हो जाती। घर में सर्व भौतिक साधनों की सुलभता होने पर भी अपने में खोई-खोई सी कुछ अनमनी सी रहती, मानों किसी अनदेखी वस्तु को पाने की चाह सीने में छिपाये हो। एक वर्ष में दो-दो कक्षाओं को सरलता से उत्तीर्ण कर विद्याध्ययन में तीव्रगति से आगे-आगे पढ़कर शिक्षकवर्ग को आश्चर्यान्वित कर दिया तथा बोर्ड की परीक्षायें सहजता से श्रेष्ठ अंकों में पास कर लीं। बुद्धि की इस कुशाग्रता व कुशलता के कारण ही पिता ने "कौशल" नाम रख दिया। पढ़ने की तीव्र लगन व सरल स्वभाव एवं सेवाभाव आदि गुणों के कारण शीघ्र ही यह सभी की लाडली बन गयी।

छुट्टियों के दिन थे। तेज गर्मी थी। पानीपत में कुछ माताओं को लघु सिद्धान्त प्रवेशिका का प्रशिक्षण शुरु किया था। इसकी मां ने सोचा कि यह बिटिया घर से कभी बाहर नहीं निकलती है, इस शिक्षण के निमित्त घर से बाहर जायेगी और धर्म भी सीख लेगी तथा तत्पश्चात् मुझे भी समझा देगी। इस आशय से माता शिक्षण कक्षा में इसे भी अपने साथ ले जाने लगी। उसको क्या पता था कि इस बालिका का सीखना शब्दों में नहीं जीवन में है। कौन जाने कि आज दिन वह अपनी लाडली बिटिया को अपने हाथों ही प्रभु को सौंपने ले आई है। असाधारण बुद्धि व ज्ञान पिपासा लख सभी कह उठे थे। कहा कि "यह कोई महानात्मा है"। पन्द्रह सोलह वर्ष की अल्प आयु में इसने मन ही

मन अखण्ड ब्रह्मचर्य का संकल्प कर मां की कोख को गौरवान्वित किया। कला के क्षेत्र में सिद्धान्त कौमुदी सहित संस्कृत की परीक्षाओं तथा कढाई-सिलाई की कलाओं में पारंगत हो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता उपलब्ध की।

जैन धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सम्पूर्ण जैन वाङ्मय का स्वयं मंथन किया। साथ-साथ जिनेन्द्रजी के प्रवचनों का संकलन करती। तत्पश्चात् अपनी सुध-बुध खोकर बृहद् जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष के सम्पादन में जुट गयी। जिनेन्द्रजी ने कहा कि 'मैं अनुभव करता हूँ कि भगवान ने इस बृहद् ग्रन्थ निर्माण के अर्थ ही इस देवी को भेजा है। इसको पाकर मैं अपने को धन्य मानता हूं।" वे सो जाते, कभी कभी बीच में उठकर देखते कि यह देवी बैठी लेखन में तल्लीन है। मानों इसने संकल्प किया था, ग्रन्थ पूरा होने पर ही मैं चैन लूंगी। अनवरत कार्य से अस्वस्थ होने पर भी लेखन में शिथिलता न आई। तब श्री जिनेन्द्रजी ने जिनवाणी व जिनदेव के समक्ष ग्रन्थ के लेखन का सम्पूर्ण श्रेय इस देवी को देने का संकल्प किया। जबकि यह साधिका तो मात्र देव-शास्त्र व गुरु की भक्ति को ही अपना सर्वस्व समझती रही थी।

आप द्वारा लिखित पुस्तकें :

अनुभव लहरी, हम कैसे जियें, अपनी ओर, बिन्दु से सागर, अन्तर्यात्रा के सूत्र, राह के पत्थर को सीढी बनाइये, हृदय के पट खोल, पत्थर में भगवान, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश के बहु भाग, जैन सिद्धान्त सूत्र, जैन दर्शन दीपिका, कौशल उवाच, धर्म दश पैडि चढिके, परतों के पार, मुक्ति के ये क्षण, आध्यात्मिक सांप सीढी, अर्हत् सूत्र, मंत्रानुशासन, अक्षर साधना, प्रेम पियष, आत्म जागरण, अयोग साधना. विश्व के आधार धर्म, WAY TO HAPPINESS.

ब्र० लाडमलजी वर्णी

श्री ब्रह्मचारी लाडमलजी भौंसा राजस्थान में प्रतिष्ठित सम्मान्य ब्रह्मचारी हैं। आप मूल रूप से चौरू (जयपुर) के रहने वाले हैं। चौरू जयपुर से दक्षिण की ओर फागी-मौजमाबाद के पास है। आपके पिता का नाम स्वरूपचन्दजी था। आप दि० जैन खण्डेलवाल जाति के रत्नस्वरूप हैं। आपका जन्म माघ शुक्ला २ विक्रम संवत् १९६२ को हुआ।

आपने आग्रह करने पर भी विवाह नहीं किया और बाल ब्रह्मचारी रहे और वि० सं० १९८० में चौरू से जयपुर आ गये तबसे जयपुर में ही रहते हैं । चौरू और जयपुर दोनों ही जगह आपके मकानात हैं । चौरू में आपके बड़े भाई रहते हैं । जमीन जायदाद के मालिक हैं ।

आपने जयपुर में कपड़े का व्यापार किया जिसमें ३० हजार रुपये का आपको थोड़े ही दिनों में लाभ हो गया । उस समय आपने इतना ही परिग्रह प्रमाण रख छोड़ा था । अतः आगे व्यापार करना बन्द कर दिया और उस पूंजी में से पाँच हजार रुपया आपने मूल निवास स्थान चौरू औषधालय खोलने को दे दिया और श्री चन्द्रसागर दिगम्बर जैन औषधालय की स्थापना कर दी जो अब तक चल रहा है और अच्छी स्थिति में है । पाँच हजार रुपयों से भी अधिक आपने चौरू में श्री जिन मन्दिरों के जीर्णोद्धार उत्सवादि में लगा दिये तथा ५०००/– अन्य धर्मकार्यों में लगा दिये ।

वि० सं० १९९४ में आपने प्रातः स्मरणीय स्व० चन्द्रसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत ले लिये और मुनि संघ की सेवा में लीन हो गये । ७ वर्ष तक मुनिराज चन्द्रसागरजी महाराज की सेवा में ही बिताकर धर्माराधन और ज्ञानार्जन किया । संवत् २००१ में जब १०८ श्री चन्द्र-सागरजी महाराज का समाधिमरण बड़वानी में हुआ तब तक आप बराबर साथ रहे और खूब वैयावृत्ति की ।

आपने संवत् २००० में ही श्री चन्द्रसागरजी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिये थे । आपका प्रत्येक धर्म कार्य में सहयोग रहता है । फुलेरा में जब पंचकल्याणक महोत्सव हुआ तब आपने उसमें बड़ा भारी सहयोग देने के साथ श्री १०८ श्री मुनिराज वीरसागरजी महाराज (ससंघ) की सेवा-वैयावृत्य में बड़ा भारी योग दिया और संघ की सम्मेदशिखरजी तीर्थराज की वंदना कराने में पर्याप्त प्रयत्न किया और परिश्रम उठाया । १० वीं प्रतिमा आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से ली । वर्तमान में आचार्य धर्मसागरजी महाराज के संघ में धर्म साधन में रत रहते हुए जिनवाणी की सेवामें संलग्न हैं ।

❀

ब्र० सूरजमलजी निवाई

श्री ब्र० सूरजमलजी बाबाजी का जन्म वि० सं० १९७९ मंगसिर वदी एकम रविवार को प्रातःकाल की मंगल वेला में जामुनिया (भोपाल) मध्यप्रदेश में हुआ था। आपके पिता का नाम धर्मनिष्ठ श्रावक श्री मथुरालालजी तथा माता का नाम महताब बाई था।

आपके बड़े भाई का नाम श्री गोपीलालजी (गप्पूलालजी) तथा ६ बहनें थीं। श्री रम्भाबाई, श्री शक्करबाई, श्री बतासीबाई, श्री रामप्यारीबाई, श्री धापूबाई एवं ब्र० कस्तूरबाईजी। जब आपकी ३ वर्ष की उम्र थी तभी पिताजी का स्वर्गवास हो गया तथा १० वर्ष की उम्र में माताजी का वियोग हो गया। मां के स्वर्गवास होने के बाद आप बड़ी बहिन धापूबाईजी के पास अजिनाश चले गये तथा वहां पर लौकिक शिक्षण प्रारम्भ किया।

मुनिसंघ दर्शन—आप अजिनाश में विद्या अध्ययन कर रहे थे। उस समय वि० सं० १९९४ में खातेगांव में परम पू० मुनि श्री जयकीर्तिजी के दर्शन किये तथा महाराजजी के दर्शनों से प्रभावित होकर महाराजजी की सेवा में रह गये। महाराजजी का विहार इन्दौर की ओर हुआ तथा इन्दौर में पू० मुनि श्री जयकीर्तिजी का समाधिमरण हो गया। इस समय इन्दौर में पू० आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज विराजमान थे अतः अब आप आचार्य श्री के चरण सान्निध्य में आ गये। सं० १९९५ में आचार्य श्री वीरसागरजी का चातुर्मास खातेगांव में हुआ तब आपने आचार्य श्री से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किए। ३ माह पश्चात् आप सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कर आत्म साधना की ओर अग्रसर हुए।

संहितासूरि:—आपने अपने जीवन काल में लगभग ७० से अधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई साथ ही सैकड़ों स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा एवं विधान आदि धार्मिक कार्य करा कर धर्म की महती प्रभावना की।

प्रतिष्ठाकारक के रूप में आपका नाम अग्रणी है आपको मरसलगंज पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर संहितासूरि की उपाधि से अलंकृत किया गया।

उपाधियां:- आपको कई प्रसंगों पर अनेकानेक जगह उपाधियों तथा अभिनन्दन पत्र समर्पित किये गये।

व्यक्तित्व:—आपका व्यक्तित्व अनूठा है। यद्यपि स्कूली शिक्षा आपको बहुत कम मिली है किन्तु आपका ज्ञान वारिधि अथाह है। धर्म चिन्तन की अथक लगन जैसी आप में है वैसी विरले ही में दिखाई पड़ती है साहित्यसेवा, पत्रकारिता, समाज सेवा आदि क्षेत्रों में आपकी त्यागमयी सेवा भावना आपके चिन्तन मनन के विशिष्ट पहलू रहे हैं।

शान्तिवीर नगर श्री महावीरजी के आप अधिष्ठाता हैं तथा संस्था को आप भली भांति मार्ग दर्शन देकर उसकी उन्नति में प्रयत्नशील हैं। आप साधु सेवा में रहकर, धर्म ध्यान करते हुए आत्म साधना में लीन हैं।

ब्र० धर्मचन्दजी शास्त्री

शारीरिक आकार प्रकार से विद्यार्थी सदृश व स्वभावतः मक्खन से मृदु और बालमन से सरल सौम्य श्री बाल ब्रह्मचारी धर्मचन्द्र शास्त्री का जन्म १३ दिसम्बर १९५१ सं० २००८ को सागर (M. P.) जिले में महूका नामक ग्राम में हुआ था।

आपके पिता श्री अयोध्याप्रसादजी जैन धर्मनिष्ठ प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। ९ वर्ष की आयु में आपके पिता का वियोग हो गया।

शिक्षाः—प्रारम्भिक शिक्षा, टडा गोद चले जाने से वहां पर १० वीं कक्षा तक हुई। आचार्य संघ में रहकर शास्त्री एवं आचार्य आदि की परीक्षाएं दीं। ज्योतिषाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, संहिता सूरि आदि की भी परीक्षा दीं।

त्याग भावना एवं संयमित जीवनः—होनहार विरवान के होत चीकने पात वाली कहावत के अनुसार आप गुरु भक्ति करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

१६ वर्ष की उम्र में सन् १९६९ जयपुर में आप आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के चरणों में आकर साधु सेवा एवं वैयावृत्त करने लगे तथा धार्मिक अध्ययन शुरु किया। गुरु महाराज के आशीर्वाद से अपने ज्ञान का विकास किया।

ब्रह्मचर्य दीक्षाः—सन् १९६९ में आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से जयपुर में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

तीर्थ यात्राः—पू० मासोपवासी मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज की सम्मेदशिखरजी की यात्रा में संघके साथ पैदल चले। जयपुर से शिखरजी एवं जयपुर से श्रवणवेलगोला एवं बुन्देलखंड की यात्रा की।

मुनि श्री दयासागरजी महाराज को ससंघ बुन्देलखंड की सम्पूर्ण यात्रा कराई तथा सिद्धवरकूट, ऊन, बावनगजा, पावागढ़, तारंगाजी आदि की वंदना कराई संघ में ७ मुनि ५ माताजी २ क्षुल्लकजी थे।

मुनि श्रेयांससागरजी महाराज को ससंघ विहार के सभी तीर्थों की वंदना कराते हुए तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की वंदना कराई, संघ में २ मुनि ३ माताजी २ क्षुल्लकजी थे। संघ को अजमेर से मधुवन तक लेकर गये।

सामाजिक कार्यों का श्री गणेश:—श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के अभिवन्दन ग्रंथ का सम्पादन कर जैन समाज एवं जिनवाणी व साहित्य की अनुपम सेवा की। यह ग्रंथ अपने आप में एक महान् ग्रंथ है जिसने जैन समाज में सर्व श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है।

भा० दि० जैन महासभा के वृहत् इतिहास का भी सम्पादन किया है जिसमें लगभग ९० वर्ष प्राचीन संस्था का लेखा जोखा है। आप वर्तमान में अन्य कई ग्रंथों के प्रकाशन एवं सम्पादन कार्य में लगे हुए हैं।

आपने अभी "साधुओं का जीवन परिचय" ग्रंथ का सम्पादन कार्य किया है, यह भी जैन समाज के लिये एक महान उपलब्धि है। आपकी मौलिक रचनाएं भी हैं जो शीघ्र ही छपकर सामने आ रही हैं। स्यादवाद गंगा के आप सहयोगी सम्पादक भी रहे।

सामाजिक सम्मान:—आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के अभिवन्दन ग्रंथ विमोचन एवं समर्पण समारोह के शुभ अवसर पर पारसोला ग्राम में ४० हजार जन समुदाय के मध्य में भा० दि० जैन महासभा की ओर से आपको युवारत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया। दिल्ली सीताराम बाजार जैन मन्दिर में जैन समाज की ओर से आपको धर्म युवारत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया।

सन् ८५ जनवरी में आ० कुन्दकुन्द की तपस्थली पुन्नोरमलै में पू० आ० विजयमति माताजी के सान्निध्य में दक्षिण भारत की जैन समाज ने श्री इन्द्रध्वज महामण्डल आराधना के उपलक्ष में आपका अभिनन्दन किया।

वर्तमान में आप आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के संघ में रहकर आत्मसाधना कर रहे हैं।

वीरेन्द्र गोधा
गोधा सदन, जयपुर